रज्जब बानी

(संत कवि रज्जब की मौलिक रचनाओं का सम्पूर्ण संग्रह)

सम्पादक—डा० व्रजलाल वर्मा,
एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक हिन्दी विभाग,
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

प्रकाशक
उपमा प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, कानपुर

प्रकाशक

उपमा प्रकाशन,

प्रा० लि०, कानपुर

प्रथम संस्करण,

१० दिसम्बर, १९६३

मूल्य २०)

मुद्रक

रामनाथ गुप्त

छाया प्रेस,

८/२०८, आर्यनगर, कानपुर



परम पूजनीया माता सुखरानी देवी

जिन्होंने १४ अगस्त, ६२ को स्वर्गमन से पूर्व यावज्जीवन अपने तपश्चरण से
अनुप्राणित कर वात्सल्य का पीयूष मुझे प्रदान किया,
उन्हींके यशोधवल पाणि-युग्म में महात्मा कवि
रज्जब की यह अमर दिव्य वाणी
सप्रणति समर्पित है।

मां! तब तक तुम अमर, अमर जग में जब तक रज्जब वाणी।
तुम जब तक हो अमर, अमर मैं भी तब तक हे कल्याणी!

तुम्हारा बबुवा
व्रजलाल

५-१२-६३

आशीर्वचन !

श्री सच्चिदानन्द परमात्मा की असीम कृपा से जगत् के जीवों के हितार्थ जगत् में उच्चकोटि के संत प्रकट होते ही रहते हैं। ऐसे ही उच्चकोटि के संत श्री दादू जी महाराज माने जाते हैं। दादू जी महाराज के १५२ शिष्य थे; उनमें १०० तो साधना में तल्लीन रहे और ५२ ने गुरुदेव के सिद्धान्त का प्रचार किया तथा प्रायः वाणीकार हुये। उन्हीं बावन में संत रज्जब हैं, जो अच्छे विचारक थे। उनकी वाणी आपके कर कमलों में है। आप इसका अध्ययन करेंगे तब आपको स्वयं ही यह अनुभव होगा कि रज्जब जी बड़े अनुभवी संत थे। वि० सं० २०१३ के चातुर्मास सत्संग सुन्दर बाग से जब मैं जयपुर आया तब श्री दादू महाविद्यालय मोती डोंगरी जयपुर में श्री स्वामी मंगलदास जी महाराज की प्रेरणा से कानपुर के श्रीमान् ब्रजलाल जी वर्मा ने श्री रज्जब वाणी समझने की इच्छा मेरे सामने प्रकट की और मेरे साथ ही जयपुर से पुष्कर के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में रिक्शा में बैठे बैठे प्रसंगवश रज्जब वाणी साखी भाग विरह के अंग की एक अरिल पर विचार चला। उसका अर्थ मेरे द्वारा समझ कर ब्रजलाल जी को प्रसन्नता हुई और साथ ही विश्वास भी हो गया कि अब मेरा कार्य हो जायेगा। पुष्कर में श्रीकृष्ण कृपा कुटीर के पास ही आनन्द कुटीर में ब्रजलाल जी ठहर गये। वे प्रातः से सायंकाल तक भोजन का समय छोड़कर रज्जब वाणी के समझने का कार्य करते रहते थे। आधा कार्य करने के पश्चात् वे कानपुर गये और पुनः फाल्गुण मास में आये तथा सम्पूर्ण रज्जब वाणी समझने के पश्चात् उन्होंने रज्जब जी पर शोध ग्रंथ लिखा। भगवत्कृपा से उसमें उत्तीर्ण होकर तथा पुनः रज्जब वाणी का संपादन करके उन्होंने वाणी-प्रेमियों का महान् हित किया है। शोध ग्रंथ राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाशित हुआ है और वाणी उपमा-प्रकाशन कानपुर द्वारा।

बानी के रूपक सर्वसाधारण के लिये तो कठिन पड़ते ही हैं, किन्तु बहुत से इसमें ऐसे पद्य भी हैं, जो बिना सुने शिक्षित जनों के भी समझ में नहीं आते। कारण इसमें पारसी, तुर्की, अरबी तथा राजस्थानी डिंगल भाषा के शब्दों के प्रयोग हुए हैं। इससे वे कठिन होगये हैं, किन्तु ब्रजलाल जी ने शब्दकोश देकर वाणी-प्रेमियों का महान् हित किया है। रज्जब जी के साहित्य के ठीक प्रकाशन-प्रसार का कार्य ब्रजलाल जी के द्वारा आरम्भ हुआ है, यह प्रसन्नता की बात

है। संत वाणी-प्रेमियों को इससे महान् लाभ होगा तथा साहित्य-प्रेमियों को भी इसमें बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। कवियों के लिये भी यह महान् आशीर्वाद रूप है। इसमें ऐसी हजारों उक्तियाँ मिलती हैं, जिनसे कवि-गण अपनी कविता को सुन्दर बना सकते हैं। उत्तम शिक्षा का तो यह भांडार है ही, फिर भी यह कुछ कठिन होने से जनता को विशेष लाभ नहीं पहुंचा सकी; किन्तु अब इससे प्रत्येक साधक तथा साधारण सभी कुछ न कुछ लाभ उठा सकते हैं। ब्रजलाल जी अब रज्जब जी के "सर्वंगी" ग्रंथ के भी संपादन का विचार कर रहे हैं। यह उनका परम श्लाघनीय विचार है। "सर्वंगी" भी महान् ग्रंथ है। यह संग्रह ग्रंथ है। इसमें अपनी रचना के साथ साथ अन्य उच्चकोटि के संतों तथा कवियों की रचना का श्री रज्जब जी ने संग्रह किया है। इसके संपादन-प्रकाशन से भी हिन्दी भाषा और जनता की महान् सेवा होगी। जिस प्रकार ब्रजलाल जी श्री रज्जब-साहित्य का मनन करके उसे सर्वसाधारण तक पहुंचाने का परिश्रम कर रहे हैं, उसी प्रकार वे आगे भी करते रहें, ऐसो ही कृपा इन पर भगवान् करते रहें। आशा है वाणी-प्रेमीजन उनके कार्य से लाभ उठा कर उनका परिश्रम सफल करेंगे।

श्रीकृष्ण कृपा कुटीर
पुष्कर दि० ४-९-६३ ई०

नारायणदास स्वामी

स्तुत्य प्रयास :: शुभ-कामना

हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों को यह भलीभांति ज्ञात है कि राजस्थान में संत साहित्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान में सोलहवीं, सत्रहवीं, अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदियों में अनेक उच्चकोटि के संत हुये हैं। उन्होंने तथा उनके अनुयायियों ने अपने अनुभव को प्रचलित हिन्दी भाषा में विविध रचनाओं द्वारा जनसाधारण का परम कल्याण किया है तथा हिन्दी साहित्य के नैतिक अंग का परम पोषण किया है।

विविध विश्वविद्यालयों के मनीषी अपने शोध कार्य के लिये इन संतों की रचनाओं का चुनाव करते हैं। इन्हींमें रज्जब वाणी के सम्पादक माननीय प्रोफेसर ब्रजलाल जी वर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी० भी हैं। आपने अपने शोध का विषय परम संत मनोजयी महात्मा दादू जी के वरिष्ठ शिष्य रज्जब जी को बनाया था। रज्जब जी पर आपका शोध-प्रबंध ससम्मान स्वीकृत हुआ तथा उसका प्रकाशन "राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान" जोधपुर द्वारा हुआ है।

आपने अपने शोध निबन्ध लिखने से पहले रज्जब जी के सम्पूर्ण साहित्य का मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय किया। रज्जब जी दादू जी के प्रमुख शिष्यों में थे। वे जाति के पठान थे तथा रहने वाले सांगनेर के थे। सांगनेर में उनका 'रज्जबद्वारा' आज भी अवस्थित है। रज्जब जी परम विचारक तथा निष्ठावान् साधक थे। उन्होंने दो ग्रंथों की रचना की। पहला ग्रंथ 'रज्जब वाणी' है, जिसमें साखी, पद भाग, लघु ग्रंथ, कवित्त, सवैये, अरिल हैं। उनकी दूसरी रचना 'सर्वंगी' है। यह उच्चकोटि का संग्रह ग्रंथ है। इसमें विभिन्न प्रकरणों पर दादू, कबीर, नामदेव, रैदास, हरिदास, जगन्नाथ, जगजीवण वषना आदि संतों के तथा अपने वाक्यों का संग्रह किया है। दोनों ग्रंथ पर्याप्त बड़े हैं। माननीय ब्रजलाल जी ने रज्जब जी की बाणी का सम्पादन कर तथा इसके प्रकाशन की व्यवस्था कर एक बहुत बड़े अभाव का निराकरण किया है। वर्मा जी ने जिस लगन व क्रम के साथ "रज्जब वाणी" का सम्पादन किया है, तदर्थ वे हिन्दी साहित्य जगत् के समादरणीय हैं। हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ साहित्यकार संत साहित्य की ओर बहुत कम आकर्षित हैं। संत साहित्य पर जिन महानुभावों ने ध्यान दिया हैं उनमें बड़थ्वाल जी, माननीय हजारी प्रसाद जी द्विवेदी, चतुर्वेदी परशुराम जी आदि अग्रणी हैं।

दादू जी व दादू जी के शिष्यों, प्रशिष्यों तथा परवर्ती संतों की रचनाएँ बहुत विस्तृत हैं। पर उनके प्रकाशन की तो बात ही क्या है, उनके अवलोकन करने वालों का ही परम अभाव है। दूसरे संत साहित्य के पाठकों का भी अभाव है, अतः संत साहित्य का प्रकाशन सामान्य प्रकाशकों के वश का काम नहीं।

संत साहित्य निर्दोष मानसिक खूराक है; इससे मनुष्य में उन दैवी गुणों का उत्कर्ष होता है, जिनसे समाज का महत्व बढ़ता है; नैतिकता के उत्पादन व पोषण के लिये जन-समाज के हाथ में संत-साहित्य जाना चाहिये। संस्कृत भाषा में ऐसा साहित्य बहुत विशाल है; पर वह जनसाधारण की समझ से बाहर है। जनसाधारण की मनोमय भावना में मानवीय उत्कृष्ट गुणों के आविर्भाव के लिये संत साहित्य परम रसायन का कार्य करता है।

वर्मा जी ने रज्जब वाणी का सम्पादन कर तथा प्रकाशित कर जनसाधारण का परम हित-साधन किया है। आशा है हिन्दी साहित्य-मनीषी इसका अवलोकन कर संतों के संतुलित विचारों का परिचय प्राप्त करेंगे तथा वर्मा जी के श्रम को सफल बनायेंगे।

मंगलदास स्वामी

प्राचार्य
श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर
१ - ९ - ६३

महात्मा रज्जब का परिचय

रज्जब जी की जन्म-तिथि, जन्मकुल एवं जन्म-स्थान विषयक जानकारी के प्रामाणिक स्रोतों के अभाव में किसीके लिये भी 'इदमित्थम्' कह सकना कठिन है। राजस्थानी साहित्य और संस्कृति के मेधावी इतिहासकार जयपुर-निवासी स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए० विद्याभूषण, द्वारा दादू सम्प्रदाय के सन्तों के साहित्य एवं जीवनियों पर गवेषणात्मक कार्य प्रस्तुत किया गया था। उन्होंने स्वामी दादू दयाल के विद्वान् शिष्य स्वामी सुन्दरदास जी की सम्पूर्ण रचनाओं को 'सुन्दर ग्रन्थावली' नाम से संकलित एवं सम्पादित किया था, जिसका प्रकाशन सं० १९५३ में राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता द्वारा हुआ था। ऐतिहासिक तथा साहित्यिक अनुसन्धान-कार्य में स्व० पुरोहित जी की कैसी अमोघ शक्ति थी, इसका परिचय तो 'सुन्दर ग्रन्थावली' की ३९६ पृ० की विस्तृत भूमिका और सुन्दरदास जी के जीवन-वृत्त को देखकर ही प्राप्त होसकता है। पुरोहित जी राजस्थान के विश्रुत विद्वान् थे। उन्होंने रज्जब के सम्बन्ध में सम्यक् प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के लिये शत-शत प्रयत्न किये, परन्तु ऐसे जिज्ञासु पुरुषार्थी शोधक को भी रज्जब जी के कुल, परिवार एवं जन्म-तिथि के सम्बन्ध में प्रायः अनुमानों के आश्रय में ही रहना पड़ा।

पुरोहित जी ने रज्जब जी पर एक विस्तृत लेख 'महात्मा रज्जब जी' शीर्षक से लिखा था, जो कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले त्रैमासिक पत्र 'राजस्थान' के वर्ष १ के तीसरे और चौथे अंकों में प्रकाशित हुआ था। उस लेख में पुरोहित जी ने रज्जब जी की जीवन-विषयक प्रामाणिक सामग्री की खोज में असमर्थता व्यक्त करते हुये लिखा था 'रज्जब जी का जन्म संवत् कहीं लिखा नहीं मिलता है'। उसी लेख में आगे चलकर वे लिखते हैं:—

"अधिक खोज और तलाश करने से रज्जब जी और उनके थांभे के सम्बन्ध में अनेक और बातें मिल जाने की पूरी सम्भावना है। हमको जो कुछ मिला है उसका खुलासा दिया गया है। अधिक ज्ञाता पाठकगण संशोधन तथा अभिवृद्धि करके इस विषय को शुद्ध और समृद्ध करें तो और भी उत्तम कार्य सम्पादन होजांय।"

रज्जब जी के जीवन एवं साहित्य-सम्बन्धी जानकारी के लिये मैंने राजस्थान की तीन यात्राएँ कीं। सर्वत्र रज्जब विषयक सूचना तथा सामग्री का संकलन किया, उसका अध्ययन किया और लगभग ५ वर्षों के सतत प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप मैं रज्जब जी की बानी को प्रस्तुत कर सका हूं। विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध सम्प्रदाय के ग्रन्थों एवं सन्तों की बानियाँ देखीं—दादू द्वारों में जा जा कर महात्माओं से मिला, किन्तु रज्जब जी के माता-पिता का नाम, उनकी जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि का प्रामाणिक पता कहीं भी न लग सका। इन यात्राओं एवं मिलन-प्रसंगों का यह लाभ अवश्य हुआ कि पुष्कर के एक महात्मा स्वामी नारायण दास जी जयपुर के श्री दादू महाविद्यालय में मिल गये। "रज्जब-बानी" की एक छपी हुई प्रति जो ज्ञान-सागर प्रेस बम्बई

में संवत् १९७५ में प्रकाशित हुई थी—मेरे पास थी। दो हस्तलिखित प्रतियाँ श्री दादू महाविद्यालय जयपुर के संग्रह से प्राप्त हुईं, जिनको आधार मान कर मैंने उक्त पुष्कर-वासी स्वामी नारायण दास जी के साहचर्य में रज्जब वानी का पाठ-शोध किया तथा उसका यत्किञ्चित् अर्थ भी स्वामी जी से समझा। नारायणे के दादू द्वारा के विशाल संग्रहालय में रज्जब जी की दूसरी कृति 'सर्वंगी', जो अनेक महात्माओं की बानियों का संग्रह है, प्राप्त हुई। उसकी एक वृहत् शरह भी देखी गई। इस प्रसंग में इतना और कहना है कि राजस्थान के संग्रहालयों में 'सर्वंगी' की हस्तलिखित प्रतियां तो उपलब्ध होती हैं, परन्तु 'बानी' का प्राय: लोप-सा होता जारहा है। पुरोहित हरिनारायण जी ने रज्जब जी के जीवन पर जो कुछ भी प्रकाश डाला है, उसका आधार दादू सम्प्रदाय के सन्तों की अनुश्रुतियाँ एवं कुछ सन्तों की बानियाँ मात्र हैं। कालान्तर में रज्जब जी के सम्बन्ध में इतस्तत: चर्चा होने लगी थी। हिन्दी-जगत् रज्जब जी से प्रथम बार तब परिचित हुआ जब मिश्र-बन्धुओं द्वारा लिखा गया हिन्दी साहित्य का विवरणात्मक इतिहास "मिश्र बन्धु विनोद' नाम से सं० १९७० में प्रकाशित हुआ। इस इतिहास में रज्जब जी का चलताऊ उल्लेख दो स्थानों में प्राप्त होता है।[1]

दादू सम्प्रदाय में १५२ महात्मा हुये—यद्यपि महात्माओं की इस संख्या पर विद्वानों में मतभेद रहा, किन्तु श्री दादू महाविद्यालय जयपुर से प्रकाशित श्री दादू महाविद्यालय रजत जयन्ती ग्रन्थ की भूमिका में प्रस्तावित दादू सम्प्रदाय के संक्षिप्त इतिहास में सप्रमाण बताया गया है कि "शिष्य प्रशिष्यों का स्वतन्त्र विवरण राघोदास जी की भक्तमाल में विशेष रूप से किया गया है। हृदयराम जी व लालदास जी कृत दो शिष्य नामावलियाँ भी बनी हुई हैं; इनसे सिद्ध होता है कि दादू जी के जितने शिष्य हुये उनमें १५२ प्रधान शिष्य थे। कथानक प्रचलित है कि उनमें से सौ तो ऐसे वीतरागी थे, जिन्होंने व्यवहार सत्ता का प्राय: त्याग ही कर दिया था। वे अनवरत आत्म-चिन्तन में ही संलग्न रहते थे। उक्त ग्रन्थ की भूमिका में एक स्थान पर ५२ तथा दूसरे स्थान पर १५२ शिष्यों की नामावली प्रस्तुत की गई है, जिसमें क्रमश: नवम् तथा दशम् स्थान रज्जब जी का है। रज्जब जी के प्रतिभाशाली तथा साधना-गरिमा-मण्डित व्यक्तित्व की एक झलक स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा के इन शब्दों में हम प्राप्त कर सकते हैं—"रज्जब जी का अनुभव और ज्ञान तथा संग्रह विशाल थे। उनकी ज्ञान-पिपासा, उनका तप, उनका भजन, उनका शास्त्र-ज्ञान, कथा कीर्तनादि सत्संग और प्रभाव बहुत ही बढ़े चढ़े थे। वे जन्म-सिद्ध महात्मा थे। वे पूर्व जन्म से ऐसा संस्कार लेकर आये थे कि 'क्षिप्रम्भवति धर्मात्मा'-शीघ्रतर वे संसारी से त्यागी होगये, मानो भगवत्कृपा का भाण्डार साथ ही था और गुरु के क्षणिक सत्संग से ही वे उसी प्रकार अपने सहज आत्म-स्वरूप को प्राप्त होगये जिस प्रकार लोहा पारस के स्पर्श मात्र से तुरन्त स्वर्ण होजाता है। वे विवाह वेश में 'वनड़ा' बने हुये ही 'बाबा जी' बन गये; यह बड़े ही आश्चर्य की घटना उनके जीवन में हुई, वे योगी थे और अति दीर्घजीवी होकर शरीर

---

१ "सुन्दर दास, रज्जब जी, जन गोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, खेमदास आदि उनके (दादू) शिष्य अच्छे कवि भी थे"। मिश्र बन्धु, विनोद प्रथम भाग पृष्ठ ३४९। "कवि संख्या ३३९, नाम-रज्जब जी, ग्रन्थ—सर्वंगी, रचना काल-सं० १७०० विवरण साधारण श्रेणी, ये महाशय दादू के शिष्य थे। इन्होंने खड़ी बोली लिये हुये कविता की है।" मिश्र बन्धु विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ सं० ४७५।

को आश्चर्यजनक रीति से उन्होंने छोड़ा था।''[१] पुरोहित जी इसी प्रसंग में आगे लिखते हैं, "उनके जीवन-काल में ही उनका मान, उनके गुरु ही नहीं, सर्व शिष्य-मण्डली, भक्तों और सबमें होगया था। उनका वचन बहुत ही गम्भीर, सारभरा, अनुभव-सिद्ध और प्रायः अलौकिक तथा चमत्कारी है। उनके नुकीले उपदेश चित्त-कमल के कोमल पत्रों में चुभ जाते है।"

इसमें किञ्चित् अतिशयोक्ति नहीं कि दादू सम्प्रदाय में साधना एवं मति-वैदग्ध्य की दृष्टि से महात्मा दादू दयाल के दो ही शिष्यों का उल्लेख आता है—रज्जब जी तथा छोटे सुन्दरदास। दोनों में अन्तर यही था कि रज्जब जी का आनुभूतिक ज्ञान प्रबल था और सुन्दरदास जी का शास्त्रीय ज्ञान। रज्जब जी की प्रतिभा और महिमा से प्रभावित होकर ही अनेक सन्तों ने उनकी शिष्यता महात्मा दादू दयाल के जीवन काल में ही स्वीकार कर ली। रज्जब जी के शिष्यों की चर्चा हम अन्यत्र करेंगे, किन्तु यहां पर रज्जब जी के व्यक्तित्व के प्रभाव की ओर न्यूनाधिक संकेत आवश्यक है। रज्जब जी के कतिपय शिष्यों ने तो उनकी महिमा का अतीव मुग्ध वाणी में चित्रण किया है। चैनदास, रामदास, खेमदास, कल्याणदास, मोहनदास प्रभृति ऐसे ही शिष्य हैं। रज्जब जी की इस ख्याति, प्रभाव और कीर्ति का श्रेय उनके तपोमय व्यक्तित्व तथा उनके द्वारा प्रणीत सरस अनुभूतिमूलक दृष्टान्तों से मण्डित उनकी 'वाणी' को है। दादू सम्प्रदाय में कोई अन्य कृति ऐसी नहीं है, जो आध्यात्मिक तथा साहित्यिक किसी भी दृष्टि से रज्जब बानी की तुलना में ठहर सके। सम्प्रदायों में रज्जब-बानी का दादू-बानी से किसी प्रकार भी कम पारायण नहीं होता था। कहा तो यह जाता है कि गुरु-बानी को रज्जब-बानी कहीं प्रभावहीन न कर दे, इसलिये दादू जी के कुछ भक्त रज्जब-बानी के पारायण को दादू-शिष्यों के लिये श्रेयस्कर नहीं मानते थे; तथापि कुछ शिष्य रज्जब-बानी में अगाध आस्था रखते थे। राणीला के ऊंदरा गांव के स्वामी नारायण दास जी के शिष्य हरिदास रज्जब-बानी के परम भक्त थे—विश्रुत कवि और पण्डित होने के नाते वह अपनी रचनाओं में भी रज्जब जी का भक्ति-पूर्वक स्मरण करते थे।[२] रज्जब जी की प्रतिभा की चर्चा करते हुये पण्डित परशुराम जी चतुर्वेदी ने लिखा है:—'इन्हें कथा-वार्ता करने का बहुत अभ्यास था और दृष्टान्तों के प्रयोग में तो ये इतने कुशल थे कि इनकी बराबरी का कोई कदाचित ही मिलेगा।[३] पुरोहित जी ने भी इसी तथ्य के पोषण में लिखा है—"रज्जब जी दृष्टान्त के बहुत प्रेमी थे। कथा कहते, तब दृष्टान्तों की भरमार कर देते और कथा उनकी सरस सुमधुर, गम्भीर और दृष्टान्त और कथानकों से विभूषित होजाती थी''।[४] रज्जब जी की इस प्रतिभा पर मुग्ध होकर उनके शिष्य ने कुछ सवैये लिखे हैं, जिनमें से दो हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं:—

> ज्यूं बसि मंत्र के आवत वीर, जहां जस दीन तहां तस मूंके।
> ज्यूं धर्मराज के काज करै सब, दूत अनेक रहैं ढिग ढूंके॥
> ज्यूं नृप के तप तेज तै कम्पत, पास रहै पर आइ कहूंके।
> ऐसे ही भांति सबै दृष्टान्तहि, आगे खड़े रहैं रज्जब जूके॥१॥

---

१ "संतवाणी मासिक पत्र अंक १ मंगल प्रेस जयपुर में पुरोहित हरिनारायण शर्मा का 'महात्मा रज्जब जी' शीर्षक लेख।

२ संतवाणी अंक १ में पुरोहित हरिनारायण शर्मा का लेख।

३ उत्तरी भारत की संत-परम्परा—पृ० ४२६।

४ संतवाणी अंक ३ में पुरोहित जी का लेख।

सांझ समै ज्यूं सबै सुरही, घरि जात चलीं जस बच्छ के रागे ।
भूपति को भय मानि डुनी जु, अनीति बिसारि सुनीति सुलागे ।
मोहन ज्यूं बसि मंत्र के बौर, प्रभाति चटाचट सार कुजागे ।
योंहि कथा के समै दिष्टान्त, सु आइ रहे फिरि रज्जब आगे ।।२।।

दादू सम्प्रदाय में दो महात्मा, छोटे सुन्दरदास और निश्चलदास, ऐसे हुये, जिन्हें परम शास्त्रज्ञ कहा जा सकता है । ये दोनों महात्मा वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे । इनमें से सुन्दरदास जी रज्जब जी की प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित थे । इसलिये यद्यपि वे फतहपुर शेखावाटी में बस गये थे, परन्तु बीच-बीच में आकर रज्जब जी के सत्संग के लिये सांगानेर चले जाते थे और वहां स्थान भी था । अपने गुरु की, वाणी के अर्थ, आशय और मर्म को सुन्दरदास जी ने अधिकतर रज्जब जी से बहुत ज्ञान लाभ किया था और उनकी उक्तियों और विचारों और कविताओं में रज्जब जी की झलक मिलती है । रज्जब जी ने भी सुन्दर दास जी के शास्त्रीय-ज्ञान और योगाभ्यास से अवश्य लाभ प्राप्त किया होगा ।[1] रज्जब जी से सुन्दरदास जी परमप्रीति मानते थे । संवत् १७४२ के बाद एक बार सुन्दरदास जी रज्जब जी के दर्शनार्थ पधारे, परन्तु उनके ब्रह्मपद प्राप्त होने का समाचार सुन कर अत्यन्त दु:खी हुये । इस वियोग के समाचार से अपने परम इष्ट, मित्र और ज्ञान–भाण्डार रज्जब जी के शरीर-पात से उनके कोमल हृदय पर कुछ ऐसा आघात पड़ा कि वे तब ही से विरह विभोर हुये, रुग्ण होते चले गये । रज्जब जी की मृत्यु से व्यथित होकर सुन्दरदास थोड़े ही दिन तक रोगग्रस्त रहे । वे परमसमाधिस्थ होगये ।[2] न केवल सुन्दरदास, दादू जी के अनेक शिष्यों को रज्जब जी के निर्वाण पर हृदय–विदारक क्षोभ हुआ । इससे यह परिचय मिलता है कि रज्जब जी ने अपने संत-सुलभ स्नेहोत्पादक स्वभाव से समस्त संत वृन्द को स्ववशीभूत कर लिया था । उनके शिष्यों ने उनके दस बारह थांमे (गद्दियां) चलाये और इनके पंथ का नाम रजबावत पड़ा । रजबावत और दादू-पंथ में किसी प्रकार की सैद्धान्तिक भिन्नता नहीं थी ।

अपनी मौलिक प्रतिभा, स्वस्थ, सुगठित शरीर तथा मृदु सरल वाणी-सम्पन्न व्यक्तित्व द्वारा रज्जब जी दादू सम्प्रदाय के शीर्षस्थ महात्मा माने जाते थे । दादू जी स्वयं इनसे बड़ा स्नेह रखते थे । दादू सम्प्रदाय के विस्तार में रज्जब जी का साधनाचार तथा उनकी सजीव मार्मिक रचनाओं ने अप्रतिम योग दिया है । वर्ग-भावना-बिरहित—द्वेष-रहित साधना तो उनमें साकार होगई थी । निस्सन्देह ऐसे प्रशस्त हृदय, विशालकाय एवं दीर्घायु महात्मा ही मानवात्मा का मल विपेक्ष दूर कर सकने में समर्थ होते हैं ।

दादू सम्प्रदाय के सभी महात्मा रज्जब जी को, दादू जी का ज्ञानी, गुणी, पराक्रमी एवं अधिकारी शिष्य मानते थे ।[3] रज्जब जी के प्रमुख शिष्य खेमदास ने तो रज्जब जी के अनन्त गुणों और शक्तियों का वर्णन किया है ।

---

१ सुन्दर ग्रन्थावली, प्रथम भाग–भूमिका पृ० ५७
२ सुन्दर ग्रन्थावली–प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ ५९
३ श्री दादू जन्म लीला परची :—
सिस्य एक रज्जब अधिकारी ।
ज्ञानी गुनी सूर अति भारी ।।

ज्ञान अनन्तरु ध्यान अनन्त हो बुद्धि अनन्त दई दीनानाथै
विवेक अनन्त विचार अनन्त हो भाग्य अनन्त लिख्यो जिन्ह माथै ।
सिद्धि अनन्तरु निद्धि अनन्त रिद्धि अनन्त रहै नित हाथै
सब बोल अनन्तरु पाप को अंत हो क्षेम कहै गुरू रज्जब साथै ।।

रज्जब जी के सम्बन्ध में इसी प्रकार की उक्तियां उनके कई शिष्यों ने तथा सहसाधकों ने कही हैं । 'रज्जब बानी के भेंट के सवैये' वाले अंग में आठ सवैयों में रज्जब जी की प्रतिभा, ज्ञान-साधना, तप-उदारता और वैराग्य को लेकर सुन्दर चित्रण किया गया है । रज्जब जी विषयक जानकारी के आधार पर हम कह सकते हैं कि रज्जब जी को दादू सम्प्रदाय में वही महत्व है, जो रामभक्ति शाखा में गोस्वामी तुलसीदास का । तुलसीदास जी ने अपनी निजी वैयक्तिक साधना के साथ-साथ ऐसी विशाल मन-प्रेरक काव्य-कृतियां लिखीं, जो सहस्राब्दियों तक राम की भक्ति को प्रतिष्ठित बनाए रहेंगी तथा काव्य-पिपासु-जनों को चिरंतन तृप्ति प्रदान करती रहेंगी । रज्जब जी की मौलिक कृति 'बानी' तथा नाना सन्तों की 'बानियों' की सार रूप में संकलित एवं सम्पादित विशाल कृति "सर्वंगी" ने दादू सम्प्रदाय में विशेष चेतना उत्पन्न करदी । रज्जब जी की बानी का आद्योपान्त पारायण करने से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उसकी तुलना में दादू सम्प्रदाय के किसी संत की बानी नहीं ठहरती । रज्जब जी के कृतित्व की कतिपय विलक्षणताएं ऐसी हैं, जो उन्हें सामान्य साधक अथवा महात्मा से पृथक एक विशिष्ट विभूतिमत्ता प्रदान करती हैं । उन विलक्षणताओं की संक्षेप में हम इस प्रकार गणना कर सकते हैं:—

क—रज्जब जी ने पठान-वंशीय होकर भी हिन्दुओं की निराकार निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन किया ।

ख—रज्जब जी पठान होने के नाते दादू सम्प्रदाय के सर्वाधिक बलिष्ठ, पराक्रमी तथा स्वस्थ शरीर के महात्मा थे ।

ग—वे अपने विवाह के लिये जब वर बने जारहे थे तो मार्ग में दादू जी के उपदेश से विरक्त होगये—बारात में नहीं गये और वहीं से महात्मा बन गये ।

घ—वे अपने विरक्त साधु जीवन में इसलिये दूल्हे की पोशाक पहनते रहे, कि उसी वेश में उनको गुरु की उपलब्धि हुई थी ।

च—वे १२२ तक वर्ष जीवित रहे—इतनी दीर्घायु विरले ही महात्माओं को प्राप्त हुई ।

छ—दृष्टान्तों और लोक-व्यवहार के प्रसंगों की भूमिका में अध्यात्म-निरूपण का उनमें अद्वितीय कौशल था ।

ज—रज्जब जी पठान होकर भी राजस्थानी हिन्दी पर अच्छा अधिकार रखते थे ।

झ—रज्जब जी ने अपने गुरु द्वारा बताई गई विधि से एक जंगल में जाकर प्राण विसर्जित किये ।[1] अपनी इन्हीं कतिपय विशेषताओं और विलक्षणताओं के कारण वे सब शिष्यों

---

१ दादू वाणी—स्वामी मंगल दास जी द्वारा सम्पादित सुमिरण को अंग—

हरिभजि साफिल जीवना, पर उपगार समाइ ।
दादू मरणा तहं भला, जहां पसु पंखी खाइ ।।
कबीर मरना तहं भला, जहां न अपना कोय ।
माटी भके जिनाउरा, मुवा न रोवै कोय ।।

में अत्यन्त सम्मानित, प्रिय और विश्वस्त थे। दादू जी अपने इस शिष्य का बहुत आदर करते थे और सदा ही रज्जब जी ('जी' कारे से) सम्बोधन करते थे।[१]

रज्जब जी का कृतित्व

दादू सम्प्रदाय के अन्तर्गत महात्मा रज्जब एक ऐसे साधक थे जिन्होंने अपने तप:पूत आचार और पावन 'बानी' द्वारा समूची संत-साधना को धन्य कर दिया है। वे साधना-व्योम के उन नक्षत्रों में हैं जो दीर्घ कालावधि-पर्यन्त अप्रकट रह कर भी घोर अविद्यान्धकार में भूले बटोहियों को दिशा दर्शन कराते हैं। रज्जब जी के जीवन का घटनाचक्र, साधनानन्यता, विपुल मनोरम अनुभूतियाँ, चिन्तन-प्रकृष्टता, मौलिक ऊहाएं एवं उद्भावनाएं, साहित्यिक मनोज्ञता, आचार वैचित्र्य तथा सन्त स्वभाव-सुलभ वैलक्षण्य—उनके व्यक्तित्व के कतिपय ऐसे अद्भुत पटल हैं, जो दृष्टि-निक्षेप मात्र में किसीके भी हृदय को सहज ही विमुग्ध कर देते हैं। दादू सम्प्रदाय में रज्जबदास और सुन्दरदास अपनी कुछ विशिष्टताओं के कारण सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। रज्जब अपनी साधनात्मक एवं साहित्यिक अनुभूतियों के कारण तथा छोटे सुन्दरदास जी अपनी साधना और वेदान्त ज्ञान के कारण अपने युग के छोटे बड़े सभी संतों के आदरास्पद बन गये थे।

दादू सम्प्रदाय की संत-परम्परा के अध्ययन में मेरी प्रवृत्ति हुई—इसका श्रेय मेरे कतिपय गुरुजनों तथा संत-साहित्य के उन विद्वज्जनों को है जिनकी कृतियों से मैंने सहायता प्राप्त की। गुरु और ग्रन्थ से प्राप्त सूचना ही उनकी प्रेरणा से विस्तृत होकर ज्ञान बन जाती है। दादूपंथी संत-परम्परा में रज्जब जी का जीवन-वृत्त एवं उनका साहित्य मेरे कौतूहल का विषय बन गया। परिणामत: अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए दादू संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर, के प्रधानाचार्य एवं संत-साहित्य के मर्मज्ञ स्वामी मंगलदास जी की प्रेरणा से मैंने सम्पूर्ण राजस्थान की तीन यात्राएं कीं। जयपुर, आमेर, सांगानेर, नारायणा, पुष्कर, अजमेर, बीकानेर, जोधपुर, डींडवाणा, कोड़िया, चित्तौड़, उदयपुर, नाथद्वारा आदि स्थानों के पुस्तकालयों एवं विद्वानों का दर्शन करके ही मैं रज्जब जी के साहित्य की गवेषणा कर सका।

रज्जब जी का साहित्य हिन्दी जगत् के लिए कुछ नवीन-सा है तथा समालोचना और विवेचना के लिए तो और भी नवीन। रज्जब जी की 'बानी' का प्रकाशन एक बार सं० १९७५ में ज्ञानसागर प्रेस माटुंगा, बम्बई, से हुआ था, किन्तु नितान्त अशुद्ध तथा भ्रष्ट मुद्रित होने के कारण वह न होने के समान ही रहा। उधर राजस्थान और पंजाब के दादूपंथियों के बीच यद्यपि रज्जब साहित्य का पठन-पाठन हस्तलिखित प्रतियों के माध्यम से चलता रहा, किन्तु हम उसे हिन्दी साहित्य के अध्ययन की विकसित परम्परा के अन्तर्गत नहीं रख सकते। उस पठन-पाठन की पृष्ठभूमि में सम्प्रदायगत धार्मिक निष्ठा ही प्रमुख थी। जयपुर के स्वर्गीय पुरोहित श्री हरनारायण जी शर्मा का 'महातमा रज्जब' शीर्षक लेख तथा पं० परशुराम जी चतुर्वेदी की पुस्तक 'उत्तरी भारत की संत-परम्परा' से आगे इधर रज्जब जी पर कोई आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। अत: मैंने यह उचित समझा कि रज्जब जी के साहित्य को शुद्ध रूप में प्रकाश में लाया जाय। राजस्थान का समग्र भ्रमण करने के उपरान्त मुझे यह लक्षित हुआ कि रज्जब जी की संकलित प्रति 'सर्वंगी' की हस्तलिखित प्रतियाँ यत्र-तत्र वहाँ के पुस्तकालयों में

---

१ संतवानी अंक १, जयपुर--में पुरोहित जी का लेख।

सुविधा से उपलब्ध होजाती हैं, किन्तु उनकी मूल रचना 'बानी' लुप्तप्राय होरही है। 'रज्जब बानी' की दो प्रतियाँ दादू महाविद्यालय जयपुर में, एक प्रति नारायणा के दादूद्वारे में, एक प्रति देवसा में, एक पुरातत्व मंदिर जोधपुर में (जो अब प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के नाम से विख्यात है) हैं, किन्तु यहाँ भी सम्भवतः पूरी 'बानी' उपलब्ध नहीं होती है। इसी प्रकार 'बानी' की एक अधूरी प्रति अनूप लाइब्रेरी बीकानेर में है। सम्भव है दो चार प्रतियाँ और इतस्ततः राजस्थान में प्राप्त होजाँय। पुरोहित हरनारायण शर्मा जयपुर के संग्रहालय में भी एक दो प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। यह संग्रहालय उनके सुपुत्र के द्वारा प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर को इस शर्त पर प्रदान किया गया है कि प्रतिष्ठान की एक शाखा जयपुर में स्थापित कर दी जाएगी, जिससे वह साहित्य-सामग्री जयपुर से हटाई न जाय। तदनुसार यह शर्त राजस्थान सरकार ने स्वीकार कर ली और प्रतिष्ठान की एक शाखा जयपुर में खोल दी गई, जहाँ पुरोहित जी की सारी साहित्य-सामग्री अद्यापि संगृहीत है।

दादू सम्प्रदाय की एक और विशेषता यह रही है कि इस सम्प्रदाय के विरले ही सन्त ऐसे मिलेंगे, जिन्होंने किसी न किसी प्रकार के साहित्य की रचना न की हो। इस पंथ के प्रायः सभी सन्तों ने कुछ न कुछ अवश्य लिखा है। विचारों की प्रस्तुत भूमिका में धर्म-साधना अथवा साहित्य-साधना की दृष्टि से कोई अन्य ऐसा महात्मा न हुआ जो सम्प्रदाय की देश-कालिक सीमाओं का प्रस्तार करता। दादू जी के शिष्यों-प्रशिष्यों में सत्तर से अधिक महात्मा ऐसे हैं, जिन्होंने साम्प्रदायिक साहित्य की रचना की। इसका विस्तृत उल्लेख मैंने अपने शोध प्रबन्ध 'संत कवि रज्जब—सम्प्रदाय और साहित्य' में किया है, जिसका प्रकाशन प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, राजस्थान सरकार, के द्वारा हुआ है। इसी प्रसंग में अपने पाठकों को यह सूचित कर देना समीचीन होगा कि राजस्थान में एक सम्प्रदाय और है, जिसके संतों में अनेक ने साहित्यिक एवं साम्प्रदायिक ग्रंथों की रचना की है—वह है निरंजनी सम्प्रदाय, जिसका प्रवर्तन राजस्थान के कोड़िया ग्राम में जन्म लेने वाले संत हरिदास निरंजनी (संत हरिपुरुष) द्वारा हुआ। सन्त हरिपुरुष ने डींडवाणा ग्राम के निकट समाधि बनाकर साधना की। दादू सम्प्रदाय की उक्त शताधिक कृतियों में जिन महात्माओं की कृतियों की विशेष प्रतिष्ठा है उनमें रज्जबदास, छोटे सुन्दरदास, जगजीवनदास तथा निश्चलदास प्रमुख हैं। इनमें भी रज्जब जी की 'बानी' के प्रति समाज का विशेष आदरभाव और रुचि रही है। राजस्थान और पंजाब में आज भी ऐसे लोग हैं, जिन्हें रज्जब जी के सवैये और साखियाँ प्रभूत संख्या में कंठस्थ हैं। वैष्णव भक्तों में साहित्यिक वैभव की दृष्टि से जो स्थान तुलसीदास और सूरदास का है, वही स्थान दादू सम्प्रदाय में रज्जबदास और सुन्दरदास का है।

रज्जब जी की दो कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। पहली 'रज्जबबानी' दूसरी 'सर्वंगी' अथवा सर्वांगयोग। एक तीसरी कृति का भी उल्लेख मिलता है, जो रज्जब जी के गुरु दादूदयाल जी की 'बानी' का संग्रह है। यह संग्रह रज्जब जी द्वारा संकलित एवं सम्पादित माना जाता है। 'रज्जब बानी' रज्जब जी की मौलिक रचना है तथा 'सर्वंगी' साधना के एक एक अंग पर कई कई महात्माओं की उक्तियों का संकलन है। 'सर्वंगी' को हम रज्जब जी की सम्पादित कृति मान सकते हैं। 'दादू बानी' प्रारम्भ में व्यवस्थित नहीं थी, किन्तु रज्जब जी ने उसे अंगों में श्रेणी-बद्ध कर व्यवस्थित बनाया। विभिन्न अंगों में वर्गीकृत 'दादू बानी' को 'अंगबन्धो' अथवा

'अंगबन्धू' नाम से भी अलंकृत किया गया। इसके उपरान्त प्राय: सभी प्रतियों का प्रणयन तथा संकलन अंगबद्ध रूप में होने लगा।

'रज्जब बानी' में साखी (दोहा), पद, छप्पय, त्रिभंगी, सोरठा, चौपई, अरिल, सवैया, कवित्त आदि छंदों में नाना प्रकार से अध्यात्म, धर्मनीति, सदाचार, ज्ञान, चेतावनी, उपदेश, समाजनीति, ज्ञान और भक्ति-प्राप्ति के उपाय, पाप-कर्मों के दुष्ट परिणाम, मुक्तिमार्ग, ईश्वर-प्राप्ति, पाखंड-खण्डन, मत-समीक्षा, सत्यासत्य-निर्णय, मन और इन्द्रिय-निग्रह, सन्मार्ग-प्रवृत्ति, कुमार्ग-निवृत्ति, उत्तम शिष्य, गुरु महिमा इत्यादि अनेकानेक विषय अत्यन्त प्रभावशाली शैली में वर्णित हैं। 'रज्जब बानी' विशाल ग्रंथ है; यहाँ उसका संक्षिप्त पूर्व-परिचय देना अनुपयुक्त न होगा। छंदों के आधार पर 'रज्जब बानी' के साहित्य को हम इन आठ भागों में विभक्त करेंगे :—

(१) **साखी**—इस प्रकरण में एक सौ तिरानबे अंग (अध्याय) तथा ५३५२ छंद हैं। इसमें दोहा, चौपई, सोरठा, अरिल आदि में अनेक उपयोगी उपदेशपूर्ण एवं रहस्य-भरे विषय हैं। कहना चाहिए कि इस खण्ड में रज्जब जी का सारा ज्ञान तथा अनुभव समाविष्ट है।

(२) **पद (भजन)**—तीस राग-रागनियों में २०० पद हैं, जिनमें भगवत्प्रेम, विरह, योग, वैराग्य, जीवात्मा का सम्बन्ध, मुक्तिमार्ग, सत्यासत्य-निर्णय, गुरुमहिमा, गुरुभक्ति, परापूजा, परमार्थ इत्यादि उत्तमोत्तम विषय मर्मस्पर्शी शैली एवं रोचक रागों की बंदिशों में वर्णित हैं।

(३) **सवैया**—३६ अंगों में ११७ छंद हैं। इसमें दादू गुरु महिमा, गुणावली, दादू जी के सिद्धान्त, दादू जी के महाप्रयाण पर शोक-प्रकाश, दादू जी के पुत्र शिष्य गरीबदास जी की महिमा, विरह सूरातन, साधु महिमा, उपदेश, पीव पिछाण, सत्य चिन्तावणी, माया ही में मुक्ति की प्राप्ति, तृष्णा, विश्वास आदि का आकर्षक चित्रण है।

(४) **गुण छंद**—इसमें दोहा, त्रिभंगी छंद ३३ हैं, जिनमें प्राय: दादू जी की महिमा और गुणावली तथा गुरु की प्रधानता उपदेश आदि रोचक शैली में प्रस्तुत किये गये हैं।

(५) **गुण अरिल**—नौ अंगों में ८२ अरिल छंद हैं, जिनमें छंद मात्र के अन्तर से लगभग अन्य प्रकरणों के विषय ही वर्णित हैं।

(६) **तेरह लघु ग्रंथों में**—प्राय: चौपई छंद में उपदेशात्मक कथन हैं। ये ग्रंथ हैं (१) प्रथम बावनी (२) ग्रंथ बावनी अक्षर उद्धार (३) पन्द्रह तिथि (४) सप्तवार (५) गुरु उपदेश आतम उपाधि (६) अविगत लीला (७) अकल लीला (८) परम पारिख (९) उत्पत्ति निर्णय (१०) गृह वैराग्य बोध (११) पराभेद (१२) दोष दरीबे (१३) जैन जंजाल।

(७) **कवित्त (छप्पय)**—४० अंगों में ८९ छप्पय हैं। विविध मनोहर विषयों पर लिखा हुआ यह छोटा सा ग्रंथ अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका पाठ प्राय: साधु लोग करते रहते हैं। इसमें पाठक को विलक्षण रसानुभूति होती रहती है।

(८) **शिष्यों के रचे महिमा छंद**—चैनदास, रामदास, खेमदास, अमरदास, कल्याणदास, मोहनदास आदि कई महात्माओं ने अतीव प्रभावपूर्ण शैली में रज्जब जी का गुणानुवाद एवं अपनी प्रतिभा का पुष्ट प्रमाण उपस्थित किया है।

'रज्जब बानी' की हस्तलिखित प्रतियों का अब लोप-सा होता जारहा है, यह हम अभी कह चुके हैं। सं० १६७५ विक्रमी में यह ग्रंथ साधु सेवादास, वैद्य कृपाराम जी, साधु रामकरण जी के उद्योग तथा शेखावटी के सेठ शिवनारायण जी नेमाणी के आर्थिक सहयोग से बम्बई के ज्ञानसागर प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित हुआ था, किन्तु सम्पादक महोदय की भाषानभिज्ञता तथा रज्जब जी के काव्य से अपरिचय के कारण यह ग्रंथ आद्योपान्त कुछ और का और ही होगया। शब्द वाक्य और छंद सभी भ्रष्ट होगये। इस ग्रंथ के छप्पय भाग की सुन्दर टीका (विशेषत: शब्दार्थ) स्वामी रामदास जी दूबल धनियाँ वालों ने की थी, जो ग्रंथ के साथ दी गई थी।

'रज्जब बानी' के रचनाकाल के सम्बन्ध में उक्त मुद्रित 'रज्जब बानी' के सम्पादक ने अपनी भूमिका भाग में लिखा है-"इस मनोहर ग्रंथ की रचना संवत् १६२५ वि० से संवत् १६५० वि० के भीतर हुई है।" इस छपे हुए ग्रंथ के साथ छापेखाने, व्यवस्थापकों एवं सम्पादकों का खिलवाड़ देखकर सचमुच बड़ा क्लेश होता है। छपाई और सम्पादन में तो प्रमाद किया ही गया है, रज्जब जी के सम्बन्ध में निराधार मत भी प्रस्तुत किये गए हैं। उदाहरण के लिए 'वाणी' का रचनाकाल सं० १६२५ से सं० १६५० के बीच का बताया गया है। प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होचुका है कि रज्जब जी सन् १५६७ (सं० १६२४ वि०) में उत्पन्न हुए थे। यदि 'बानी' का रचनाकाल सं० १६२५ से १६५० के बीच मान लिया जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि जब रज्जब जी एक वर्ष की आयु के थे, तभी 'बानी' की रचना में प्रवृत्त हो गए थे। रचनाकाल-सम्बन्धी यह मत सर्वथा असंगत तथा निराधार है। इस सम्बन्ध में पुरोहित हरिनारायण शर्मा का मत ही मान्य है। उन्होंने 'राजस्थान पत्रिका' कलकत्ता में प्रकाशित अपने 'महात्मा रज्जब जी' शीर्षक लेख में लिखा है—"रज्जब जी सं० १६४४ में या उसके आस पास ही दादूदयाल के शिष्य आमेर में हुए थे और सं० १७४६ में रामशरण (स्वर्गवासी) होगए। इस कारण इनकी रचनाएं सं० १६५० से लगाकर सं० १७४० तक होती रही होंगी, परन्तु अधिकांश रचनाएं इनकी सं० १७२५ तक हुई होंगी, जब तक इनकी इन्द्रियाँ यत्किंचित काम करती रही होंगी।" इसी प्रसंग में पुरोहित जी आगे कहते हैं—"अपने गुरु के परमधाम-गमन पर इन्होंने छंद लिखे हैं, जिनका सं० १६६० में लिखा जाना सिद्ध है। गरीबदास जी के भेंट के सवैये इसके भी कई वर्ष पीछे के हैं, शायद सं० १६६५ और १६७० के बीच के हों। हमारे पास इनकी 'बाणी' के कई अंश सं० १७४१ और १७४२ तथा १७४३ के लिखे मौजूद हैं। इसीसे हम कहते हैं सं० १७४० इनकी रचना का अन्तिम समय समझना चाहिए।" पुरोहित जी का यह मत प्रमाण-पुष्ट है। मुद्रित ग्रंथ की भूमिका का रचनाकाल-सम्बन्धी मत भ्रामक एवं अप्रामाणिक है। रज्जब जी के संस्कृत का विद्वान् होने वाली धारणा भी कोरी भ्रान्ति है। यह ठीक है कि रज्जब जी बहुश्रुत थे, सत्संगी थे, विद्वानों का साहचर्य उन्हें प्राप्त हुआ था; किन्तु स्वयं संस्कृत के विद्वान् थे—यह बात किसी भी प्रकार तर्कानुमोदित नहीं है।

रज्जब जी का दूसरा ग्रंथ 'सर्वंगी' है, जिसे हम उनकी संकलन-कृति मान सकते हैं। इस ग्रंथ में १४२ अंग हैं। अंगों के शीर्षक 'रज्जब बानी' की भांति ही हैं। विशेषता यह है कि एक एक अंग (विषय) पर अपनी बानी के साथ साथ कई महात्माओं की उक्तियाँ रज्जब जी ने अनुस्यूत की हैं। दादू, कबीर, कृष्णदास, हरदास सिंह (सम्भवत: यही स्वामी हरिदास निरंजनी हैं), नामदेव, महमूद, जनगोपाल, परमानन्द, सूरदास, अहमद, बखना, मुकुन्द, नानक, गोरख, बाजिन्द,

गोस्वामी तुलसीदास, अग्रदास, छीपा, बेनी, पीपा, माधोदास, परशुराम, दीनदयाल, सोम, चतुर्भुज, चत्रदास, जगन्नाथ, गरीबदास, रैदास, फरीदा, खेमदास, अमरदास, विष्णुदास, सेन, जयमल, सुन्दरदास, बीसा, अंगद, सुखानन्द, हणवन्त (हनुमन्त), नरसी, त्रिलोचन, नारायण, रामानन्द, विद्यादास, सांवलिया, गोविन्ददास, नागरदास, बलदास, सन्तदास, पूर्णदास, बेरियानन्द, पृथ्वीनाथ, जगजीवन, आदि सन्तों की उक्तियों को खोज खोज कर विभिन्न अंगों के अनुसार विषयानुरूप सम्बद्ध किया है। एक दो स्थलों में भविष्य पुराण से भी कुछ खण्ड उद्धृत किए गए हैं। उक्त महात्माओं के अतिरिक्त स्वामी शंकराचार्य, भर्तृहरि, वशिष्ठ के संस्कृत श्लोकों तथा मंसूर, खुसरो, अहमद, और काजी महमूद सूफी साधकों के फारसी बैंतों की योजना भी प्रसंगानुसार की गई है। एक एक विषय पर कई कई महात्माओं की सारगर्भित वचनावली का समावेश किया गया है।

नारायणे के दादूद्वारे में 'सर्वंगी' की एक विशाल शरह (पद्य टीका) भी प्राप्त होती है। 'सर्वंगी' की जो हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान में यत्र-तत्र मुझे देखने को मिलीं उनसे यह पता चलता है कि इनकी सामग्री में, विशेष रूप से उसके क्रम में भिन्नता है। पाठ-शोध की दृष्टि से 'सर्वंगी' का सम्पादन 'रज्जब बानी' के सम्पादन से कम दुष्कर नहीं। 'रज्जब बानी' तथा 'सर्वंगी' दोनों ग्रन्थों के अंग शीर्षकों में विशेष अन्तर नहीं है। भेद इतना ही है कि 'रज्जब बानी' में रज्जब जी की मौलिक रचनाए हैं तथा 'सर्वंगी' में रज्जब जी द्वारा उनकी अपनी रचनाओं के अतिरिक्त अन्य महात्माओं की उक्तियाँ भी नियोजित हैं। दोनों ग्रन्थों का कलेवर प्राय: समान है। दोनों कृतियाँ विशाल हैं। जहाँ 'रज्जब बानी' में रज्जब जी की मौलिक प्रतिभा एवं माया, ब्रह्म, जीव-जगत् सम्बन्धी प्रकाण्ड ज्ञान का परिचय मिलता है, वहीं उनकी संकलित तथा सम्पादित कृति 'सर्वंगी' में उनके बहुश्रुत होने तथा पूर्ववर्ती और समयुगीन प्राय: समस्त प्रसिद्ध महात्माओं की रचनाओं से परिचित होने का जीवन्त प्रमाण प्राप्त होता है। यह दोनों कृतियाँ दादू-पन्थी साहित्य के अप्रतिम रत्न माने जाते हैं। 'सर्वंगी' का रचना-काल सं० १६५० से १७४० के बीच में ठहरता है। यह भी निर्विवाद है कि 'सर्वंगी' की रचना 'रज्जब बानी' के उपरान्त हुई, क्योंकि 'सर्वंगी' में रज्जब जी ने अपनी 'बानी' की सामग्री का भी विषयानुसार उपयोग किया है। 'दादू बानी' के सम्बन्ध में दादू-पंथियों में प्रसिद्ध है कि दादू जी ने 'बानी' जैसे ग्रंथ की रचना नहीं की है, प्रत्युत अपने शिष्यों के समक्ष बीच बीच में वे जो भाव व्यक्त करते अथवा उपदेश करते वह पद्य में ही करते थे। वे प्राय: अपनी बात दोहों में कहते थे। उनके शिष्यों में मोहनदास ऐसे थे जो अपने गुरु दादू की सभी पद्यमयी उक्तियों को तत्काल लिख लेते थे, स्यात् इसीलिए संत मोहनदास दादू-पंथी साधुओं में मोहनदास दफ्तरी के नाम से विख्यात हैं। इस प्रकार दादू जी की उक्तियों की विशृंखल राशि को अनुक्रमित एवं विषयानुसार सुसम्बद्ध करने का श्रेय रज्जब जी को है। बहुत सम्भव है कि संतों की बानियों के अंग-बद्ध करने की इस प्रक्रिया के जन्मदाता रज्जब जी ही हों, जैसा कि संत-साहित्य के विद्वानों का विचार है।

रचनाओं की प्रकृति

किसी साहित्य के अध्ययन के लिए जब हम प्रेरित होते हैं, तो हमारा ध्यान सहज ही साहित्य-शास्त्र के नियमों और सिद्धान्तों की ओर जाता है, किन्तु रज्जबजी के साहित्य (हमारे विचार से सम्पूर्ण संत-साहित्य) का काव्य-शास्त्र के आधार पर पर्यालोचन करना न तो न्याय-संगत ही है और न औचित्य-प्रेरित ही। संत-साहित्य की परम्परा में ही रज्जब की रचनाओं का आस्वाद कुछ निराला और भिन्न प्रकार का है। उनके छन्द पक्ष में तो किंचित् शास्त्रीयता मिल जाती है, परन्तु यदि हम उसका रस-मूलक अध्ययन करते हैं, तो केवल निर्वेद पुष्ट शान्त रस ही रचनाओं में आद्योपान्त व्याप्त लक्षित होता है। सर्वत्र जीवन की ऐहिकता तथा जगत् के मिथ्यात्व की चर्चा, संत-स्वभाव-सुलभ सेवा, जप-तप, इन्द्रिय-निग्रह, मनोनिग्रह, नीति और अनीति, साधु-असाधु-भेद, जीव-माया-ब्रह्म का निरूपण, सत्यासत्य-विवेक, चेतावनी तथा उपदेश, लय समाधि, अजपाजप, सुरति निरति विषयों की नियोजना ही उपलब्ध होती है। यही कारण है कि कबीर, नानक, दादू सुन्दरदास, पलटू, मलूकदास, रविदास आदि संतों के काव्य का विद्वानों ने विषयगत विवेचन तो प्रस्तुत किया है, किन्तु उनके काव्य-शास्त्रीय पक्ष पर विचार नहीं किया।

'रज्जब बानी' के सन्दर्भ में दादू जी और सुन्दरदास की बानियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। दादू, रज्जब, और सुन्दर की बानियों का यदि हम संक्षेप में तुलनात्मक विश्लेषण करें तो इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि दादू दयाल की 'बानी' सहज, सरस, तथा अयत्नज है। यह दादू जी के हृदय की अशेष विभूति से आप्यायित है। 'दादू बानी' की कवित्वमयता भी सहज है; उसमें किसी प्रकार का कवि-यत्न नहीं हैं। 'रज्जब बानी' में रज्जब जी के हृदय की भाव-विभूति के साथ साथ कविता का प्रयत्न-साध्य गौरव भी परिलक्षित होता है। उनकी 'बानी' का अध्ययन करने से यह प्रतीति होती है कि रचना करते समय रज्जब जी के अध्यात्म-निष्ठ संत के साथ ही उनका कवि भी जागृत और सचेष्ट रहा है। रज्जब जी के समस्त आध्यात्मिक विचार साहित्यिक शैली में अभिव्यक्त हुए हैं। सुन्दरदास की 'बानी' में भाव, ज्ञान, तथा अध्यात्म तीनों का योग है। इसे यों स्पष्ट करेंगे कि सुन्दरदास जी महात्मा थे, वेदान्ती थे, और कवि थे। एक वाक्य में कहें तो कह सकते हैं कि दादू जी ने अपने हृदय का भाव अत्यन्त सहज और निश्छल ढंग से व्यक्त किया है; रज्जब ने हृदय की आध्यात्मिक अनुभूतियों को काव्य रस में निमज्जित किया है तथा सुन्दरदास ने भावों की परिणति दार्शनिकता में की है। इसे स्पष्ट करने के लिए हम तीनों महात्माओं की एक एक साखी एक ही विषय पर प्रस्तुत करेंगे :—

दादू : **दादू सतगुरु सहज में, कीया कछु उपकार।**
निर्धन धनवंत कर लिया, गुरु मिलिया दातार॥

रज्जब : **तन मन सक्ति समन्द गति, निर्मल नाँव जहाज।**
बादबान बुधि थम्भ चढ़ि, गुरु सारे सब काज॥

सुन्दरदास : **सुन्दर समुझे एक हैं, अनसमझे को इति।**
उभय रहित सतगुरु कहैं, सो है वचनातीति॥

उपर्युक्त तीनों साखियों की भावाभिव्यक्ति पर ध्यान देने से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि दादू की वाणी का प्रमुख गुण सहजता है, रज्जब जी की अभिव्यञ्जना का साहित्यिकता और

सुन्दर की अभिव्यक्ति का दार्शनिकता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दादू और रज्जब में दार्शनिकता नहीं है अथवा सुन्दरदास में सहजता और सरसता नहीं है।

रज्जब जी के काव्य-पक्ष की काव्यशास्त्रीय विवेचना करने के लिए उसके रूपकों,, उपमानों, दृष्टान्तों आदि पर विचार कर लेना अनुपयुक्त न होगा। सम्पूर्ण सन्त साहित्य पर विचार करने से हम एक निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संत कवियों में प्रायः काव्यालंकारों में रूपक अलंकार की योजना करने की विशेष प्रवृत्ति रही है। रूपक अलंकार में उपमान और उपमेय दोनों का भेदाभेद (एक दूसरे से नितान्त अभिन्न) करके वर्णन किया जाता है [1]। अर्थात् उपमान तथा उपमेय के परस्पर एक दूसरे के अत्यन्त सदृश होने से जब उनके परस्पर भेद का ज्ञान छिप जाय और वे अभिन्न से प्रतीत होने लगें [2]। साहित्य-दर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने रूपक की परिभाषा करते हुए बताया है कि रूपक अलंकार में (विषय अथवा उपमान द्वारा) अनपन्हुत (न छिपाए गए) विषय (आरोप विषय उपमेय) पर विषयी (उपमान) का अभेदारोप होता है [3]।

आचार्य मम्मट और कविराज विश्वनाथ दोनों ने रूपक के तीन भेद माने हैं। (१) परम्परित रूपक (२) सांग रूपक (३) निरंग रूपक। उपमान और उपमेय में अत्यन्त सादृश्य प्रदर्शित करने के लिए दोनों में एकता का आरोप जहाँ किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है। रूपक अलंकार का तो यह शास्त्रीय लक्षण हुआ, किन्तु उसके द्वारा होने वाले अर्थ की निष्पत्ति कवि के प्रयोग-कौशल पर निर्भर करती है। कवि उपमान और उपमेय में जितनी ही अधिक लक्षण सादृश्य की योजना कर सकेगा उतना ही अधिक यह अलंकार अर्थ-स्फोट में सहायक होकर पाठक को चमत्कृत करेगा। इसके लिए हम रज्जब जी के एक रूपक का उदाहरण देंगे। रज्जब जी गुरु के उपकारी स्वभाव की व्याख्या वृक्ष के रूपक के माध्यम से करते हैं :-

गुरु तरवर अंग डाल बहु, पत्र बैन फल राम।
रज्जब छाया में सुखी, चाखिउं सरे सुकाम॥

यहाँ गुरु वृक्ष है, अंग उसकी डालियाँ हैं, वचन पत्ते हैं, राम फल है। कोई भी शिष्य-पथिक इस गुरु वृक्ष की छाया में बैठकर अपने त्रिविध ताप दूर कर सकता है तथा उसमें लगे हुए रामफल का आस्वादन कर सकता है।

कहीं कहीं रज्जब जी रूपक के द्वारा अवगुण-युक्त उपमेय-हीन गुण के रूप में प्रस्तुत करते हुए भी उसकी महत्ता में वृद्धि कर देते हैं। एक स्थल पर वे विषय प्रवृत्त नर-नारी (उपमेय) में चकवा-चकवी के उपमान का सादृश्य स्थापित कर गुरु वचन (उपमेय) में शशि (उपमान) का अभेद आरोपित करते हैं। सामान्यतः रात्रि अन्धकार, निराशा और दुर्भाग्य का प्रतीक होती है, इधर गुरु उपदेश जीवन में आशा आलोक एवं ज्ञान का संचार करता है, परन्तु उसे रात्रि बताकर भी उसकी महत्ता में वृद्धि की गई है—

रज्जब नारी नर जुगल, चकवा चकवी जोड़।
गुरु बैन बिच रैन में, किया दुहुन घर फोड़॥

१— मम्मट का काव्य-प्रकाश, दशम उल्लास, सूत्र १३९

२—वही-दशम उल्लास, १३९ वें सूत्र की व्याख्या

३—साहित्य-दर्पण, दशम परिच्छेद, सूत्र २८

पुरुष और स्त्री-रूपी चकवा-चकवी में विच्छेद उत्पन्न करने के लिए गुरु का उपदेश रात्रि बनकर आगया—अर्थात दोनों में गुरु ने विरक्ति उत्पन्न कर दी। चकवा-चकवी स्वभावत: निशागमन पर एक दूसरे से पृथक् होजाते हैं। साधना पक्ष में ज्ञान और काम (नारी) एक दूसरे से विरक्त होजांय तो साधना सफल होजाय।

उपर्युक्त साखी में परम्परित तथा सांग दोनों प्रकार के रूपकों की योजना हुई है। यहाँ हम केवल सांग रूपक नहीं मान सकते, क्योंकि परम्परित रूपक में एक का अभेदारोप दूसरे के अभेदारोप का कारण हुआ करता है। इस साखी में चकवा-चकवी का अभेदारोप नर-नारी के अभेदारोप का कारण है तथा चकवा-चकवी के अभेदारोप के लिए गुरु वचन और रात्रि में अभेदारोप किया गया है। उधर सांग रूपक में अंगों के रूपण के साथ साथ अंगी का रूपण हुआ करता है। यहाँ पर एक देश विर्वात सांग रूपक न होकर समस्त वस्तु-विषय सांग रूपक है, क्योंकि चकवा-चकवी उपमान के आरोप्यमाण अंगों का जैसे रात्रि और विछोह का शब्दत: उपात्त हुआ है। रज्जब जी द्वारा नियोजित उनकी रचनाओं के समस्त रूपकों की व्याख्या करना तो यहाँ सम्भव नहीं—परन्तु हम उनके कतिपय प्रसिद्ध रूपकों को उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं।

परम्परित और सांग रूपक—

> **प्यण्ड प्राण दोन्यू तपहि, जपा कड़ाही तेल।**
> **रज्जब हरि ससि ज्यूँ रहहि, अगनि मध्य नहिं मेल॥**

इसी साखी में रूपक के साथ साथ उपमालंकार भी उपस्थित है। रज्जब जी की रचनाओं में असंख्य रूपकों की योजना हुई है। कहना चाहिए कि रज्जब साहित्य में सारी भावाभिव्यञ्जना रूपकमयी है।

पारस — गुरु परविध पारस मिल्या, सिख ही खूटी जोइ।
रज्जब पलटै लोह सब, कंकर का क्या होय॥

गुरुदेव का अंग १४७

चंदन — सतगुरु चंदन बावना, परस्यो पलटै काठ।
रज्जब चेला चूक में, रह्या बांस के ठाठ॥

गुरुदेव का अंग १४८

रहट — विण घड़िमाल रहट की भरमै, जल आवे कछु नांहि।
त्यूँ रज्जब चेतन बिन चेला, रीता संगति मांहि॥

गुरुदेव का अंग १५३

धनुर्धर — सतगुरु तीरन्दाज है, सेवक मन नीसांण।
रज्जब गुरु कमणैत सो, जाका बैठा बाण॥

गुरु सिष निदान निर्णय का अंग—२७

चकोर — रज्जब महंत मयंक है, चेला होइ चकोर।
इन्द्री गिलै अंगार ज्यों, अगनि करै नहिं जोर॥

गुरु सिष निदान निर्णय का अंग—४४

कुम्भकार— सेवक कुम्भ कुम्हार गुरु, घड़ि घड़ि काढ़ै खोट।
रज्जब माँहि सहाइ करि, तब बाहै दै चोट॥

गुरु सिष कसौटी का अंग—२

सिलाई — नाँव सुई पट प्राण मति, सुरत सनेही ताग।
रज्जब रज तज काढ़तों, कौन वसत विच लाग॥

अजपा जाप का अंग—८

रज्जब जी के साहित्य के समस्त रूपकों को यदि हम एकत्र करें तो इसके लिए स्वतन्त्र ग्रन्थ-रचना की आवश्यकता है। रज्जब-साहित्य की इस व्यापक एवं बहुलतम रूपक योजना को देखकर हमारी यह धारणा बनती जाती है कि यह एक स्वतन्त्र विवेचना का विषय बन सकता है। रज्जब साहित्य में दृष्टान्त, उपमा, अर्थान्तरन्यास, अपह्नुति, अनुप्रास आदि अलंकारों के सिद्ध प्रयोग हुए हैं। कहीं कहीं तो एक ही साखी में एक से अधिक अलंकार आगए हैं।

रज्जब लघु दीरघ मिलत, मानि महातम जोइ।
यथा तक्र पै परसतौ, जावण हूँ दधि होय॥

साधु संगति मरम लाभ का अंग

इस दोहे में दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, अनुप्रास तीन अलंकारों की योजना हुई है। यहाँ लघु दीरघ तथा तक्र और पय के मिलाप में साधर्म्य की स्थापना की गई है। अत: साधर्म्य-दृष्टान्त है। विशेष से सामान्य के ग्रहण में अर्थान्तरन्यास है। 'रज्जब बानी' में यदि हम संख्यानुपात की दृष्टि से अलंकारों का क्रम प्रस्तुत करना चाहें तो सर्वप्रथम रूपक, फिर उपमा, तदनन्तर दृष्टान्त इसके पश्चात् प्रतिवस्तूपमा, तदुपरान्त उत्प्रेक्षा तथा यत्र-तत्र अर्थान्तरन्यास और अनुप्रास अलंकार मुख्यत: उपलब्ध होते हैं। अलंकार योजना के सन्दर्भ में जब हम 'रज्जब बानी' का अनुशीलन करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रज्जब जी ने अलंकारों की योजना भावाभिव्यक्ति को आकर्षक बनाने से कहीं अधिक उसे सुस्पष्ट एवं प्रभावशाली बनाने के लिए की है। रज्जब जी के काव्य में अलंकार अपने सहज रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जब किसी भाव को पाठक के हृदय में स्पष्ट रूप से कवि ध्वनित करना चाहता है तो वह अपनी काव्यात्मकता का आश्रय लेता है। भावाभिव्यक्ति यदि अलंकार की अपेक्षा रखती है तो अलंकार अभिव्यक्ति की शक्ति बन जाता है और यदि अलंकारों के प्रयोग में आचार्यत्व प्रदर्शन का उद्देश्य होता है तो अलंकार कविता-कामिनी के कोमल कलेवर का सौंदर्य नहीं, उसका भार और विकार बन जाता है। पाठक के लिए वहाँ प्रेरणा नहीं—पीड़ा की सृष्टि होजाती है।

छन्द-योजना—हिन्दी काव्य के छन्दों का यद्यपि मुख्य आधार संस्कृत वृत्तों की गुण-प्रकृति और लक्षण हैं, तथापि संस्कृत को हम एक मात्र आधार नहीं मान सकते। हिन्दी के छन्द केवल संस्कृत से ही नहीं आये हैं, अपितु प्राकृत और अपभ्रंश की छन्द-पद्धति का भी उस पर प्रभाव है। हिन्दी के अधिकांश छन्दों का (विशेषत: मात्रिक तथा कवित्त घनाक्षरी आदि छन्दों का) संस्कृत में नाम भी उपलब्ध नहीं होता। इधर संस्कृत के अनेक छन्द और छन्दोधर्म (विशेषत: आर्या और वैतालीय वर्ग) हिन्दी में पहुंचने से पहले ही प्रयोग-वहिष्कृत होचुके थे। भारतीय छन्द तत्व पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने पर हमें उसके विकास की तीन अवस्थाओं का ज्ञान होता है:—

(क) स्वर-तत्व-प्रधान—Rising and falling tone

(ख) ध्वनि-तत्व-प्रधान—Short and Long sounds

(ग) काल-तत्व-प्रधान—Time Element

स्वर-तत्व-प्रधान छन्दों की योजना वैदिक साहित्य में उपलब्ध होती है। इसमें छन्द की गति ऊंची, नीची, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वर-लहरियों पर अवलम्बित होती है। इसे हम स्वराघात भी कह सकते हैं। ध्वनि-तत्व-प्रधान छन्दों का प्रयोग संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है। इन छन्दों में लय ह्रस्व-दीर्घ ध्वनियों पर आधारित होती है। काल-तत्व-प्रधान छन्दों की योजना हिन्दी में उपलब्ध होती है। प्राकृत और अपभ्रंश काव्य के छन्दों की भांति ही हिन्दी के छन्दों में काल-तत्व की ही प्रमुखता है, क्योंकि उसमें छन्द की लय के लिए ध्वनि की मौलिक ह्रस्वता या दीर्घता पर विचार नहीं किया जाता, अपितु किसी ध्वनि के उच्चारण में जो काल लगता है, उसके आधार पर ध्वनि की ह्रस्वता या दीर्घता का निर्णय होता है। हिन्दी के छन्दों में प्रत्येक स्वर प्रमुखतः काल सापेक्ष है। दीर्घ होने पर भी हिन्दी में स्वर का दीर्घत्व उसके उच्चारण में व्यतीत काल पर निर्भर है। खड़ी बोली के छन्दों में इस काल तत्व की प्रधानता किंचित् घट गई है, किन्तु ब्रज, अवधी और राजस्थानी भाषाओं में इस तत्व का विशेष महत्व है। वहाँ दीर्घ भी कालावलम्बित होने से ह्रस्व की भांति उच्चरित होसकता है। भारतीय संत काव्य में भी इस काल तत्व का विशेष महत्व है, यद्यपि कबीर-परम्परा के निर्गुण काव्य की प्रवृत्ति प्रमुखतः खड़ी बोली की ओर है, फिर भी उसमें ह्रस्व और दीर्घ काल-तत्व द्वारा नियन्त्रित हैं।

रज्जब जी के मात्रिक और वर्णिक दोनों वृत्तों में यह काल तत्व प्रधान है। उनकी साखियों (दोहों) घनाक्षरियों और कवित्तों में अनेक स्थलों पर ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व करके पढ़ना पड़ता है। 'रज्जब बानी' में मात्रिक छन्दों में दोहा, सोरठा, चौपाई, बरवै, कुण्डलिया और छप्पय का प्रयोग हुआ है तथा वर्णिक वृत्तों में सवैया, कवित्त, घनाक्षरी, पद, कमल-बन्ध, छत्र-बन्ध, प्रणव छन्द हैं। इनमें से प्रत्येक से एक को उदाहरण रूप में यहाँ हम प्रस्तुत करेंगे।

चौपाई—रज्जब जी ने दो प्रकार की चौपाइयाँ प्रयुक्त की हैं, जिनको चौपई भी कहते हैं। इनकी चौपाइयों में मात्रिक और वर्णिक दोनों रूप प्राप्त होते हैं।

पति परमेसुर बीरज नाँव, अबला आतम रति रुचि ठाँव।
चेला या समि कोई नाँहि, बिगति बाल बुधि उपजै माँहि।

इस चतुष्पदी में वर्णिक वृत्त का लक्षण विद्यमान है, जबकि चौपाई मात्रिक छन्द है। उसके प्रत्येक पाद में १६ मात्राएं होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रज्जब जी ने चौपई और चौपाई में अन्तर रखा है। चौपई अर्थात् चतुष्पदी में चार पाद तो रखे हैं, किन्तु प्रत्येक पाद के अन्त में पड़ने वाला गण चौपाई का नहीं है। चतुष्पदी में जगण और चौपाई में यगण रखा गया है। रज्जब जी की एक चौपाई का एक उदाहरण लेंगे :—

प्रथम प्राण परम गुरु पावै, परम पुरुष का भाव उपावै।
परम भेद सो देय बताई, तब परै अंग अंगनि सुध पाई॥

ग्रन्थ परा भेद—१

इस चौपाई के प्रथम पाद में एक मात्रा की न्यूनता है तथा चतुर्थ पाद में एक मात्रा का आधिक्य है। यहाँ पर काल तत्व की विशेषता है, अन्यथा चौपाई लक्षण की दृष्टि से अशुद्ध है।

रज्जब जी ने जितने प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, उनमें लक्षण दोष प्राय: देखने को मिलता है। रज्जब जी के समस्त छन्दों में साखी, छप्पय, अरिल तथा सवैया अधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। उन्होंने अपनी 'बानी' में आद्योपान्त बीच बीच में अरिल छन्द का प्रयोग किया है। 'बानी' के अन्तिम भाग में ८३ अरिल लिखे हैं। दादू पन्थी संतों में अरिल लिखने की परिपाटी प्राय: देखने में आती है।

यहैं दया सुनि सत्य सुजीवन मारिये
मन बच क्रम तिरसुद्ध पिसुनता टारिये
सब ही सुकृत कीन्ह मिहर मनसा धरी
परिहा रज्जब रीझे राम रही क्या जन करी

रज्जब जी के अरिलों के चतुर्थ पाद में परिहाँ शब्द जुड़ा रहता है; यह राजस्थानी गायन विधि का एक विशेष अंग प्रतीत होता है। लक्षण ग्रन्थों में अरिल का लक्षण भिन्न दिया है तथा जिस छन्द को रज्जब जी ने अरिल नाम से प्रयुक्त किया है, लक्षण ग्रन्थों में इसका नाम प्लवंगम मिलता है। प्लवंगम में २१ मात्राएं होती हैं। आदि में गुरु अक्षर होना चाहिए। यति प्राय: आठ और तेरह पर होती है। रज्जब जी ने अपने अरिलों में प्लवंगम छन्द की भी नियमितता नहीं बरती।

छप्पय—यह छन्द रोला और उल्लाला छन्दों के योग से बनता है। इसे षट्पदी भी कहते हैं। लक्षणकारों ने छप्पय के ७१ भेद किए हैं। रज्जब जी ने उल्लाला पाटी छप्पय का प्रयोग किया है। चार पाद रोला के तथा अन्तिम दो पाद उल्लाला के छप्पय छन्द का निर्माण करते हैं।

बैरागर मय विभो अष्ट कुल पारस धरिए
कल्पवृक्ष बनराय फूल फल नव रस भरिए
सप्त समुद्रहु सुधा सोइ सरिता सु तलावहु
पीवन कूँ सू पियूष तिहीं मारग गुरु आवहु
नगर पुरी बैकुण्ठ बिच, चिन्तामणि घर पर विरौ।
रज्जब गुरु पूजा सजीव, नामहु सरवर ना गिरौ॥

गुरुदेव का अंग छप्पय

सवैया—रज्जब जी के सवैये दो प्रकार के उपलब्ध होते हैं। एक तो शुद्ध सवैया—इसमें मुक्ताहार, दुर्मिल, सुन्दरी आदि कई जाति के सवैयों का प्रयोग किया गया है। किन्हीं किन्हीं सवैयों में आधा पाद टेक की भांति पहले दिया गया है और उसके पश्चात् ४ पूरे पाद सम दिए गए हैं। उदाहरणार्थ—

रज्जब दयाल सुत ब्रह्म को बजाज है।

किन्तु इस प्रकार के छन्दों में हम सवैये के स्थान पर रूप घनाक्षरी के लक्षण पाते हैं। कलाधर ३१ वर्ण का अन्त में गुरु तथा रूप घनाक्षरी ३२ वर्ण की और अन्त में लघु होती है। उदाहरणार्थ—

"बिरकत रूप धर्यो बपु बाहरै भीतर मूल अनन्त बिराजी।
ऊपरि सों पनहीं पुनि त्यागि जू माँहि तृषा तिहुं लोक की साजी।
कपट कला करि लोक रिझायो हो रोटी की ठौर करी देखो ताजी।
हो रज्जब रूप रच्यो ठग को जिय साधु लखै सब लाखिर पाजी॥

(किरीट सवैया २४ वर्ण)

घनाक्षरी—

"भगवा जु भावै नाँहि बिभूति लगावै नाँहि,
पाखण्ड सुहावै नाँहि ऐसी कछू चाल है।
टीका माला मानै नाँहि जैन स्वांग जानै नाँहि,
परपंच पखानै नाँहि ऐसा कछू हाल है।
सींगी मुद्रा सेवै नाँहि बोध बिधि लेवै नाँहि,
मरम खिल देवै नाँहि ऐसा कछू ख्याल है।
तुरकी तो खोदि गाड़ी हिन्दुन की हद छाँड़ी,
अन्तर अजर माँड़ी ऐसो दादू—लाल है॥"

अब हम रज्जब जी के पद, त्रिभंगी, तथा वर्ष छन्द का एक—एक उदाहरण देकर छन्द प्रकरण समाप्त करेंगे—

त्रिभंगी—३३ मात्रा, अंत में गुरु

"लो बैरी-वासं दूंदर-दासं खाई त्रासं गुण-प्रासं।
बिसण जु दासं फेर्या फासं दोषी नासं नह श्वासं।
जुद्ध जु जासं कहिए कासं बीर बिलासं नह हासं।
प्राणी पासं कीलतरासं बारहमासं काटि करम करता केलं।"

अन्तिम पाद में त्रिभंगी के लक्षणों से यह छन्द च्युत है।

वर्ष छन्द—मगण, तगण, जगण

"दोष अनन्त चलै क्यूँ जीव।
सुनहु संत परसै क्यूँ पीव।
प्रथमहिं देह पाप का मूल।
दोष सकल डाली फल-फूल।

यद्यपि इस छन्द में वर्ष छन्द की गति है, किन्तु गणानुरूपता नहीं है। अतः इसे हम शुद्ध वर्ष न मानकर एक प्रकार की चतुष्पदी ही मानते हैं।

पद—

"राम बिन सावन सह्यो ना जाई।
काली घटा काल हो आई कामिनि दाघे भाई।
कनक जवास बास सब फीके बिन पिय के परसंग।
महा विपति बेहाल लाल बिन लागे विरह भुअंग।
सूनी सेज हेज कहौ कासों अबला धरै न धीर।
दादुर मोर पपीहा बोलै तै सारस हैं तीर॥"

रज्जब जी के पद विशुद्ध भजनों की परम्परा में हैं।

सन्त कवियों की बानियों का सार सर्वत्र दोहों (साखियों) में अभिव्यक्त हुआ है । सन्त कवि अपने पदों अथवा अन्य प्रकार के छन्दों के लिए उतने प्रसिद्ध नहीं, जितना दोहों के लिए। रज्जब जी ने अपना समस्त गम्भीर विचार-तत्व साखियों में व्यक्त किया है । यद्यपि अनेक प्रकार के छन्दों में उनकी रुचि और गति है, परन्तु साखियों में व्यक्त की गई उनकी विचार-विभूति ही अन्य छन्दों में दुहराई गई है । छन्द-रचना के सम्बन्ध में हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सन्त कवियों में कोई भी छन्द आद्योपान्त अपने शुद्ध लक्षणों के निकष पर खरा नहीं उतरता । रज्जब-साहित्य के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। यहाँ भी दोहे का शुद्ध निर्वाह नहीं हुआ, या यह कहिये कि दोहे के कई रूप-भेद रज्जब जी में उपलब्ध होते हैं ।

बिरछ बीज फिरि आवई, पत्र प्यण्ड सो जाय ।
तो चौरासी क्यों मिटे, नर देखौ निरताय ।।
(चौरासी निदान निर्णय का अंग—१)

यह दोहा निर्धारित लक्षणों के आधार पर शुद्ध है, परन्तु कहीं-कहीं दोहे के प्रारम्भ में रज्जब जी ने अपना नाम जोड़कर उसे लक्षणच्युत बना दिया है ।

रज्जब तन में मन मुकुते रहै, बरतणि बंधे सु नांहि ।
पंचम दृष्टि देखै उन्हें, माया काया नांहि ।।

यहाँ प्रारम्भ में रज्जब शब्द आ जाने के कारण प्रथम चरण में १३ मात्राओं के स्थान पर १७ मात्राएँ तथा तृतीय चरण में १३ मात्राओं के स्थान पर १४ मात्राएँ आ गई हैं। रज्जब जी ने कई स्थानों में दोहे एवं अरिल की अन्तिम पंक्तियों में परिहां शब्द जोड़ा है, उसके कारण भी दोहा छिन्न लक्षण होगया है । मात्रा और लय की असंगतियाँ तो आद्योपान्त मिलती हैं । दोहा के अतिरिक्त चौपाई, छप्पय, सवैया, घनाक्षरी, त्रिभंगी और पदों (भजनों) की योजना हुई है । रज्जब जी की मेधा और पुरुषार्थ, दोनों को देखकर कहा जा सकता है कि यदि वे विशुद्ध छन्द-रचना की ओर ध्यान देते तो उनके छन्दों में कहीं कोई शिथिलता न आ सकती थी, किन्तु प्रतीत होता है कि निर्गुण सन्तों की छन्द सम्बन्धी सधुक्कड़ी अनियमितता की रक्षा के लिए ही रज्जब जी ने छन्दों की शुद्धता के प्रति कहीं-कहीं उपेक्षा भाव रखा है ।

भाषा—सन्त-साहित्य की भाषा में अनेक भाषाओं का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। निर्गुण सन्त-कवि भाषा की एकरूपता का निर्वाह नहीं कर सके । यही कारण है कि कबीर आदि सन्त-कवियों की भाषा को विद्वानों ने सधुक्कड़ी अथवा खिचड़ी भाषा कहा है। किसी भाषा के रूप अथवा प्रकृति निर्णय में उसके कारक, क्रिया-पद एवं सर्वनामों का परीक्षण ही विशेष महत्व रखता है। यद्यपि विभिन्न भाषाओं में विभिन्न वस्तुओं के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग होता है, किन्तु भाषाओं की वस्तु संज्ञा भिन्नता उतनी महत्व की नहीं, जितनी कारक, अव्यय, सर्वनामों एवं क्रिया-पदों की भिन्नता । उदाहरण से यह स्पष्ट होजायेगा ।

भाषा	सर्वनाम	अव्यय	कारक
हिन्दी खड़ी बोली	हमारा, तुम्हारा	निकट	का
अवधी	हमार, रउरे, रावरे, तुम्हार	नियर, नेरे	केर या कर

ब्रज	हमारो, तुम्हारो	ढिग	को, कौ
राजस्थानी	म्हारो, थारो	कने, नेड़े	र, रा
पंजाबी	साड्डा, त्वाड्डा	नेड़े	दा
गुजराती	मारो, तमारो	पासे	नू
मराठी	माझा, तुझा	जवड़	चा
बंगला	आमार, तोमार	काछे	रे, रा

रज्जब जी की भाषा कबीर-परम्परा की भाषा है, किन्तु कबीरदास की भाषा में वह सफाई और शुद्धता नहीं है, जो रज्जब जी की भाषा में है। इसका कारण यह है कि दोनों की भाषा में राजस्थानी भाषा का पुट है और रज्जब जी राजस्थान के ही निवासी थे, जबकि कबीर उत्तर प्रदेश (काशी) के थे। रज्जब जी के गुरु दादूदयाल की भाषा की परम्परा रज्जब जी की भाषा में प्राप्त होती है। अन्तर केवल इतना है कि कबीर की भाषा कठोर शब्द-बहुल है. तथा दादू जी और रज्जब जी की भाषा अपेक्षाकृत अधिक मधुर, मनोहारी एवं साहित्यिक है। कहना चाहिये कि कबीर की भाषा उतनी काव्यानुवर्त्तिनी नहीं है, जितनी दादू और रज्जब की। रज्जब जी की भाषा राजस्थानी होते हुए भी बीच-बीच में पंजाबी, गुजराती, उर्दू, फारसी तथा संस्कृत के छींटे भी मिलते हैं। अनेकानेक भाषाओं की शब्दावली के मिश्रण के कारण इन सन्तों के काव्य का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन दुष्कर है। भाषा-विज्ञान-सम्मत नियमितता इन सन्तों की भाषा में नहीं उपलब्ध होती। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि यदि कबीर की भाषा की भाषा-वैज्ञानिक-विवेचना हो सकती तो उस परम्परा के सभी सन्तों की भाषा पर सुविधा से भाषा-विज्ञान-आधारित निर्णय प्रस्तुत किये जा सकते थे, परन्तु ऐसा नहीं हो सका। बाबू श्यामसुन्दरदास का यह कथन ठीक ही है कि "कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीर की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं, परन्तु भाषा का निर्णय अधिकतर संज्ञा शब्दों पर निर्भर नहीं। भाषा के आधार क्रिया-पद, संयोजक-शब्द तथा कारक-चिह्न हैं, जो वाक्य-विन्यास की विशेषताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं। कबीर में केवल शब्द ही नहीं, कारक-चिह्न आदि भी कई भाषाओं के मिलते हैं।" (कबीर-ग्रन्थावली की भूमिका) यह कथन रज्जब जी की भाषा के सम्बन्ध में भी पूर्णत: सत्य उतरता है।

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत यों तो अनेक बोलियाँ हैं, किन्तु उस भाषा के विद्वानों ने उसको मुख्यत: ५ श्रेणियों में विभक्त किया है—मारवाड़ी, ढूंढाढ़ी, मालवी, मेवाती और बागड़ी। यह श्रेणी-विभाजन उन क्षेत्रों के आधार पर किया गया है, जिनके नाम से इन बोलियों को अभिहित किया जाता है। मारवाड़ी को प्राचीन काल में 'मरुभाषा' भी कहते थे। यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा सिरोही राज्यों में प्रचलित है तथा अजमेर, मेरवाड़ा, किशनगढ़, पालणपुर के कुछ भागों, जयपुर राज्य के शेखावटी प्रदेश, सिन्ध प्रान्त के कुछ भागों में, जोधपुर और उसके आसपास के कुछ स्थानों में बोली जाती है। मेवाड़ी इसी मारवाड़ी की उपबोली है। ढूंढाढ़ी का का क्षेत्र शेखावटी प्रान्त को छोड़कर पूरा जयपुर राज्य, लावा, किशनगढ़, टोंक तथा अजमेर, मेरवाड़े का उत्तर-पूर्वीय भाग है। इस बोली पर गुजराती और मारवाड़ी, दोनों भाषाओं का प्रभाव है। इसकी साहित्यिक कृतियों में बीच-बीच में ब्रजभाषा का पुट मिलता है। ढूंढाढ़ी का बूंदी और

कोटे में प्रचलित रूप हाड़ौती नाम से विख्यात है। इन दोनों बोलियों में नाममात्र का अन्तर है। मालवा प्रदेश की भाषा मालवी है तथा मेवाड़ और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में यह व्यवहृत होती है। इसमें मारवाड़ी और ढूंढाड़ी, दोनों विशेषताएँ विद्यमान हैं। कहीं-कहीं मराठी का प्रभाव भी है। यह कर्णमधुर और कोमल भाषा है। मालवा के राजपूतों में यह राँगड़ी नाम से प्रसिद्ध है। मेवाती का प्रचलन अलवर, भरतपुर राज्य के उत्तर-पश्चिम भाग तथा दिल्ली के दक्षिण गुड़गाँव में बोली जाती है। इस पर ब्रजभाषा का विशेष प्रभाव है। डूँगरपुर और बाँसवाड़ा के सम्मिलित राज्यों का नाम बागड़ है, उस प्रदेश की भाषा बागड़ी कहलाती है। यह मेवाड़ के दक्षिण तथा सूंथ के उत्तरी-भाग में बोली जाती है। इन पाँचों बोलियों के क्रिया-पदों, कारक-चिह्नों और सर्वनामों में कभी-कभी बड़ा अन्तर दिखायी पड़ता है—

हिन्दी खड़ी बोली	मारवाड़ी	ढूंढाड़ी	मालवी	मेवाती	बागड़ी
था	हो	हो	थी	यतो और हो	हतो
उसे	उणनैं	ऊनें	वणीने	वालू	जेने

रज्जब जी ने अपने काव्य में जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं है। हाँ, उसमें राजस्थानी की सर्वाधिक विशेषताएँ विद्यमान हैं। पं० मोतीलाल मेनारिया जब यह कहते हैं—"ढूंढाड़ी में प्रचुर साहित्य है। सन्त दादू और उनके शिष्य-प्रशिष्यों की रचनाएँ इसी भाषा में हैं" (राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १०) तो उनका यही आशय है कि इन सन्तों की भाषा राजस्थानी प्रधान है, किन्तु उसका यह अर्थ कदापि नहीं होसकता कि इन सन्तों की भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव नहीं। रज्जब जी की भाषा पर जिन बोलियों अथवा भाषाओं का प्रभाव है, उनमें ब्रज, अवधी, पंजाबी, गुजराती, मराठी और खड़ी बोली प्रमुख हैं। यह मानना भी असंगत नहीं कि रज्जब जी की भाषा राजस्थानी तथा उसकी एक बोली ढूंढाड़ी के लक्षणों से विशेष अभिभूत है। यों राजस्थानी की उपर्युक्त लिखित पाँचों बोलियों का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में रज्जब जी की भाषा में दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त फारसी और संस्कृत की हल्की छाया भी यत्रतत्र प्राप्त होती है। उनकी 'सर्वांगी' में तो कतिपय संस्कृताचार्यों के श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं तथा रज्जब जी ने स्वयं भी अपभ्रंशाधारित अशुद्ध संस्कृत में कुछ काव्य पंक्तियाँ लिखी हैं। रज्जब जी ने फारसी में कुछ शेर (बैंत) लिखे हैं, किन्तु उनमें भी फारसी की शुद्धता का अभाव है। 'रज्जब-बानी' में भी फारसी के कुछ बैंतों के दर्शन होते हैं, किन्तु फारसी-भाषा-सम्बन्धी नियमितता का वहाँ भी लोप है।

रज्जब जी ने अपनी रचनाओं में 'कदे' (कमी), 'कने' (निकट), 'ह्वै' (हो), 'री', 'अर' (और), 'ऊभे' (खड़े), 'लो' (साध), 'छाना' (छिपा हुआ), 'नेड़े' (निकट), 'माहिं' (भीतर) आदि राजस्थानी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। अपभ्रंश शैली में 'तत्तम' (तत्व), 'दत्तम' (दिया), 'कन्दम' (कन्द), 'चन्दम' (चन्द), 'जक्कम' (जक), 'बक्कम' (बकना) आदि शब्दों का प्रयोग किया है। पंजाबी में 'न' के स्थान में 'ण' का प्रयोग होता है। रज्जब जी ने भी 'ण' का प्राय: प्रयोग किया है। यों यह पद्धति राजस्थानी में भी है। उनकी भाषा में ब्रज और अवधी के शब्दों की कमी नहीं। खड़ी बोली के अव्यय क्या, कैसे; सर्वनाम पदों में किसका, उसका,

तुझको, मुझको, मैं, मैरा, तू, तेरा, तुम्हारा; क्रिया-पदों में था, हुआ, गया, जाना है, जाइये, आइये आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खड़ी बोली के निर्माण में सन्त कवियों की भाषा का महत्वपूर्ण योग है।

निष्कर्षत: हम यह मानते हैं कि रज्जब जी की भाषा में पाँच-छ: भाषाओं और बोलियों का सम्मिश्रण है। वह कोई एक ऐसी स्वतन्त्र भाषा नहीं है, जिस पर व्याकरण के नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार विचार किया जा सके। उसके शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन करने के लिए हमें कई भाषाओं और बोलियों की ओर ध्यान देना पड़ता है। यदि हम एक निर्णय लेना ही चाहें तो कह सकते हैं कि रज्जब जी की भाषा राजस्थानी सिद्ध होती है तथा खड़ी बोली उसके अधिक निकट है और उसमें सन्त कवियों की रचनाओं में प्रचलित बोलियों के समस्त रूपों का समावेश हुआ है। ब्रज और अवधी का लोच, पंजाबी की परुषता, मराठी की गम्भीरता, गुजराती की मृदुलता एवं खड़ी बोली की प्रौढ़ता—यह सब रज्जब जी की भाषा के विविध अंग हैं तथा राजस्थानी भाषा उसका परिधान है।

इसके पूर्व कि रज्जब की भाषा पर अपने विचारों का उपसंहार करें, आवश्यक है कि उनका निजी भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी समझ लें। वे भाषा को सार्वजनीन बनाने के पक्षपाती हैं। रज्जब जी के विचार से प्राकृत संस्कृत का मूल है तथा उसीने संस्कृत को जन्म दिया है—

> **"आदि जो प्राकृत मूल है, अंत पराकृत पान।**
> **रज्जब बिचि-वृक्ष संस्कृत, फल रथ कउने थान॥"**
>
> —(विचार का अंग, साखी २)

यहाँ पर भाषा-वृक्ष का मूल और शिखा प्राकृत को बतलाया गया है तथा संस्कृत को बीच का खण्ड माना गया है। इसमें सन्देह नहीं कि रज्जब जी ने एक सिद्ध भाषा-शास्त्री की भाँति भाषा के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है। संस्कार की हुई भाषा का नाम ही संस्कृत है। जिसका संस्कार हुआ, वह भाषा प्राकृत ही हो सकती है और जब संस्कृत असंस्कृत हो गई, तभी उसका नाम अपभ्रंश पड़ा। प्राकृत और अपभ्रंश एक ही भाषा के दो रूप से प्रतीत होते हैं। रज्जब जी इसीको भाषा-भेद की सच्ची जानकारी मानते हैं—

> **"पराकिरत मधि ऊपजै, संसकीरत सब बेद।**
> **अब समझावै कौन करि, पाया भाषा भेद॥"**
>
> —(विचार का अंग, साखी ४)

रज्जब जी की दृष्टि में प्राकृत सूर्य के समान है तथा संस्कृत के निगम (वेद) नेत्रों के समान हैं। जिस प्रकार सूर्य के बिना नेत्र व्यर्थ हैं, उसी प्रकार प्राकृत के बिना संस्कृत शक्तिहीन है—

> **"प्रगट पराकृत सूर सम, निगम नैन उनहार।**
> **जन रज्जब जागे एक बिन, चहूं ओर अन्धार॥"**
>
> —(विचार का अंग, साखी ५)

जो शरीर में प्राण का महत्व है, वही संस्कृत में प्राकृत का। प्राकृत के बिना शब्द की सिद्धि नहीं होती—

"प्यण्ड प्राण बिनु कछु नहीं, सबद न साबति होय।
तैसे रज्जब संस्कृत, बिना जु प्राकृत जोय॥"

—(विचार का अंग, साखी ५)

संस्कृत अपने बीज रूप में प्राकृत ही थी। यह परिवर्तन तो बाद में हो गया है—

"बीज रूप कछु और था, वृक्ष रूप भया और।
त्यों प्राकृत से संस्कृत, रज्जब समझा ब्यौर॥"

—(विचार का अंग, साखी ५)

अन्त में रज्जब जी प्राकृत और संस्कृत, दोनों को मिथ्या मानते हैं, यदि उनमें राम नाम की महिमा का वर्णन नहीं है, गान नहीं है—

"रज्जब बाणी सत्य सो, जामा है नित नाम।
क्या पराकृत क्या संस्कृत, राम बिना बेकाम॥"

—(विचार का अंग, साखी ५)

तुलसी ने ठीक इसी प्रकार की बात कही है—

"बिधु बदनी सब भाँति सँवारी।
सोह न बसन बिना बर नारी॥
भणिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ।
राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥"

रज्जब जी के भाषा-सम्बन्धी विचारों से यह लक्षित होता है कि वे ऐसी भाषा को वरेण्य मानते थे, जिसका सम्बन्ध सामान्य जन-समाज से हो। लोक-भाषा या जन-भाषा का उनकी दृष्टि में विशेष महत्व है। रज्जब जी जब प्राकृत का बारम्बार पोषण करते हैं, तो उनका प्रयोजन मात्र प्राकृत की रूढ़ परम्परा से नहीं है। उनके विचार से कवि की भाषा में लोक-गृहीत होने की विशेषता तथा सामान्य जन-समाज के मानस को प्रभावित करने की क्षमता होनी चाहिये। ऐसी भाषा, जो समाज के एक छोटे विद्वद्वर्ग की समझ में आवे, उसको काव्य में अधिक प्रश्रय नहीं मिलना चाहिये। इसी भाव से रज्जब जी प्राकृत का समर्थन करते हैं। इन निर्गुण परम्परा के सन्तों में भाषा विषयक लोक संग्रह-भाव के प्रति अविचल निष्ठा है। यही कारण है कि रज्जब जी राजस्थान के महात्मा होने पर भी अपनी भाषा को न तो डिंगल बनाने के पक्ष में थे और न ऐसी प्रदेशीय भाषा बनाने के पक्ष में जो राजस्थान की सीमाओं में सिमट कर अपनी व्यापकता खो बैठे। उन्होंने अपने सद्विचार उस भाषा में व्यक्त किये जो इस देश के प्रत्येक क्षितिज को छू सके।

अध्यात्म और दर्शन

रज्जब जी के काव्य में दार्शनिक विचार-तत्व कवि की अत्यधिक रमणीय एवं व्यापक अनुभूति का आश्रय पाकर बड़ा ही आकर्षक एवं हृदयग्राही बन गया है। उन्होंने अपनी बानी में अगणित लोक-प्रसंगों की प्रशस्त भूमिका में जिन विपुल आध्यात्मिक एवं दार्शनिक अनुभूतियों की अवतारणा की है, वह हिन्दी-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है। रज्जब जी ने कबीर और अपने गुरु दादू की विचार-परम्परा में ही वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद्, कुरान, कलाम, आयत में प्रतिपादित जटिल धर्म को उसे बिना शास्त्र परम्परा से च्युत किये सहज एवं सामान्य जन-सुलभ बना दिया है। रज्जब बानी के वहुविध अंगों का पर्यालोचन हमें यह कहने की सहज प्रेरणा देता है कि रज्जब जी ने धर्म-साधना की कोई दिशा अथवा स्थिति अस्पृष्ट नहीं छोड़ी। निर्गुण सन्त-परम्परा में सगुण उपासना की अपेक्षा माधुर्य भाव का प्राय: अभाव है। उसका कारण यह है कि निर्गुणोपासक सन्तों ने संसार के प्रति सक्रिय विरक्ति की वृत्ति अपनायी। उनको यह संसार निस्संशय ही मिथ्या, मृगतृष्णा, गन्धर्वनगर, शीतकोट, पानी का बुदबुदा, भोडल का भवन, माया का मन्दिर, क्षणभंगुर प्रतीत हुआ। विविध-रूपा सृष्टि की यह मोहमयी छलना उन्हें अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी। वे संसार को असार समझ कर, इससे पूर्णत: असंपृक्त रहने लगे। उनका प्रबल आग्रह इन्द्रिय-निग्रह तथा आसंगों से मुक्ति पर था।

भारतीय सन्त-परम्परा अपनी धार्मिक एवं दार्शनिक अनुभूतियों में शंकर के अद्वैतवाद से, वैष्णव धर्म के भक्ति-तत्व से, शैवों एवं नाथपंथियों के प्राणयोग अथवा हठयोग से, सूफियों के एकेश्वरवाद और प्रेम की पीर से, बौद्धों के अहिंसा और करुणा-भाव से एक साथ प्रभावित दृष्टिगोचर होती है। प्रभाव और अनुकरण भिन्न वस्तुएँ हैं। किसी वस्तु की समग्र अनुकृति में भेद अथवा भिन्नता के लिए अवकाश नहीं रहता, परन्तु किसी वस्तु का प्रभाव प्रभावित व्यक्ति के हृदय में उस वस्तु की त्रुटियों के प्रति तिरस्कार तथा उसकी विशेषताओं के प्रति स्वीकार-भाव उत्पन्न कर सकता है। कभी-कभी तो वस्तु का प्रभाव वस्तु से भिन्न एवं विरोधी निष्कर्षों को जन्म देता है। भारतीय निर्गुणपंथी सन्तों में हम यही बात पाते हैं। वे उपर्युक्त सम्प्रदायों की विशेषताओं से प्रभावित तो हुए, पर साथ ही उनकी त्रुटियों का बड़ी निर्ममतापूर्वक उन्होंने खण्डन भी किया। यहां पर हम रज्जब जी की अनुभूतियों के संदर्भ में उन सम्प्रदाय-स्रोतों का क्रमश: पर्यवेक्षण करेंगे, जिनसे रज्जब जी के विचारों, आदर्शों तथा धार्मिक भावों का साम्य और संसर्ग है। रज्जब जी की साधना-पद्धति दादूपंथी सन्तों में 'रजबावत' नाम से विख्यात है।

इनके अनुयायियों को रज्जबपंथी अथवा रजबावत कहने की परिपाटी है और इस प्रकार के साधु-सन्त इधर-उधर अनेक स्थानों में पाये जाते हैं। किन्तु रज्जब पंथ सामूहिक धर्म पंथ के रूप में नहीं चल सका। दादू पंथ की ही प्रधानता रही। परन्तु किसी पंथ का नाम उस पंथ की

उपासना-पद्धति, आदर्शों, विचारों का ही व्यंजक होता है। अत: हम रज्जब जी अथवा उनके रजबावत पंथ की मान्यताओं तथा विचारों के प्रसंग में उन समस्त सम्प्रदायों की मान्यताओं पर विचार करेंगे, जिनसे रजबावत या तो प्रभावित है या साम्य रखता है।

रजबावत और वैष्णव धर्म :—

वैष्णव धर्म को विद्वानों ने भागवत धर्म के नाम से अभिहित किया है। इस धर्म के चार व्यूह (शाखाएँ) माने गये हैं। चारो व्यूहों का नामकरण यादव वंश के महनीय पुरुषों के नाम के ऊपर किया गया है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—ये चतुर्व्यूह कृष्ण उनके ज्येष्ठ भ्राता, पुत्र तथा पौत्र पर क्रमश: अवलम्बित हैं।[1] भगवान् विष्णु का वेद में वर्णन आया है, किन्तु अन्य देवताओं की तुलना में विष्णु को वेद में कम महत्व दिया गया है। ब्राह्मणों और पुराणों के युग में विष्णु की महत्ववृद्धि उत्तरोत्तर होती गयी और वह वृद्धि यहाँ तक हुई कि विष्णु सर्वोच्च देवता माने जाने लगे और अग्नि सबसे छोटे देवता। विष्णु के महदुत्थान के अनन्तर संस्कृत के महाकाव्य काल में वासुदेव, विष्णु और नारायण का भेद समाप्त हो गया तथा वे एक ही देवता के भिन्न-भिन्न सम्बोधन मान लिये गये।[2] इस प्रकार पुराण काल में वैष्णव धर्म सर्वाधिक व्यापक और प्रभावशाली बन गया। वैष्णव धर्म के जिन चार व्यूहों का हमने ऊपर उल्लेख किया है, उनमें कृष्ण की उपासना करने वाले एकान्तिक कहलाते थे। नारद पाञ्चरात्र में एकान्तियों के दो भेद बताये गये हैं—एक तो वे, जो केवल वासुदेव को ही ईश्वर मानते थे और दूसरे वे जो कई देवताओं को पूजते थे। वैदिक-साहित्य के विद्वान् डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने 'अपने भक्ति का विकास' नामक ग्रंथ में पाञ्चरात्र संहिताओं पर अत्यन्त महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है और उसमें श्री भंडारकर से उनका पूर्ण मतैक्य है। उन्होंने पाञ्चरात्रों को शैवागम एवं तंत्र-साहित्य से प्रभावित माना है। अपने इस अनुमान के प्रमाण में उन्होंने जो तर्क प्रस्तुत किया है, उससे निश्चित ही पाञ्चरात्र संहिताओं पर शैव-दर्शन का प्रभाव पुष्ट हो जाता है। पाञ्चरात्र-साहित्य में नारद पाञ्चरात्र संहिता ने कृष्ण की भक्ति का प्रबल रूप से पोषण किया है। डा० शर्मा 'भक्ति का विकास' (पृष्ठ २६४) में लिखते हैं—"नारद पाञ्चरात्र के अन्तर्गत ज्ञानामृत सार नाम की संहिता को बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया था। इसके अनुसार नारद श्रीकृष्ण का माहात्म्य तथा उनकी अर्चा-विधि सीखने के लिए शंकर के पास जाते हैं। कैलाश पर्वत पर पहुंच कर वे सात द्वारों वाले शंकर के भवन में प्रवेश करते हैं। इन द्वारों पर वृन्दावन, यमुना, कदम्ब पर गोपियों के वस्त्र लेकर बैठे हुए श्रीकृष्ण, गोपियों का नग्न रूप में स्नान के पश्चात् बाहर आना, कालिय-दमन, गोवर्धन-धारण, श्रीकृष्ण का मथुरा-गमन, गोपियों का शोक-प्रदर्शन आदि श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के

---

१ **भागवत-सम्प्रदाय, पृष्ठ ९१, ले०—श्री बल्देव उपाध्याय।**

२ "In Epictimes Vishnu Grew to be in every respect the supreme spirit, and Vasudeva is identified with Vishnu in Chapter 55 and 56 cf the Bhishm Parva........., The supreme spirit is addressed as Narain and Vishnu and is identified with Vasudeva."

—*Collected works of Sir Bhandarkar, Vol. IV Page 48*

चित्र अंकित थे।''

उधर विष्णु के अवतार के रूप में राम प्राचीन काल से प्रतिष्ठित थे। रामोपासना की पूर्ववर्ती पीठिका कुछ भी रही हो, भारतवर्ष में राम-भक्ति को जन-जन के हृदय की विभूति बनाने वाले स्वामी रामानन्द थे, जिन्होंने जाति-पाँति के बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर अनन्य अव्याहत भक्ति का उपदेश किया। स्वामी रामानन्द के शिष्यों की संख्या ५०० से अधिक बताई गई है, परन्तु उनमें १२ ऐसे शिष्य थे जो उनके विशेष कृपाभाजन थे। जहां तक रामानन्द के भक्ति-सिद्धान्त-पक्ष का प्रश्न है, वे विशिष्टाद्वैतवादी ही कहे जायेंगे; किन्तु वे किसी वाद की रूढ़ियों में नहीं बँधे। वे किसी परम्परा का विवेकपूर्वक मनन करने के उपरान्त ही उसकी विशेषताओं से प्रभावित होते थे। स्वामी रामानन्द के सम्बन्ध में हम यह बता चुके हैं कि वे ऐसे अक्षय, विशाल उद्गम सिद्ध हुए कि उससे एक ओर निर्गुण भक्ति-तरंगिणी फूटी जिससे कबीर जैसे निर्गुण वैष्णव भक्त का आविर्भाव हुआ, तथा दूसरी ओर सगुण-भक्ति की सरिता उद्भूत हुई, जिसमें रामभक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जैसे महात्मा का उदय हुआ। रामानन्द की यह रामावती भक्ति-परम्परा उनके गुरु स्वामी राघवानन्द की सत्प्रेरणा का फल थी।

स्वामी रामानन्द के शिष्यों में कबीर अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न एवं स्वतन्त्र चिन्तनशील महात्मा थे। उन्होंने रामावती मत में आस्था रखते हुए भी स्वतन्त्र निर्गुण-भक्ति की परम्परा का उन्नयन किया। इनकी निर्गुण-भक्ति-पद्धति का प्रभाव यों तो अनेकानेक सन्तों पर पड़ा, परन्तु इनका सीधा प्रभाव नानक, दादू, रज्जब और सुन्दरदास पर विशेष लक्षित होता है।

रज्जब जी संस्कृत के पूर्ण विद्वान् थे—यह धारणा भ्रामक है। पं० कृपाराम जी साधु ने रज्जब बानी की भूमिका में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। किन्तु यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि रज्जब जी ने उस भारत देश में जन्म लिया, जहां वेद, वेदांग, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण, शास्त्र, स्मृतियाँ बहुत पहले जन्म ले चुके थे तथा जिनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान, कर्म, उपासना के सूक्ष्म परमाणु देश के सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त थे। भारत के शीतल आध्यात्मिक मलयाचल से ब्रह्मोद्यान का सुखदायक समीरण प्रवाहित हुआ था, उसने निखिल विश्व के अंचल को संस्पृष्ट एवं संसिक्त किया। यही कारण था कि विदेशों के अनेकानेक विद्वान् संस्कृत भाषा की अध्ययनेच्छा की उत्कटता का संवरण न कर सके। कुछ ने भारत आकर और कुछ ने अपने-अपने देश में ही संस्कृत भाषा का अध्ययन कर यहाँ की अध्यात्म विद्या में निष्णात हुए। अरब के अल्बेरुनी, योरोपीय विद्वान् शापेनहार, मैक्समूलर, पाल डायसन (Paul Deuseen) फ्रेडरिक, श्लेगेल, मैक्डानेल, एण्ड्रयूज, हक्सले, एम० गेटिल, ऐक्त्रोटिल डुपेरन, शेलिंग, सारकुल, कीथ, ग्रियर्सन, गेटे, शेली प्रभृति ऐसे व्यक्ति हैं, जो भारत के आध्यात्मिक-साहित्य पर एक भाव से मुग्ध हैं। जर्मनी के आर्थर शापेनहार भारत के मुस्लिम राजपुत्र दाराशिकोह द्वारा कराये गये कतिपय उपनिषदों के फारसी अनुवाद की फ्रांसीसी में अनूदित कृति से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भारतीय उपनिषद् विद्या को अपने जीवन और मृत्यु, दोनों में शान्तिप्रदायिनी माना।[1] भारतीय

---

१ **'कल्याण' के उपनिषद् अंक में श्री बसन्तकुमार चट्टोपाध्याय का लेख, पृष्ठ ८५**
"In the whole world, there is no study so elevating as that of Upanishadas. It has been the solace of my life. It will be the solace of my death."

वेद-साहित्य तथा भारत की प्रशंसा में मैक्समूलर महोदय अतिशय भावापन्न हो गये हैं। जब विदेश की धरित्री में उत्पन्न जिज्ञासुओं की यह दशा थी, तो भारतीय वसुन्धरा के रज-कणों में पालित-पोषित नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के आराधन में रत महात्मा रज्जब भारत के दिव्य अध्यात्म में क्यों न मग्न होते ? भारतीय अध्यात्म में संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं है। कोई किसी जाति का हो, किसी वर्ण का हो, किसी धर्म का हो, किसी देश का हो, यदि उसकी ब्राह्म-वृत्ति है, तो उसको ब्रह्म-विद्या में दीक्षित होने का सर्वथा अधिकार है। हम इसकी चर्चा पहले कर चुके हैं कि रामानन्दी-परम्परा की सन्त-मण्डली में प्राय: भारत की समस्त ऊँची-नीची जातियों का प्रतिनिधित्व था तथा रामानन्द का रामावत-सम्प्रदाय अपने पूरे प्रभाव के साथ भारत में व्याप्त हुआ। रामानन्द के धर्म का मर्म यह है कि उन्होंने शास्त्रानुमोदित उपासना-पद्धति को रूढ़ परम्पराओं के जटिल बन्धन से मुक्त कर उसे विवेकसम्मत बनाया तथा वर्ण-व्यवस्था में खण्डश: विभक्त मानवता को सार्वभौम एवं सार्वजनीन धर्म की अखण्डता में बांधने का सजीव प्रयत्न किया। रामानन्द की धर्म-शीलता कबीर-परम्परा के सन्तों की धर्मशीलता है। इन सन्तों ने रामानन्द से आगे जाकर धर्म को विश्वबन्धुत्व के सूत्र में गूंथा। इसी सन्त-परम्परा में रज्जब जी का आविर्भाव हुआ। रज्जब जी के साहित्य से परिचित होने के लिए पुन: मेरा शोध-ग्रन्थ अवलोकनीय है।

रज्जब जी की भगवद्भक्ति

महात्मा रज्जब जी ने जिस उपासना-पद्धति का निर्देश किया, वह कबीर और दादू की उपासना-पद्धति से पूर्ण साम्य रखती है। निराकार, निर्विकार, निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त एक ब्रह्म की उपासना ही रज्जब जी को अभिप्रेत है। जब हम अपने प्राचीन उपनिषद्-साहित्य पर दृष्टि डालते हैं, तो देखते हैं कि उसमें निराकार, सर्वव्याप्त ब्रह्म की उपासना की ही विशद व्याख्या की गई है। निर्गुण धारा के इन सन्तों ने भी उसी निराकार ब्रह्म की उपासना का उपदेश किया। इन सन्तों की विलक्षणता यह है कि वैष्णव होते हुए भी वे अवतारवाद का खण्डन करते हैं, जब कि वैष्णव धर्म का आधार ही अवतारवाद है। इन सन्तों ने नाना वैष्णव अवतारों के नामों का अपने काव्य में उल्लेख किया है, किन्तु वे नामों की सोपाधि उपासना के पक्ष में नहीं थे। वासुदेव, नारायण, विष्णु, कृष्ण, गोपाल, गोविन्द, मुरारी, यदुपति इत्यादि अवतारों के प्राय: समस्त नामों को इन्होंने स्थान दिया है, परन्तु इन नामों को किसी जागतिक पुरुष से संलग्न न कर उनको उसी ब्रह्म के लिए प्रयुक्त किया है। यहाँ पर हम रज्जब जी की आध्यात्मिक अनुभूतियों को भारतीय आध्यात्मिक-साहित्य की विविध मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में परखना चाहेंगे।

वैष्णव धर्म का मूल उद्‌गम वेद है। डा० मुंशीराम शर्मा ने अपने 'भक्ति का विकास' नामक ग्रन्थ में इस विषय का सुन्दर प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। भगवान् की उपासना और भक्ति के जितने रूप वेदोत्तर-साहित्य में प्राप्त होते हैं, वे समस्त वेदों में पहले से बीजरूप में विद्यमान हैं। उनका कथन है—"संसार के प्राचीनतम साहित्य-वेद में भक्तियोग के ये सभी स्तर विद्यमान हैं। वेद प्रभु को सृष्टि का व्यवस्थापक, शासक, राजा, दण्डदाता, जीवों को कर्मानुसार फल देने वाला, न्यायी, स्वामी, पिता, माता, बन्धु और सखा, सभी रूपों में प्रकट करता है।" [१] डा० शर्मा ने

१ भक्ति का विकास—पृष्ठ १२८

अपने इस कथन के प्रमाण में ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा यजुर्वेद के मन्त्रों को उद्धृत किया है। भगवान् के उक्त रूपों की उपासना ही भक्ति के नाना भेदों में रूपान्तरित हो गई। दास्य और सख्य आदि भक्ति-पद्धतियाँ भगवान के इन्हीं उपर्युक्त रूपों पर आधारित है। भक्ति प्रमुखत: वैष्णव उपासना का ही अपर नाम है। भक्ति का मूल स्रोत यदि हम वेदों को मानें, तो अनुचित न होगा। पं० परशुराम चतुर्वेदी का स्पष्ट मत हैं कि "वैष्णव धर्म बीजरूप में कतिपय साधारण वैदिक भावनाओं को ही लेकर चला था। फिर भक्ति-सम्बन्धी एवं उपास्यदेव-विषयक धारणाओं के क्रमिक विकास के साथ-साथ उसमें क्रमश: भिन्न-भिन्न बातों का समावेश होता गया और वह समय पाकर एकान्तिक, सात्वत, भागवत एवं पाञ्चरात्र के रूपों में ढलता हुआ एक सुव्यवस्थित वैष्णव रूप में परिणत हो गया।"[१] इस प्रसंग में हम इतना अवश्य संकेत करेंगे कि विष्णु प्रधानत: निराकार, विराट्, विश्वनियन्ता के रूप में ही चित्रित हुए, किन्तु कालान्तर से उनके चतुर्भुजी रूप क्षीरशायी चतुरायुधधारी साकार रूप की प्रतिष्ठा हुई। उसके अन्तर्गत अवतारवाद को प्रश्रय मिला। परन्तु हमारे निर्गुणी सन्तों ने भारतीय औपनिषदिक परम्परा के अभिनव सूत्रधार बन कर विष्णु की अवताराधारित सत्ता को पुन: निर्गुण निराकार ब्रह्म की ओर मोड़ कर उसे ज्ञानी-ध्यानी भक्तों का उपासना-विषय बना दिया। बहिरंग स्थूल उपासना को अंतरंग सूक्ष्म उपासना में परिणत कर दिया। निर्गुणी सन्तों में कबीर इस उपासना-मार्ग के आदि-प्रवर्तक माने जा सकते हैं, जिनकी जीव तथा ब्रह्म-सम्बन्धी मान्यताओं के आधार पर दादू, रज्जब, सुन्दरदास प्रभृति महात्माओं ने इस धारा को प्रोत्सारित किया।

विवेचन की सुविधा एवं स्पष्टता की दृष्टि से रज्जब जी की भगवद्भक्ति के मूल उपादानों अथवा अंगों का श्रेणी-विभाजन करना आवश्यक प्रतीत होता है। उनकी भक्ति के अंगों को हम षड्युग्मों में विभक्त कर सकते हैं :—

(क) सद्गुरु और सबद।
(ख) सेवा और सतसंग।
(ग) प्रेम और विरह।
(घ) नाम-जप और ध्यान।
(ङ) ज्ञान और वैराग्य।
(च) समर्पण और अनन्यता।

रज्जब जी भारतीय वैष्णव-परम्परा के अनुसार अपनी 'बानी' और 'सर्वांगी', दोनों में गुरु की वन्दना करते हैं। गुरु के महत्व की मान्यता संसार के समस्त धर्मों में एक-सी लक्षित होती है। ईसाइयों में पादरी (प्रीस्ट) इस्लाम और सूफियों में उस्ताद, पीर; वैष्णवों, शैवों और शाक्तों में गुरु; बौद्ध और जैनियों में भी गुरु का महत्व निर्विवाद रूप से प्रमाणित होता है। रज्जब जी 'बानी' के प्रारम्भ में लिखते है :—

दादू नमो निरंजनं, नमस्कार गुरुदेवतः।
बन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः॥

---

१ वैष्णव धर्म—पृष्ठ १४०

ये पंक्तियाँ रज्जब जी के गुरु दादूदयाल की रची हुई हैं, जो दादू-बानी के प्रारम्भ में दी गई हैं। रज्जब जी की गुरु में अद्भुत् निष्ठा थी। उनका जैसा प्रतिभा-सम्पन्न सन्त-कवि गुरु-वन्दना अपने गुरु के शब्दों में ही करता है, यद्यपि वे स्वयं मौलिक रचना करने में सक्षम थे। इसे हम उनकी गुरु के प्रति अनन्य प्रणति ही मानेंगे। इसी वन्दना-प्रकरण में वे आगे कहते हैं—

सिजदा पूरे पीर कूं, गुरु ज्ञातहिं डंडौत ।
रज्जब भय भगवंत के, सर्वं आत्महुनौत ।।
गुरु अक्षर धर साध कवि, सबनि करूं अस्तूति ।
रज्जब की चकचूक परि, खिमा करौ ह्वै सूति ।।

इन पंक्तियों में रज्जब जी अपने गुरु को पूरा पीर बताते हैं तथा उन्हें नमस्कार करते हैं, तदनन्तर वे सर्वात्माओं का नमन करते हैं। आगे चलकर पुन: गुरु तथा सरस्वती के उपासकों (अक्षरवर), महात्माओं तथा कवियों को नमस्कार करते हैं और अपनी सम्भाव्य त्रुटियों एवं भूलों के लिए क्षमा-याचना करते हैं। वे अपनी त्रुटियों की क्षमा के लिए सुन्दर तर्क भी इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—

सरीर सबद की एक गति, त्रिविध भाँति तन होय ।
भले बुरे बिच बप बयन, दोष न दीजो कोय ।।

रज्जब जी का कथन है कि जिस प्रकार शरीर भला-बुरा और बीच का अर्थात् सतोगुणी, तमोगुणी एवं रजोगुणी होता है, उसी प्रकार शब्द की भी तीन गतियाँ हैं—उत्तम, अधम और मध्यम। जब शरीर की तीन कोटियां हैं, तो उससे नि:सृत शब्द को उन तीन त्रुटियों के प्रभाव से मुक्त नहीं रखा जा सकता। अत: भले-बुरे और बीच के शब्द क्षम्य हैं।

रज्जब जी की दृष्टि में माया पानी और मन दूध है, दोनों जब एक में मिल गये, तो बिना गुरु-हंस के उनका पृथक् करना दुष्कर है।

माया पानी दूध मन, मिले सु मुहकम बंधि ।
जन रज्जब बलि हंस गुरु, सोधि लही सो संधि ।।

—(गुरुदेव का अंग)

मनुष्य के समस्त कर्म ताला हैं, विवश जीव निबद्ध है। बिना गुरुरूपी कुंजी के उसका खुलना कठिन है।

सकल करम ताला भये, जीव जड़्या ता माहिं ।
रज्जब गुरु कूंची बिना, कबहूं खूंटे नाहिं ।।

—(गुरुदेव का अंग)

गुरु की उपासना ही रज्जब की दृष्टि में सब कुछ है, सर्वोपरि है। यदि सेवा करते बन जाय, तो गुरु के सदन में अपार धन है; किन्तु लेने के लक्षण जब तक शिष्य में न होंगे, तब तक उस धन का संग्रह करना कठिन है।

गुरु घर माहे धन धरा, सिख संग्रह्या न जाय ।
जब लग लक्षन लेण के, जुगति न उपजे आय ।।

—(गुरुदेव का अंग)

श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन से कृष्ण ने गुरु से यह धन प्राप्त करने की युक्ति संक्षेप में बतायी है :—

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्व दर्शिनः ।।

—(अध्याय ४—३४)

"अर्जुन ? तू उस तत्व-ज्ञान को तत्वदर्शी ज्ञानी गुरुओं के समीप जाकर प्रणामपूर्वक युक्तियुक्त प्रश्नावली द्वारा उनकी सेवा करते हुए प्राप्त कर।" इधर रज्जब जी शिष्य में श्रद्धा का होना आवश्यक बतलाते हैं :—

शिष्य सही सोई भया, गहै सीख में सोय ।
रज्जब श्रद्धा सीख सूं, दूजा कदे न होय ।।

—(गुरुदेव का अंग)

श्री गीता में भगवान् कहते हैं :—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानंलब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।

—(अध्याय ४—३९)

ज्ञानपारायण जितेन्द्रिय पुरुष यदि श्रद्धावान् है, तो वह अवश्य तत्वज्ञान को प्राप्त करता है, ज्ञान प्राप्त कर शीघ्र ही परम शान्ति लाभ करता है।

श्वेताश्वतर के षष्ठम अध्याय के अन्त में शिष्य की गुरु-भक्ति का प्रतिपादन किया गया है :—

यस्य देवे पराभक्ति यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिताह्यर्थः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

यहाँ पर परमेश्वर की भक्ति के समकक्ष ही गुरु-भक्ति की प्रतिष्ठा अंकित की गयी है। कबीर ने इसी उक्ति की छाया में कहा था :—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दिया बताय ।।

रज्जब जी तो गुरु को जगन्नियन्ता जगदीश से बड़ा ही नहीं बताते, प्रत्युत् जगदीश की की हुई भूल का परिशोधनकर्ता बताते हैं। उनके विचार से भगवान ने तो सारे संसार के जीवों को

शरीर के बन्धन में डाल दिया, किन्तु गुरु ने उस देहाध्यास से जीव को विमुक्त कर दिया। अत: उसकी महिमा कोई नहीं प्राप्त कर सकता—

जीव रच्या जगदीस ने, बांध्या काया मांहि ।
जन रज्जब मुकता किया, ता गुरु समि कोइ नांहि ॥

—(गुरुदेव का अंग)

गुरु की विभूति का लाभ तभी शिष्य को होता है, जब वह स्वयं अधिकारी हो—उसका पात्र हो और इधर गुरु योग्य एवं विभूति प्रदान करने में समर्थ हो। यदि दोनों मूर्ख हुए, तो कबीर ऐसे गुरु-शिष्य को "अन्धे अन्धा ठेलिया" कह कर कूप में गिरता हुआ देखते हैं और हमारे रज्जब जी कहते हैं—

रज्जब चेला चखिहुं बिन, गुरू मिला जाचंध ।
कूपमयी यहु कुंभनी, क्यूं पावहि प्रभु पंध ॥

यही भाव कठोपनिषद् की द्वितीय वल्ली के ५वें श्लोक में इस प्रकार आया है:—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

अर्थात् अविद्या में पड़े हुए अपने आपको बुद्धिमान् और विद्वान् मानने वाले मूर्ख लोग नाना योनियों में भटकते हुए वैसे ही ठोकर खाते हैं, जैसे अन्धे व्यक्ति के द्वारा चलाये जाने वाले अन्धे भटकते रहते हैं। रज्जब जी योग्य शिष्य और सद्‌गुरु के मिलाप में ही मंगलकारिणी सिद्धियों का दर्शन करते हैं। उनका मत है—

सतगुरु परतखि परसतै, सिख की संक्या जांहि ।
ज्यूं दिनकर सूं दिन द्रसै, त्यूं निसि सूझै नांहि ॥

—(गुरु संयोग वियोग महातम का अंग)

गुरु के प्रत्यक्ष संयोग से शिष्य की समस्त शंकाओं का उसी प्रकार निराकरण हो जाता है, जिस प्रकार भगवान् भास्कर के उदय होने पर दिन हो जाता है। किन्तु सूर्य के अभाव में रात्रि के अन्धकार में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। गुरु के अभाव में भी अविद्यान्धकार के कारण मनुष्य को अपना गन्तव्य नहीं सूझता। अत: गुरु-शिष्य दोनों का संयोग प्रेम-स्नेह, सहवास आवश्यक है। इसी तथ्य को कठोपनिषद् के शान्ति पाठ में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है:—

ओम् सहनाववतु। सहनौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनाव धीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥

हे भगवन्, हम दोनों गुरु-शिष्य साथ-साथ रक्षा करें, साथ-साथ पालन करें, साथ-साथ शक्ति प्राप्त करें, हम दोनों की अधीत विद्या तेजोमयी हो, हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।

रज्जब जी ने गुरु-शिष्य-प्रकरण में गुरु और शिष्य की अवस्थाएँ विविध रूपकों के आश्रय से वर्णित की हैं।

(क) गुरु और शिष्य।
(ख) सद्गुरु और सच्छिष्य।
(ग) समर्थ गुरु एवं अनधिकारी शिष्य।
(घ) सद्गुरु तथा सुयोग्य शिष्य।
(ङ) मूर्ख गुरु एवं मूर्ख शिष्य।

भक्ति का प्रेम-तत्व इन सन्तों को केवल सूफियों से प्राप्त हुआ, इस मान्यता में विद्वानों की उपपत्तियाँ और विप्रतिपत्तियाँ, दोनों ही प्राप्त होती हैं। भारतीय भक्ति-साहित्य में प्रेम और विरह की उद्भावना कुछ विद्वान् मौलिक न मान कर उसे सूफी-साहित्य का संसर्गजात फल मानते हैं, परन्तु इस विषय पर भी विद्वज्जनों में मतैक्य नहीं है। इस विषय पर विशेष विवेचन करना यहाँ अपेक्षित नहीं है। रज्जब जी के भगवत्प्रेम तथा विरह-तत्व पर विचार करना ही हमारा अभीष्ट है। रज्जब जी भगवदुपासना में प्रेम-तत्व को ही प्रमुख मानते हैं। नारद-भक्ति-सूत्र के दूसरे सूत्र में भक्ति को परम प्रेम रूपा बताया गया है--सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा--तथा पांचवें सूत्र में कहा गया--तत्प्राप्य न किञ्चिद्वान्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति--अर्थात् जिस (परम प्रेम रूपा भक्ति) के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उसे (सांसारिकता में) उत्साह होता है। रज्जब जी कहते हैं:--

प्रेम प्रीति हित नीति कूं, रज्जब दुविधा नाहिं।
सेवक स्वामी एक ह्वै, आये इस घर माहिं॥

प्रेम के सदन में सेवक और स्वामी का भेद समाप्त हो जाता है, ध्याता ध्येय और ज्ञाता ज्ञेय का पार्थक्य भी मिट जाता है। प्रेम के प्रभाव की सीमा इसके आगे भी है--

प्रेम प्रीति हित नेह की, रज्जब ऊबट बाट।
सेवक को स्वामी करहिं, सेवक स्वामी ठाट॥

रज्जब जी का मत है कि प्रेम के क्षेत्र में स्वामी स्नेह-विभोर होकर अपने सेवक को आनन्द देने के लिए स्वयं सेवक बन जाता है तथा सेवक अपने क्लेशों को दूर कराने के लिए स्वामी से सेवक की भाँति क्लेश-निवारण की सेवा लेने लगता है। स्वामी और सेवक एकमेक हो जाते हैं।

भगवत्प्रेम को जागृत एवं सजीव बनाने के लिए विरहानुभूति का होना आवश्यक है। विरह प्रेमानुभूति को अधिकाधिक तीव्र बनाता है। विरह प्रेम को बलिष्ठ एवं वरिष्ठ करता है, जब तक विरह-भावना का आविर्भाव प्रेमी के हृदय में नहीं होता, प्रेम में औत्कट्य नहीं आ पाता। "नारदस्तु तदर्शिता खिला चारिता तद्विस्मरणे परं व्याकुलतेति" इस भक्ति-सूत्र में नारद जी ने बताया कि सब कर्मों को भगवान् को अर्पण करना और भगवान् का थोड़ा-सा विस्मरण होने में परम व्याकुलता होना ही भक्ति है। रज्जब जी ने विरह के अंग में बहुविध रूपकों के माध्यम से

विरह की अनुभूति की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। रज्जब जी कहते हैं कि भगवत्प्रेमी अपने प्रीतम परमात्मा के विरह में उसी प्रकार एकतार ध्यान रत हो जाता तथा दर्शनों की आकांक्षा रखने लगता है, जिस प्रकार तपती हुई धरित्री मेघराज से जल की याचना करती है––

प्राण पिण्ड रग रोम सब, हर दिसि रहे निहारि ।
ज्यों बसुधा बनराय सों, विरही चाहै वारि ।।

इस विरह-व्यथा की अकथ कथा को किससे कहा जाय। यह तो राक्षसाधिपति रावण की चिता के समान अहर्निश धधक रही है, किसी प्रकार बुझती नहीं––

रज्जब कहिये कौन सों, इस विरहे की बात ।
मानहु रावण की चिता, अहनिसि नहीं बुझात ।।

विरह की अग्नि प्रेमी के हृदय में बस गई है और उसे आपादचूड़ जला रही है। प्रेमी भगवान् से कृपा-वारि बरसाने की याचना करता है––

विरहा पावक उर बसै, नख सिख जोरे देह ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसहु मोहन मेह ।।

विरह तो विषधर बन कर प्रेमी को डस रहा है, भगवान् का दर्शन ही उसकी औषधि है। जब तक वह औषधि न प्राप्त हो जाय, तब तक प्रेमी का तन, मन बेचैन रहेगा––

रज्जब विरह भुअंग परि, औषधि हरि दीदार ।
बिन देखे दीरघ दुखी, तन मन नहीं करार ।।

हे दिलदार ! कृपा कर सुनिये, जिस प्रकार स्त्री अपने पति के विरह में व्याकुल होकर अपना सारा श्रृङ्गार भूल जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे वियोग में मैं सभी कुछ भूल गया हूं––

जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल सिंगार ।
त्यूं रज्जब भूला सकल, सुनि सनेह दिलदार ।।

अब तो भगवत्-विरह में प्रेमी की यह दशा हो गई है कि उसके बिना सुख-सामग्री तनिक भी नहीं रुचती। हाँ, यदि उसका संयोग हो जाय, तो नाना प्रकार के दुःख भी अच्छे लगेंगे––

रज्जब रुचै न राम बिन, सकल भांति के सुख ।
भगवंत सहित भावहिं सबै, नाना विधि के दुख ।।

विरह की तीव्र वेदना यद्यपि दुखदायी है, किन्तु प्रियतम (ब्रह्म) से मिलाप का साधन होने के नाते वह प्रिय है, सूर्य का ताप सह कर ही जल आकाश में पहुंचता है। अतः ऊर्ध्वगामी होने के लिये कष्ट-सहिष्णु बनना पड़ता है––

दुख दिनकर की दृष्टि करि, नेह नीर नभि जाहिं ।
रज्जब रमिये शून्य में, यहै जुगति जा माहिं ।।

संसार में विरह तो कई प्रकार के होते हैं तथा उनके भाव भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, किन्तु जो राम के विरह से व्याकुल रहे, ऐसे जीव विरले ही होते हैं––

एक विरह बहु भांति का, भाव भिन्न भिन्न होय ।
रज्जब रोवै राम कूं, सो जन बिरला कोय ।।

रज्जब जी ने सामान्य विरहाग्नि से ब्रह्माग्नि को प्रचण्डतर बताया है। ब्रह्माग्नि बड़वाग्नि की भाँति शरीर रूपी जल को भी भस्म कर देती है, यदि शरीर-जल को वह ब्रह्माग्नि जला न पाई, तो उसे कच्ची आग समझना चाहिये—

ब्रह्म अगिनि बड़वा अनल, तन तोयं कूं खाय ।
इश्क आगि कांची कहे, जो जप वारि समाय ।।

इस साखी में रज्जब जी ने अत्यन्त मार्मिक भाव अभिव्यंजित किया है। उनका तात्पर्य यह है कि ब्रह्माग्नि के उत्पन्न हो जाने पर शरीर की ऐन्द्रिकता प्रशमित हो जाती है, इन्द्रियों का वेग शान्त हो जाता है। सच्ची आग वही है, जो इन्द्रियों को भस्म कर दे। यदि इन्द्रियाँसक्ति भगवत्प्रेम पर अपना प्रभाव रखने लगी, तो ब्रह्माग्नि को कच्चा मानना चाहिये। इस विरह के अभाव में दीनदयाल का दर्शन होना असम्भव है। विरह-विभूति के बिना महाविभूति उपलब्ध नहीं हो सकती—

दरद बिना क्यूं देखिये, दरशन दीनदयाल ।
रज्जब विरह वियोग बिन, कहाँ मिले सो लाल ।।

रज्जब जी ने विरह को चार रूपों में चित्रित किया है :—

(क) विरह वेदना का दायक है।
(ख) विरह प्रेम का पोषक है।
(ग) विरह चित्त को शुद्ध एवं निर्मल बना देता है।
(घ) विरह वरदान है, अतः काम्य है।

इस प्रेम और विरह का हमने वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर विचार किया है, अगले खण्ड में सूफी-भावना की संगति में भी इस पर विचार किया जायेगा।

रज्जबवाणी तथा शैव एवं शाक्त मत

यद्यपि वैष्णव-भक्ति एवं शैव मत के मूल बीज वेदों में उपलब्ध होते हैं, परन्तु ये दोनों ही उपास्य वैदिक-युग में गौण थे, विष्णु और रुद्र को प्रमुखता तथा श्रेष्ठता वेदोत्तर-काल में मिली। यदि दोनों के उत्कर्ष की गति पर हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हैं, तो हम देखते हैं कि शैव मत का प्रसार प्रारम्भ में उस व्यवस्था एवं प्रभाव के साथ नहीं हुआ, जिस व्यवस्था और प्रभाव के साथ वैष्णव धर्म का। शिव को प्रमुख देवता के रूप में प्रतिष्ठा वेदोत्तर-काल में ही मिली। रुद्र कभी भी विशुद्ध रूप से कर्मकाण्ड के देवता नहीं थे। वे ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय तक एक प्रमुख देवता बन गये थे, जिसका अपना वास्तविक व्यक्तित्व था। अतः जब इन विचारकों ने धार्मिक विचारधारा में यह नया आन्दोलन प्रारम्भ किया, तब स्वभावतः उन्होंने कर्मकाण्ड के अन्य देवताओं को छोड़ कर इसी देवता की उपासना को अपनाया। इस प्रकार रुद्र की उपासना जनसाधारण में ही नहीं, अपितु आर्य जाति के सर्वाधिक उन्नत और प्रगतिशील वर्गों में होने लगी।

इससे रुद्र के पद में और भी वृद्धि होना स्वाभाविक ही था। चूंकि किसी भी समाज में नीति और सदाचार की भावना और 'ऋत' की कल्पना सर्वप्रथम उसके उन्नत और प्रगतिशील वर्गों में ही विकसित होती है, अत: पहले का ही शक्तिशाली रुद्र, जिनका आतंक लोगों के हृदयों में छाया हुआ था, इसी 'अऋत' के मूर्तिमान स्वरूप बन गये, जब कि अन्य देवता सर्वशक्तिमान् यज्ञ-विधि के समक्ष क्षीण होते चले आ रहे थे। इससे रुद्र का पद निश्चित रूप से इन अन्य देवताओं से ऊँचा हो गया और नाम से ऊँचा नहीं, अपितु वास्तव में रुद्र 'महादेव' ही बन गये।[1]

लगभग इसी युग में भारत में शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ तथा उनके 'अद्वैत ब्रह्म-सिद्धान्त' से भी काश्मीर के अद्वैत शैव-सिद्धान्त को बल मिला होगा। यों तो जैसा कि हम कह चुके हैं कि शिव की उपासना रुद्र एवं सोम के रूप में वेद में मिलती है, परन्तु शैव मत का विकास वेदोत्तर-काल में ही हुआ। ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता एवं वाजसनेयी संहिता, इसके उपरान्त ब्राह्मण-ग्रन्थों में ऐतरेय ब्राह्मण, कौशीतकी ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण अथवा जैमिनीय ब्राह्मण, ताण्डय अथवा पंचविश ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण; उपनिषदों में वृहदऽरण्यक, केन, श्वेताश्वतर; सूत्र-ग्रन्थों में शारवायन श्रोत सूत्र, अश्वलायन श्रोत सूत्र, लाटचायन श्रोत सूत्र, बोधायन धर्म सूत्र, मानवगृह्य सूत्र, बोधायनगृह्य सूत्र: इनके अतिरिक्त वाल्मीक-रामायण, महाभारत; साहित्य-ग्रन्थों में बौद्ध कवि अश्वघोष के बुद्ध-चरित तथा सौन्दरानन्द शूद्रक का मृच्छकटिक, मनु की मनुस्मृति, भरत का नाटचशास्त्रम् वात्स्यायन का काम सूत्र, कालिदास के रघुवंश महाकाव्य तथा विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्नि मित्र तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम नाटक, मेघदूत काव्य; पुराण-ग्रन्थों में अग्नि पुराण, गणेश पुराण, गरुड़ पुराण, नीलमत पुराण, ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण, लिंग पुराण, वायु पुराण, सौर पुराण; तन्त्र-ग्रन्थों में कुलचूड़ामणि तन्त्र, कुलार्णव तन्त्र, तन्त्राभिधान तन्त्र, तन्त्रराज तन्त्र, प्रपंच सार तन्त्र आदि कृतियाँ शैव-उपासना की विविध प्रणालियों का मण्डन करती हैं।[1]

वैष्णव और शैव मतों के अनुयायी एक-दूसरे के उपास्य देवताओं के प्रति अत्यन्त आदर का भाव रखते थे। ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण जैसे कई पुराणों में तो विष्णु और शिव में अभेद स्थापना का प्रयास परिलक्षित होता है। उपासना की दोनों धाराओं में यह एकेश्वर विष्णु और एकेश्वर शिव तथा दोनों के अभेद के प्रतिपादन की परम्परा गोस्वामी तुलसीदास तक चली। शिव-द्रोही विष्णु का दास नहीं हो सकता, यह मान्यता तुलसीदास जी की थी। पुराणकारों ने अद्वैत विष्णु और अद्वैत शिव को एक ही मूल शक्ति के दो रूप सिद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

वैदिक-साहित्य से लेकर गृह्य-सूत्रों तक रुद्र अथवा शिव के अतिरिक्त किसी स्त्री-देवता का उल्लेख नहीं मिलता। कहीं-कहीं रुद्राणी और भवानी जैसे शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है, किन्तु यह शब्द तो रुद्र और भव से बने हुए हैं। महाभारत के भीष्म-पर्व के २३वें अध्याय में कृष्ण की सम्मति से अर्जुन विजय के लिए दुर्गा का स्तवन करते हैं, इससे यह परिचय प्राप्त होता है कि दुर्गा नाम की देवी का आविर्भाव महाभारत के रचना-काल से पूर्व हो चुका था। धीरे-धीरे दुर्गा की

---

१ शैव मत, ले०—डा० यदुवंशी, पृष्ठ २१

पूजा एक परम शक्तिशालिनी देवी के रूप में होने लगी थी तथा दुर्गा अनेक नामों, जैसे—कुमारी, काली, कपाली, महाकाली, चण्डी, कात्यायनी, कराला, विजय कौशिकी, उमा, कांताशासिनी से सम्बोधित होने लगी थी। महाभारत के विराट्-पर्व के ६ठे अध्याय में दुर्गा को युधिष्ठिर ने महिषासुर नाशिनी कह कर सम्बोधित किया है—ऐसी ही कथा हरिवंश पुराण में भी प्राप्त होती है। इस शक्ति की उपासना करने वाले ही शाक्त कहलाते हैं। शक्ति की उपासना-पद्धति की व्याख्या करने वाले प्रचुर तन्त्र-साहित्य की रचना की गई। इसी शिव और शक्ति के सम्बन्ध तथा उनके परस्पर तादात्म्य की व्याख्या करने वाला जटिल दर्शन शाम्भव-दर्शन कहलाया।[१]

हठयोग के आचार्य भगवान् शंकर माने जाते हैं। हठयोग-प्रदीपिका के प्रथम श्लोक में आदिनाथ भगवान् शंकर को हठयोग का उपदेष्टा मान कर उनको नमस्कार किया गया है।[२] मुगल-शासन-काल के इन सन्तों के निगुण भक्ति-मार्ग के आविर्भाव से पूर्व नाथ-सम्प्रदाय के योग-सिद्धान्त का भारत में पर्याप्त प्रभाव था। वे भी निर्गुण सन्तों की भाँति घट-प्रवेश में ही निरंजन का दर्शन करते रहते थे। नाथपन्थी उस गिरंजन के दर्शन के लिए योग-प्रक्रिया अपनाते थे। उस योग-प्रक्रिया में वे हठयोग को विशेष महत्व देते थे। हठयोग की शारीरिक-प्रक्रियाओं द्वारा स्थूल शरीर पर विजय प्राप्त करते तथा चित्तशुद्धि द्वारा सूक्ष्म शरीर को वश में कर परमात्मा का साक्षात्कार करते थे। यह स्थिति केवल नाथपन्थियों की ही नहीं थी, भारत के समस्त धर्मों का अन्ततोगत्वा एक ही परिणाम दृष्टिगोचर होता है—सभी धर्मों में तान्त्रिक प्रभाव किसी-न-किसी रूप में अवश्य लक्षित होता है। यही कारण है कि वैष्णव-तन्त्र, शैव-तन्त्र, शाक्त-तन्त्र, बौद्ध-तन्त्र आदि में पर्याप्त समानताएँ प्रतिभासित होती हैं। कहना चाहिये कि भारत की सम्पूर्ण धर्म-पद्धति ही तन्त्र की जटिलता में बँध कर जड़ हो गई। हमारे यहाँ की धार्मिक-तान्त्रिकता में हठयोग-साधना सर्वनिष्ठ प्रतीत होती है। नाम अथवा शब्द-भेद से लगभग एक ही सी हठयोग-क्रियाओं एवं आचारों का प्राधान्य इस तन्त्र-साधना में प्राप्त होता है। षट् चक्रों की साधना तथा कुण्डलिनी योगाचार सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। निर्गुण-भक्ति-मार्ग के अनुयायी सन्तों ने परमात्म-साक्षात्कार के लिए हठयोग-प्रक्रिया को नहीं अपनाया, किन्तु निर्गुण-भक्ति द्वारा जीव व परमात्मा के सम्बन्ध में आवरणभूत माया को हटा कर घट में ही उस अद्वैत निरंजन का दर्शन किया। फिर भी जनसाधारण में प्रचलित नाथ-सम्प्रदाय के योग-प्रक्रियाओं का सामान्य प्रभाव उन पर भी पड़ा। अत: उन्होंने भी अपने मार्ग के अनुकूल निरंजन-दर्शन के उपयोगी योग की सामान्य क्रियाओं को अपनाया और उनका निरूपण अपनी वाणियों में किया। हठयोग उनके निर्गुण-भक्ति-मार्ग से मेल नहीं खाता था, क्योंकि हठयोग में नेति, धोति, वस्ति—अनेक प्रकार के आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध आदि क्रियाओं द्वारा शरीर को बलपूर्वक हठात् वश में किया जाता है और शरीर को कष्ट दिया जाता है, जब कि भक्ति-मार्ग में शरीर पर विशेष अथवा किसी प्रकार का अत्याचार न करके इन्द्रिय व मन को ईश्वर-स्मरण व प्रेम द्वारा वश में करके आत्मा में अविच्छिन्न रूप से लगा दिया जाता है और इस तरह घट में उस निरंजन का दर्शन किया जाता है, किन्तु हठयोग की क्रियाओं को

---

१ Collected work of Sir R. G. Bhandarkar Vol. IV Page 203—9

२ श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोगविद्या ।
विभ्राजते प्रोन्नत राजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ॥

छोड़ कर और भी यौगिक-क्रियाएँ ऐसी हैं, जिनके द्वारा ब्रह्माण्ड का पिण्ड में दर्शन किया जाता है और वे क्रियाएँ प्राणायाम स्वरोदय व अन्य प्रणालियों से मन को शुद्ध करके उसको आत्मा में लीन करने वाली हैं। ऐसी क्रियाएँ योग-शास्त्र में लययोग नाम से प्रसिद्ध हैं। लययोग के भी सब अंगों का सन्तों की वाणियों में वर्णन उपलब्ध नहीं है, किन्तु त्रिवेणी-स्नान, आत्मा में मन का लय, सुषुम्णा, इड़ा पिंगला, सूर्य-चन्द्र, शून्य स्थान, कुण्डलिनी, अनाहत नाद, अजपाजाप, नादविन्दु आदि का निरूपण मिलता है और यह भी विप्रकीर्ण ही मिलता है।[१] स्वामी सुरजनदास जी का यह विचार अपने में मौलिक एवं मूल्यवान् है। सन्त-साहित्य में हठयोग-सम्बन्धी यह नाथपन्थी प्रभाव कबीरदास जी के माध्यम से प्रचलित हुआ। कबीर-परम्परा के अन्य सन्तों, जैसे--नानक, दादू, रज्जब आदि ने कबीर की मान्यताओं को स्वीकार किया था और यही कारण था कि उन्होंने कबीर के प्रतिपाद्य को अपना प्रतिपाद्य माना और उसीका अनुमोदन किया।

रजबावत तथा शैव शाक्त-साधना का इतना ही सम्बन्ध हम मान सकते हैं कि शैवों और शाक्तों में यौगिक-क्रियाएँ विद्यमान थीं, जो निर्गुण भक्त सन्तों अथवा रज्जब जी को किसी-न-किसी रूप में मान्य थीं। कबीर, दादू, रज्जब आदि के एकेश्वरवाद में निर्गुण राम के अतिरिक्त किसी अन्य देवता के लिए किञ्चिन्मात्र स्थान नहीं था। शिव शक्ति अथवा अन्य अवतारों के प्रति इन सन्तों की अनास्था थी। वे बहुदेवोपासना के कट्टर विरोधी थे। इसका संकेत हम पीछे कर आये हैं। परिणामत: शैव और शाक्त धर्मों का आचार-विचार, अनुष्ठान, पूजा, कर्मकाण्ड इन सन्तों के साहित्य में किसी रूप में नहीं प्राप्त होता, प्रत्युत यदि कहीं कुछ उल्लेख भी है, तो "बैष्णव की छपरी भली, ना साकत बड़गांव" के रूप में है। बहुदेवोपासनावलम्बियों से इन निर्गुण भक्तों को चिढ़ थी। तब फिर रज्जब जी के सिद्धान्तों में शैव अथवा शाक्त-भावना का आरोप करके उनका अनुशीलन करना किसी प्रकार न्यायानुमोदित नहीं। रज्जब जी ने जहाँ शक्ति सींव शोध के अंग में शक्ति का उल्लेख किया है, वह माया के रूप में। ब्रह्म और माया के अतिरिक्त रज्जब जी और कुछ नहीं मानते। वे उस शक्ति (माया) को उभयगुणी मानते हैं—

स्वारथ परमारथ सकति, तौ धृग माया धन्न।
रज्जब रुचि सों काढ़िल्यो, जो है जाके मन्न॥[२]

आशय यह है कि शक्ति (माया) में स्वार्थ और परमार्थ--दोनों है, वह धिक्कृत भी है और धन्य भी है, जिसके हृदय में जैसी आकांक्षा हो, अपनी रुचि के अनुसार इस शक्ति से वही लिया जा सकता है।

शक्ति सींव शोध के अंग में भी रज्जब जी शक्ति को शाक्तों की उपास्यदेवी के रूप में नहीं चित्रित करते, उसे माया के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं—

लागी सो त्यागी तबहिं, मोहिं कहो समझाय।
एक ब्रह्म दूसरी माया, यहु संसय नहिं जाय॥

---

१ दादू वाणी, सम्पादक स्वामी मंगलदास, भूमिका-लेखक स्वामी सुरजनदास जी एम० ए० साहित्य, व्याकरण, सांख्ययोगाचार्य।

२ रज्जब बानी, शक्ति उभयगुणी का अंग।

जिन्होंने मन और इन्द्रियों को वश में करके मदन भुजंग का बध कर दिया है, वही पु परम पुरुष से मिल पाते हैं।

मन इन्द्री जिन वस करी, मारद्या मदन भुवंग ।
सो रज्जब सहजै मिलै, परम पुरुष के संग ।।[1]

रज्जब जी कहते हैं कि यदि भगवान् के मार्ग में चलने का चाव है, तो शरीर और मन व परों तले दबाओ--

हरि के मारग चलन का, जे कछु है चित चाव ।
तौ रज्जब त्यागो जगत, दै तन मन सिर पांव ।।[2]

साधक को रणविक्रमी की भाँति इन्द्रियों से युद्ध ठानना चाहिये। ज्ञान की कृपाण लेकर युद्ध जीता जा सकता है—

सूरा ह्वै संग्राम चढ़ि, अरि इन्द्री अड़ि मारि ।
जन रज्जब युध जीतिये, ज्ञान खंग कर धारि ।।[3]

रज्जब जी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए हठयोग की प्रक्रिया ग्रहण करने का निर्देशन करके लययोग अथवा ध्यानयोग का आश्रयण बताते हैं--

काछिव दृष्टि ध्यान धरि, अकल पुरुष की सौर ।
तौ रज्जब सहजै मिलै, परम पुरुष सिरमौर ।।[4]

जिस प्रकार कच्छप जल के भीतर रह कर अपने तट पर रखे हुए अण्डों का ध्यान से पालन करता है, उसी प्रकार जीव को संसार की माया में रहते हुए ध्यान उस ब्रह्म की ओर ही लगाना चाहिये। इस प्रकार निश्चय ही परमात्म-प्राप्ति हो जाती है।

रज्जब जी का विश्वास है कि ध्यान जैसा रहेगा, गति-मति भी वैसी ही हो जायगी। इन्द्रिय विषयों में ध्यान रहेगा, तो भौतिक रस ही प्राप्त होगा।

पंच तत्व करि पंच रस, प्राण तत्व धरि ध्यान ।
रज्जब रचे बखानियहि, जो जेहि ठाहर ठान ।।[5]

इस ध्यानयोग के लिए धैर्य एवं अभ्यास की महती आवश्यकता है। रज्जब जी इसके लिए उदाहरण देते हैं कि चातक चाहे कितना टेरे, विपुल वर्षा बीत जाय, परन्तु स्वाती का बूंद चौथे मास अर्थात् क्वार में ही प्राप्त होता है। चातक को भी धैर्य से ही काम लेना पड़ता है—

रज्जब वेगावेगि न पाइये, वेत्ता करौ विमास ।
श्रावण हू में आवई, स्वाति सु चौथे मास ।।[6]

---

१ सूरातन का अंग, साखी ३९
२ सूरातन का अंग, साखी १३
३ सूरातन का अंग, साखी ४६
४ पिछान का अंग, साखी ५
५ ध्यान का अंग, साखी ११
६ धीरज सहज स्वाति का अंग, साखी ४

इड़ा मार्गेण पुष्टयर्थं याति मन्दाकिनी जलम् ।
पुष्णाति सकलं देहमिडामार्गेण निश्चितम् ।।७।।

यही कारण है कि रज्जब जी बहिमुख भ्रमण को श्रेयस्कर नहीं समझते ।

पिण्ड में ब्रह्माण्ड की स्थिति का अनुमोदन हठयोग एवं राजयोग दोनों करते हैं। राजयोगान्तर्गत विन्दुयोग में भी इसी तथ्य को प्रस्तुत किया गया है—

"इदानीं पिण्ड ब्रह्माण्डयोरैक्यमस्ति तस्मात् ब्रह्माण्ड मध्ये ये पदार्थास्तेपि पिण्ड मध्ये सन्तीति कथ्यन्ते ।" [1]

अर्थात् पिण्ड ब्रह्माण्ड में ऐक्य है, अतः ब्रह्माण्ड में जो पदार्थ हैं, वे पिण्ड में भी हैं।

विन्दुयोग में पिण्ड ब्रह्माण्ड के ऐक्य को सूक्ष्म ब्योरे के सहित समझाया गया है। 'इदानीं शरीर मध्ये लोक त्रयं कथ्यन्ते' कह कर तीनों लोक, 'इदानीमुपरितनं लोक चतुष्कं कथ्यन्ते' द्वारा चारों लोक, 'इदानीं सप्त द्वीपानि पिण्ड मध्ये कथ्यन्ते' द्वारा सप्त द्वीप; इसी प्रकार सप्त समुद्र, नवखण्ड, अष्टकुल पर्वत, सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह आदि सभी पिण्ड में अत्यन्त रोचक शैली में प्रतिपादित किये गये हैं।

पुरुष पवन रूप हो जाता है तथा ऊर्ध्वगामी हो जाता है, इसकी पुष्टि राजयोग करता है—

"तदनन्तरं पवन रूपी पुरुषो भवति। समग्रां पृथ्वीं दृष्टचा पश्यति·········परमेश्वरं समीपे पश्यति।" [2]

इसके उपरान्त यह पुरुष पवन रूपी हो जाता है, अपनी दृष्टि से सब पृथ्वी को देखता है ·······परमेश्वर को समीप से देखता है।

रज्जब जी बहिर्मुख होकर भ्रमण करने वालों का उदाहरण देते हुए कहते हैं—

उनचास कोड़ि अहनिसि फिरहिं, चवुर प्रहर शशि भान ।
रज्जब उभै चलाक अति, अबिगति नाथ न जान ।।

उनचास करोड़ रात-दिन मरुद्गण चक्कर लगाते हैं, सूर्य-चन्द्र चारों पहर चलते हैं, किन्तु परमेश्वर का सान्निध्य उन्हें नहीं प्राप्त हो पाता। रज्जब जी का कथन है कि उस रसूल का मार्ग पिण्ड के भीतर ही है।

बस, उल्टे चल कर उस वजूद को प्राप्त करने के लिए कोई साहसी मुसाफिर ही जाता है। इन्द्रियों की गति बहिर्मुखी है—उनको अन्तर्मुखी बनाना बड़े साहसी साधक का कार्य है—यही उल्टा चलना है। इसीको 'उल्टा चलै बौलिया' कहते हैं—

रज्जब राह रसूल का, पंडा पंजर माँहि ।
उल्टे चलि औजूद में, मरद मुसाफिर जाँहि ।। [3]

---

१ विन्दुयोग भाषा टीका, ले०—पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, पृष्ठ ४७–५४

२ विन्दुयोग, पृष्ठ ५५

३ रज्जब बानी, मधि मार्ग निज स्थान निर्णय का अंग, साखी २६

हमारे विचार से हठयोग की अपेक्षा रज्जब जी राजयोग को अधिक महत्व देते हैं। योग अंतरंग साधनों पर उनकी अधिक आस्था है। लय ध्यान तथा समाधि उनकी परमात्म-सा के विशेष अंग हैं।

रज्जब जी ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग शरीर और मन को ही बतलाते हैं :—

तन मन में मारग मिल्या, सतगुरु दिया दिखाय ।
जन रज्जब रमि राह उस, परम पुरुष कने जाय ॥ [१]

पिण्ड में ही ब्रह्म का अन्वेषण करना चाहिये। बहिर्मुखी वृत्तियों द्वारा ब्रह्म प्राप्त न हो सकता—

सप्त द्वीप नवखण्ड फिरि, हाथ चढ़ै कछु नाँहि ।
रज्जब रजमा पाइये, आये उर धरि माँहि ॥ [२]

रज्जब जी कहते हैं कि सारे यह लोक-द्वीप-खण्ड मनुष्य के पिण्ड के ही भीतर समा हुए हैं। अतः बाहर भ्रमण करने की अपेक्षा यदि अन्तर्गमन किया जाय, तो अन्तर्यामी प्राप हो सकता है—

अंतरि लांघे लोक सब, अंतरि औघट घाट ।
अंतरयामी कूं मिलै, जन रज्जब उर बाट ॥ [३]

शिव-संहिता के द्वितीय पटल के प्रारम्भ में इसी विचार को विस्तार से इस प्रकार प्रस्तु किया गया है :—

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीप समन्वितः ।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥१॥

ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
पुण्य तीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठ देवताः ॥२॥

सृष्टि संहार कर्तारौ भ्रमन्तौ शशि भास्करौ ।
नमो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥३॥

त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ।
मेरुं संवेष्टय सर्वत्र, व्यवहारः प्रवर्तते ।
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ॥४॥

ब्रह्माण्ड संज्ञके देहे, यथा देशं व्यवस्थितः ।
मेरु श्रृंगे सुधा रश्मिर्वहिरष्ट कलायुतः ॥५॥

वर्तते अहर्निशं सोऽपि सुधां वर्षत्यधोमुखः ।
ततोऽमृतं द्विधाभूतं याति सूक्ष्मं तथा च वै ॥६॥

---

१ रज्जब बानी, मधि मार्ग निज स्थान निर्णय का अंग, साखी १
२ रज्जब बानी, मधि मार्ग निज स्थान निर्णय का अंग, साखी १३
३ रज्जब बानी, मधि मार्ग निज स्थान निर्णय का अंग, साखी १९

माया अत्यन्त शक्तिशालिनी है, वह निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है—

ब्रह्मण्ड प्यण्ड जिव जोति लगि, मधि माया सुर रूप ।
रज्जब निकसै कौन विधि, रिधि छाया हरि रूप ॥

—(शक्ति सींव शोध का अंग)

यह माया ब्रह्माण्ड पिण्ड और प्राण में त्रिगुणमयी होकर व्याप्त हो गई है, तब इसका उस हरि कूप से निकालना कठिन है, क्योंकि वह भक्ति के कूप में कामनाओं की छाया बन कर समा गई है।

इस प्रकार रज्जब जी इस शक्ति को माया के पदार्थ के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। शैव और शाक्त-उपासना का कोई लक्षण रज्जब जी की भगवद्भक्ति में नहीं प्राप्त होता। केवल हठयोग की दिशा में कुछ साम्य वैषम्य हो सकता है, जिस पर हम स्वतन्त्र रूप से विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

चक्रों की साधना हठयोग में निर्धारित की गई। कालान्तर में ६ चक्रों के स्थान पर ९ चक्रों का प्रतिपादन भी किया गया तथा दोनों की मान्यता प्रतिष्ठित हो गई। हठयोग में प्राणायाम की महत्ता सर्वोपरि है। प्राणायाम की अनेक विधियाँ तथा प्रकार निर्दिष्ट किये गये। रेचक, पूरक और कुंभक प्राणायामों के कई भेद निरूपित किये गये, किन्तु इस प्रसंग में इन सबका विवेचन अपेक्षित नहीं है। यौगिक-क्रियाओं की पृष्ठभूमि के रूप में एक सामान्य विवेचन के पश्चात् प्रस्तुत प्रसंग में यह देखना आवश्यक है कि रज्जब जी की साधना में योग के दो मूल प्रकारों—हठयोग तथा राजयोग का कहाँ तक प्रभाव है। निर्गुण-भक्ति-साधना के सन्तों की प्रवृत्ति स्थूल के विसर्जन और सूक्ष्म के ग्रहण में विशेष रही है। उन्होंने सगुण-उपासना में प्रतिपादित ब्रह्म के नाना अवतारों का खण्डन किया, परन्तु अवतारों के नामों को सहर्ष स्वीकार किया। वे अव्यक्त ब्रह्म को नाना संज्ञाओं से सम्बोधित करते हैं, परन्तु उसे रूपात्मक अथवा स्थूल बनाने के पक्ष में नहीं हैं। उन्होंने मन और इन्द्रियों के निग्रह पर विशेष बल दिया, वाह्य-कर्मकाण्डों एवं वेद-रचना की स्थूलता का निराकरण किया। उनकी साधना अन्तर्वर्तिनी तथा अन्तर्मुखी थी। वे निर्गुणोपासक-सन्त वाह्याडम्बर अथवा उपासना की स्थूल पद्धतियों के पक्ष में नहीं थे। रज्जब जी उपासना के बहिरंग साधनों का निरसन करते थे। हठयोग की क्रियाएँ चूंकि योग के बहिरंग साधन हैं, इसीलिए रज्जब जी साधना में हठयोग को पूर्णतः नहीं अपना सके। उनकी हठयोग-सम्बन्धी आस्था अधिक-से-अधिक इड़ा पिंगला सुषुम्ना अथवा चन्द्र-सूर्य मिलाप तक, चक्रों में केवल षट्चक्रों के नाम स्मरण तक ही सीमित रही। रज्जब जी हठयोग के यम, नियम, आसन, मुद्राबन्ध के ब्योरे में नहीं गये, और न इन कृत्रिम असहज साधनाओं पर उनका विश्वास ही था। वे तो सहज साधना को प्रश्रय देते थे।

हठयोग की जिन विशेष धाराओं का प्रभाव रज्जब जी के साहित्य में लक्षित होता है, वे निम्नलिलित हैं :—

(क) इड़ा पिंगला, सुषुम्ना के संयोग से अमृतत्त्व की प्राप्ति।
(ख) पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की अवस्थिति।
(घ) संयम एवं इन्द्रिय-निग्रह।
(घ) ब्रह्म रंध्र अथवा शून्य में प्राणारोप।

जब तक इन्द्रियों के स्वामी मन को ब्रह्म में लय न कर दिया जायगा, तब तक इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में आसक्त रह कर शरीर का नाश करती रहेंगी--

इन्द्री प्रसन्न जीभ रस, नास वास चखि रंग ।
रज्जब श्रवणों शब्द सुनि, विषै पंच बपु भंग ।।[1]

मदन साधक के लिए अत्यन्त विघ्नकारी सिद्ध होता है । रज्जब जी काम और काल में काम को अधिक अपकारी मानते हैं । काल तो एक दिन ही मारता है, परन्तु काम तो अहर्निश मारता रहता है--

रज्जब करड़ा काल सों, काम सु काया माँहि ।
वह मारेगा एक दिन, यहु अहनिसि छाड़ै नाँहि ।।[2]

इस इन्द्रिय, मन और काम को मारने के लिए एक ही उपाय है कि इस संसार में रहते हुए सार को ग्रहण करे तथा असार का त्याग करे । इस सगुण विश्व में निर्गुण ब्रह्म को पकड़ सके, तो इन्द्रियाँ भी विषयासक्त न रह कर ब्रह्मासक्त हो जायेंगी । इसके लिए रज्जब जी ने अत्यन्त आकर्षक उपमान प्रस्तुत किया है--

जे कांटा है रूख में, छांह माँहि कछु नाँहि ।
रज्जब मिलिये सबहु सों, गहि निर्गुण गुण माँहि ।।

वृक्ष में कांटे होते हैं— वृक्ष का गुण है, किन्तु उसके निर्गुण रूप छाया को ग्रहण करने से शीतलता मिलती है । इसी प्रकार संसार अपनी त्रिगुणमयी स्थिति में कांटेदार वृक्ष है—परन्तु गुणातीत ब्रह्म को जो छाया रूप में विश्व भर में व्याप्त है--ग्रहण करने से मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है ।

संसार में तो गुण और अवगुण रहेंगे ही, परन्तु उसमें सार-सार चुन लेना ही कौशल है । जिस प्रकार भ्रमर तिल के पुष्प से केवल सौरभ ले लेता है और फूल को वहीं छोड़ देता है, उसी प्रकार इस विश्व-पुष्प में व्याप्त परिमल रूप ब्रह्म को चुन लेने वाला ही सच्चा साधू है--

रज्जब साधू गुण गहैं, अवगुण दशा न जाय ।
ज्यूं अलि तिल तजि पुहुप कूं, परिमल लेय उठाय ।।[3]

वेष धारण करने अथवा स्वांग बनाने से ब्रह्म-साधना में कोई बल नहीं मिलता । वेष धारण करना तो प्रदर्शन है, प्रत्युत सच्ची साधना में वह बाधक ही है--

स्वांग सनेही दर्शनी, सांच सनेही साध ।
रज्जब खोटहुं साहु का, अरथ अगोचर लाध ।।[4]

---

१ इन्द्रिय का अंग
२ काम का अंग
३ सारग्राही का अंग
४ स्वांग का अंग

प्रदर्शन में रुचि रखने वाला स्वांग अथवा वेष बनाता है तथा साधु सत्य में निष्ठा रखता है। यही खोटे और खरे की पहचान है।

सिर मूड्या अस्थूल का, काम जड्या मन माहिं ।
रज्जब मन मूड़े बिना, सिर मूड़े कछु नाहिं ।।[1]

इसीको कबीर ने कहा--

केसनि कहा बिगारिया, जे मूड़े सौ बार ।
मन को काहे न मूड़िये, जामे विषय विकार ।।

वेष में ऊपर से कुछ और भीतर से कुछ और ही दीखता है--

ऊजल राता तेजसी, लोभी धीज न कोय ।
रज्जब दीपक ज्योति में, काजल कारा होय ।।[2]

हठयोग-प्रदीपिका के प्रथम उपदेश के ६६वें श्लोक में यही भाव व्यक्त किया गया है--

न वेष धारणं सिद्धेः कारणं न च तत्कथा ।
क्रियैव कारणं सिद्धेः सत्यमेतन्न संशयः ।।

अर्थात् वेष धारण करना सिद्धि का कारण नहीं होता और योग-शास्त्र की कथा भी सिद्धि का कारण नहीं होती। इसमें कोई संशय नहीं है कि केवल क्रिया अथवा योगाभ्यास ही सिद्धि-प्राप्ति का एकमात्र कारण है। रज्जब जी ने ज्ञान बिना करनी का अंग तथा करनी बिना ज्ञान का अंग में इसी सिद्धान्त की विस्तार से व्याख्या की है।

योग की परिभाषा करते हुए हमने कहा था कि स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रयाण ही योग है। रज्जब जी अपनी साधना में सूक्ष्म साधना अथवा अन्त:साधना को असाधारण महत्व प्रदान करते हैं। वे भक्ति अथवा उपासना की बाहरी क्रियाओं को हृदय के भीतर ही लय कर देते हैं। उनकी नवधा-भक्ति का उदाहरण देखिये---

श्रवण परीक्षित रूप, शबद शुकदेव सु गावै ।
पवन भजन प्रह्लाद सु, मनसा श्रीपद ध्यावै ।।

पूजा अरच पृथु प्रेम, अंकुर अक्रूर सु बंदन ।
हेत दास हनुमन्त, प्राण पारथ सु प्रीति पन ।।

बलि ज्यूं बल बलिहारि कर, रज्जब रामहिं दीजिये ।
इहि प्रकार नौधाभगति, सु आतम अन्तर कीजिये ।।[3]

साधक के अन्तर में ही नौ प्रकार की भक्तियों का नित्य उन्मेष होता रहता है, फिर बाहरी उपादानों की क्या आवश्यकता।

---

१ स्वांग का अंग
२ स्वांग का अंग
३ कबित्त उपदेश का अंग

पिण्ड में ब्रह्माण्ड किस प्रकार लगाया है, यह भी देखिये—

आतम अगम अकास, भवन तिहिं बसै विश्वम्भर ।
मन सु पवन शशि सूर, प्रीति परम क्षिन ऊपर ।।

तारे तत्व तहां चलैं, सन्त सुई सेवक सारे ।
इन्द्री आभे पंच, गगन में गुप्त सुजारे ।।

खिवे न मनसा बीज, सलिल राखे नहिं लेसै ।
जन रज्जब भू सन्त, देखिले सूक्ष्म ही देसै ।।

हठयोग और राजयोग में यही अन्तर है कि हठयोग मन के निग्रह के लिए इन्द्रियों के निग्रह पर बल देता है और उसके लिए शरीर को नाना क्रियाओं से कसने का निर्देशन करता है । हठयोगी की दृष्टि से इन्द्रियों को पंगु बना देने से मन स्वयमेव पंगु बन जायगा, फिर मन को अलग से निरुद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती । किन्तु राजयोग क्रमिक-अभ्यास से मन और प्राण के निग्रह पर बल देता है । उसकी दृष्टि में मन के संयमित हो जाने पर इन्द्रियाँ स्वयं ही संयमित हो जायेंगी, क्योंकि स्वामी के मन्द हो जाने पर सेवक क्या कर सकता है । जब युद्ध-भूमि का सेनापति पराजित हो जाय, तो फिर सामान्य सैनिक क्या कर सकते हैं । मन इन्द्रियों का स्वामी है, अतः उसे ही परमात्मा की ओर लगाना चाहिये ।

रज्जब जी योग की इन विविध प्रक्रियाओं में 'राजयोग' अथवा 'ध्यानयोग' को ही महत्व देते हैं । भले ही कहीं बीच-बीच में वे इंगला, पिंगला और सुषुम्ना का संकेत कर दें, परन्तु मूलतः हम रज्जब जी की उपासना में राजयोग की ही प्रधानता पाते हैं । रज्जब जी का ध्यानयोग—ल्यो अथवा लययोग—इसी राजयोग के ही पोषक अंग हैं । रज्जब जी मन का निग्रह अथवा इन्द्रियों का निग्रह हठयोग की अस्वाभाविक क्रियाओं द्वारा नहीं, शनैः-शनैः अभ्यास करने के पक्ष में है । वे मानव की समस्त अर्न्तवृत्तियों को परमात्मा के ध्यान में प्रवृत्त कर देना चाहते हैं और इसके अनन्तर उनका ध्रुव विश्वास है कि फिर साधना पक्ष के शत्रु बाधा नहीं पहुंचा सकते ।

चिदानन्द चित में रहौ, मनमोहन मन माँहि ।
रज्जब ऊपर रहम करि, अरि उर आवै नाँहि ।।

—(विनती का अंग)

रज्जब जी की साधना और उपासना को हम एक ही नाम देना चाहते हैं, और वह है भक्तियोग । उनकी साधना में सुरति (प्रवृत्ति) और निरति (निवृत्ति) दोनों बने रहते हैं । रज्जब जी भक्ति-योगी हैं । वे प्रवृत्ति को परमात्मा की ओर मोड़ देने का उपदेश देते हैं—परमात्म-विषयक रति, शुद्ध विरति अथवा निवृत्ति बन जाती है । परमात्मा के आधार के बिना खोजी गई निवृत्ति के लिए प्रति क्षण भौतिक प्रवृत्ति में परिणत हो जाने की आशंका बनी रहती है । इसीलिए ज्ञानयोग से भक्तियोग श्रेष्ठ है । रज्जब जी के योग को न तो हम हठयोग का नाम देना चाहते हैं और न राजयोग ही, वह गीता में प्रतिपादित शुद्ध भक्तियोग है । यहाँ रज्जब जी कहते हैं—

सकल पतित पावन किये, अधम उधारनहार ।
विरद विचारो बाप जी, जन रज्जब की बार ।।

रज्जब ऊपर रहम करि, हरि जी दीजै नाथ ।
नाता राखो नांव का, नरक निवारननाथ ।।[1]

यह रहम अथवा कृपा की याचना, अपराधों को क्षमा कराने की प्रार्थना केवल भक्तियोग में ही सम्भव है। अभी रज्जब जी ने भगवान् को पिता रूप में स्मरण किया था, अब वे माता-पिता दोनों रूपों में उसका स्मरण करते हैं––

सूते सुर्ताहि खुलावहीं, माता पिता जगाइ ।
त्यूं रज्जब सूं कीजिये, भगवंत आवौ भाइ ।।[2]

रज्ज़ब जी ब्रह्म को पक्षी तथा जीव को अण्डा बता कर वात्सल्य की पराकाष्ठा प्रस्तुत करते हैं––

रज्जब ब्रह्म विहंग के, आत्म अण्ड समान ।
पै बाबा सेवौ नहीं, तौ क्यूं निपजै तन जान ।।[3]

जब तक परमात्मा जीवात्मा का पोषण नहीं करेगा, तब तक उसकी स्थिति कहाँ सम्भव है। रज्जब जी कहते हैं कि मैं तो सदैव चूकता आया हूं। अब भी अपराध करता जा रहा हूं, परन्तु हे प्रभु ! मेरे उद्धार करने में तुम क्यों चूक रहे हो––

रज्जब आया चूकता, सदा चूक ही मांहि ।
पै प्रभु तुम चूकहु सु क्यों, मुझहिं उधारो नांहि ।।[4]

पापों से निवृत्त रह कर भवसागर से पार होने की कला को ज्ञानयोग कहते हैं तथा पापों में पड़ कर अपने को भगवान् के चरणों में अर्पित कर देने को भक्तियोग कहते हैं। रज्जब जी शुद्ध भक्तियोगी थे। गीता में भगवान् ने अर्जुन से इसी भक्तियोग का उपदेश देते हुए कहा—

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धि निवेशय ।
निवशिष्यसि मय्येव, अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।

(अध्याय १२–८)

अर्जुन ! मेरे में मन को लगा, मेरे में ही बुद्धि को लगा, इसके उपरान्त तू मेरे में ही विश्वास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

रज्जब जी इसी भक्तियोग के आकांक्षी एवं पक्षपाती हैं। उनके भक्तियोग के रहस्य को सम्यक् प्रकारेण समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वे सम्पूर्ण ब्रह्म का अभ्यन्तर में प्रविलय करना सिद्धि के लिए नितान्त अपेक्षित मानते हैं। कदाचित् योग का रहस्य भी यही है।

---

१ बिनती का अंग
२ बिनती का अंग
३ बिनती का अंग
४ बिनती का अंग

स्थूल का सूक्ष्म में लय करना ही योग का प्रयोजन है। इस दृष्टि से रज्जब जी के स्थूल को सूक्ष्म में अन्तर्भूत करने की कतिपय क्रमिक अवस्थाएँ हैं :—

(क) ब्रह्माण्ड को पिण्ड में विलय।
(ख) पिण्ड का मन में निमज्जन।
(ग) मन का प्राण में लय।
(घ) प्राण का आत्मा में प्रविलय।

यौगिक-साधना की ये चारों अवस्थाएँ रज्जब जी के साधना-मार्ग में उपलब्ध होती हैं, जो भारतीय योग-शास्त्र एवं निर्गुण सन्त-साधना की परम्परा से पृथक् नहीं है।

रजबावत और सूफी भावना

सूफी मत इस्लाम धर्म की वह उदात्त आध्यात्मिक शाखा है, जिसमें बाह्यानुभूति के लिए माधुर्य भाव को विशेष प्रश्रय दिया गया है। एक ओर सूफी-साधना ने विवेक द्वारा इस्लाम धर्म की अन्धानुसरण की भावुक प्रवृत्तियों का निराकरण कर उसे बुद्धिसंगत बनाया, दूसरी ओर इस्लाम धर्म की जड़-बौद्धिकता को भावना द्वारा कोमल, मधुर एवं प्रेमासिक्त किया। सूफी-धर्म की यह विलक्षणता ही है कि उसने बौद्धिक-जड़ता के निरसन के लिए भावना को साधन बनाया तथा विवेकशून्य भावुकता के खण्डन के लिए बुद्धि का आश्रय लिया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सूफी मत में भावना और बुद्धि का अतीव सुखद सम्मिश्रण है। भारतीय धर्म-शास्त्र की भाषा में इसे यों कह सकते हैं कि सूफी मत में ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय है। सूफी मत एवं भारतीय वेदान्त के सैद्धान्तिक पक्षों में पर्याप्त साम्य लक्षित होता है। सूफी मत और वेदान्त—दोनों ही 'वहीद' अथवा 'अद्वैत' ब्रह्मवादी हैं तथा दोनों का मत है कि वह परमेश्वर निखिल ब्रह्माण्ड का स्वामी है। दोनों में धार्मिक-सहिष्णुता का भाव है। सूफी मत समस्त धर्म-वृत्तियों के प्रति आदर-बुद्धि रखते हुए प्रकृति को श्रेष्ठतम पुस्तक मानता है। इधर श्रीमद्भगवद्गीता में नाना साधना-मार्गों द्वारा उसी ब्रह्म-प्राप्ति का अनुमोदन किया गया है। सूफी मत एवं वेदान्त के साम्य को दीवान बहादुर के० एस० रामास्वामी शास्त्री ने अत्यन्त रोचक प्रणाली में प्रस्तुत किया है।[१] सूफी-साधना एक

---

१ The Evolution of Indian Mysticism P. 104-5 by Diwin Bahadur K. S. Ramaswami Shastri.

"The Sufi method combines the Indian methods of Gyan and Bhakti. Both Sufism and Vedantism affirm the existence of one God and say tnat He is the soul and freind and Lord of all individual souls. Both are full of toleration. The Sufi respects all scriptures while he prefers the book of Nature to all of them. The Gita says that men in all times and climes seek God in diverse ways and reach Him by diverse means. Saadi says, "Every soul is born for a certain purpose is kindled in his soul" The Sufi says, "I saw thee in the Sacred Kaba and in the temple of idol also Thee I saw." No sectarian would hold such a view. Both Sufism and Vedantism seek the Divine Light and yearn for Divine Union. Both affirm God as having form and as being formless. Both advocate practising meditation obedience to a Guru (called a Pir in Sufism) fasts, penances, Japa or recitation of the sacred word (called Zikr in Sufism), the use of rosary and universal non-injury and love based on detachment and dispassion and self control. Both affirm the fatherhood of God and brotherhood of man. Both command the sublimation of false ego into the real self The only important difference between them is that Sufism like Islamic thoughts in general does not accept the Vedantic Doctrine of Divine Incarnation (Avatar).

धार्मिक विश्वास है, तर्कपोषित दर्शन-शास्त्र नहीं। इसमें दर्शन-शास्त्र पर आधारित जीवन और जगत् को समस्या के रूप में नहीं प्रस्तुत किया गया, प्रत्युत जटिल एवं समस्यात्मक जीवन और जगत् की समाधानात्मक विश्वासनिष्ठा है। दर्शन बुद्धि द्वारा ब्रह्म के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास करता है, धर्मभावना द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार कर मनुष्य और ब्रह्म को एकमेक कर देता है। दर्शन में आग्रह होता है और धर्म में नैतिक-सहिष्णुता। सहिष्णुता की दृष्टि से सूफी धर्म अत्यन्त उदार एवं सर्वग्राही माना जाता है। सूफी मत में संसार की समस्त विश्वास-परम्पराओं के लिए अवकाश है, जो बुद्धिसंगत मानव मंगलकारी तथा परिणामवाही है।[1]

सूफी-साधना के विशिष्ट तत्त्वों एवं अंगों का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि उस पर ईसाई, नास्तिक, यहूदी, नियोप्लैटोनिक, होरमिक, जोरस्ट्रियन तथा बौद्ध धर्मों का प्रभाव पड़ा था। इन समस्त धर्मों के उन अंगों की विवेचना करना यहाँ हमारा अभीष्ट नहीं, जिनका प्रभाव सूफी-साधना पर पड़ा था।[2] सूफी साधकों की कई जमातें हैं। इन सम्प्रदायों की भिन्नता होते हुए भी मौलिक सिद्धान्त-पक्ष सबका एक है। सूफी एकान्तवास, स्वाध्याय, जप एवं ध्यान को बड़ा महत्व देते हैं। जुनेद ने अपनी सूफी-साधना के विशिष्ट अंग--आत्मसमर्पण, उदारता, धृति, मौन, तितिक्षा, ऊनी वस्त्र, यात्रा एवं निर्धनता माने थे।[3] तथा उनके अनुसार इन गुणों के आदर्श--इस्साक, अब्राहम, अयूब जकरिया, मूसा ईसा और मुहम्मद साहब थे। इस्लाम और सूफी मतों में साधना की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं—

(१) शरीअत।
(२) तरीकत।
(३) हकीकत।
(४) आरफत।[4]

इन चारों अवस्थाओं को कर्म-उपासना, ज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान मान सकते हैं। पहली दो अवस्थाओं से सूफियों का उतना सम्बन्ध नहीं, जितना बाद की दो अवस्थाओं से। सूफी मत में

---

१ Mohammedanism P. 110 by Sir Hamilton A. R Gibbe.

"Sufism, inspite of the loftiness of its religious ideals had almost from the first been less fastidious and more ready to admit alien practices and ideas provided that they seemed to produce results."

२ Sufism P. 1 by A. J. Abberry

"......that the Sufis owed much or little of what they did or said to Christian, Jewish, Gnastic, Neoplatonic, Hormetic, Zorostrian or Buddhist example."

३ Islamic Sufism P. 21 by Sirdar Akbal Ali Shah.

"Junayid, for example, based his Tasawaf on eight different qualities of the mind, viz. submission, liberality, patience, silence, separation (from the world) woollen dress, travelling, poverty—as illustrated in the lines of Issac, Abraham, Job, Zachariat Moses, Jesus and the seal of Prophets."

४ In the Eastern Rose Garden, published by Sufi movement P. 47

"There are four paths or stages that lead a person into spiritual knowledge from the limited to the unlimited."

जिक्र (जप) का महत्व है। जप में समा (संगीत) को विशेष स्थान प्राप्त है, किन्तु कुछ सूफी उदाहरणार्थ सर्राज कुशेरी और हुजविरी कीर्तन-पद्धति को वासनात्मक मानते हैं। गज्ज़ाल नामक प्रसिद्ध सूफी साधक इस समा (संगीत) को हाल (आनन्दावस्था) का साधन मानता था।

परमात्मा-विषयक रति सूफी-साधना का सर्वस्व है। हल्लाज ने—जिनको मंसूर भी कहते हैं—'अनल्हक' (अहं ब्रह्मास्मि) की घोषणा की, जिसके फलस्वरूप उन्हें प्राणदण्ड भोगना पड़ा। इन्होंने तसव्वफ को सफल एवं अमर बना दिया।

सूफी-साधना में इस्लाम धर्म की कर्मकाण्ड-पद्धति के लिए विशेष स्थान नहीं। हज्ज (मक्का की यात्रा), रोजा (रमजान का उपवास), जकात (दान) और नमाज (पूजा) को साम्प्रदायिक-उपासना की बाह्य-पद्धतियाँ मान कर सूफी इन पर विशेष ध्यान नहीं देते थे। सूफी बनने के लिए तो परमेश्वर में प्रणति ही पर्याप्त हैं। "प्रीति उत्पन्न होने से मोमिन या मुसलिम सूफी बन जायगा और शरीअत के आगे बढ़ कर तरीकत का उपयोग करेगा। अस्तु, मुसलिम को तसव्वफ के क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए सामान्यत: तोबा, जहद, सब्र, शुक्र, रियाज, सोफा, तवक्कुल, रजा, फिक्र और मोहब्बत का क्रमश: अनुष्ठान करना पड़ता है। कुछ लोग इन्हीं को मुकामात कहते हैं, पर वास्तव में ये मुसलिम मुकामात हैं, सूफियों के नहीं, क्योंकि सूफी मोहब्बत को अपना प्रेम स्थान समझते हैं, लक्ष्य नहीं।" [१] सूफी ईश्वर के प्रेमानन्द को प्राप्त कर लेने पर फना की स्थिति को समाप्त कर बक़ा की स्थिति में प्रविष्ट हो जाता है। फना ऐहिक संयोग तथा बका अलौकिक ईश्वरीय संयोग का पर्याय है। सूफियों ने अपनी दिव्य स्थितियों के चित्रण में प्रतीकात्मक-पद्धति का भी आश्रय लिया है। परन्तु सूफियों की साधना का विशाल प्रासाद इश्के हकीकी पर तना है। प्रेम-दर्शन की व्याख्या ईरान के सूफी-कवि जलालुद्दीन रूमी ने अत्यन्त प्रभावोत्पादक शैली में किया है। [२] प्रेमी साधक अपनी प्रेम-साधना में कभी शान्त नहीं होता, वह एक समय उस दिव्य सौन्दर्य को अनावृत कर ही लेता है। [३] सूफी आध्यात्मिक-साधना में प्रमुखत: तीन तत्व मानते हैं, वे हैं—कालिब (हृदय), रूह (आत्मा) तथा सर्र (अन्तरात्मा)।[४] ईश्वर-प्रेम में विरहानुभूति सूफियों की ब्रह्मानुभूति में विशेष रूप से सहायक है। इस वियोगाग्नि में सूफी निरन्तर जलते रहना चाहता है।

---

१ **तसव्वफ अथवा सूफी मत पृष्ठ ९१**

२ Rumi Poets and Mystic by Nicholson P. 29

> Love, Love alone can kill what seemed so dead,
> The frozen snake of passion, love alone,
> By tearful prayer and fairy longing fed,
> Reveals a knowledge schools have never known.

३ Rumi Poets and Mystic by Nicholson P. 30

> Love will not let his faithful servants tire,
> Immortal beauty draws them on and on,
> From glory into glory drawing nigher,
> At each remove and loving to be drawn.

४ The Mystics of Islam by R. A. Nicholson P. 68.

"The Sufis distinguish three organs of spiritual communication the heart (Qulb) which knows God, the spirit (Ruh) which loves him; and the innermost ground of the soul (Sirr) which contemplates Him.

हमारे निर्गुण सन्त-साहित्य में जहाँ अनेक अन्य प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं, वहीं सूफी-साधना भी काव्यगत-भावना बन कर प्रस्फुरित हुई। कबीर, नानक, दादू, रज्जब और सुन्दरदास प्रभृति सभी निर्गुणी सन्तों ने सूफी मत के प्रेम-दर्शन को अपनी आध्यात्मिक अनुभूति का अपरिहार्य अंग बना लिया। किन्तु एक अन्तर की ओर हम आपका ध्यान अवश्य आकृष्ट करेंगे, वह यह कि इन निर्गुणी सन्तों ने सूफियों के दिव्य प्रेम (इश्क हकीकी) को तो अपनाया, परन्तु लौकिक प्रेम (इश्क मज़ाजी) को उसका साधन नहीं बनाया। सूफी-भावना और सन्त-साहित्य के इस प्रकरण में हमारा यह भी विचार है कि सूफी विचारधारा का प्रभाव कबीर में तो सीधे पड़ा प्रतीत होता है, किन्तु उनके बाद के सन्तों में दादू को छोड़ कर अन्य सभी महात्माओं ने यह सूफी प्रेम-दर्शन सीधे सूफियों से ग्रहण न करके अपनी गुरु-परम्परा से प्राप्त किया है। इस मान्यता का आधार यह है कि हम देखते हैं कि प्रायः सभी सन्तों की बानियों में प्रेम और विरह-सम्बन्धी उक्तियाँ कबीर की तद्विषयक उक्तियों से न केवल भाव-साम्य रखती है, वरन् शब्द-साम्य और भाषा-साम्य भी उनमें देखने को मिलता है। इस प्रकार का साम्य हम पीछे प्रदर्शित कर चुके हैं।

रज्जब जी के काव्य में भी सूफियाना ढंग विद्यमान है। उनके काव्य में सद्गुरु की प्रतिष्ठा ईश्वर-प्रेम की पीड़ा, विरह-वेदना परमात्मा की अद्वैतता (वहदानियत), अवतारवाद का खण्डन, मूर्ति पूजा का विरोध, बाह्य-कर्मकाण्ड का निराकरण, जप (जिक्र) की प्रधानता, ऐहिकता (फना) का दिव्यता (बका) में लय, तन्मयता (हाल) या आनन्द, निर्धनता, दीनता, विनम्रता, निस्पृहता आदि प्रायः समस्त सूफी-साधना के तत्व से समाविष्ट है। रज्जब-साहित्य के इन तत्वों पर संक्षेप में विचार कर लेना यहाँ अपेक्षित है। सर्वप्रथम रज्जब जी की सद्गुरु-विषयक भक्ति-भावना इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। यद्यपि वैष्णव-भक्ति के प्रसग में हम इसकी विस्तार में चर्चा कर चुके हैं, किन्तु सूफी मत में पीर अथवा मुरशिद (गुरु) के सम्बन्ध में यह धारणा है कि बिना मुरशिद के भगवदुपासना के मार्ग (राहे मार्फत) पर चलने की प्रवृत्ति नहीं उत्पन्न हो सकती। रज्जब जी ने अपनी बानी—'गुरु का अंग' में गुरु-शिष्य की अपेक्षा, दोनों की योग्यता आदि पर अत्यन्त विस्तार से चर्चा की है। रज्जब जी भगवद्सिद्धि को हीरा मानते हैं। हीरा कठोर वस्तु है, गुरु ही उस वज्र के भीतर भी छेद कर देता है, जिसमें शिष्यरूपी तागा सुविधा से प्रविष्ट हो जाता है—

हरि सिद्धी हीरामयी, वज्र न बेधा जाव।
तहां गुरु गैला किया, तब सिष सूत समाय॥

—(गुरुदेव का अंग)

सद्गुरु की कृपा से शिष्य को वह दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे वह तीनों लोकों की वस्तुस्थिति देख लेता है। बिना गुरु के भ्रम व सन्देह का निवारण अन्य कोई नहीं कर सकता—

सतगुरु बिन सन्देह कूं, रज्जब भानै कौन।
सकल लोक फिरि देखिया, निरखे तीन्यूं भौन॥

—(गुरुदेव का अंग)

हम गुरु-शिष्य के सम्बन्धों का श्रेणीबद्ध विश्लेषण पीछे कर चुके हैं, अतः यहाँ पर उसके विस्तार में जाने से पुनरावृत्ति होगी। यहाँ केवल इतना संकेत करना ही पर्याप्त है कि सूफी मत में

सद्गुरु का महत्व आत्यन्तिक है, जिसका प्रभाव रज्जब जी के साहित्य में भी विद्यमान है, अविद्यान्धकार के निवारण के लिए गुरु का महत्वपूर्ण योग सर्व धर्मसम्मत है।

प्रियतम परमात्मा

रज्जब जी ने स्थल-स्थल पर परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित किया है। सूफियों का इश्क़ हक़ीक़ी उनकी इस प्रियतम-साधना में पूर्णत: विद्यमान है। रज्जब जी साधक और ब्रह्म को पतिव्रता और पति मानते हैं। कोई स्त्री पातिव्रत-धर्म का निर्वाह करके ही अपने पति को अपना बना सकती है। यदि वह बहु-पुरुष-उपासना में लगती है, तो पति का साहचर्य खो देती है। एक ब्रह्म की प्राप्ति से संसार के सारे ऐश्वर्य स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं--उसके बिना कुछ भी हाथ नहीं लगता।

येक मिल्यूं सारे मिलैं, सब मिलि मिल्या न येक।
ताते रज्जब जात गति, बूझो बड़ा बड़ा बमेक॥

--(पतिव्रता का अंग)

आशिक़ तथा पतिव्रता स्त्री को न दोजख का खौफ होता और न बहिश्त की हविस, उनका मन तो एक में आसक्त है--

दोजख भिस्तहिं क्या करै, जो अल्लह के यार।
रज्जब राजी येक सों, कामिनि इहै करार॥
भिस्त न भावै आशिकूं, दीन दुनी रुचि नांहि।
रज्जब रातै रब्ब सों, येक बस्या मन मांहि॥

--(पतिव्रता का अंग)

सूफी-साधना के इतिहास में शराब का बड़ा महत्व है। परन्तु शराब यदि खुदापरस्ती की रही अर्थात् सूफियों ने मदिरा का प्रयोग प्रतीत्कात्मक ढंग से किया, तब तो कुछ नहीं कहा जा सकता; किन्तु यदि सूफी शराब का सेवन वस्तुत: करते थे, तो हम कहेंगे कि रज्जब जी मदिरा-मांस-सेवन के विरोधी हैं।

बरत न छांड़ै राम कूं, बरत न भुगतै काम।
बरत न मद मासहिं भखै, नवै न निर्जन धाम॥

--(पतिव्रता का अंग)

रज्जब जी उस प्रियतम परमात्मा को वियोगावस्था में टेरते हैं और कहते हैं कि हे भगवन्! क्या तुमने अब मौन धारण कर लिया है या फिर मेरा प्राणान्त ही चाहते हो :—

रज्जब टेरै रैन दिन, क्यों बोलै नहिं कंत।
कै तुम अब मौनी भये, कै तुम चाहौ अंत॥

--(बिनती का अंग)

रज्जब जी उस परम पुरुष को अपने हृदय में बसाना चाहते हैं—

भाव इहै उर मैं बसौ, परम पुरुष सिरमौर ।
रज्जब के सुख ऊपजें, सत्र न पावहिं और ।।

—(बिनती का अंग)

इतना ही नहीं, साधक ब्रह्माग्नि में भस्म होकर उसी प्रियतम परमात्मा में लय हो जाना चाहता है—

प्रीतम प्रकटो ताप ज्यों, प्यण्ड ते प्राण छुड़ाय ।
मारि मिलाओ आप में, जन रज्जब बलि जाय ।।

—(बिनती का अंग)

अजाजील शैतान मन को कुमार्गों में प्रवृत्त कर रहा है। हे परमेश्वर ! यदि तुम कृपा करो, तो उससे मुक्ति मिले—

अजाजील दिल माहै बैठा, भली न उपजण पावै ।
साहिब अपना कौल विचारौ, तौ जिव तुम पै आवै ।।

—(बिनती का अंग)

रज्जब जी हिन्दू-भक्ति के अन्तर्गत माया को भी स्वीकार करते हैं तथा इस्लाम धर्मानुमोदित शैतान के वजूद की दाद देते हैं।

विरह-तत्व

उस प्रियतम परमात्मा के साक्षात्कार के लिए साधक तड़प रहा है। उसका रोम-रोम उसीके ध्यान में लगा है—

प्राण प्यंड रग रोम सब, हरि दिशि रहे निहारि ।
ज्यों बसुधा बन राम सों, विरही चाहै वारि ।।

—(विरह का अंग)

यह वैज्ञानिक तथ्य है कि ताप से ही वर्षा होती है, यहाँ देखिये—

बिरहा पावक उर बसै, नख सिख जारै देह ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसहु मोहन मेह ।।

—(विरह का अंग)

उस प्रियतम के अभाव में कोई ऋतु नहीं भाती—

जन रज्जब जगदीस बिन, ऋतु भली कोइ नाँहि ।
शीत हुतासन वर्षा बुरद, विरह विथा मन माँहि ।।

—(विरह का अंग)

रज्जब जी व्यथातिरेक में विरही, शिशु और पशु की एक दशा बताते हैं—

विरही बालक गूंग पशु, करहिं कहैं दुख सुखि ।
रज्जब मन की मन रही, लहै न मारग मुखि ।।
—(विरह का अंग)

विरह का पन्नग जब डस लेता है, तब कोई जड़ी या मंत्र काम नहीं देते—

दशवें कुल का नाग है, दरद सु देही माहिं ।
जन रज्जब ताके डसे, मंतर मूली नाहिं ।।
—(विरह का अंग)

जिस प्रकार विरहिणी अपने वर से बिछुड़ कर विदीर्ण हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्म के वियोग में साधक व्याकुल हो जाता है—

ज्यूं बिरहिनि बर बीछुटै, बिहरि गई तहिं काल ।
त्यूं रज्जब तुझ कारनै, बिपति माहिं बेहाल ।।
तथा
जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल सिंगार ।
त्यूं रज्जब भूला सकल, सुनि सनेह दिलदार ।।
—(विरह का अंग)

राम के बिना सावन मास की शोभा भी साधक को प्रिय नहीं लगती, निम्नांकित पद में विरह का अतीव सजीव चित्र रज्जब जी ने प्रस्तुत किया है—

राम बिन सावन सह्यो न जाई ।
काली घटा काल हो आई, कामिनि दाधै भाई ।।
कनक अवास बास सब फीके, बिन प्रिय के परसंग ।
महा बिपति बेहाल लाल बिन, लागै विरह भुवंग ।।
सूनी सेज हेज कहुं कासौं, अबला धरै न धीर ।
दादुर मोर पपीहा बोलैं, ते मारत हैं तीर ।।
सकल सिंगार भार हो लागो, मन भावै कछु नाहीं ।
रज्जब रंग कौन से कीजै, जे पिव नाहीं माहीं ।।
—(राग मलार)

एक पद और उद्धृत करेंगे—

विरह वियोग विरहिनी वीधीं, घर बन कछु न सुहावै रे ।
दस दिशि देखि भयो चित चकृत, कौन दशा दरशावै रे ।।
ऐसा सोच पड़या मन माहीं, समझि समझि यूं धावै रे ।
विरह बान घट अंतर लागे, घायल ज्यूं घुमावै रे ।।
विरह अगिन तन पिंजर छीनां, पिउ कूं कौन सुनावै रे ।
जन रज्जब जगदीस बिना छिन, पल पल वज्र बिहावै रे ।।
—(राग रामगिरि)

रज्जब जी के साहित्य में शुद्ध सूफी-साधना-परम्परा का प्रेम एवं विरह-तत्व व्यक्त हुआ है। सूफी-साधना के जिन तत्वों का हमने उल्लेख किया है, उनके आधार पर रज्जब जी के साहित्य की विवेचना के लिए एक स्वतन्त्र कृति की आवश्यकता है। यहाँ पर हम केवल उनके शीर्षक देकर रज्जब-बानी से प्रसंगसम्मत संकेतात्मक उदाहरण-मात्र प्रस्तुत करेंगे।

अवतारवाद का खण्डन

रज्जब जी अवतारों को ब्रह्म नहीं मानते। वे उन्हें मायाबद्ध जीव ही मानते हैं। उनके विचार से अवतार से यह आशा करना कि वह भवसागर पार कर देगा—भ्रम-मात्र है। अवतार तो स्वयं मायाग्रस्त है, तब फिर मायाग्रस्त मायाग्रस्त को किस प्रकार मुक्त करेगा——

बांध्या बांधे कूँ भजै, मुकति होन की आस।
सो रज्जब कैसे खुलैं, यहि झूँठे बेसास ॥

——(पीव पिछाण का अंग)

वह ब्रह्म तो अकल है, किन्तु अवतार सकल है——

आदिनारायण अकल है, कला रूप अवतार।
आया आतम बंदि विधि, बेत्वा करौ विचार ॥

——(पीव पिछाण का अंग)

अकल अवतार नहीं ले सकता और अवतार अकल नहीं हो सकता, वह ब्रह्म ब्रह्मा-विष्णु-महेश से भी ऊपर है——

अकलहि कौन कलै कलि माहीं।
आदि अंत मधि महापुरुष सब, पारहिं पावै नाहीं ॥
ब्रह्मा आदि विचारत थाके, शंकर सोच शरीरा।
नारद सहित सकल सिध साधक, कोउ न लहै तट तीरा ॥
शेष सहस दै रसन रहत नित, परम प्रभा मन जाना।
नेति नेति कहि निगम पुकारत, तेऊ हैं हैराना ॥

——(पद भाग)

जप (ज़िक्र) का महत्व

जिन जिन जन हरि नाम रटैवा।
आदि अंत मधि मुक्त भये सब, अखिल अभय धन प्राण खटैवा ॥
आनन्द अधिक गये अघ ऊतर, उर अंतर यह भाव डट्यो।
सदा सुखी साईं से सन्मुख, प्रेम पिया सों नाहिं घट्यो ॥
अद्भुत बात कहै को मुख ते, हरि हीरो हिय हेम जट्यो।
मंगल मुदित मध्य मन माहीं, दुख दीरघ दूरि छट्यो ॥
कुशल कल्यान जीव के जुग जुग, जम के कागर कर्म कट्यो।
जन रज्जब जग में नहिं आवै, जप जगदीस संसार सट्यो ॥

——(राग विलावल)

इस माया मंडाण मधि, सुमिरन समि कछु नांहि ।
तौ अधार उर राखिये, जन रज्जब जिव मांहि ।।

—(सुमिरन का अंग)

रज्जब टीका नाम को, वेद कुरान सु येहि ।
यूँ ततवेत्वा त्यागि सब, हरि सुमिरन करि लेहि ।।

—(सुमिरन का अंग)

लघुता और दीनता

सूफी संसार में अपने को तृणवत् मान कर चलते हैं। अपने को अकिञ्चन, दीन समझना तथा सबसे छोटे होकर रहना सूफियों के सहज गुण हैं। रज्जब जी सूफी सन्तों की इस प्रणति को अपनी परम्परा में अपनाया है। वे इसी लघुता और दीनता का पोषण करते हुए कहते हैं कि दीर्घ के द्वारा समुद्र का लांघना सम्भव नहीं था। पवन-पुत्र हनुमान भी समुद्र को पार करने के लिए छोटे बने।[1] संसार में जो लघु बन जाता है, वह ऊँचे जाता है और जो दीर्घ बन जाता है, वह नीचे को जाता है। तराजू का जो पलड़ा हल्का रहता है, वह ऊपर को जाता है, किन्तु जो भारी होता है, वह अधोगामी होता है।[2] अँगुलियों में सबसे छोटी अँगुली को ही अँगूठी उपलब्ध होती है। अन्य बड़ी अँगुलियाँ इससे वंचित रहती हैं। चन्द्रमा और शेषनाग छोटे होने के कारण ही सबके द्वारा प्रणम्य बनते हैं। बालक छोटा होने के कारण ही सबकी गोद में बैठता है। वृक्ष की कली छोटी होने के कारण वृक्ष से च्युत नहीं की जाती, किन्तु फूलों और फलों को वृक्षों से अलग कर दिया जाता है। छोटी मूर्त्तियों को उर और शिर में स्थान मिलता है। वृक्षों में जो बहुत छोटे हैं, उन्हें नाना प्रकार की सेवाएँ प्राप्त होती हैं।[3]

निर्वैर दया तथा निष्काम भावना

रज्जब जी ने कृपा के कई प्रकारों की चर्चा अपनी बानी में की है, किन्तु निर्वैर कृपा को उन्होंने श्रेष्ठ बताया है। उनके मत से द्वेष अथवा वैर-विहीन कृपा ही प्रधान है, इसीके द्वारा सब जीवों का पोषण होता है। इसीके द्वारा मंगल-लाभ होता है।[4] दया के वृक्ष में धर्म का फल लगता है। वह वृक्ष हृदय की पृथ्वी में उगता है। हरि-कृपा की वर्षा से हरि निष्पन्न होता है तथा इस वृक्ष के रखवारे सदैव इस निर्वैर-कृपा का फल खाते रहते हैं।[5] जो व्यक्ति सकाम होकर कर्म करते हैं, वे इस संसार में सस्ते रहते हैं, किन्तु निष्काम कर्म करने वाले अमूल्य माने जाते हैं।[6] सहकामी उस दीपक की भाँति है, जो तेल पाने पर प्रकाश करता है, किन्तु निष्काम सन्त उस

---

१ लघुता का अंग
२ लघुता का अंग
३ कबित्त भाग—लघुता का अंग
४ दया निर्वैर का अंग
५ दया निर्वैर का अंग
६ सहकाम निहकाम का अंग

हीरे की भाँति है, जो स्वभावतः सर्वदा प्रकाशित रहता है।[1] कामना आत्मा को बन्धन में डालती है तथा निष्कामता इस बन्धन से मुक्त करती है।[2] जिसके हृदय में परमेश्वर का ध्यान है, उसे सिद्धियाँ नहीं रुचतीं। मन, वचन, कर्म से जो इच्छारहित निष्काम है, वही पूर्णतः सुखी है।[3]

भय (खौफ)

हम सूफी-साधना के विवेचन में अभी सूफी के गुणों अथवा लक्षणों में एक गुण भय (खौफ) की चर्चा कर चुके हैं। रज्जब जी ने सन्त के लिए इस गुण को अनिवार्य माना है। उनका विचार है कि नटिनी रस्से पर चढ़ते हुए सदैव मन में भय रखती है, इसीलिए वह सावधान रहती है। सावधान रहने पर वह निर्भीक होकर रस्से पर चढ़ती रहती है। इसी प्रकार जो साधक भगवान् से भय मान कर साधन करता है, वह अतीत (महात्मा) बन जाता है।[4] साधक के भय रूपी भवन में ही वह परमात्मा निवास करता है, और ऐसे ईश्वर-भक्तजनों के सारे कार्य पूरे होते रहते हैं और भगवान् कभी हृदय से बाहर नहीं जाता।[5] रज्जब जी भय को भाव-भक्ति का मूल बतलाते हैं। भय से सारे काम बनते हैं।[6] भगवान् की कृपा और क्रोध, दो शक्तियाँ हैं--इन दोनों से साधक को डरना चाहिये--कृपा के द्वारा वह क्षण भर में सब काम कर देता है और क्रोध के द्वारा क्षण में सब नष्ट भी कर सकता है, अतः उससे डर कर ही साधक को संसार में रहना चाहिये।[7]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रज्जब जी के साहित्य में सूफी-सिद्धान्त के प्रायः सभी लक्षण एवं तत्त्व विद्यमान हैं। सूफी-भावना के अनुसार रज्जब जी विश्व-भ्रातृ-भाव पर आस्था रखते हैं। अन्तर्मुखी-साधना को वे बाह्याचार की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हैं। शरीर को नियन्त्रित करने के लिए वे मन को राम में लय कर देने का उपदेश करते हैं। भगवान् की सर्वव्यापक सत्ता पर सूफी-साधक उसे प्रभुता (शक्ति) मान कर आश्चर्य प्रकट करते हैं। रज्जब जी ने अपनी बानी में 'हैरान का अंग' में इसी प्रकार का आश्चर्य-भाव व्यंजित किया है। सूफी भी अपनी उपासना में असाम्प्रदायिक मध्यम प्रतिपदवादी थे, यह बौद्ध धर्म का प्रभाव था। रज्जब जी ने 'निरपष' और 'मध्य मार्ग' आदि का पोषण एवं प्रतिपादन किया है। सूफियों में स्थूल के प्रति विराग तथा सूक्ष्म में रति देखी जाती है। रज्जब जी अव्यक्त, अगोचर, निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना में विश्वास करते हैं।

'वाणी' का सम्पादन

महात्मा रज्जब के साहित्य पर मेरा शोध-कार्य चल रहा था, तन्निमित्त मैं रज्जब-साहित्य का अध्ययन कर रहा था। उन्हीं दिनों मेरे मन में बारम्बार यह विचार आता था कि मैं रज्जब जी के

---

१ सहकामी निष्कामी का अंग
२ सहकामी निष्कामी का अंग
३ सहकामी निष्कामी का अंग
४ भयभीत भयानक का अंग
५ भयभीत भयानक का अंग
६ भयभीत भयानक का अंग
७ भयभीत भयानक का अंग

साहित्य को हिन्दी-प्रेमियों के सामने उपस्थित करूँ। मेरा यह विचार रज्जब बानी की साहित्यिक समृद्धि का ही परिणाम था। निर्गुण सन्त-परम्परा में इतनी रसात्मक कृति ! इसी मनोभाव से मैंने 'रज्जब बानी' और 'सर्वाङ्गी' के अध्ययन को अधिक विस्तृत एवं व्यवस्थित कर लिया था। राजस्थान के महात्मा की वाणी के अध्ययन में राजस्थान के साम्प्रतिक महात्माओं का योग वरदान बन गया। रज्जब बानी का यह सम्पादित प्रकाशन इसी वरदान का फल है।

बानी के सम्पादन में हर सावधानी के बरतने पर भी कहीं वर्तनी की और कहीं शब्दों की जो अशुद्धियाँ रह गई हैं, वे अक्षम्य हैं और यह अपराध मेरा है, वैसा ही जैसा कि रेशम के तार निकालने में कुछ तारों का टूट जाना और कुछ पाट-कीटों की दुर्निवार मृत्यु। रेशम के तार निकालने वालों का क्या दोष ?

हस्तलिखित प्रतियों की लिपि से उतार कर लिखते समय कुछ तो मेरी नासमझी से और कुछ मेरी लाचारी से यदि कतिपय शब्दों, व्यंजनों और स्वरों के कुछ तार टूट गये—कुछ शब्द-कीटों के 'शरीर बदल गये' तो इसमें मेरा क्या वश था ?

राजस्थान में उपलब्ध रज्जब बानी की हस्तलिखित प्रतियों में कतिपय शब्दों के दो-दो रूप मिलते हैं, उदाहरणार्थ :—

जातिग — जातग
पातिग — पातग
पातिक — पातक
जाइ — जाय
आइ — आय
मरणा — मरना
जरणा — जरना
तृष्णा — तृष्ना
निर्गुण, नृगुण — निरगुन
गर्भ, ग्रभ — गरभ
सुमिरहि — सुमिरइ
परमोध, प्रमोध — परमोद, प्रमोद
भोंदू — भूंदू
तोसों — तोसूं
कासों — कासूं
मोसों — मोसूं
तोकों — तोकूं

राजस्थान में रज्जब बानी की दो-तीन हस्तलिखित प्रतियाँ देखने पर मेरी यह धारणा बनी है कि प्रत्येक प्रति में हस्तलेखन की कुछ-न-कुछ अशुद्धियाँ अवश्य हैं, जिसके कारण किसी प्रति को सर्वाङ्ग शुद्ध मान कर पाठ-शोध का आधार नहीं बनाया जा सकता। पाठ-शोधन में अपनी ओर से

मैंने भाषा, भाव, शब्द संघात, स्वर संगति आदि का ध्यान रख कर पाठ की सहजता को ही प्रधानता दी है। इसी प्रकार ख और ष के ग्रहण में मैंने स्वतन्त्रता बरती है, जब कि रज्जब बानी में ख और ष दोनों के लिए प्राय: ष का ही प्रयोग हुआ है।

उपर्युक्त शब्दों में कुछ के रूप तो लिपिकों की अनभिज्ञता के कारण बदल गये हैं और कहीं-कहीं पादपूर्ति या छन्द-विन्यास के लिए स्वयं रज्जब जी ने बिना अर्थ बदले दो-दो, तीन-तीन रूपों में उनका प्रयोग किया है। इसका आभास ऊपर दी गई शब्दावली से मिल जाता है।

रज्जब बानी का सम्पादन जैसा मुझे इष्ट था, नहीं हो सका। कारणों की चर्चा करने से अब कोई लाभ नहीं है। अगले संस्करण में यदि कुछ अध्यवसाय की अन्त:प्रेरणा मुझे हुई तो उसकी कतिपय शब्द-सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर कर दूंगा। मैं इतना अवश्य कहूंगा कि इस बानी में संकलित रज्जब जी की कृतियों को अलग-अलग स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की आवश्यकता है। मैं विश्वास करता हूं कि एक बार रज्जब बानी में प्रवृत्ति होने के बाद सन्त-साहित्य-प्रेमियों द्वारा यह कार्य अवश्य ही पूरा होगा।

इस ग्रन्थ के अध्ययन, सम्पादन एवं प्रकाशन के लिए जिन महानुभावों एवं संस्थाओं के प्रति मैं ईमानदारी से कृतज्ञ हूं, वे हैं :—

१—स्वामी मंगलदास जी महाराज, जयपुर।
२—स्वामी नारायणदास जी, पुष्कर, अजमेर।
३—श्री महन्त जी, श्री दादू द्वारा नारायणा।
४—श्री हरीराम जी स्वामी, नारायणा।
५—पं० परशुराम जी चतुर्वेदी, बलिया।
६—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, चण्डीगढ़।
७—डा० नगेन्द्र, दिल्ली।
८—श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर।
९—डा० मुंशीराम शर्मा, कानपुर।
१०—पं० अयोध्यानाथ शर्मा, कानपुर।
११—पं० कृष्णशंकर शुक्ल, दिल्ली।
१२—डा० प्रेमनारायण शुक्ल, कानपुर।
१३—श्री माधव जी शुक्ल, दिल्ली।
१४—अल्फर्ड पार्क लाइब्रेरी, इलाहाबाद।
१५—श्री दादू संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर।
१६—अनूप लाइब्रेरी, बीकानेर।
१७—सुमेर पुस्तकालय, जोधपुर।
१८—प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
१९—श्री आनन्दस्वरूप पुस्तकालय, कानपुर।
२०—श्री रामनाथ गुप्त, कानपुर।

कोश व सूची निर्माण में सहयोगी :—डा० सुरेन्द्रनाथ तिवारी, श्री रामाश्रय वर्मा, कानपुर।

प्रकाशन :—उपमा प्रकाशन (प्राइवेट) लिमिटेड, कानपुर।

मुझे सन्तोष है कि हिन्दी-साहित्य को एक सन्त कविरत्न––और वह पठान मुसलमान––और मिला।

वाणी-कोश :—'बानी' के अन्त में शब्द-कोश देने का प्रयोजन पाठकों की उन स्थलों पर सहायता करना है, जहाँ शब्दार्थ बोध में कठिनाई है। कतिपय शब्दों के ऐसे भी अर्थ दिये गये हैं जो बानी के प्रासंगिक संदर्भ में तो उपयुक्त हैं, किन्तु सामान्यत: उन शब्दों के मौलिक अर्थ वही नहीं हैं, जो अन्त में वाणी के कोश में दिये गये हैं। अत: विद्वान् पाठकों से निवेदन है कि ऐसे शब्दों का अर्थ बानी में तो वही लें जो मैंने दिया है, परन्तु अन्य साहित्यिक प्रसंगों में उन्हीं रूपों में न लें। आशय यह कि कुछ शब्दों के अर्थ बानी के प्रसंग से इतना सम्बद्ध और उसके इतना आश्रित हैं कि वहाँ वे अपने मूल अर्थ से भिन्न अर्थ रखते हुए भी उपयुक्त हैं। यदि कोई शब्द किसी प्रसंग-विशेष से बँध कर वहाँ आपका काम निकाल दे तो उस शब्द का वही अर्थ सर्वदा और सर्वत्र न लें। यदि शीशे की धार से कभी कागज काटने का काम सर जाय तो शीशे को चाकू न समझ लेना चाहिये। पाठकों की सुविधा के लिए कोश में दी गई शब्दावली को वर्णानुक्रम में न देकर बानी के अंगानुक्रम में प्रस्तुत किया गया है।

चित्र :—बानी के प्रारम्भ में रज्जब जी का चित्र दिया गया है, जिसमें रज्जब जी अपने गुरु स्वामी दादूदयाल जी (आसनस्थ) के समक्ष प्रणत-मुद्रा में खड़े हैं। इस चित्र की प्रामाणिकता पर न मुझे विश्वास है और न सन्देह। 'दादू-द्वारा' नारायणा में प्रति वर्ष होने वाले फाल्गुन मास के मेले में मैंने यह चित्र एक महात्मा से प्राप्त किया था, जिसकी प्रतिलिपि करा कर उसे मैं यहाँ दे रहा हूं। वे महात्मा अब कहाँ हैं और कहाँ के थे––यह मुझे अब स्मरण नहीं। इस चित्र की इतनी उपयोगिता अवश्य है कि यह पाठकों के लिए रज्जब जी के व्यक्तित्व की एक झाँकी अवश्य ही दृग्गोचर कर देगा। हमारे देश में राम और कृष्ण के चित्र तो सर्वथा अनुमानित हैं, फिर रज्जब जी का चित्र तो अनुमान की रेखाओं को पार कर प्रमाण के निकट पहुंच रहा हैं। इसी भाव-प्रेरणा से मैंने उसे यहाँ दिया है।

रज्जब जी की हरिनामाङ्कित सरस काव्य वाणी विज्ञ पाठकों को उसी प्रकार सादर ग्राह्य होगी, जिस प्रकार मुक्ता-गर्भित सीपी।

सरसापि कवेर्वाणी हरिनामाङ्किता यदि।
सादरं गृह्यते तज्ज्ञैः शुक्तिर्मुक्तान्विता तथा॥

—व्रजलाल वर्मा

अनुक्रमणिका

साखी भाग

पद भाग

सवैया भाग

साखी भाग

श्री राम जी सति, श्री स्वामी दादूदयाल जी सहाइ, सकल संत सहाइ, प्राणपति सतगुर देव दादू प्रसादात् । अथ रज्जब जी कौ कृत मांड्यो ।

प्रथम अस्तुति को अंग लिखतं ।

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुर देवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

सिजदा पूरे पीर कूं, गुर ग्यातहिं डंडौत ।
रज्जब भै भगवंत कै, सर्व आत्महु नौत ॥२॥

गुर आषिर धर साध कवि, सबन करौं अस्तूति ।
रज्जब की चक चूकि पर, खिमा करौ ह्वै सूति ॥३॥

सरीर सबद की येक गति, त्रिबिधि भांति तन होइ ।
भले बुरे बिच बप बयन, दोस न दीज्यो कोइ ॥४॥

भेंट का अंग

लांबि लही किनहूं नहीं, दीरघ दाति न कीन ।
रज्जब राम उमंग करि, सो दादू कौ दीन ॥१॥

सांई लग सेवा रची, टरचा न अपणी टेक ।
तौ दादू सम नहिं दूसरा, दीरघ दास सु येक ॥२॥

दादू दूजा ना गह्या, निबह्या एकहि ठाट ।
जन रज्जब लागा नहीं, कंचन गिरि कूं काट ॥३॥

करामाति कर ना गही, सिद्धि न सूंघी साध ।
रज्जब रिधि रूठा रह्या, दादू दिल सों अगाध ॥४॥

दादू सूर अजीत गढ़, पूरा प्राण प्रचण्ड ।
रज्जब गुण जै जै करै, हारचा सब ब्रह्मण्ड ॥५॥

सकल नाग नर निग्रहै, स्वांग्यू सबद सुनाइ ।
रज्जब दादू सेस गति, सु अहि बिधि गह्या न जाय ॥६॥

दादू दरिया राम जल, सकल संत जन मीन ।
सुख सागर में सब सुखी, जन रज्जब जो लीन ।।७।।

गुर दादूर कबीर की, काया भई कपूर ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, सरगुण निरगुण नूर ।।८।।

काया कपूरहिं ले गये, प्राणी परमल अंग ।
रज्जब मिल ते देखियहि, सहज सुन्नि कै संग ।।९।।

अथ गुरदेव का अंग

रज्जब रहिये राम मै, गुर दादू के परसादि ।
नातर जाता देख तों, जनम अमौलिक बादि ।।१।।

दादू दीनदयाल गुर, सो मेरे सिरमौर ।
जन रज्जब उनकी दया तें, पाई निहचल ठौर ।।२।।

जन रज्जब जुगि जुगि सुखी, गुर दादू की दाति ।
आप समागम करि लिये, भई निरंजन जाति ।।३।।

गुर दादू सौं गमि भई, समझ्या सिरजनहार ।
रज्जब राते राम सूं, छूटे विषय बिकार ।।४।।

गुर दादू की दृष्टि सौं, देख्या दीरघ राम ।
रज्जब समझे साध सब, सरचा सुआतम काम ।।५।।

जन रज्जब सुकृत सबै, गुर दादू का उपगार ।
मनसा वाचा कर्मना, तामै फेर न सार ।।६।।

रज्जब सिख दादू गुरू, दीया दीरघ ग्यान ।
तन मन आतम ब्रह्म का, समझ्या सब अस्थान ।।७।।

रज्जब कौं अज्जब मिल्या, गुर दादू परिसिधि ।
व्यौरनि माया ब्रह्म की, सकल बताई बिधि ।।८।।

रज्जब रजा खुदाय की, पाया दादू पीर ।
कुलि मंजिल मुहरम किया, दल नाहीं दिलगीर ।।९।।

रज्जब रजमा पाइया, गुर दादू दरबार ।
धरे अधर का सुख लह्या, सनमुख सिरजनहार ।।१०।।

रज्जब कौ अज्जब मिल्या, गुर दादू दातार ।
दुख दारिद तब का गया, सुख सम्पति सु अपार ।।११।।

देखौ पारस परस तौं, लोहे लाभ सुलीन ।
रज्जब गुर दादू मिलत, सो गति हम सौं कीन ॥१२॥

तलब तसल्लह तालिबां, दादू की दरगाह ।
रज्जब रजमां पाइये, हाफू कुली गुनाह ॥१३॥

गुर दादू देखत कटे, जिव के कोटि जंजीर ।
जन रज्जब मुकते किये, पाया पूरा पीर ॥१४॥

गुर दादू का ग्यान सुनि, छूटैं सक़ल बिकार ।
जन रज्जब दूतर तिरहिं, देखैं हरि दीदार ॥१५॥

तन त्रिभुवन तम पूरि था, आतम अंध विसेख ।
तहं रज़्जब सूझ्या सकल, दादू दिनकर देख ॥१६॥

फाटे परबत पाप के, गुर दादू की हांक ।
रज्जब निकस्या राह उस, प्राण मुकति बेबांक ॥१७॥

हरि सिद्धी हीरा मई, बज्र न बेधी जाइ ।
तहां गुरू गैला किया, तब सिख सूत समाइ ॥१८॥

दादू दौसत जीव का, जन रज्जब जग माहिं ।
के जिन सिरजे सो सही, तीजा कोई नाहिं ॥१९॥

जन रज्जब जगदीस लग, दादू सिर गुरदेव ।
मनसा वाचा करमना, तब लग मांडी सेव ॥२०॥

गुर दादू की दस्त मै, जन रज्जब का जान ।
ज्यौं राखे त्यौं रहेंगे, सिदक दिया सुबिहान ॥२१॥

आदि अन्त मधि ह्वै गये, सिध साधिक सिरताज ।
जन रज्जब के जीव की, गुर दादू कौं लाज ॥२२॥

दादू कें दीदार में, रज्जब मस्त मुरीद ।
खिलषाना कुरवान करि, कीया सुख न खरीद ॥२३॥

गुर दादू का ग्यान गहि, रज्जब कीया गौन ।
तन मन इन्द्री अरि दलन, मुहंडै आवै कौन ॥२४॥

गुर दादू का हाथ सिरि, हिरदय त्रिभुवननाथ ।
रज्जब डरिये कौन सों, मिल्या सहाई साथ ॥२५॥

गुर दादू की गति गही, ता सिरि मोटे भाग ।
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी, पावै परम सुहाग ॥२६॥

सबद सुरति गुर सिष्य हैं, मिले श्रवन अस्थान ।
भाव भेंट परि दया दत, रज्जब दे ले जान ॥२७॥

सरबस दे सरबस लिया, सिख सतगुर कन आइ ।
रज्जब महद मिलाप की, महिमा कही न जाइ ॥२८॥

सतगुर की सुनि सीख कौं, उपज्या येह बिचार ।
रज्जब रचे सुराम सौं, बिरचे इहि संसार ॥२९॥

मन समुद्र गुर कमठ ह्वै, किया जु महणा रम्भ ।
रज्जब बीते बहुत जुग, अचल न आतम अम्ब ॥३०॥

गुर बिन गम्य न पाइये, प्यंड प्राण परवेस ।
रज्जब गुर गोव्यन्द बिन, कौन दिखावे देस ॥३१॥

गुर बिन गम्य न पाइये, समुझि न उपजै आइ ।
रज्जब पंथी पंथ बिन, कौन दिसावर जाइ ॥३२॥

ब्रह्म प्यंड की येक गति, पावै खोजी प्रान ।
उभय ठौर सब अंस है, समझावै गुर जान ॥३३॥

बिबिधि भांति बूटी बिथा, बैद सु जाणै भेव ।
त्यों आसंक्या अनंत बिधि, समझावै गुरदेव ॥३४॥

रज्जब अगनि अनंत है, येक आतमा माहिं ।
सतगुर सीतल सर्व बिधि, बहु बहनी बुझ जाहिं ॥३५॥

सतगुर बिन संदेह कौ, रज्जब भानै कौन ।
सकल लोक फिरि देखिया, निरखे तीनू भौन ॥३६॥

गुरू दिखावैं सबद मैं, रमिता रामति और ।
देखन कौं दरपन इहै, जन रज्जब निज ठौर ॥३७॥

सतगुर बाइक बीज है, प्राण पहम मैं बोइ ।
रज्जब राखै जतन करि, मन बंछत फल होइ ॥३८॥

जो प्राणी रुचि सौं गहै, उर अंतरि गुर बैन ।
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी, सदा सु पावै चैन ॥३९॥

सतगुर सबद अनंत दत, जुगि जुगि काटै कर्म ।
जन रज्जब उस पुन्नि परि, और न दीसै धर्म ॥४०॥

सतगुर के सब्दौं सुण्यों, बहुत होइ उपगार ।
जन रज्जब जगपति मिलै, छूटैं सकल बिकार ॥४१॥

सुखदाता दुख भंजता, जन रज्जब गुर साध ।
सबद मांहि सांई मिलै, दीरघ दत सु अगाध ॥४२॥

जेते जिव सुकृत करै, इह सारै संसार ।
तेते रज्जब ग्यान सुणि, साधू के उपगार ॥४३॥

कबीर नामदेव कहि गये, परम पुन्य उपगार ।
जन रज्जब जिव ऊधरैं, सबदौं इह संसार ॥४४॥

मात पिता का दान ले, दिया सबनि का भंग ।
जन रज्जब जिव मैं जड़्या, जुगि जुगि गुरदत संग ॥४५॥

गुर तरुबर अंग डाल बहु, पत्र बैन फल राम ।
रज्जब छाया मै सुखी, चाख्यूं सरैं सु काम ॥४६॥

रज्जब नर नारी जुगल, चकवा चकवी जोड़ ।
गुरु बैन बिचि रैनि मैं, कियन दुहूं घर फोड़ ॥४७॥

गोबिन्द गिरा सुरिज किरनि, गुर दरपन अनन्त तेज ।
जन रज्जब सुरता बनी, लगै तिहाइत हेज ॥४८॥

गुर दरजी सूई सबद, डोरा डोरी सोइ ।
रज्जब आतम राम सों, सतगुर सीवै कोइ ॥४९॥

रज्जब आतम राम बिच, गुर ग्याता सु दलाल ।
ज्यों चकवा चकवी मिले, सूरज काटे साल ॥५०॥

सतगुर मेले सूर ज्यूं, आतम वोले गालि ।
जन रज्जब जल ह्वै गये, सके न आपौ टालि ॥५१॥

सोरठा : सतगुर सूर सुभाइ, सबद सलिल रसना रसनि ।
जन कन उदै उपाइ, जन रज्जब उनकी धसनि ॥५२॥

साखी : जन रज्जब गुर की दया, दृष्टि परापति होइ ।
परगट गुपत पिछानिये, जिसहि न देखै कोइ ॥५३॥

मरजीवै की मंत्रई, मोती आवै हाथ ।
त्यूं रज्जब गुर की दया, मिलैं सु अबगति नाथ ॥५४॥

गुर गोबिन्दहि सेवतौ, सब अंगहि सिख पूरि ।
जन रज्जब ऊँणति उठै, दुख दालिद्र सु दूरि ॥५५॥

सतगुर सून्य समान है, सिख आभे तिन माहिं ।
अकलि अम्ब तिनमै अमित, रज्जब टोटा नाहिं ॥५६॥

रज्जब बप बनराइ बिधि, मधि मन मधु समि सान ।
बलिहारी गुर मक्षिका, यहु छानी गति बान ॥५७॥

माया पाणी दूध मन, मिले सु मुहकम बन्धि ।
ज़न रज्जब बलि हंस गुर, सोधि लई सब सन्धि ॥५८॥

अरक अंब का नास करि, स्वाद रंग तैं काढ़ि ।
रज्जब रचना हंस की, खीर नीर परि बाढ़ि ॥५९॥

संसार सार से विभूति बहनी, मनसा अगनि मिलाप ।
सीत रूप ह्वै सतगुर काढ़ै, मिश्रत मुक्त सुताप ॥६०॥

प्राण प्यंड मै सानया, पंच पचीसौं घोलि ।
जन रज्जब गुर ग्यान बलि, हरिहिं मिलावै खोलि ॥६१॥

जीव रच्या जगदीस ने, बांध्या काया माहिं ।
जन रज्जब मुकता किया, तौ गुर समि कोई नाहिं ॥६२॥

अरिल : सक्ती सुख अर सीत, जमहिं तन हेम ज्यूं ।
आतम अंड सुकुंज बंधे, बप बारि यूं ॥६३॥

सतगुर सूरज तेज, बिरह बैसाष रे ।
बहैं नैन नहिं पूरि, मिलहिं सुत मात रे ॥६४॥

साखी : सकल करम ताला भये, जीव जड्या ता माहिं ।
रज्जब गुर कूंची बिना, कबहूं खूटै नाहिं ॥६५॥

त्रिगुण रहित कूंची गुरू, ताला त्रिगुण सरीर ।
जन रज्जब जिव तौ खुलै, जै जोगि मिलै गुर पीर ॥६६॥

सतगुर रहिता सकल सौं, सब गुन रहिता बैन ।
रज्जब मानी साखि सौं, उस बायक मै चैन ॥६७॥

गोपि गांठि गुर गात मुर, खोलै गुर समरत्थ ।
रज्जब इन बिन और का, तहां न पहुंचै हत्थ ॥६८॥

अरिल : रज्जब बांध्या ब्रह्म का, गुर देव छुड़ावै ।
औरन कौ यहि गमि नहीं, कोइ बीच न आवै ॥६९॥

साखी : रज्जब नीचे कूं ऊँचा करै, भगवंत भांडा फोड़ि ।
सो मद्धिम उत्तिम किये, सतगुर अही सु षोड़ि ॥७०॥

हमाइ बावनै पारसि सतगुर, कृत करतहिं अधिकार ।
जगदीस ईस ह्वै जनम दूसरै, इन सौं अब की बार ॥७१॥

गुर भृङ्गी के कृत्य कौं, कृत्य न पूजै कोइ ।
रज्जब रचना राम की, राई पलटैं दोइ ॥७२॥

रज्जब प्राण पषाण जड़, गुर गराब किय देव ।
पेखौ प्यंड पलटै प्रथमि, सिष्टि सु लागी सेव ॥७३॥

षट दरसन सलितहुं पड़्यूं, आतम लौटी होइ ।
गुरूराज मूरति गढ़ैं, सो बन्दै सब कोइ ॥७४॥

सोरठा : देही दरिया माहिं, गुर देव बसाई द्वारिका ।
औरहु होइ सु नाहिं; ना कोई उन सारिखा ॥७५॥

साखी : बाहरि बैठैं बहिर मुख, गुर मुखि भीतर जाइं ।
रज्जब रीता क्यों पड़ै, खोलि खजाना खाइं ॥७६॥

गुर मुख बासा प्यंड में, मन मुखि ह्वै ब्रह्मण्ड ।
रज्जब भीतर भै नहीं, बाहर खण्डहु खण्ड ॥७७॥

सतगुर काढ़ै सकल सों, तन मन परि ले जाइ ।
जन रज्जब राखै तहां, जहां निरंजन राइ ॥७८॥

तन मन सकति समंद गति, निरमल नांव जिहाज ।
बादवान बुधि थंभ चढ़ि, गुर सारै सिख काज ॥७९॥

गुर दीरघ गोव्यंद तैं, सारै सिखहु सुकाज ।
त्यौं रज्जब मक्का बड़ा, परि पहुंचै बैठि जिहाज ॥८०॥

सांई सुन्नि समीर समि, बाय बदन गुर ठाट ।
परि गाल खाल के मारतहु, रज्जब निपजैं घाट ॥८१॥

बसुधा मांहैं बीज हैं, त्यूं आतम अंकूर ।
पै गगन गुरू बरिषा बिना, प्रगट न ह्वै मासूर ॥८२॥

अंकूर अगनि सिख सार मैं, पै घाट घड्या नहिं जाइ ।
ब्रह्म अगनि गुर बक्त्र ह्वै, जब लग परै न आइ ॥८३॥

ब्रह्म अगनि गूर उर रहै, तहां परै सिख सार ।
घाट काट सुकटाइ करि, पुनि पावक सुनि यार ॥८४॥

तवा तेग अंकुस कुस आतम, पारस हैं प्रभु पाइ ।
रज्जब पलटै तिनहु मिलि, पै गुर सौनी बंक जाइ ॥८५॥

रज्जब सरग नसेणीं सतगुर, सावधान सिख जाहिं ।
सुन्नि माहैं चेतनि है, तामै सहज समाहिं ॥८६॥

गुर अगस्त गगनहि रहै, सिख समुद्र धर बास ।
रज्जब ऊंचहुं कै मिल्यूं, सहज गये आकास ॥८७॥

सतगुर सूरज ले चढ़ै, सिख सति सलिल सुभाइ ।
जन रज्जब नर नीर ज्यूं, नीचा आपैं जाइ ॥८८॥

रज्जब तांबे लोह सौं, बहुत भांति के जंग ।
महा पुरिष पारस मिले, कुलि कंचन के अंग ॥८९॥

गुर चंदन चंदन किये, बृक्ष अठारह भार ।
डाल पान फल फूल का, रज्जब नहीं बिचार ॥९०॥

गुर पारस पल मैं परसि, सिख कंचन करि लीन ।
सो रज्जब मंहगे सदा, कुल कालंबा सु छीन ॥९१॥

रज्जब निपजहिं यंद्र गुर, अदभू आतम ऐन ।
पुहुप पत्र फल पूजिये, सुर नर पावैं चैन ॥९२॥

तिल तालिब गुल पीर मिलि, सोहबति सौंधा होइ ।
जन रज्जब गुंजस बिना, कुंजद बास न कोइ ॥९३॥

चौपदा : देही दरिया नाउं सुनाव, बुधि बदवान बिचार सुबाव ।
रज्जब कीया गुर सब साज, इह बिधि उतरै पार जिहाज ॥९४॥

साखी : मन समुद्र के बुदबुदे, मनहुं मनोरथ माहिं ।
रज्जब गुरू अगस्त बिन, कहौ गगन क्यूं जाहिं ॥९५॥

प्रान कीट गुर भृङ्ग बिन, ब्रह्म कंवलि क्यूं जाइ ।
जन रज्जब या जुगति बिन, बिष्टा रहे समाइ ॥९६॥

रज्जब सतगुर बाहिरा, स्वाति न ह्वै सिख आस ।
ज्यूं पंखी पंखहु बिना, कैसे जाइ अकास ॥९७॥

गुरमुख मारिग ना गहैं, मनमुख चाल्या जाइ ।
रज्जब नर निबहैं नहीं, बातैं कहौ बनाइ ॥९८॥

मनमुख मिनषा भूत पसु, गुरमुख ज्ञाता देव ।
रज्जब पाया प्रान ने, पंचबान का भेव ॥९९॥

उडग यंद दामणि दुंणिद, पावक दीप असंखि ।
रज्जब राम न सूझई, बिन गुर ज्ञान सु अंखि ॥१००॥

दीपक रूपी धरनि ह्वै, सूरिज मै आकास ।
जन रज्जब गुर ज्ञान बिन, हिरदै नहीं उजास ॥१०१॥

सिष सरीर अंधी अवलि, गुरू नयन निज ठाट ।
रज्जब चेले चरन चलि, इष्ट दृष्टि संगि बाट ॥१०२॥

जे सतगुर की दृष्टि में, तौ दूरि निकट ले पाल ।
जन रज्जब दृष्टांत कौं, कुंज अंड लै न्हाल ॥१०३॥

जे सतगुर की दृष्टि मैं, तौ गंदा क्यों होइ ।
जन रज्जब दृष्टांत कौं, कच्छिप अंडहि जोइ ॥१०४॥

कच्छी चखि क्यूं जिव सुरति, अनपंखी पख वाव ।
त्रिबिधि अंड ज्यूं गुर सिषहुं, रज्जब निपजैं भाव ॥१०५॥

रज्जब कूंजी काल इत, तौ उत अंडे गलि जाहिं ।
त्यूं सतगुर त्यागै सुरत सौं, तौ सिष निपजै नाहिं ॥१०६॥

चंचल नग निहचल भया, सतगुरु पकड्या बांह ।
रज्जब रहि गया सबद मैं, ग्यान कूप मन छांह ॥१०७॥

मन मनसा पंचौ प्रकृति, गुन ग्रासे गुर ग्यान ।
जन रज्जब सरवरि लहरि, सोधि लिये से भान ॥१०८॥

आकिल गुरू अगस्त है, सिष समंद मन लीन ।
जन रज्जब गुन गन सहत, मुये मनोरथ मीन ॥१०९॥

सिष सदा अस्थिर रहै, सुणि सतगुर की सीख ।
रज्जब बिषय बिकार दिसि, कबहूं भरै न बीख ॥११०॥

जन रज्जब गुर बैन सुणि, बिलै होत बप बीज ।
जथा हांक हणवंत की, सुणत होत नर हींज ॥१११॥

सोरठा : मन अहि लहै न माग, रोक्या मोर महंत मुनि ।
रज्जब रहिगै पाग, फनि श्रवननि सुनि नाद धुनि ॥११२॥

साखी : रज्जब रहैं कपूर मन, मिरच सुसबदौं माहि ।
नहींत डाबे डील मैं, ढूंढ्यौ लहिये नाहिं ॥११३॥

ब्यालौ माहिं बालकै बांधै, बिद्या कै बलिबादी ।
गुर परसाद रहै इंद्रिहू मैं, पाया मंत्र जुगादी ॥११४॥

मन मनसा इंद्री गुणमाखी, हरि सुमिरण हरताल ।
गुर की दया दिनाई पाई, दुखदायों का काल ॥११५॥

अहि यंद्रियूं के गलन कौं, गरुड़ गुरू उर आन ।
मारुतभख ऐसे मरै, जन रज्जब पहिचान ॥११६॥

पंच त्रिणे गुरमुख छये, तौ माया मेघ डर नाहिं ।
जन रज्जब सो जल इसा, जु निकसैं परबत माहिं ॥११७॥

माया पाणी पुहमि घट, निकसै सकल मझारि ।
रज्जब रहै सु कुंभ मैं, जु घड्या गुरू कै बारि ॥११८॥

सतगुर साध सबित्त है, बैरागर की खानि ।
रज्जब खोदि बमेक सौं, तहां नहीं कछु हानि ॥११९॥

सतगुर पारस पोरसा, अषै अभै भंडार ।
रज्जब बचन बमेक धन, लहिये बारंबार ॥१२०॥

ज्यूं बहु रतन समुद्र मैं, त्यूं सतगुर सबद धनाढि ।
मरजीवा ह्वै माहि मिलि, जन रज्जब बित काढि ॥१२१॥

मन बच्छा ह्वै चूंषिये, सतगुर सुरही जोय ।
रज्जब पीवै दूंण दे, दीरघ दरवै गोय ॥१२२॥

ससम बेद गुर ग्यान मैं, सिष सिख्या पढ़ि लेइ ।
जैसे दरपन देखतैं, दरस दिखाइहुं देइ ॥१२३॥

गुर घर माहीं धन घणा, सिख संग्रह्या न जाइ ।
जब लग लषण न लेंण के, जुगत न उपजै आइ ॥१२४॥

बहुत बार बेटे भये, पर पिता न पाया आप ।
जन रज्जब जनमे नहीं, जै गुर मिल्या न बाप ॥१२५॥

माता पिता असंख ह्वै, चौरासी के माहिं ।
रज्जब यहु सौदा घणा, परि सतगुर मेला नाहिं ॥१२६॥

जुबती जातग जोनि बहु, चौरासी के बास ।
जन रज्जब जिव कौं नहीं, सतगुर चरन निवास ॥१२७॥

मात पिता सुत नारि सौं, बिष फल आवै हाथ ।
जन रज्जब गुर की दया, सदा सु सांई साथ ॥१२८॥

सतगुर साध न छांड़िये, जे तूं स्याणा दास ।
रज्जब रहंट कहां रहै, जब नावध ह्वै नास ॥१२९॥

सतगुर साध जिहाज तजि, बिरचै मूरख दास ।
जन रज्जब हैरान है, कहां करैगा बास ॥१३०॥

जन रज्जब गुर सांण परि, झूठी मन तरवारि ।
तौ तीखी कत कीजिये, रे जिव सोच बिचारि ॥१३१॥

जे पंच रात अंतर पड्या, सिष तरवर गुर मेह ।
जन रज्जब जोख्यो नहीं, तऊ हरे उस तेह ॥१३२॥

रज्जब सीचे सतगुरू, हरि लग हरे सु प्राण ।
सदा सुखी सुमरण न करै, सूकै नहीं सुजान ॥१३३॥

सबद सुरति परस नहीं, तब लग बांझै जोइ ।
रज्जब परसी जानिये, जब बालिक बिरहा होइ ॥१३४॥

धन बादल बरषा भई, सीपहि सरधा नाहिं ।
रज्जब उपज्यो ऊपजै, स्वाति बूंद पड़ि माहिं ॥१३५॥

घटा गुरू आसोज की, स्वाति बूंद सति बैन ।
सीप सुरति सरधा सहत, तहां मुक्ता मन ऐन ॥१३६॥

आतम आरतिवंत ह्वै, सतगुर सबद समाइ ।
रज्जब रुचि कै राचणै, फल माहै रहि जाइ ॥१३७॥

सतगुर बरषै मेघ ज्यूं, रज्जब रुति सिर आइ ।
सिष बसुधा ह्वै लेइ जल, ऊगै अगम अघाइ ॥१३८॥

रज्जब रवै सुसार के, चम्मक लगै सु धाइ ।
त्यूं अंकूरी आतमा, सतगुर मेलै आइ ॥१३९॥

चेला तबहीं जानिये, चित्त रहै चित लाइ ।
रज्जब दूजा देखिये, जब लग आवै जाइ ॥१४०॥

सिष सही सोई भया, रहै सीख मैं सोइ ।
रज्जब सरधा सीख सों, दूजा कदे न होइ ॥१४१॥

तालिवंत वाही जानिये, रहै तलब तन पूरि ।
रज्जब सो सहजै मिलै, नाहीं मुरसिद दूरि ॥१४२॥

मुरीद मता तब जानिये, मन मुरीद जब होइ ।
रज्जब पावै पीर कों, ता सम और न कोइ ॥१४३॥

चेला चित चाहै नहीं, सत्य सरूपी बोल ।
रज्जब गुर गाफिल भया, रूंता दे दे रोल ॥१४४॥

गुर बायक सब गोइ पर, सिष श्रवना कलि हेठि ।
रज्जब अणमिल मेलिये, कदे न निपजै नेठि ॥१४५॥

सिष माहैं सिष सुरति है, गुर माहैं गुर बैन ।
रज्जब ये राजी नहीं, तब लग झूठे फैन ॥१४६॥

गुर परसिध पारस मिला, सिष ही खोटा जोइ ।
रज्जब पलटै लोह सब, कंकर का क्या होइ ॥१४७॥

सतगुर चंदन बावना, परस्यों पलटै काठ ।
रज्जब चेला चूक मैं, रह्या बांस के ठाठ ॥१४८॥

सतगुर चिंतामणि मिल्या, सिष में च्यंता नाहिं ।
तौ रज्जब कहु क्या मिलै, जे मांगै नहिं माहिं ॥१४९॥

कलपबृक्ष गुर कौं कहा, जे कलपै नहिं दास ।
जन रज्जब रुचि प्यास बिन, निहचै जाइ निरास ॥१५०॥

कामधेन गुर क्या करै, जे सिष निहकामी होइ ।
रज्जब मिलि रीता रह्या, मंद भागी सिष जोइ ॥१५१॥

रज्जब बरण अठारह भार बिधि, सतगुर चंदन माहिं ।
सबद बास भिदि सो सबै, अरंड बास खल नाहिं ॥१५२॥

बिण घड़ि माल रहट की भरमैं, जल आवै कछु नाहिं ।
त्यूं रज्जब चेतन बिन चेला, रीता संगति माहिं ॥१५३॥

रज्जब नरु तरु बित्त के, मिलि रीते सु अयान ।
मंगल गोटा मुखि फल, मरकट मुगद न जान ॥१५४॥

चौपदा : कामधेन अरु कलपतरोवर, बिना कामना सुभग सरोवर ।
चाह बिना चिंतामणि क्या दे, त्यूं सेवक स्वामी कन क्या ले ॥१५५॥

साखी : अरंड बंस लागै नहीं, गुर चंदन की बास ।
रीते रहे गठीले पोले, रज्जब परमल पास ॥१५६॥

गुर सिमटै गोव्यंद भजि, सिष सतगुर कौ सेइ ।
रज्जब बिझुका खेत में, चरै न चरनै देइ ॥१५७॥

देही दष्या देत है, दिल दष्या कोइ नाहिं ।
रज्जब सतगुर सो सही, जु दष्या दे दिल माहिं ॥१५८॥

जीव ब्रह्म सों जो गुर बाणै, सो गुर लेइ दलाली ।
जन रज्जब कैसी गुर दषिना, जे सिष का दिल खाली ॥१५९॥

पर कारिज किरपन करै, अपनै काम उदार ।
जन रज्जब गुर स्वारथी, सिष सब कीये ख्वार ॥१६०॥

चणे चुटायों चौगुणें, खूटयूं ह्वै खलिहान ।
यौं रज्जब सिष नीपजै, गुर ज्ञाता पहिचान ॥१६१॥

गुरू गंग ठौरें रहैं, सबद सलिल लै जाहिं ।
जन रज्जब जग भाव यों, मन मल मज्जहिं माहिं ॥१६२॥

प्रान पत्र गुरतर तर्जहिं, विपति बात की घात ।
सो रज्जब नौ खंड मैं, और न जाति कहात ॥१६३॥

चीनी चूड़ी ठीकरी, चौथे आतम अंग ।
रज्जब रेजे रजरले, पै पलटचा रूप न रंग ॥१६४॥

षट दरसन के गुरुह का, आदि गुरू गोव्यंद ।
सो रज्जब समझै नहीं, तौ सबै जीव मतिमंद ॥१६५॥

सतगुर कूं पूजै नहीं, जद्यपि स्याणे दास ।
रज्जब आभे बहु चढ़ै, तौ भी तल आकास ॥१६६॥

रज्जब दीपक लाख पर, कोड़ि धजा आनंद ।
तौ गुर की कर आरती, जामै है गोव्यंद ॥१६७॥

रज्जब छत्र धरै चौंरौं ढरै, जहां नृपति नर होइ ।
तौ गुर उर गोव्यंद है, नख सख आरति जोइ ॥१६८॥

जथा गोद परधान कै, बालिक राजकंवार ।
ताकौं रज्जब सब नवैं, यस बालिग के प्यार ॥१६९॥

रज्जब कागद पूजिये, बेद बचन बिचि आथि ।
तौ गुरु कौं किन पूजिये, जाकै गोव्यंद साथि ॥१७०॥

जड मूरति उर नाव बिन, तापरि मंगलचार ।
तौ रज्जब करि आरती, गुर परि बारंबार ॥१७१॥

सिला संवारी राजनै, ताहि नवै सब कोइ ।
रज्जब सिख सतगुर घटे, सो पूजा किन होइ ॥१७२॥

गुर सिष निगुरा का अंग

चौपदा : गुर सिष भूखे मिले अभागी, देख्या नाहिं मनौ दौ लागी ।
संतोष नीर नाहीं सो नीरा, जे त्रिष्णा अगिनि बुझावै बीरा ॥१॥

साखी : भूखे गुर सिष यौं मिले, ज्यूं साखै बंस डार ।
जन रज्जब बोलत घंसत, दोऊ जरि बरि छार ॥२॥

चौपदा : चेला चकमक गुर गति गार, गोष्टी ठुणका अगनि अपार ।
मिलत महातम जलणि सु होइ, ऐसे दई न मेली दोइ ॥३॥

साखी : सतगुर सीझ्या पोरसा, सिष साखौं सिर भाग ।
रज्जब पूरे पीरे बिन, ठाहर उभै अभाग ॥४॥

रज्जब चेला चषिहुं बिन, गुरू मिल्या जाचंध ।
कूप मई यहु कुंभनी, क्यूं पावहि प्रभु पंध ॥५॥

गुर के अगहूं गुर नहीं, सिष न लेई सीख ।
रज्जब सौदा ना बड्यां, पेट भरहु करि भीख ॥६॥

रज्जब राम न रहेम करि, आखिर लिखे न भाल ।
ताथै सतगुर ना मिल्या, गुर सिष रहे कंगाल ॥७॥

गुर घरि धन ह्वै पाइये, सिष सु लषणे लेहिं ।
उभै अभागी एक ठे, कहा लेइ कहु देहिं ॥८॥

बइयर सौं बइयर मिलीं, कहौ पूत क्यूं होइ ।
त्यूं रज्जब सतगुर बिना, सब खोजहुं की जोइ ॥९॥

अजा कंठ कुच पै नहीं, क्या पीवैहि दुहु ग्वाल ।
त्यूं रज्जब सिष सूम गति, गुर भूषा बेहाल ॥१०॥

घरि घरि दष्या देहि गुर, सिष न सुलझ्या कोइ ।
जन रज्जब सब लालची, ताथैं भला न होइ ॥११॥

सिष सारे गुर कौं गिलैं, गुर सेवक सब खाइ ।
रज्जब दुन्यूं यूं मिले, हरि मै कौण समाइ ॥१२॥

कुलि चेला चीणा भये, गुर कौ यहु गमि नाहिं ।
रज्जब पैठा प्रीति सों, बूड़ि मुवा यूं माहिं ॥१३॥

गुर सिष निदान निरनै का अंग

अरिल : सतगुर सोधिर कीजिये, साहिब सौं सांचा ।
रज्जब परसे पार ह्वै, सुनि मनसा बांचा ॥१॥

सतगुर सोधिर कीजिये, साहिब सों सूरा ।
रज्जब रहता राखि ले, गुरजीवनि पूरा ॥२॥

चौपदा : सतजत सुमिरन हिरदै सांच, सो सतगुर सिष ह्वै मन रांच ।
रज्जब परख कही गुरदेव, सेवक ह्वै कीजै तहं सेव ॥३॥

साखी : सतगुर मृतक जिहाज गति, सिष सब जीवति माहिं ।
जन रज्जब जोख्यूं गई, भौजलि बूड़ी नाहिं ॥४॥

रज्जब काचा सूत सिष, लपट्या सतगुर हाथि ।
काल कसौटी देह दिप, जलै न सांचै साथि ॥५॥

महापुरष मुहरै बंधे, तालिब कांचे तारि ।
रज्जब जलहि न जुगल सों, अंतक अगनि मंझारि ॥६॥

कोयल अंडे काग गृह, सुत नर निपजै परसेव ।
त्यूं रज्जब सिष भाव कौं, प्रतिपालै गुरदेव ॥७॥

गुर संतोषी ससि मई, सिष नछत्र निरिहाइ ।
जन रज्जब तहि सभा कौं, देखि दृष्टि बलि जाइ ॥८॥

चंद उदै जिउं चाहि बिन, कंवल खिलै अपभाइ ।
त्यूं रज्जब गुर सिष ह्वै, तौ दोस न दीया जाइ ॥९॥

चंदन करि बदलै बनी, पारस पलटै लोह ।
त्यूं रज्जब सिख काज करि, गुर ज्ञाता निरमोह ॥१०॥

सतगुर सूरज ससि हर संदल, पुन्नि पेख तौ हमाइ ।
रज्जब पंचहु प्रान पोषिये, स्वारथ रहति सुभाइ ॥११॥

जिहि छाया ह्वै छत्रपति, सोहत रहत हमाइ ।
त्यूं रज्जब गुर सिष गति, दुह मै कौन कमाइ ॥१२॥

लोहा सिष पारस गुरू, मेले मेलण हार ।
सोंघे सूं महंगे भये, अण बम्बित व्योहार ॥१३॥

महतम एक उदीप तौं, देखै सब संसार ।
रज्जब रारचूं रस परै, उनहिं न आंख्यूं प्यार ॥१४॥

सतगुर सरिता ज्यूं बहै, हित हरि सागर माहिं ।
रज्जब समदी सेवगा, सहज संग मिल जाहिं ॥१५॥

रज्जब काया काठ मै, प्रगटी आज्ञा आगि ।
मनसिष निकस्या धूम ज्यूं, गया गगन गुर लागि ॥१६॥

बोले अंडे मोतियहुं, घडै संवारै कौन ।
त्यूं रज्जब सिष नीपजैं, मन बच क्रम गुर भौन ॥१७॥

रज्जब सतगुर स्वाति गति, बैन बूंद निज बारि ।
मन मुकता निपजै तहां, नर निरखौ सु निहारि ॥१८॥

सतगुर चंबक रूप ह्वै, सिष सोई संसार ।
अचल चलै उनकै मिल्यूं, तामै फेर न सार ॥१९॥

पावक रूपी परम गुर, लाष मई सब लोइ ।
रज्जब दरसन तिनहु के, कठिन सकोमल होइ ।।२०।।

कांसी कणजा कांच लग, बधै तताई माहिं ।
जन रज्जब सीतल समै, अस्थल छोड़ै नाहिं ।।२१।।

जिव जल हिमगिरि होत है, सकति सीत कै संग ।
सो पषान पानी भया, गुर ग्रीसम कै अंग ।।२२।।

ज्यूं सावणि सीगणि फिरहिं, त्यूं सठ सूरति संसारि ।
रज्जब सूधी होइ सो, कवणीगर गुरद्वारि ।।२३।।

हाथा जोड़ी गुरुह सों, मूसल मन सु मिलाहिं ।
ए एकठे एई करैं, औरौ किय न जाहिं ।।२४।।

निवाण नैन मटकी मुकर, सजल सूर प्रतिव्यंब ।
रज्जब कफ करुना किये, जोगै तहां बिलंब ।।२५।।

अनिल आगि अनंत पै, गरी न कंचन कान ।
रज्जब सोनी सतगुरू, बज्र बारि बिधि बान ।।२६।।

सब गुर तीरंदाज है, सेवक मन नीसाण ।
रज्जब गुर कमणैत सो, जाका बैठा बाण ।।२७।।

सेवक मन महरी भया, मरद मिले गुर आइ ।
रज्जब स्याबत सो सही, जासों फल रहि जाइ ।।२८।।

तन मन सिष रोगी भये, बैद मिले गुर जाइ ।
जन रज्जब सुहृकी महद, जासों बिथा बिलाइ ।।२९।।

रोगी बैद पिछाणि ले, बूटी सत्य सुजाणि ।
बिथा बिलै ह्वै परस तैं, रज्जब सो परवाणि ।।३०।।

तिण तौ ये रस तनहु मिल, तनै तनैया होत ।
रज्जब जंगम जगमगे, थावर गलि गै गोत ।।३१।।

बिबिधि भांति बूटी बनहु, बेत्वा ल्यावहिं जोय ।
रज्जब रोग तिनहु हरै, पै बेद बंदना होय ।।३२।।

सबहु नर संसार के, किनहु किये करि याद ।
सो रज्जब किस काम के, अब दे सो उस्ताद ।।३३।।

सब संतहुं के सति सबद, जिनमैं अलख अभेव ।
अब समझावै जो जिसहिं, सो तिसका गुरदेव ।।३४।।

तुपक पावक दारू गोली, कहीं कहीं सो होइ ।
पै रज्जब निरदोष सब, मारै बैरी सोइ ॥३५॥

षट दरसन के रंग रंगी, आतम जल ज्यूं आइ ।
रज्जब सतगुर सूर ज्यूं, किरणि किरषि लै जाइ ॥३६॥

कूये बाय तलाव के, धणियौं कछू न होइ ।
जन रज्जब जल जाहि सूरमैं, त्यूं सतगुर सब कोइ ॥३७॥

गुर गाफिल देखत रहैं, सतगुर सिष ले जाइ ।
रज्जब पहुंचे गीत ज्यूं, अति चलते कै पाइ ॥३८॥

मन कपूर नाहीं रहै, चित्र चीर के बंधि ।
सतगुर लेहिं समीर ज्यूं, गठिबंध परै न संधि ॥३९॥

बिबिध बास बहु बंदगी, चलै पवन संग तीर ।
रज्जब त्रिक सो रंभ ज्यूं, बिरला पहुंचै बीर ॥४०॥

सरगुण निरगुण गुण गरट, गाहक सिषौ अनेक ।
रज्जब गुर गोव्यंद ले, सो चेला कोई एक ॥४१॥

बिधि बिलोकि बहु लषिणा, गाहक गुणहुं अपार ।
रज्जब सुधा चकोर ले, जिहिं बलि गिलै अंगार ॥४२॥

चंद चकोरहिं प्रीति है, देखै सब संसार ।
वै सौदा औरै कछू, जिहिं बलि गिलै अंगार ॥४३॥

रज्जब महंत मयंक कै, चेला होइ चकोर ।
इंद्री गिलै अंगार ज्यूं, अगनि करै नहिं जोर ॥४४॥

एक गुरू है आरसी, सिष चखि अटकै बार ।
जन रज्जब चसमां गुरू, काढ़ै अपणै पार ॥४५॥

सबद सीत गुर जल जमहिं, अति गति निरमल माहिं ।
तिनमै दीसै परै का, वैला दीसै नाहिं ॥४६॥

बित बोहित सब साह का, सतगुर खेवणहार ।
धन्य धणी कै जायगा, रज्जब उतरै पार ॥४७॥

जै काजी काइन पढ़ैं, तौ कछू खसम न होइ ।
रज्जब व्याह कराइ करि, बाभण बींद न कोइ ॥४८॥

घट भंडार भगवंत का, आतम बित तेहि थान ।
भंडारी भंडार मैं, जन रज्जब गुर ग्यान ॥४९॥

औजूद खजाना अलह का, ज़र अंदर अरवाहि ।
रज्जब पीर खजानची, दस्त न सकई वाहि ॥५०॥

सिरिया सक्ति सरीज जीव लौं, बसत पराई बीर ।
जिसकी तिसहिं चढ़ावता, कुण मांगै क्या सीर ॥५१॥

सरीर सरीरहु ऊपजहिं, सुरति सीप कै माहिं ।
पै रज्जब गुर यंद्र बिन, मन मुकता ह्वै नाहिं ॥५२॥

आदम करि आदम उदै, सीपहि निपजहि सीप ।
पै मन मुकता गुर यंद्र करि, सतगुर स्वाति समीप ॥५३॥

सतगुर सावण की कला, तामैं मौज सु स्वाति ।
तब मोती मन नीपजैं, जन रज्जब इहि भांति ॥५४॥

जन रज्जब गुर धरणि परि, सिष सारे बनराइ ।
घट प्रमाण रस सब पीवै, अपणै अपणै भाइ ॥५५॥

जन रज्जब गुर ग्यान जल, सींचै सिष बनराइ ।
लग दीरघ अरु स्वाद बिधि, ह्वै अंकूर सुभाइ ॥५६॥

पान फूल फल तरु लगै, त्यूं त्रिबिधि भांति गुर सिष ।
फूल बास सतगुर लिये, रज्जब सब बिधि पिष ॥५७॥

बात पात छाया लिये, ग्यान सुगुल समि बास ।
करणी फल गुर तरु गहैं, त्रिबिधि भांति परगास ॥५८॥

गुर तरु सिष लागै सु यूं, ज्यूं डाल पान फल फूल ।
बात घात एक झड़ि पड़ैं, येक न बाड़े मूल ॥५९॥

रज्जब गृह गृह गुर दीपक दसा, तिनहु न पूरै आस ।
गुर तारै भ्रम सीत का, सतगुर सूरिज नास ॥६०॥

रज्जब बिकत रूप गुर बहु मिलैं, सिष चष वो तन कोइ ।
एकै सतगुर सूर सम, तिमिर हरै स्रिय लोइ ॥६१॥

गुर अनंत सिष हू घणे, पै सतगुर भेटै भाग ।
रज्जब रागी बहु मिलहिं, पै बिरलहु दीपक जाग ॥६२॥

बहुतै स्वामी सैल सुत, के पारस गुर ग्यान ।
रज्जब पलटै लोह सिष, तिनका होइ बखान ॥६३॥

बैद बिथा मैं आपही, रोगी चीन्है नाहिं ।
रज्जब दून्यूं दृष्टि बिन, पचन भये गलि माहिं ॥६४॥

रोगी कौं भासैं उभै, बैदहि दीसै तीन ।
रज्जब वैसे गुर सिषहु, कहौ सु क्या मिलि कीन ॥६५॥

बैद बिथा बूझै नहीं, पीर न पावै पीर ।
रज्जब मिलै न राम गुण, क्यूं बंदे ये बीर ॥६६॥

सोरठा : आसंक्या अर घाव, मन मरकट सु दिखावहीं ।
अलगे बुधि बिन बांदरे, रज्जब ठौर उठावहीं ॥६७॥

गुरमुख कसौटी का अंग

गुर ग्याता परजापती, सेवक माटी रूप ।
रज्जब रज सौं फेरि करि, घड़ि ले कुंभ अनूप ॥१॥

सेवक कुंभ कुंभार गुर, घड़ि घड़ि काढ़ै खोट ।
रज्जब माहिं सहाइ करि, तब बाहेर दे चोट ॥२॥

क्रोध न करहिं कुलाल गुर, दीसै बहु बिधि मार ।
रज्जब निपजैं पात्र क्यूं, बिन कसणी ब्योहार ॥३॥

सतगुर संक्या ना करै, जैसे लोहि लुहार ।
रज्जब मारै मिहरि करि, ताइ करै ततसार ॥४॥

कालबूत कसणी भई, सेवक साठी जाणि ।
रज्जब तावै तीरगर, त्यूं सतगुर की बाणि ॥५॥

प्राण पटहु उरतूं करहिं, झूठ सांच सासाद ।
दिब सादे न दझावहीं, धनिधनि गुर उस्ताद ॥६॥

काया कंद उरतूं किया, गुर उस्तादहु ताइ ।
संकट मै सोभा भई, नर देखौ निरताइ ॥७॥

मन रूपा निरमल भया, सतगुर सोनी हाट ।
रज्जब सीसे सबद सौं, कटै कलंकी काट ॥८॥

ज्यूं धोबी की धमस सहि, ऊजल होइ सु चीर ।
त्यूं सिष तालिब निरमले, मार सहैं गुर पीर ॥९॥

जन रज्जब गुर गुरज सहि, करहु न सोच बिचार ।
काया पलटै कीट क्यूं, बिन भृङ्गी की मार ॥१०॥

अर्क इंद ज्यूं सतगुरू, गुण ह्वै अजब अनूप ।
रज्जब तप ते बरष ही, सीतल सुधा सरूप ॥११॥

सतगुर सतजुग की अगनि, ताव तेज अधिकार ।
सिष सोना ह्वै सोलहा, रज्जब कसणी सार ॥१२॥

सिष संकट मैं नीपजै, गुरहु सु बंधे गंठि ।
मन मनि गन छेदे बिना, रज्जब बंधै न कंठि ॥१३॥

कठिन कसौटी नीपज्या, तिसहिं कसौटी नाहिं ।
वासण डरै न बासदेव, पाका पावक माहिं ॥१४॥

मन हस्ती मैंमंत सिरि, गुरू महावत होइ ।
रज्जब रज डारै नहीं, करै अनीत न कोइ ॥१५॥

मन मारुतभख सूधा किया, सोधी दून्यूं जाड़ि ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह की, चारचूं डाढ़ उपाड़ि ॥१६॥

मन भवंग गुर गारडी, राखै कीलि करंड ।
जन रज्जब निरबिष करै, दुष्ट दसन करि खंड ॥१७॥

मन भवंग गुर गरुड़ गहि, किया गगन कौ गौन ।
जन रज्जब जिव की पड़ी, मूसा गटकै कौन ॥१८॥

अनल पंखि गुर नै लिये, पंचतत्व अरु प्रान ।
ज्यूं गै गैणा गलेउड़ै, छूटा बित अस्थान ॥१९॥

मन मैमंतू लै गये, गुरू अनल आकास ।
सो न छुटाये छूटहीं, नख सख किये गरास ॥२०॥

सतगुर सीगण हाथ लै, मारै मरम बिचारि ।
जन रज्जब जाकै बणै, सो बैठै तन हारि ॥२१॥

ग्यान षड्ग गुरदेव गहि, दे सेवग सिर आणि ।
मारत ही मोहन मिलै, जै वोड़ै जिव जाणि ॥२२॥

सतगुर सांग सु सबद की, रसन सुहावलि देइ ।
जन रज्जब जगपति मिलै, जे उर सर्वसु लेइ ॥२३॥

ग्यान गुरज गुरदेव गहि, गरद किया रण माहिं ।
जो रज्जब सनमुख गया, सो फिर आवै नाहिं ॥२४॥

ध्यान धनक गहि सतगुरू, मारै बाइक बाण ।
रज्जब स्यावज सर सहित, पड़ै परसिपर आणि ॥२५॥

रज्जब भल का भाव का, सांठी सबद सलाइ ।
काबिज गुरू कमाण गहि, मारचा तीर चलाइ ॥२६॥

सतगुर सबद सुमार सर, जो फोड़ै तिरलोक ।
रज्जब छेदै सकल गुण, अइया पैनी नोक ॥२७॥

रज्जब रुचै सुरोस रस, सतगुर पारस बैन ।
प्राणी पलटै लोह ज्यूं, लागे कंचन ऐन ॥२८॥

सिष लोहा पारस गुरू, ज्यूं त्यूं राम मिलाव ।
रज्जब भावै रोस रस, परसें कंचन भाव ॥२९॥

आज्ञाकारी आज्ञाभंगी का अंग

आज्ञा गुर गोव्यंद की, चलै सु चेला चार ।
रज्जब रमतौं मनमुखी, पगि पगि पूरी मार ॥१॥

आज्ञा में आतम रहैं, आज्ञा भाने भंग ।
रज्जब सतगुर सीष मैं, निगुरा अपणै रंग ॥२॥

पिता पूति नर नारि कै, गुर सिष आज्ञा रंग ।
रज्जब राजा चाकरहुं, हुकम हते मन भंग ॥३॥

सतगुर सरवर क्या करै, जे सिष सफरी मन खोट ।
रज्जब बनसी बाम गिलि, खैंच लई जम चोट ॥४॥

रज्जब रमणी रासिबा, कपट सुकठ गढ़ माहिं ।
सिष सिंह खात खुलाइ गे, गुर गिर दूसण नाहिं ॥५॥

गुर अगस्त उर चढ़त ही, सिष समंद नभि जाहिं ।
जन रज्जब उतरे तहां, सो खारे खित माहिं ॥६॥

आज्ञाभंगी मनमुखी, बिभिचारी ब्रत नास ।
रज्जब रीता रती बिन, नाहीं चरन निवास ॥७॥

आज्ञा में आगे रहै, गुर गोव्यंद हजूर ।
जन रज्जब दिल दूसरै, ह्वै ठाहर तैं दूर ॥८॥

आज्ञा में अणमोल है, अण आज्ञा अढ आघ ।
रज्जब रंग सु रजामै, बिरच्यूं वोल्हे बाघ ॥९॥

गुर की आज्ञा में रहै, सो सिष कोई एक ।
रज्जब रह बिन रोझ मन, आज्ञा भंग अनेक ॥१०॥

असली आज्ञा में चलै, बाहर धरै न पाव ।
रज्जब कपटी कम असलि, खेलै अपणा डाव ॥११॥

रज्जब रहियै रजा मैं, गुर गोव्यंद हजूर ।
इणकी आज्ञा मेटतैं, देखत परियै दूर ॥१२॥

गुर धरती गोव्यंद जल, सिष तरुवर मधि पोष ।
रज्जब सरवैं ठौर तैं, देखि दहूं दिसि दोष ॥१३॥

सिष गुड़ी सुरती डोरि मैं, गुर खिलार हित हाथि ।
तंत्यूं त्रूटे तैं गई, स्याबति सांई साथि ॥१४॥

ज्यूं घोड़ा असवार बस, चलै पराये भाइ ।
रज्जब अड़ अपनी गहै, तबै मार भी खाइ ॥१५॥

अणी आगि अहि सौं असह, गुर आज्ञा महि गौन ।
जन रज्जब तनि त्रास तुछ, मनहि मरावै कौन ॥१६॥

सीता सुरति उलंघिया, राम लीक गुर बैन ।
रज्जब रावण काल कर, चढचा न पावै चैन ॥१७॥

रज्जब रजा रजानिकरि, अजा जील सैतान ।
दूंबा फजीहत फिरस्ता, मेटि अलह फरमान ॥१८॥

रज्जब गुरू गोव्यंद की, मया मेघ प्रतिपाल ।
इन बिरच्यूं राचै बिघन, केवल आतम काल ॥१९॥

आज्ञाकारी का अंग

गुर आज्ञा मैं सिष यूं, ज्यूं अदभू इक पाइ ।
रज्जब सेवक सो सही, सरवस सेवा भाइ ॥१॥

गुर आज्ञा अंगुरी बंधि, चेले चकरी होय ।
आवै जाइ रजा मैं रज्जब, दूजा नाहीं कोय ॥२॥

सतगुर सूरज सिष सलिल, आज्ञा आवै जाइ ।
रज्जब रहतौं इहि जे जुगति, सेवग स्वामी भाइ ॥३॥

धोम बास बलिबाइ कै, संग समीर सुजांहिं ।
तैसे रज्जब गुर सिषहु, सदा आज्ञा मांहिं ॥४॥

हरि आज्ञा मैं अणसरै, गुर दिनकर इक तार ।
रज्जब सिष सो किरणि सम, सदा सु तिनकी लार ॥५॥

चंद सूर पाणी पवन, धरती अरु आकास ।
ए सांई के कहे मैं, त्यूं रज्जब गुर दास ॥६॥

चौपदा : पाणी पवन सूर ससि सोधे, धन्नि धणी जिन ए परमोधे ।
चूकहिं चकहि न सीष मझारी, जन रज्जब तापरि बलिहारी ॥७॥

साखी : ज्यूं हलवाइ कि हाटि तजि, माखी कहीं न जाइ ।
त्यूं रज्जब गुर सिष बंधे, उड़हि न रहे उड़ाइ ॥८॥

नांउ मिठाई बिबिधि परि, जहां भरे हिरदै हाट ।
रज्जब मिलिहि उड़ाव ज्यूं, मनिषा माखी ठाट ॥९॥

रज्जब आज्ञा में ऊभा रहै, आज्ञा बैठै आइ ।
आज्ञा में आड़ा हुआ, आज्ञा ऊठै जाइ ॥१०॥

आज्ञा में पतबरत है, आज्ञा में धरम नेम ।
रज्जब आज्ञा उर चढ़ै, आज्ञा कूसल षेम ॥११॥

आज्ञा में आतम अरस, आज्ञा ऊरण होइ ।
आज्ञा चले सु ऊधरे, साधक हैं सब कोइ ॥१२॥

आज्ञा में ऊभा रहै, यक मनाइ करतार ।
रज्जब ऊजल अनन वहै, वहि उतरैगा पार ॥१३॥

आज्ञा में अघ ऊतरैं, आज्ञा पावन प्रान ।
सो आज्ञा आठौ पहर, जन रज्जब उर आन ॥१४॥

आज्ञा में ऊंची दसा, आज्ञा उत्तिम ठौर ।
उभय येक आज्ञा चल्यूं, सो आज्ञा सिरमौर ॥१५॥

सिष सरधा यूं चाहिये, ज्यूं बसुधा रितवंत ।
रज्जब बरिषा गुर बैन, लिया दसौ दिसि कंत ॥१६॥

चेला चेतन चाहिये, ज्यूं आषिर सबदहिं लेइ ।
रज्जब सिष सरधा इहै, जु गुर मत जान न देइ ॥१७॥

बावन अच्छर सेवगा, सतगुर सबद सुमानि ।
रज्जब दहुं सौं एक ह्वै, सो गुर सिष परवानि ॥१८॥

सिष सरधा जन्तर घटी, सतगुर जंत्रक जाणि ।
रज्जब हिये कंध चढ़ि, सुकल कला उर ठाणि ॥१९॥

तेल लूंण आफूर गुड़, पै पाणी सू मेल ।
त्यूं रज्जब गुर ज्ञान मैं, सिष सुमती का खेल ॥२०॥

अंबलवेत सुई मिलि येकै, त्यूं सिष सतगुर संग ।
रज्जब दुती भाव नहिं दरसै, अंग समाये अंग ॥२१॥

आदि तिणै रस नीपजी, अंति तिणा दिल माहिं ।
रज्जब सिष सितिया मतै, सु गुर गुन लोपै नाहिं ॥२२॥

मिसरी मन बिसरी नहीं, आद्‌ जो उपगार ।
मीठौ सौं मीठी मई, तऊ तिणा उर धार ॥२३॥

गुर बूंद सिष समुद्र का, मिलत महातम जोइ ।
पर फूलत सायर सुगुण, उठत बुदबुदे होइ ॥२४॥

गुर सनमुख सिष रह सदा, कदें करौ मति और ।
त्यूं रज्जब बसुधा बिरष, सुखी सु एकै ठौर ॥२५॥

ज्यूं सतगुर के सबद में, त्यूं चल सिष सुजाण ।
जन रज्जब रहु इस मतै, छांड़हु खैंचा ताण ॥२६॥

हीर हेम सोई खरे, जु लागै भाणैं भित्ति ।
रज्ज़ब चिहुटै गुर सबद, सो चेला चोखै चित्ति ॥२७॥

गुर आज्ञा इंद्री दवन, आज्ञा परिहरि काम ।
रज्ज़ब आज्ञा आप हति, आज्ञा भजिये राम ॥२८॥

गुर आज्ञा अंजन तजौ, आज्ञा अंतरि मेटि ।
रज्जब आज्ञा उर बसौ, आज्ञा अबगति भेंटि ॥२९॥

गुर आज्ञा औतार तजि, आज्ञा सन मन सेव ।
आज्ञा अठसठि त्यागिये, रज्जब आज्ञा येव ॥३०॥

सात बार एकादसी, आस उपास उतारि ।
रज्जब भजिये राम कौ, तेतीसौ तसकारि ॥३१॥

गुर आज्ञा दुनिया तजहु, आज्ञा दरसन त्यागि ।
रज्जब आज्ञा यैन यहु, पाखंड परपंच भागि ॥३२॥

सिष सदा सत सबद मधि, गुर थिर गोव्यंद माहिं ।
उभै उमरि ठाहरौं बदी तहि, तब संचर कछु नाहिं ॥३३॥

सिष सोई सति सीष मैं, गुर सोई ज्ञान गरक्क ।
मन बच क्रम रज्जब कहै, जुगल सु पावहिं जक्क ॥३४॥

गुर संजोग बियोग महातम का अंग

सतगुर परतषि परसतैं, सिष की संक्या जाहि ।
ज्यूं दिनकर सो दिन द्रसै, त्यूं निस सूझै नाहिं ॥१॥

गुर चंदन जीवन मुवौ, बचन बास बिचि होइ ।
नर तरु निपजैं परसपर, त्यूं पीछै नहिं कोइ ॥२॥

सबद डंक गुर भृङ्गि परि, मारत तन मैं जंत ।
उभै ऊतरच्यूं उभय अंग, सु कला न कंटिक मंत ॥३॥

गुर हमाइ संजोग सबद पर, परस्यूं पलटै प्रान ।
रज्जब बिछुरे बल घटै, समझै संत सुजान ॥४॥

संत स्यंध समानि है, सबद डंक नक्र ठौर ।
जिवत जाइ गहै जोरवर, उतरे बल कछु और ॥५॥

बाराह बारनहु बक्त्र बल, देखहु दुहुं के दंत ।
तैसें गुर मुख सबद सयाणा, मनहु मनावै मंत ॥६॥

रज्जब जेहि पारे पैदा भये, पारबती मधिपूत ।
सो पारा अजहूं घणा, पै पीन होत सुत सूत ॥७॥

निन्याणबै कोड़ि नराधिपति, निपजै गोरख ज्ञानि ।
अब रज्जब येकौ नहीं, तौ सबद सता घटि मानि ॥८॥

जन रज्जब गोदावरी, गोरख गिरा सुगाल ।
सूंघे सिध ऊंघे सिला, देखहु ये ततकाल ॥९॥

वहै सबद आनन अनंत, कहै सुणै सब कोइ ।
पै रज्जब वहि सक्ति बिन, सिद्धि सिला नहिं होइ ॥१०॥

रज्जब मुये जिलावतां, मंत्र धनंतर बैद ।
वह ब्रिद्या बादी अजहुं, परि ह्वै नुकता नहिं कैद ॥११॥

रसन रसातल पै पड़ी, ज्ञान गजा सु अपार ।
रज्जब जड़ गड़ भानते, गये उठावन हार ॥१२॥

भूत बात सुण भूत की, भूत होत क्या बेर ।
सोई बात बहु बदन सुणि, सो न होत तौ फेर ॥१३॥

रज्जब बप बायक मिलत, फहम करौ बहु फेर ।
मनसा बाचा करमना, हाजर हड़का हेर ॥१४॥

साध स्यंघ के सबद सुसंकित, दरस दुखी परसि नास ।
रज्जब कही बिचार करि, त्रिबिधि भांति की त्रास ॥१५॥

गुरू अगनि सेवा त्रिबिधि, देखि तापि सत माहिं ।
जन रज्जब मुर मामलै, येक बंदगी नाहिं ॥१६॥

हणवंत हांक हणवंत मुखि, तोब हींज अब होइ ।
वै रज्जब ता सबद का, बक्ता औरै कोइ ॥१७॥

चौपदा : चम्बक चरचा गहि गुण गाढ़ि, सुरति सुई रजरिधि सुकाढ़ि ।
पारस गुरू मिलत गति जोइ, वह सोना वह साधू होइ ॥१८॥

साखी : रज्जब सतगुर जोति जिव, सबद सही परगास ।
सिष सो नै कृमि काट का, कहि मिलि होइ सुनास ॥१९॥

चौपदा : गुर नराधिपति सिष उमराव, बचन बीच प्रतिहार सुभाव ।
घटि बधि पटा करै नरनाथ, सो निधि नहीं सबद कै हाथ ॥२०॥

ओम्कार आतम औतार, ता सुत सबद सदा प्रतिहार ।
इष्टौ लगि पौरिव परबेस, आगैं रज्जब दाता देस ॥२१॥

साखी : बमेक जीव बस्ती जहां, ब्रह्म बासदेव माहिं ।
सबद धाम व्योमहि गहै, चूणि चकोर सुनाहिं ॥२२॥

मति सुमुकर जड़ मैं दरसै, चेतनि कौं मूख दोष ।
सोई लाज आतम करै, रज्जब ह्वै संतोष ॥२३॥

गुर चंदन सिष बनी बिधि, पेखौ पलटैं पास ।
रज्जब दूर न मूर ह्वै, सबद सकल भर बास ॥२४॥

रज्जब पावैं दूर सौं, सबद बास नर नाग ।
पैं गुर चंदन पासैं गये, सीतल हूं हंसि भाग ॥२५॥

रज्जब केसर खेत गुर, बीज बचन तहं जोर ।
आन अवनि उर बिपुल अति, पैं सौ कण करहिं न फोर ॥२६॥

रज्जब सतगुर सीप समि, सिष ह्वै स्वाति सु नीर ।
मन मुक्ता मधि नीपजहिं, जुदे न निपजैं बीर ॥२७॥

सतगुर सुंदर सुक्ति मधि, सिष सुत मुक्ता खेत ।
देखौ निपजै ठौर नग, जन रज्जब कहि देत ॥२८॥

केसरि कनक कपूर मुक्त मन, इह पैदा इस जोइ ।
खेत नहीं है केलि सुकत गुर, ठाहर उतपति होइ ॥२९॥

प्यंड प्राण बिन कछु नहीं, सूकी काया काठ ।
त्यूं अनभै बिन अनभई, ज्यूं पंडित बिन पाठ ॥३०॥

रज्जब बप बायक चलैं, परस्यूं पूरा पीर ।
परकास्या परबेस गुर, निरतग सबद सरीर ॥३१॥

गुर पंडित आषिर सबद, आदम अपढ़ न लेस ।
रज्जब पैठै पीर संगि, पर ठाहर परबेस ॥३२॥

जैसैं राछ अकज सब, उस्तादहु बिन जेम ।
त्यूं रज्जब गुर बिन गिरा, मनसा बाचा नेम ॥३३॥

रज्जब पागी बिना न पग कढ़ैं, देखौ धर गिर नीर ।
सबद खोज तत पंच परि, सु क्यूं निकसै बिन पीर ॥३४॥

नाव सबद निज नाव है, सबद रूप संसार ।
रज्जब गुर खेवट बिना, चढ़े न पहुंचे पार ॥३५॥

पुरष बिना नाणा निकछु, बैद बिना औषद्द ।
त्यूं रज्जब सतगुर बिमुख, सबद मिले ज्यूं रद्द ॥३६॥

बचन बाट बहुतै चली, जीव खड़ा तहं आइ ।
रज्जब गुर भेदी बिना, प्राण पथिक कहिं जाइ ॥३७॥

रज्जब राजा बिन कटक, बणिजारहु बिन बैल ।
त्यूं सतगुर बिन सबद दल, ह्वै न काज की सैल ॥३८॥

रज्जब आतम बाज बिन, गोला नालि न काज ।
वैसी बिधि गुर बिन गिरा, ज्यूं नर बिन गज बाज ॥३९॥

चौपदा : पुस्तक पैगह बचन सु बाज, अरथ असवार गुरू गति राज ।
चढ़ैं चढ़ाये नहीं त नाहिं, रज्जब रचना यहु दल माहिं ॥४०॥

साखी : बैन बाज निज नाव कौ, कहत सुनत जग माहिं ।
पै रज्जब गुर असवार बिन, कारज आवैं नाहिं ॥४१॥

चाबुक अंकुस सबद सति, है गै मन परिधारि ।
रज्जब गुर असवार बिन, को काढ़ै पसु मारि ॥४२॥

सबद पुराणी क्या करै, जे गुर खाड़ैती नाहिं ।
रज्जब चलै न बैल रथ, समज देखि मन माहिं ॥४३॥

बिचार नाथ बाइक दिया, लिया सु चैतनि नाथ ।
रज्जब निपजै देखतौं, चेला हाथौं हाथ ॥४४॥

अरिल : सतगुर सूरिज कांति, सूर समि है धणी ।
सबद सलिल कफ कान, गुरू सिष अति बणी ॥४५॥

आदम असम असंखि, तहां नहिं यहु कला ।
परिहां रज्जब जोग, दुलभ भाग लहिये भला ॥४६॥

साखी : चिदानन्द चंद सकला, चंद्रमणी गुर संत ।
उभै मिलत अमृत स्रवै, पीवहिं जीवनि जंत ॥४७॥

सबद बीच करसा गुरू, चेला चकहु सरूप ।
नाव नाज यों नीपजै, मिहरि मेघ हरि भूप ॥४८॥

चौपदा : सबद आरसी अरथ सुआगि, सतगुर सबिता सनमुख जागि ।
आरत बिच आहार अनूप, प्रीतम पावक प्रगटहिं रूप ॥४९॥

साखी : गुर सिष नर नारच्यू मिल्यूं, ब्रह्म बाल बिधि होइ ।
सबद सुकल श्रुति सुंदरिउं, फल पावै नहिं कोइ ॥५०॥

त्रिबिधि भांति तरुनिव तपै, तिमिर हंत समि भाइ ।
सबिता सतगुर आठवैं, ताला अघ न गराइ ॥५१॥

रज्जब साध सबद सुरही सुपैं, कीये पलट अशुद्ध ।
अंब अरथ घृत काढ़े बिना, दीपक बलै न दूध ॥५२॥

काष्ठ लोह पाषान सबद सत, अगनि अरथ परकास ।
कौन काम कासौ सरै, सुनहु बमेकी दास ॥५३॥

रज्जब सबद समंद मधि, मनमुक्ता निज ठौर ।
सौ गुर मरजीवे बिना, आन न सकई और ॥५४॥

सबद साल ताला जड्या, अरथ दरब धरि माहिं ।
गुर दृष्टी कूंची बिना, हसत सु आवै नाहिं ॥५५॥

बाइक बादल अरथ जल, गुर आज्ञा सु निकास ।
बिन संजोग बरिषा बिना, चेले चकहुं निरास ॥५६॥

महापुरुष पारस परसि, पलटहि प्रान सु धात ।
मिलतौ मंगल मौन मैं, रज्जब तहां न बात ॥५७॥

कह्या सु आया सिष कन, अकह रह्या गुर माहिं ।
रज्जब वहि कहि बोर है, जो सबद समावै नाहिं ॥५८॥

गुर वकील निज ब्रह्म कन, सबद रहै संसार ।
बहु बचनौ बहुतै मिलैं, बिरला सतगुर लार ॥५९॥

चौपदा : ओंकार आत्मा षीरं, ताहि जमाहि मथै घृत बीरं ।
बाणी तक्र जुदे जिव जाणी, उलटि मिले जीवन पै प्राणी ॥६०॥

सीखी साखि बिसाह्या बरा, नाथ बोलै खोटा न खरा ॥६१॥

कबीर सोई आषिर सोई बैणि, जन जु जुबां चंवंति ।
कोइ जु मेलै केलवणि, अमीर साइण अंति ॥६२॥ *
दादू कहां आसिक अलाह के, मारे अपणै हाथ ।
कहं आलम औजूद सों, कहां जबा की बात ॥६३॥
देबैल का दरद का, टूटा जोड़ै तार ।
दादू साधै सुरति कौं, सो गुर पीर हमार ॥६४॥
सांचै सतगुर की कथा, जैसे दीपक राज ।
रज्जब बाणी सुर सुणत, जट दिल दीपक जाग ॥६५॥

बिरह का अंग

कबहूं सो दिन होय गा, पिव मेलै गा आइ ।
रज्जब आनंद आतमा, त्रिबिधि ताप तनि जाइ ॥१॥
प्राण प्यंड रग रोम सब, हर दिस रहे निहार ।
ज्यूं बसुधा बनराइ सों, बिरही चाहै बारि ॥२॥
साध सबद श्रवनौ सुनै, बिरह बियोगी बैन ।
तब तैं बेधी आतमा, रज्जब परै न चैन ॥३॥
बादल बिरह बियोग के, दरद दामिनी माहिं ।
रज्जब घटि ऐसी घटा, भै झड़ मागै नाहिं ॥४॥
बिरहिणि बिहरै रैन दिन, बिन देखे दीदार ।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार ॥५॥
रज्जब कहिये कौन सौं, इस बिरहे की बात ।
मानहु रावन की चिता, अह निस नहीं बुझात ॥६॥
बिरहा पावक उर बसै, नख सिख जारै देहि ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसहि मोहन मेहि ॥७॥
बिरहिन बसुधा की अगनि, ब्रह्म व्योम क्यूं जाहिं ।
रज्जब बरु बरिषा बिना, उरधर क्यूं सु सिराहिं ॥८॥
बिरही बालक गूंग पसु, काहि कहै दुख सुख ।
रज्जब मन की मन रही, लहै न मारग मुख ॥९॥
अंतरि ही अंतर घ्रणा, बिच ही बीच अपार ।
माहैं माहि न मिलि सकूं, दीरघ दुख करतार ॥१०॥

* ६२ नं० पद का शुद्ध पाठ प्राप्त नहीं हुआ ।

रज्जब चखि चुख चिहुर की, नैनहु काढ़ै नीर ।
सांई सुरति सुमेर समि, सु नैनहुं अढ़कै बीर ॥११॥

रज्जब बारह बाहिरा, बिरह तेरहां मेघ ।
वह सौतिन कन जन सुअहिं, करै कौन कहु सेघ ॥१२॥

दसवें कुल का नाग है, दरद सु देही माहिं ।
जन रज्जब ताके डसे, मंतर मूली नाहिं ॥१३॥

रज्जब बिरह भुअंग परि, औषद हरि दीदार ।
बिन देखै दीरघ दुखी, तन मन नहीं करार ॥१४॥

भलका लागा भाव का, सेवग हुआ सुमार ।
रज्जब तलफैं तब लगै, मिलै न मारन हार ॥१५॥

ज्यूं बिरहन बर बीछटें, बिहरि गई तेहि काल ।
त्यूं रज्जब तुझ कारनै, बिपति माहिं बेहाल ॥१६॥

जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल सिंगार ।
त्यूं रज्जब भूला सकल, सुनि सनेह दिलदार ॥१७॥

अरिल : सत्ती सुख ससि सीर, सुधा रस बरषहीं ।
पीवत प्रान पियूष, सबै मन हरषहीं ॥१८॥

सो मन बाज बसेष, बिरह बप चांदिया ।
परिहां रज्जब रस बस होइ, उभै मुख बांदिया ॥१९॥

साखी : रज्जब रुचै न राम बिन, सकल भांति के सुख ।
भगवंत सहित भावैं, नाना बिधि के दुख ॥२०॥

जन रज्जब जगदीस बिन, रुति भली कोइ नाहिं ।
सीतउसंग बरिषा बुरी, बिरह बिथा मन माहिं ॥२१॥

सोरठा : दृग द्रुम भंडारी ऐन, चित चूल्है पावक जरै ।
परी अगनि उत बैन, तौ रज्जब रस इत झरै ॥२२॥

साखी : रज्जब बहनी बिरह की, गुण गण औटैं बीर ।
काया काठ कस रे जरहिं, सु नैनउ निकसै नीर ॥२३॥

रोज रेस मीजे बड़हु, तन मन बांधी घोलि ।
जन रज्जब जो पींजड़ै, सु कहां जाहिं कहु खोलि ॥२४॥

रज्जब बाढ़े दुंग दुख, बांधि साकली सोच ।
हरि ताली ताले जड़े, सु क्यूं निकसे मन मोच ॥२५॥

रज्जब भै की भाकसी, करणी कुंदें पाइ ।
हाथ हथकड़ी हेत की, सरक्या रती न जाइ ॥२६॥

इंद्री अनगन ऊतरै, जे आंख्यूं आंसू जाहिं ।
रज्जब मन मोरा भये, महापुरिस मन माहिं ॥२७॥

इंद्री आभै पंच मिलि, घट सु घटा जुरि आइ ।
रज्जब बिषै न बरषहीं, बिरह बाइ ले जाइ ॥२८॥

बिरहा बोहित बैठ करि, तिरिये सुकल समन्द ।
इहि ठाहर पौहण इहै, पार पहूंचण बन्द ॥२९॥

दुख दिनकर की दृष्टि करि, नेह नीर नभ जाहिं ।
रज्जब रमिये सुन्नि मैं, इह जुगती जग माहिं ॥३०॥

रज्जब झाझा अगनि मधि, आतिम अंभ निकास ।
उलटि समावैं सुन्नि मैं, पंथी पंथ सुतास ॥३१॥

बिरह सूर अति गति तपैं, तन मन माड मंझार ।
रज्जब निकसै राम जल, बिरहै के उपगार ॥३२॥

तन मन वोले ज्यूं गलहिं, बिरह सूर की ताप ।
रज्जब निपजैं देखतौ, यूं आया गलि आप ॥३३॥

चौपदा : काया काष्ठ सु मनवा धोम, इसक आगि मिलि जाहिं सु व्योम ।
आदि अंति मधि मुकति सुमाग, रज्जब लहिये पूरन भाग ॥३४॥

सोरठा : नर नारी सब नाज, बिरहा बारू भार की ।
रज्जब अज्जब साज, कांचे पाके परसतै ॥३५॥

साखी : दोसत नाहीं दरद समि, जे दिल अंदर होय ।
जीव सीव येकै करै, जे बसुदा हुते दोय ॥३६॥

बिरह अगिन ह्वै जुगति सों, आतम सार मंझार ।
कपट कीट कुलि काटि दे, तामै फेर न सार ॥३७॥

सत्तधात अगनिह मिलै, अंगनिह निकसै काट ।
रज्जब अज्जब ठौड़ कौं, बहनी बिमल सुबाट ॥३८॥

तन मन काष्ठ ज्यूं जरहिं, हेत हुतासन लागि ।
रज्जब रंग भंग बंक बल, जहां बिरह की आगि ॥३९॥

बिरहा चोरी पैठि करि, मुसै सकल गुन देह ।
जन रज्जब कन काढ़ि ले, ज्यूं चम्बक तजि खेह ॥४०॥

बिरहा बिहरै बिगति सौं, फाड़ै प्यंड पराण ।
रज्जब रजमा काढ़ि ले, बिरहा चतुर सुजाण ॥४१॥

कमाण कशौटी बिरह सर, प्राण चलावन हार ।
रज्जब छेदै सकल गुण, यूं अरि होंहि सुमार ॥४२॥

ज्यूं चुम्बक सिर नाल जटि, अस कुम्भार है जाइ ।
त्यूं रज्जब मन कौ बिरह, जे देख्या निरताइ ॥४३॥

बिरह केतकी पैठि करि, मन मधुकर ह्वै नास ।
रज्जब भुगतै कुसुम बहु, मरै न तिनकी बास ॥४४॥

रज्जब बंसी बिरह की, देही दरिया डारि ।
यूं अगस्त आरंभ बिन, मन मच्छा लै मारि ॥४५॥

बिरही प्राण चकोर है, बिरह अगिन अंगार ।
रज्जब जारै और को, उनकै प्राण अधार ॥४६॥

बिरही बिहरै बिरह बिन, जे उर पावक नाहिं ।
रज्जब जथा समंद जिव, जीवै ज्वाला माहिं ॥४७॥

बिरही स्याबति बिरह मैं, बिरह बिना मरि जाइ ।
ज्यूं चूने का कांकरा, रज्जब जल मिलि राइ ॥४८॥

इसक अलाह मलंग मन, दिल दारुन बिच चौक ।
रज्जब मंजिल आसिकां, अजब बिनालद सौक ॥४९॥

रज्जब ज्वाला बिरह की, कबहूं प्रगटै माहिं ।
तौ सीचौं घृत सोच सौं, करम काष्ठ जरि जाहिं ॥५०॥

अठार भार बिधि आदमी, बिरही बंस बिसेखि ।
हरेउ तात न हरि प्रगट, रज्जब अचरज देखि ॥५१॥

पंष पटंबर प्यंड परि, माहिं पपीहै प्रान ।
जन रज्जब दोऊ दहैं, दिल दोसत बिन जान ॥५२॥

साधू सारस सोग की, स्वांग रहत सति सूल ।
जन रज्जब जगि जुगल बिन, त्यागे जीव सुमूल ॥५३॥

सूर सती का जुध जलण, येकहि समै सु नास ।
ता ऊपर चारचूं पहर, पहलैं किये बिनास ॥५४॥

रज्जब काइर कामनी, रही बिपति कै रंग ।
सती चली सल चढ़न कौ, पहिर पटंबर अंग ॥५५॥

रे प्राणी पति परहरचा, बिहरि जारि क्यूं नाहिं ।
जन रज्जब ज्यूं जल ग्रथे, पंक तिड़ी सर माहिं ॥५६॥

चकई ज्यूं चक्रत भई, रैन परी बिच आइ ।
जन रज्जब हरि पीव कौं, क्यूं करि परसौं जाइ ॥५७॥

चकई कौं चकवा मिले, बीतें जामिनि जाम ।
रज्जब रजनी आव बिहाई, मिले न आतम राम ॥५८॥

बिरह अगिन येकै सबहुं, हृद हाड़ी सु अनेक ।
भाव भिन्न भोजन बिबिध, रज्जब रधहि बमेक ॥५९॥

एक बिरह बहु भांति का, भाव भिन्न बिच होइ ।
रज्जब रोवै राम कौं, सो जन बिरला कोइ ॥६०॥

सकल बोल बिक्कृत भये, गुर बाइक मन लाग ।
रज्जब रोवैं दरस कौं, यहु सांचा बैराग ॥६१॥

बेपरवाही बप सौं, ता ऊपरि बैरागि ।
रज्जब रोवै इस मतै, ता सिरि मोटे भागि ॥६२॥

माहि बहै बाहेर कहै, सो सुनि रीझै राम ।
रज्जब बातहु के बिरह, कदे न सीझै काम ॥६३॥

प्रीति इकंग का अंग

प्रीति इकंग महा बुरी, दुख दीरघ दिलि होइ ।
काहि पुकारै किस कहै, बेड़ी नाहीं कोइ ॥१॥

प्रीति इकंगी लागतै, प्रान परै दुख दंद ।
मरकट सूवा ज्यूं बधि, बिन बंधन दृढ़ फंद ॥२॥

अरिल : चात्रिग मोर पुकार सुनि, कछु मेघ न आवै ।
तैसें रज्जब रटत हैं, पिव पीर न पावै ॥३॥

साखी : चकोर चाहि चन्दन उदै, जीव ब्रह्म त्यूं आहि ।
नातौ एकहि वोर कों, यहु दुख कहिये काहि ॥४॥

देखौ बिरह बमेक बिन, उपज्या अहमक अंग ।
दीपक कै दिल ही नहीं, रज्जब पचन पतंग ॥५॥

रज्जब माया ब्रह्म बिच, जीव आपसों जाइ ।
उभै सु बेपरवाह वै, नर देखौ निरताइ ॥६॥

रज्जब जलणा मडे संगि, त्यूं इक अंगी प्रीति ।
दुख सुख की पूछै नहीं, यह देखौ बिपरीति ॥७॥

औषधि कीजै आव बिन, सो लागै कोइ नाहिं ।
त्यूं इक अंगी प्रीति है, समझि देखि मन माहिं ॥८॥

आतम औषधि क्या करै, आगै रोग असाध ।
बहु बिधि बूटी बंध की, लागै नहीं अराध ॥९॥

बज्र न बेधै बीधणी, ब्रह्म बंदगी तेम ।
रज्जब करुना करि थके, रीझै नहीं सु नेम ॥१०॥

अकल कलहु कलिये नहीं, सब भागे जिव जोर ।
रज्जब रही सु एक ही, दरस दया प्रभु वोर ॥११॥

ब्रह्म अगिनि का अंग

ब्रह्म अगिनि सु बिचार है, मैल दहै मन माहिं ।
रज्जब रज यूं ऊतरै, अभिअंतर अघ जाहिं ॥१॥

दरद बिना क्यूं देखिये, दरसन दीनदयाल ।
रज्जब बिरह बियोग बिन, कहां मिलै सो लाल ॥२॥

काया काष्ठ करम जरै, ब्रह्म अगिनि बिच आन ।
पावक प्राण खुलै पावक सों, रज्जब सुन्य समान ॥३॥

चौपदा : काया काष्ठ गुण घुण करम, प्राणी पावक पाया मरम ।
गुरमुख अगनी ब्रह्म ग्यान, रज्जब बहनी बहम खुलान ॥४॥

साखी : प्रभू प्रभाकर अंस है, आतम तनतनु आगि ।
रज्जब संकट सो अटै, सोई मुकत जब जागि ॥५॥

मन मनसा ततपंच लै, पुनि रज्जब रग रोम ।
इहै जोगि जगि जगमगै, ब्रह्म अगिनि मधि होम ॥६॥

बिरह अगिनि की हद्द है, ब्रह्म अगिनि बेहद्द ।
रज्जब रोवै द्यौस दस, ज्ञान अखंडित गद्द ॥७॥

ब्रह्म अगिनि बड़वा अनल, तन तोयं ऊषाहिं ।
इसक आगि काची कहैं, जो बप बारि बुझाहिं ॥८॥

तपति कुंड ब्रह्म अगिनि, ज्यूजल सदा गरम्म ।
बासुदेव बलहिण बिरह की, ऊन्है सीत मरम्म ॥९॥

ब्रह्म अगिनि श्रुत सार मै, ताव सहैं गुन दोइ ।
रज्जब रज तज नीकसैं, बस्त अनूपम होइ ॥१०॥

पंच एक बच्चीस उभै कों, माया माखी खाहिं ।
ब्रह्म अगिनि संजोग ताप कैं, अजरी तहां न जाहिं ॥११॥

बिरह बिभंग का अंग

दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव ।
रज्जब बिरह बियोग बिन, कहा मिलै सो पीव ॥१॥

श्रवनौ सुरति न पीव की, पेम न लेहि समाइ ।
रज्जब रुचि माहै नहीं, कहा मिलै सो आइ ॥२॥

नैनो नेह न नाह का, वहि दिसि दृष्टि न जाहि ।
रज्जब रामहि क्यूं मिलै, तालिब नाहीं माहि ॥३॥

रसना रसह न लाइये, हिरदै नाहीं हेत ।
रज्जब रामहि क्या कहै, हम ही भये अचेत ॥४॥

प्यंड प्राण रोगी नहीं, औषदि नांव न लेहि ।
तौ बैद बिधाता क्या करै, दारू दरस न देहि ॥५॥

दारू चाहै दरदवंद, निरोगी सुन लेइ ।
औषदि अरथी आतमा, जो मांगै सो देइ ॥६॥

भैभीत भयानक का अंग

भै मिलि आतम यूं बंधै, ज्यूं जल सीतल लागि ।
रज्जब अचरज देखिया, कुंभ काया दे त्यागि ॥१॥

समझि सीत लागे जबहिं, प्राणी पाणी दोइ ।
फूटे महि सारे रहै, रज्जब देखौ जोइ ॥२॥

जमे जीव जल ठाहरै, राइल काया कुम्भ ।
रज्जब पघलें बहि चलै, देखौ आतम अंभ ॥३॥

भैभीत बिना भूलै नहीं, देह बिदेह न होइ ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं, कीट भृङ्ग लै जोइ ॥४॥

चंदन संगति चंदनि, पारस कंचन होइ ।
कीट भृङ्ग भै मिलि भये, तो डर समि और न कोइ ॥५॥

जन रज्जब सातक लिये, गरीबी गरकाब ।
तौ प्राणी प्राणी जमै, मारग ह्वै सिर आब ॥६॥

निरभै नटणी पुहम परि, बरद चढ़ै भैभीत ।
त्यूं रज्जब चढ़ि सुरति परि, भै मिलि होहिं अतीत ॥७॥

ज्यूं जिहाज के थंभ सिरि, रह्या काग तजि तेज ।
त्यूं रज्जब भैभीत ह्वै, करहु नाव सो हेज ॥८॥

जे सांई का सोच ह्वै, तौ मन फूलै नाहिं ।
जन रज्जब समटचा रहै, ज्यूं अजा उभै सिंग माहिं ॥९॥

रज्जब राम न भूलिये, जे मीच रहै मन माहिं ।
यादिकरण कों आदमी, या समि और सुनाहिं ॥१०॥

रज्जब डर घर साध का, महापुरुष रहै माहिं ।
तिनके सब कारिज सरैं, जु बाहर निकसै नाहिं ॥११॥

रज्जब डर डेरा बड़ा, बड़े रहैं बिच आइ ।
भै कूं भै लागै नहीं, नर देखौ निरताइ ॥१२॥

भै मिलि सब कारज सरै, भै मिलि निपजै साध ।
रज्जब अज्जब ठौर डर, घर अगम अगाध ॥१३॥

भै मधि भूत भला रहै, डर सों डिगै सुनाहिं ।
संसा सोच सहाइ कौं, मुनी सुगुर मत माहिं ॥१४॥

भाव भगति का मूल भै, भै करि भजियै राम ।
रज्जब भै मिलि मृत्य ह्वै, भै मै सीझै काम ॥१५॥

मिहरि कहरि सों डरपियै, करत हरत क्या बेर ।
ताथैं भै भागै नहीं, रज्जब समुझ्या फेर ॥१६॥

मिहरि कहरि सों डरपिये, ह्वै बिन दिल दलगीर ।
त्रिबिधि भांति त्रासै रहै, रज्जब पूरन पीर ॥१७॥

भै के भंजन मैं रहै, सुकृत सरिषा धन्न ।
जन रज्जब निरभै भये, दह दिसि निकसै मन्न ॥१८॥

भाव भगति भै बिन नहीं, बिन भै भजै न राम ।
रज्जब भै बिन भिष्ट ह्वे, भै बिन सरै न काम ॥१९॥

रज्जब सब डरि निडर कौं, निरभै कौं भै पूरि ।
निरसंसे संसा घणां, परतषि प्राण हजूरि ॥२०॥

नीडर निलज निसंक ह्वै, पूरि करै अपराध ।
जन रज्जब जग सौं रचै, परिहरि संगत साध ॥२१॥

भै भाग्यूं भूलै भजन, सतसंगति रुचि नांहिं ।
जन रज्जब सेवा गई, संसा नाहीं मांहिं ॥२२॥

अदब अकलि मैं पाइये, सरम साफ दिल मांहिं ।
बेअदबी बेसरम मैं, रज्जब रजमा नांहिं ॥२३॥

जो तन निपज्या नीति करि, तहां न नीतिग साज ।
जन रज्जब सुत पंच का, करैं कौन की लाज ॥२४॥

विरक्त का अंग

तागी ताषै की दसा, तहां न माया घास ।
जन रज्जब तब जाणियै, ब्रह्म अगिनि परकास ॥१॥

गृह दारा सुत बित्त सों, यहु मन भया उदास ।
जन रज्जब रामहि रच्या, छूटा जगत निवास ॥२॥

त्याग तेग सौं मारियै, रज्जब लंगर लोह ।
मनसा बाचा करमना, तौ तिनहु लोक में सोभ ॥३॥

रज्जब रहि गया राम मै, तजि रामति का दुंद ।
नभि नीर परसै नहीं, भया सीप की बुंद ॥४॥

बप बसुधा सौं बैर बिधि, बिरच्या लगि बैकुंठ ।
रज्जब रचै न बिनसती, यह उर अंतर अंठ ॥५॥

माया काया मनमतैं, बिरच्या प्रान प्रचंड ।
रज्जब न्यारा नाव बलि, नजर नहीं नौ खंड ॥६॥

बिरच्या बरतै बरतणी, तन मन त्रीतसकार ।
जन रज्जब रत नांव सौ, यहु विरकत व्यौहार ॥७॥

रज्जब रूठा रिद्ध सों, सिद्धि सुहावै नांहिं ।
इन आगै इनका धणी, सो बैठा मन मांहिं ॥८॥

पाई परि पाई नहीं, रिद्धि सिद्धि निधि ऐन ।
रज्जब त्यागी ते पुरिष, संतति सकति न सैन ॥९॥

चौपई : मुख की सिलक गुदा काढ़ी मां, त्यागत सोच नहीं कुछ जीमां ।
त्यूं बिभूति बरतण लै डारी, यूं माया मुनिवर सों न्यारी ॥१०॥

साखी : सोनै मुख पीला किया, रूपै किया सु सेत ।
जन रज्जब सु बियोग वहि, जो साधू किया न हेत ॥११॥

जोड़े के सुख सों रह्या, जड़ काटी जग माहिं ।
रे रज्जब संसार मैं, सो फिरि आवै नाहिं ॥१२॥

रज्जब त्यूंटी त्रिभुवन, करतौं त्रिय तसकार ।
सो जोगी जसवंत जसि, जग मैं जै जै कार ॥१३॥

रज्जब आये रहति मैं, उर अबला अनमेल ।
तनि तिरिया तसकार करि, खेलि चले इक खेलि ॥१४॥

नर नारी न्यारा भये, निकसि गया नौ खंड ।
रज्जब राता राम सों, रही सु माया मंद ॥१५॥

रज्जब त्यागी घर बरनि, परनारी न सुहाइ ।
अहि अपनी तजि कांचली, काकी पहिरै जाइ ॥१६॥

मनसा बाचा करमना, यहै न त्यागनहार ।
रज्जब रुचै न ऊखलै, उर अबलारु अहार ॥१७॥

रज्जब रबि के दरस तैं, अरुचि छींक चषि नीर ।
सक्ति सुन्दरी सनमुखै, सो गति साधू बीर ॥१८॥

कायर कोटहुं सौ गिरहिं, कंध न लेहिं करवाल ।
त्यूं अधपति अबलहुं सु डर, गहै गरीबी हाल ॥१९॥

साधू सुत कै जावणैं, हरि सिद्धी नहिं हेत ।
पूत नीपजै मात मरि, खोटा खच्चर बेत ॥२०॥

बादल बाइ बारि रन मोती, सरगुण निरगुण राखै राग ।
केलि कपूर बहुरि नहिं आवैं, यूं रज्जब बीधा बैराग ॥२१॥

धन्य जु निकस्या धूम ज्यूं, रह्या सुन्नि करि सीर ।
रज्जब तीर कमान ज्यूं, उलटि फिरैं बहु बीर ॥२२॥

प्राणी पारे परि रमै, बामा बैद न दूर ।
पै उभै न पावैं उभैकर, जो ह्वै गये कपूर ॥२३॥

पारे प्राण कपूर हैं, उभै उड़ै समि साथ ।
एक सु बामा बैद करि, एक सु नावहिं हाथ ॥२४॥

विरकत तापहु पवण की, सो सम कही न जाइ ।
बीज बुहारी की पङणि, नर देखौ निरताइ ॥२५॥

धौ गति त्रूटै एक को, सालरि गति सब कोइ ।
रज्जब टूटा सो भला, जो फिर हरचा न होइ ॥२६॥

मिहरी मूगौड़ी भई, साधू मन भै काग ।
जन रज्जब जी यों तजै, ताके मोटे भाग ॥२७॥

मूंगौड़ी बाइस तजी, त्यूं बैरागी तजि बाम ।
पंषी की पर लीजिये, रज्जब सरैं सु काम ॥२८॥

नारी नैन न देखिये, श्रवणौं सुनिये नाहिं ।
बइयर बचन न बोलिये, रज्जब रस भंग माहिं ॥२९॥

माता मेरी सकल ही, जो जनमी जगि आइ ।
जन रज्जब जननी सबै, कासौं बिषै कमाइ ॥३०॥

जामाता मैं हम भये, सो माता सब ठौर ।
रज्जब बिरच्या यूं समझि, नहीं भजन कोइ और ॥३१॥

सब ही माता सब बहेन, सब पुत्री कर जानि ।
रज्जब कै रमणी नहीं, समुझ्या सतगुर ज्ञानि ॥३२॥

रज्जब रिकसे पूत ह्वै, पैठै पुरिष न होइ ।
नाता माता का रह्या, सो जन बिरला कोइ ॥३३॥

नारी नींद न बिलसिये, सुंदर सुपनै त्यागि ।
जन रज्जब जगि वह जती, बंदनीक बैरागि ॥३४॥

मनसा नारी त्यागि करि, मन बैरागी होइ ।
रज्जब राखै जतन बहु, जती कहावै सोइ ॥३५॥

रज्जब दारा देह कौं, परसै पुरुष न प्रान ।
बालिक बिसन न ऊपजै, सो बैरागी जान ॥३६॥

पंच बिसै पंचौं रहित, मन सु मनोरथ त्याग ।
रज्जब लाइक राम की, यह उत्तिम बैराग ॥३७॥

मनसा पंच भरतार तजि, जे बैरागिन होइ ।
रज्जब पावै परम घर, जहां न सुख दुख दोइ ॥३८॥

जन रज्जब तनसूं तरक, मन की मानै नाहिं ।
सो विरकत ब्रह्मण्ड मैं, बैठा निज मत माहिं ॥३९॥

माया मोह मदन मन मारै, काया कसणी दंड ।
सो रज्जब विरकत सही, घर ही मै बनखंड ॥४०॥

सूख बृक्ष संसार यहु, पंषि प्राण तजि आस ।
रज्जब पत्र न फूल फल, त्रिबिधि भांति सुख नास ॥४१॥

मिरतग कौं मूली* नहीं, क्या फूटे बिन आगि ।
रज्जब रीते भाव बिन, सो प्राणी दे त्यागि ॥४२॥

रज्जब रीते प्राण मै, हेरि चढ़ै क्या हाथि ।
बैद न करइ बैदगी, मुये सरीरों साथि ॥४३॥

रज्जब रीती आतमा, जे हिरदै हरि नाहिं ।
तहां समागम को करै, सूणे मंदिर माहिं ॥४४॥

प्यंड प्राण बिन कुछ नहीं, त्यूं आतम बिन राम ।
सूनै सदनौ सोभ क्या, रज्जब रीती ठाम ॥४५॥

भेड़ न चाटै भेड़ कौ, सुख दुख ह्वै भैभीत ।
रज्जब तैसी टौर तजि, लै पसु की रस रीत ॥४६॥

रज्जब चाटै भेड़ सुत, जब लग सुद्ध सरीर ।
भुरट भूड़ भरि आवतों, मुख मेलै नहिं बीर ॥४७॥

तन मन त्रिगुणी त्यागि करि, आतम उन मनि लागि ।
सो रज्जब रामहि मिल्यूं, घट पट अंतर भागि ॥४८॥

ध्रू अनाथ ह्वै नीकस्या, तब सु सरे सब काज ।
रज्जब पाया प्रान नै, धरे अधर का राज ॥४९॥

सूषिम त्याग का अंग

बसि अबसि छूटहिं सदा, जन रज्जब रिधि राज ।
पै मनह मनोरथ त्यागणे, महा कठिन यहु काज ॥१॥

ब्याज राज सब त्यागिये, मूल मनोरथ माहिं ।
जन रज्जब जिव जगत सों, तब लगि छूटै नाहिं ॥२॥

तन सों बिषिया छूटई, पर मन सों छूटै नाहिं ।
रज्जब कुसमल तब लगै, गृह बैराग सु माहिं ॥३॥

रज्जब नारी माहैं नर घड़ें, नर मैं नारि अनंत ।
महलाइत मनमाहली, तजै सु साधू संत ॥४॥

---

* मूली के स्थान पर दवा पाठ भी मिलता है ।

मोह मरदन निरमोही का अंग

ज्यूं सलितहुं समदी मिलहिं, त्यूं पंचतत परिवार ।
सो संतति कछु है नहीं, रज्जब समझि बिचार ॥१॥

ज्यूं रज्जब नर नांव मैं, दह दिसि बैठहिं आइ ।
पार गये पंथू पड़े, मोह न बांध्या जाइ ॥२॥

बहु बिहंग बैठे बिरषि, पंथी बसै सराइ ।
रज्जब मोह न बंधहीं, नर देखौ निरताइ ॥३॥

बैरी मिलहिं सु बैर बिधि, रणी मिलै रण भाइ ।
रज्जब चूकै बैर रणि, पीछे रह्या न जाइ ॥४॥

सीत कोट सपने की संपति, माया मोहिनि बंद ।
रज्जब रारचू देखतौं, कहां होइ जाचंद ॥५॥

संपति बिपति मदहरन का अंग

संपति बिपति सु मदहरन, जामैं यहु मत होइ ।
रज्जब रिधि आये गये, जे रंग न पलटै कोइ ॥१॥

रज्जब संपति बिपति मैं, साहस एक समान ।
आतम अकलि अतीत वह, पाया पद निरवान ॥२॥

मान रहत अरमान मैं, सुमन समन्दर देखि ।
संपति मिलि सो ना बंधै, घटै न बिपति बसेखि ॥३॥

संपति मैं सूधे द्रसैं, बिपति मध्य बहु बंक ।
रज्जब मन सु मयंक से, नहिं ईसर नहिं रंक ॥४॥

पूजा पुष्टि सु दीन ह्वै, बिन पूजा बलिवंत ।
रज्जब लीनी बाल बुधि, समझ्या साधू संत ॥५॥

संपति मैं सिमटी रहै, बिपति बिगासै जोइ ।
साध कली ज्यूं जाइकी, गुण नहिं व्यापै कोइ ॥६॥

आकिल अंघ्रप सक्ति सलीलहि, तौ तन कोमल कोर ।
रज्जब रहता उभै रस, काया कष्ट कठोर ॥७॥

बहु पूजा मन लग भये, तुछ सेवा दीरघ ।
रज्जब अज्जब देखिया, महत महोदधि मघ ॥८॥

ल्यौ का अंग

रज्जब ल्यौ मधि लंघियेहि, लांबे लोक अनंत ।
आतम के अंतर उठै, कामणि पावै कंत ॥१॥

ल्यौ लाग्यूं लहिये अलह, ल्यो मैं लूटि अपार ।
रज्जब ल्यौ लहिये लुक्यां, उर आननि आधार ॥२॥

ल्यौ की लाठी मारतौं, मीच सु मारी जाय ।
रज्जब ल्यौ लालहिं मिलै, ल्यौ मैं काल न खाय ॥३॥

रज्जब ल्यौ मैं लाभ है, लीनहु वारहु माहिं ।
ल्यौ मैं लत लागै नहीं, और खता मिटि जाहिं ॥४॥

जन रज्जब या लोग मैं, ल्यौ निस्तारनि हार ।
आदि अंत मधि मुनि मही, लघु दीरघ ल्यौ लार ॥५॥

रज्जब लाइक ठौर ल्यौ, ल्यौ मैं रहै सुलाज ।
लघु दीरघ ह्वै लागि ल्यौ, ल्यौ करणी सिरताज ॥६॥

ल्यौ मारग लूटैं नहीं, लोभी लूटण हार ।
रज्जब पग लागै चलहिं, परपंची सिरदार ॥७॥

रज्जब लाहा लाभ ल्यौ, टूटे टोटा हाणि ।
सावधान सांधे रही, रे जिव जीवण जाणि ॥८॥

ल्यौ सुमिरण धुन ध्यान धरि, चितबि नेह कर नाम ।
जन रज्जब जपि जिकर रटि, सुरति संभालौ राम ॥९॥

बंदे कौ यहु बंदगी, साहिब करना यादि ।
यहि सेवा सुमिरन यहै, यहै जिकरि फरियादि ॥१०॥

सुमिरन का अंग

श्लोक : राम नाम मूल मंत्रं, सत्य नाम निरंजनं ।
जथा धावै तथा पावै, भजे भरियै भंजनं ॥१॥

साखी : रज्जब रटि जटि नाम सौं, आठौ पहर अखंड ।
सुमिरन सम सौदा नहीं, निरखि देखि नौ खंड ॥२॥

इस माया मंडाण मधि, सुमिरण सम कछु नाहिं ।
सो अधार उर राखिये, जन रज्जब जिव माहिं ॥३॥

बावन आषिर बार निधि, मध्य रतन रंकार ।
रज्जब लिया बिलोइ बित, आतम का आधार ॥४॥

रज्जब भजन भंडार मैं, दीरघ दौलति दोइ ।
इहां सुखी संसार मधि, आगे आनंद होइ ॥५॥

रैणाइर रंकार मधि, मुक्ता रिधि सिधि माहिं ।
जन रज्जब मति जाप करि, रतनहु टोटा नाहिं ॥६॥

साहिब कै धरि सौंझ बहु, सुमिरन सम कोइ नाहिं ।
रज्जब भजि भगवन्त ह्वै, सकल बोलता माहिं ॥७॥

रज्जब बंदा बंदगी, कियूं सरै सब काज ।
सेवक सेवा करि लहै, सिरी सहित सिरताज ॥८॥

अकलि उजास अनंत बलि, रिधि सिधि निधि मधि नाम ।
रज्जब आवहिं स्यौ सकति, सति सुमिरन जेहिं ठाम ॥९॥

रज्जब अज्जब राम धन, बिघन रहित बहु माल ।
बित बेहद जाकौं मिलै, भाग भले तहिं भाल ॥१०॥

तीन लोक चौदह भुवन, अरु ब्रह्मण्ड इकीस ।
सब ठाहर सीझै सुमिरि, रज्जब रह जगदीस ॥११॥

च्यारिहुं जुग चहुं बेद मुख, सबै दृढ़ावहिं नाउं ।
रज्जब सिधि साधिक हैं, यहु सीझण की ठाउं ॥१२॥

षट दरसन नावैं कहै, नावैं बेद कुरान ।
तौ रज्जब नावैं गहौ, पाया भेद बिनान ॥१३॥

सब ही बेद बिलोक करि, अंत दृढ़ावहिं नाम ।
रज्जब जग जगदीस भजि, येता ही है काम ॥१४॥

साध बेद बोलहिं सु यौं, राम कहै सब कौन ।
जन रज्जब जग ऊधरहिं, जो जिव जगपति लीन ॥१५॥

रज्जब पैठे राम मैं, सो रट द्वारै होइ ।
मिलिबै को मारग इहै, और न दूजा कोइ ॥१६॥

साध बेद सारे कहैं, सब तजि सुमिरन लाग ।
रज्जब रत रंकार यौं, मस्तगि आया भाग ॥१७॥

रज्जब टीका नांव कौं, बेद पुरान सु देहिं ।
यूं ततबेता त्यागि सब, हरि सुमिरण करि लेहिं ॥१८॥

नांव लागि नर निस्तरहिं, हिंदू मूसलमान ।
उभै ठौर एकै कही, रज्जब बेद कुरान ॥१९॥

गगनि गुड़ी कुंभ कूपि ह्वै, त्यूंब अगम नरनाथ ।
तौ तीन्यूं क्या दूरि हैं, जे रज्जब रज हाथ ॥२०॥

एक अलिफ मैं सब इलिम, कुलि कतेव कुरान ।
हत्या तजि हाफिज भया, जन रज्जब सब जान ॥२१॥

सब इलमौ सब अलफ है, कुलि कामिल इस माहिं ।
तू तामैं पै बस्त होई, और कह्या कछु नाहिं ॥२२॥

रंकार अलिफ चहुं बेद मैं, है आतम अरवाहि ।
रटि रज्जब कण लीजिये, भूलि न कूकस खाहि ॥२३॥

रंकार अलिफ रोटी बड़ी, रज्जब रुचि सौं खाइ ।
भूख भंग भगवंत लग, यह धापन की राह ॥२४॥

ररैं रीझ्या राम जी, अलिफ अलह अस नांव ।
रज्जब दून्यूं एक हैं, मन बच क्रम करि गाव ॥२५॥

रज्जब राम रहीम कहि, आदि पुरुष करि यादि ।
सदा सनेही सुमिरियै, जनम न जाई बादि ॥२६॥

अल्लह अल्लह कहत ही, अल्लह लह्या सु जाइ ।
रज्जब अज्जब हरफ है, हृदै हेत चित लाइ ॥२७॥

सकल नांव जिव के सगे, जाप जिकर रट जंत ।
रज्जब राम रहीम रत, मिल्या सु निरमल मंत ॥२८॥

नांव अनेकौ एक है, तौ भज राम रहीम ।
ज्यूं त्यूं सुमिरै सांइयां, जन रज्जब सु फहीम ॥२९॥

नांव अनंत अनंत के, सो सब एक समान ।
रज्जब जाणै सो सुमिर, मन बच क्रम उर आन ॥३०॥

नांव अनेकौं एक गुन, ज्यूं बहु बूंदहु बारि ।
जन रज्जब जाणिर कही, नर देखौ सु निहारि ॥३१॥

ज्यूं आतम अरवाह इक, त्यूं ही राम रहीम ।
उदिक आब कछु द्वै नहीं, रज्जब समझ फहीम ॥३२॥

साहिब सबका एक है, राखे नांव अनेक ।
रज्जब समुझै समझ ही, पूरन परम बिबेक ॥३३॥

रज्जब नांव सु एक के, अनतौ कहै अनंत ।
कोई सुमिरौ येक फल, बेत्वा बदति महंत ॥३४॥
सो तू सांई सुमिरिये, बैठ्या ब्रह्म संभाल ।
रज्जब रामहि ले उठहु, ले लागा मधि चाल ॥३५॥
लीये सूता ले उठै, मुखि हिरदै हरि नाम ।
जन रज्जब ज्यूं जीव सब, अपणे अपणे काम ॥३६॥
ज्यूं जोगी मृग सींग * सौं, बिप्र जनेऊ जाणि ।
त्यूं रज्जब रामहि गहौ, तकि हारिल की बाणि ॥३७॥
तन मन ले सुमिरन करे, रोम रोम रटि राम ।
यूं रज्जब जगदीस भजि, सरै सुआतम काम ॥३८॥
सुमिरण सुरति संभालणा, अवगति या दिअराध ।
भजन इहै भूलै न प्रभु, रज्जब निज मधि लाध ॥३९॥
बंदे कौ यहु बंदगी, साहिब करणा यादि ।
इह सुमिरण सेवा इहै, इहै जिकर फरियादि ॥४०॥
तुही तुही तनमै करै, इक तत त्रिष तिहुं काल ।
जन रज्जब रुचि सों रटै, भाग भले तिहिं भाल ॥४१॥
प्राण प्यंड ब्रह्मण्ड मधि, जीव जगत गुर नांव ।
संत सजीवन सो सुमिरि, तिनकी मैं बलि जांव ॥४२॥
नांव लेत निरभै भये, साधू सुर नर सेस ।
जन रज्जब लै लूटि है, मनिषा देही देस ॥४३॥

अरिल : सदा सनेह रहै सुमिरण सूं, भाग भजन मै भीगा भाव ।
जन रज्जब जपि जीवन जीया, मनिषा देही पाया डाव ॥४४॥

साखी : सब ठाहर सु उपाधि है, सुमिरन मैं सु समाधि ।
रज्जब गुर परसाद सूं, सो ठाहर सुख लाधि ॥४५॥
सुमिरण सतिया पीजिये, तौ नख सख सीतल होइ ।
दूजी ठाहर दहण सब, रज्जब देखा जोइ ॥४६॥
सुमिरण सहद सु पीजिये, प्राण प्यंड ह्वै पोष ।
रज्जब दोष कहां रहै, भागै अंतर दोष ॥४७॥
सुख अनंत हरि नांव मैं, जाका वार न पार ।
जन रज्जब आनंद ह्वै, सुमिरयूं सिरजनहार ॥४८॥

---

* सिंह पाठ भी मिलता है ।

सबल सुखी हरि सुमिरि तौं, मनसा बाचा मानि ।
जन रज्जब रुचि सौं रटी, यहु जिव जीवन जानि ॥४९॥

रज्जब अज्जब काम है, राम नाम रुचि सेव ।
आठौ पहर अखंड रटि, मानिष सौं ह्वै देव ॥५०॥

सांई सुमिरन सत्ति है, सदगति सुमिरन हार ।
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी, बक्ता सुरता पार ॥५१॥

सुरति माहिं सांई सुमिरि, नाउं निरति मधि राखि ।
जन रज्जब जग ऊधरै, सतगुर साधू साखि ॥५२॥

रज्जब अज्जब यह मता, निस दिन नाउं न भूल ।
मनसा बाचा करमना, सुमिरन सब सुख मूल ॥५३॥

सुमिरण समि संपति नहीं, धन नहिं ध्यान समान ।
बित यहु बारंबार लै, रज्जब रिधि रट जान ॥५४॥

निमिष महूरत नाम लै, तिल पल सुमिरन होइ ।
जन रज्जब इस उमरि मैं, बरियां साफिल सोइ ॥५५॥

सोई बेला सो घड़ी, सो छिन मात्र रसंति ।
रज्जब रहियै राम मैं, और अकारथ जंति ॥५६॥

सुमिरण मैं सुकृत सबै, जे मन बच क्रम होइ ।
जन रज्जब जगपति मिलै, भेद न भ्यासै कोइ ॥५७॥

सब सुकृत सेवग किये, जब जिव जगपति लीन ।
रज्जब राम बिसारतौं, बिबिधि बुराई कीन ॥५८॥

नांव लेत नेकी उदै, बिसरति बदी होइ ।
जन रज्जब जाणी जुगति, परतषि दीसै दोइ ॥५९॥

रज्जब तिरिये राम भजि, बूड़ै राम बिसारि ।
जगपति जाण्यों जीति है, हिरदै नहीं हितहारि ॥६०॥

निरभै प्राणी नाव मैं, सो भूलै भै पूरि ।
ज्यूं रज्जब सुखि मीन जल, दुख दीरघ जब दूरि ॥६१॥

नाउं निरंजन नीर है, महा मुनी मन मीन ।
सुख सागर माहैं सुखी, दुख दीरघ जब भीन ॥६२॥

नाव नेह सेती भजै, तौ कोइ गुण व्यापै नाहिं ।
पै हरि सुमिरन हेत बिन, तौ दूंदर दगधै माहिं ॥६३॥

नाज नांव की एक गति, पाणी पेम सु पोष ।
इन दोन्यूं कै दोइ बिन, रज्जब रबि गुन दोष ॥६४॥

रज्जब नांव नराधिपति, सकल अंग उमराव ।
मेलै कारिज सिद्धि ह्वै, अमिल मडै नहिं पाव ॥६५॥

अज्ञान कष्ट अटसट सहित, बरत सु रोजे कीन ।
जन रज्जब हरि नांव मैं, मन बच क्रम जो लीन ॥६६॥

सुमिरण करै सु सास्तर, बुधि उपजै सो बेद ।
बिषिया तजै सो व्याकरण, रज्जब पाया भेद ॥६७॥

अस्थूल सु आषिर अर्थ हरि, काढ़ै पंडित प्राण ।
रज्जब ज्ञाता गुणी सो, समुझा सोई सुजाण ॥६८॥

अर्थ किया तिन प्राण नै, तन मन लाया ठौर ।
रज्जब रहि गया राम मैं, भूलि न भ्यासै और ॥६९॥

कौड़ी कौड़ि न चाहिये, कहतौं केवल राम ।
रज्जब दम दम सुमिरियै, नहीं दामों सूं काम ॥७०॥

दया रूप नर तरु मई, पै गुन स्वाद न जाहिं ।
ब्रह्म अगनि निज जांव बिन, रज्जब सो धन माहिं ॥७१॥

सप्त धात तन शुद्ध ह्वै, पड़ि पावक प्रभु नांव ।
रज्जब रजमल ऊतरै, बासदेव बलि जांव ॥७२॥

सप्त धात पलटै सु तन, परसे पारस नांव ।
रज्जब बटैं कलंक पुल, प्रभु प्रभुता बलि जांव ॥७३॥

हरि सुमिरन संसा हरै, पाप जाप सौं जाहिं ।
जन रज्जब जगदीस भजि, नौ निधि है जामाहिं ॥७४॥

करमहुं करम सु नांव निज, जमका जम हरि जाप ।
रज्जब रटतौं नां रहै, प्राण प्यंड के पाप ॥७५॥

रज्जब बीरज नांव निज, रिधि सिधि डाल बतीस ।
पहुंपपत्र प्रभुता अनंत, राम नाम फल सीस ॥७६॥

घट दीपक बाती पवन, ज्ञान जोति सू जासि ।
रज्जब सींचे तेल लै, प्रभुता पुष्टि प्रकासि ॥७७॥

नांव निरंजन नीर है, सब सुकृत बनराइ ।
जन रज्जब फूलै फलै, सुमिरन सलिल सहाइ ॥७८॥

सुमिरन सेवा मूल है, सब सुकृत सिंगार ।
रज्जब सोभा सकल की, देखहु सुमिरन हार ॥७९॥

नांव नाक बिन कछु नहीं, सुकृत सबै सिंगार ।
रज्जब रुचै न राम बर, तामैं फेर न सार ॥८०॥

सब सुकृत हैं सुन्नि समि, एकाएक सुभाव ।
इष्टि लागि दस गुन सबै, नहीं त नाहीं ठांव ॥८१॥

भौ समूद्र सिर पै धरी, नांव निरंजन नांव ।
जाया चाहै पार कौ, सो प्राणी चढ़ि जाव ॥८२॥

जपि जिहाज जलनिधि जगत, जीव चढ़ौ कोइ आइ ।
रज्जब पारस परम गुरु, सो पद परसै जाइ ॥८३॥

रज्जब अज्जब देखिये, जपि जगदीस जिहाज ।
प्राणी पहुंचै पार चढ़ि, सरै सु आतम काज ॥८४॥

बोहित बिन क्यूं समंद लंघिये, औषदि बिन क्यूं रोग ।
त्यों रज्जब निज नांव बिहूना, कदे न निपजै जोग ॥८५॥

ब्रह्म बिरछ कौ सहस जड़, सबही वोषदि आदि ।
रज्जब सोग कहां रहै, षाइर दीज्यो दादि ॥८६॥

चौपई : देख्या दह दिस नाहीं माग, रज्जब उलटा उनमन लाग ।
सुमिरन सांच उतरिबा पार, नौ लखि कावंर येक दुवार ॥८७॥

सोरठा : समझि सुहागा रूप, सांच सहित सुमिरन करै ।
रज्जब जुगति अनूप, जेहि कंचन करता गरै ॥८८॥

साखी : निहचै परि नावै नहीं, करणी बड़ा करार ।
जन रज्जब सब सोधि करि, काढया सुमिरन सार ॥८९॥

रज्जब निहचै नीव करि, भाव भगति की भीति ।
सो सुदिढ़ निहचल रहौ, और सबै भै भीति ॥९०॥

भगति भावली ठाहरै, चपल चावली जाइ ।
रज्जब समझि असमझि का, भजन भेषि निरताइ ॥९१॥

रज्जब रत रङ्कार सूं, मम्मै मनसा नाहिं ।
सदा सुखी सुमिरन करै, महा मगन मन माहिं ॥९२॥

लिख्या पढया सीख्या सुणया, जीव कह्या जब राम ।
मनसा बाचा करमणा, येता ही है काम ॥९३॥

चौपई : पाव नांव छांड़ै संसारा, अरधै नांव सरीर बिसारा ।
पौण नाम जीव ब्रत त्यागी, सेर नाम सोइ सूरत लागी ॥९४॥
नींद लागि होई निरमूलै, तौ सुमिरन संगि क्यूं न सब भूलै ।
पांसि पसारा परसै नाहीं, यूं रज्जब न्यारा है माहीं ॥९५॥

भजन भेद का अंग

सब कसणी साधन किये, त्यागी सूर सुजाण ।
जो रज्जब रामहिं भजै, मन मनसा धरि आण ॥१॥

जन रज्जब जंजाल तजि, मन मनसा करि ठाइं ।
करनै कौ कहु क्या रह्या, यूं लागा जब नाइं ॥२॥

रज्जब राखौ नांव मैं, पंच पचीसौ मन्न ।
सब सुमेटि सुमिरन करै, सोई साधू जन्न ॥३॥

रज्जब सुमिरै राम कौ, रोकि दसौं दिसि द्वार ।
नख सख राखै यांव मैं, यों ही पैला पार ॥४॥

जन रज्जब जगदीस भजि, आतम के अस्थान ।
सुख सागर संबूह की, अंतर उघड़ै खानि ॥५॥

रज्जब भजि भगवंत कौं, तन मन भीतरि पैठ ।
निरमल नैनौ निरखि मधि, नाभि निरंतर बैठ ॥६॥

नाभि निरंतर नाव बिन, राखै भाषै नांहि ।
रज्जब सब पड़दे उठे, जाकै यहु मन मांहि ॥७॥

नाउं निरंजन लीजिये, तन मन आपौ गालि ।
तौ रज्जब रामहिं मिलै, बैठें सालहि सालि ॥८॥

नाउं निरंजन लीजिये, तन मन आतम मांहि ।
जन रज्जब यूं सुमिरितौं, परमपुरिष मिलि जांहि ॥९॥

अस्थिर आतम एक पल, रज्जब भजई राम ।
मन मोती ज्यूं नीपजै, स्वाति नछत्री नाम ॥१०॥

नहीं सु निकसे आरसी, छती सु गायब होइ ।
रज्जब दरपन सती कै, परतषि दीसै दोइ ॥११॥

साध सती रामै कहै, परिहर तन धन प्रीति ।
इष्ट अभ्यासै उभै को, तज भजणी रस रीति ॥१२॥

एक बंदगी बिस्व में, एकै ब्रह्म सु होइ ।
रज्जब सावण स्वाति की, बारि बंद गुण दोइ ॥१३॥

तन सुमिरन ढेकूं चड़स, रहट रूप उनहार ।
रज्जब सुमिरन सुन्नि मन, बरषा बिपुल अपार ॥१४॥

अराध अराधहु अंतरा, भजनि भजनि बहु भेद ।
रज्जब पावै एक कौ, नर निज नांव न खेद ॥१५॥

भगवंत भजन सब बिधि भला, पायें मनिषा जूनि ।
रज्जब सुमिरन सो सही, जापरि सरवै सूनि ॥१६॥

सुमिरन लागे लोक बहु, परि लहै न ठांबी ठौर ।
रज्जब मिलिये राम सौं, वह अराध कोई और ॥१७॥

औषधि अकल अराध है, सब सन्तन की साखि ।
रज्जब रोग न तनि रहै, कोई ल्यौ पछ राखि ॥१८॥

नांव नेह बिन लीजिये, ज्यूं रूखा खाया नाज ।
रज्जब प्रान न पुष्ट ह्वै, मरै न जीवन साज ॥१९॥

काचे पाके रूखे सूखे, नाव नाज नहिं दोष ।
पै छप्पन भोग सहत जणीजै, सो कछु औरै पोष ॥२०॥

रज्जब भै भगवंत कै, रोम कहै उठ राम ।
अहुठ कोड़ि रटि एक फल, एकहि एकहि नाम ॥२१॥

ऊंचा नीचा होइ जग, करि डंडौत निमाज ।
सु रोम रोम रज्जब भया, गुर गोव्यंद कै काज ॥२२॥

अठार भार ऊभी भई, आइय अबगति नांव ।
रज्जब जीये राम रस, सो बेला बलि जांव ॥२३॥

रज्जब माया ब्रह्म का, रोम रोम रस पीन ।
सो विहड़ै तिन बिछुड़ तैं, जैसे जल बिन मीन ॥२४॥

जन रज्जब बिछुड़त मरहिं, जिनकै अमल अराध ।
मनसा बाचा करमना, साखी सतगुर साध ॥२५॥

नीत निबृति प्रभुता प्रभू, चतुर अस्थानि गौन ।
रज्जब पावै प्राणपति, भृति भगवंत सु भौन ॥२६॥

सरियत सेव सरीर की, तरीकत दिल राह ।
माहिं मारफत कीजिये, हकीकत मिल जाह ॥२७॥

धरम जोग ब्रह्मण्ड मधि, करम जोग प्यंड माहिं ।
भगति जाग सो प्राण घरि, अगम जोग ठहराहिं ॥२८॥

मणिये मोहन नाव सब, सूत समीरन मेरु ।
जन रज्जब हित हाथि लै, आठौ पहर सुफेरु ॥२९॥

अकल कष्ट सेती घड़े, मणिये नाव अनंत ।
रज्जब माला माहिली, सुमिरै साधू संत ॥३०॥

पंच पचीसौ त्रिगुण मन, ये मणिये जिन फेर ।
रज्जब माला माहिली, जोगेस्वर जप हेर ॥३१॥

मारुत मौज सु माला मणियै, मनहु उधारण मंत ।
रज्जब जूना जाप यहु, जोगेस्वर सुमरंत ॥३२॥

माला घटि मणियै सबै, सुमिरै सांई साध ।
रज्जब त्रुब तसबीर ही, माला मिली अगाध ॥३३॥

रज्जब माला माहिली, जाकौं सतगुर देइ ।
सो सुणि कांधे काठ का, कबहूं भार न लेइ ॥३४॥

रज्जब सुमिरन माहिला, माला रहित सु होइ ।
पंच पचीसौ त्रिगुण मनहि, बिरला फेरै कोइ ॥३५॥

बिदा होहिं बाइक बदन, छूटहिं सांस सरीर ।
तब काष्ठ कर कौन के, सुमिरण सुरति सधीर ॥३६॥

रज्जब उर करि कै भजनि, कछु पाड़ा पड़ि जाइ ।
जथा रुपैया ठौर बिन, गैरी नाउं कहाइ ॥३७॥

रज्जब उर करि कै भजनि, अंतर ह्वै द्वै हाथ ।
आतम अबला धाम मै, बर बाहर निज नाथ ॥३८॥

रङ्गमहल रंकार मधि, रहै जु आतम राम ।
सो सुख मुख नहिं कहि सकै, सुरति लहै बिश्राम ॥३९॥

रज्जब सुमिरन सवन मधि, धरे अधर के सुख ।
जे कोई पैठै प्राणिया, कदे न पावै दुख ॥४०॥

सब आषिर सांई सुमिर, दे दिब दृष्टी दास ।
रज्जब रत ररैं ममै, त्यूं ही प्राण पचास ॥४१॥

बावन आषिर करि भजै, बेत्वा बावन बीर ।
जन रज्जब सुध बुद्ध का, ररै ममै मैं सीर ॥४२॥

रज्जब रहै न नाव बलि, नेह बिना मन बीर ।
ज्यूं चूणै बिन पाथरहु, रोक्या रहै न नीर ।।४३।।

अजपा जाप का अंग

सरीर सबद अरु सांस करि, हरि सुमिरण तेहुं ठांव ।
जन रज्जब आतम अगम, अजपा इसका नांव ।।१।।

मुख सौं भजै सु मानबी, दिल सौं भजै सु देव ।
जिव सौं जपै सु जोति मैं, रज्जब सांची सेव ।।२।।

मुख आषिर मुखि सप्त सुर, मुखि भाषा सु छतीस ।
ये तौं ऊपरि उर भजन, अण आषिर जगदीस ।।३।।

नेह निन्यानबे सूं किया, ध्यान धरया बिन अंक ।
रंज्जब मनहु जिहाज बिन, हणवंत पहुंच्या लंक ।।४।।

रज्जब सहस नांव पंखौ सुपरि, आतम जाहिं अकास ।
एक प्राण पारा मई, उड़हिं नाव परनास ।।५।।

नर नग गुटिका सिद्ध तन, पंखौ बिना उड़ंत ।
तैसे रज्जब नांव बिन, नेह माग तहं जंत ।।६।।

रज्जब हित पर हद हुई, निरख्या नेह निराठ ।
पै पाया पाषाण मुख, करी सु ऊबट बाठ ।।७।।

नांव सुई पट प्राणपति, सुरत सनेही ताग ।
रज्जब रज तज काढ़तौं, कौन बसत बिच लाग ।।८।।

रज्जब रटतौं जीव ही, चित चात्रिग समि जाप ।
नक्र बक्त्र बोलै नहीं, आप हरत हरि आप ।।९।।

रज्जब रसना रहत रस, पीवै प्राण प्रबीन ।
बक्र बिना ज्यूं बारि सुख, रोम रोम लै मीन ।।१०।।

रज्जब रसना बोलई, चहुं यंद्री चुपचाप ।
पै पंचूं का रज सम्रथ, यूंस अबोल्या जाप ।।११।।

मुख मारुत सेती अगम, सुमिरन सुरति मंझार ।
रज्जब करसी एक कौ, अजपा जप व्यौहार ।।१२।।

बक्त्र बैन बाई रहत, होइ सु अजपा जाप ।
रज्जब मन उनमनि लगै, प्रगटै आपै आप ।।१३।।

मिहरी पतिब्रत मीन मत, डून्यूं नांव न लेह ।
पै होते इष्ट अलाहिदे, नेह मांग जिव देह ॥१४॥

कच्छी पंछी हेत लेहु, अंडे क्यूं उपजंत ।
रज्जब राम कहै बिन ऐसे, अजपा जाप करंत ॥१५॥

हरिजी गाहक हेत के, नारायण ले नेह ।
तौ मनसा बाचा करमना, संतहु करहु सनेह ॥१६॥

रज्जब जपि जपि जन थके, अजप जप्या नहिं जाइ ।
अगह अंब ज्यूं आरसी, आंख्यूं सो न गहाइ ॥१७॥

सुपिनै मन सुमिरण करै, लगै नहीं तन ताप ।
अचेत उदर अरभक बंधै, यों ह्वै अजपा जाप ॥१८॥

मन पवन अरु सुरति कौ, आतम पकड़ैं आप ।
रज्जब लावै तन्त सौं, यौं ही अजपा जाप ॥१९॥

सुमिरन सुन्नि समानि है, आतम आभ अनेक ।
रज्जब बाइ बिचार मिल, बाट बटाऊ एक ॥२२॥

ब्रह्मण्ड प्यंड मन प्राण तजि, सुख मैं सुरति समाइ ।
रज्जब अजपा जाप यहु, नर देखौ निरताइ ॥२०॥

सुरता सुई समानि है, रज्जब बैद बमेक ।
अमलबेत आराध मैं, उभै बस्त ह्वै एक ॥२१॥

नांउं लिहारी नापगा, नदी नाथ निज नांव ।
पंथ पथिक मिलि एक ह्वै, यहु अजपा बलि जांव ॥२३॥

जिस नुकतै साहिब स्रवहिं, सही सु अजपा जाप ।
रज्जब पावै प्राण सों, जा जीवहिं दे आप ॥२४॥

चौपई : प्रेम प्रीति हित नेह सु यारी, राम मुहबति सुरति सभारी ।
रज्जब रत रुचि धूमि सु आगे, द्वादस कला लगनि कौ लागे ॥२५॥

ध्यान का अंग

बिभूति भूत भगवंत लगि, होहं सोहं ध्यान ।
जथा धोम पावक सहित, रज्जब सुन्नि समान ॥१॥

ध्यान रुधिर खीरौ भया, ध्यान सु लोहू काम ।
तैसे रज्जब ध्यान मैं, प्राण पलटि ह्वै राम ॥२॥

रज्जब एकहि ध्यान मैं, नर नारायन होइ ।
मनसा बाचा करमना, कीट भृङ्ग लै जोइ ॥३॥

परम पुरिष का ध्यान धरि, जैसे चंद चकोर ।
जन रज्जब चारचूं पहर, मेली पलक न कोर ॥४॥

काछिब दृष्टी ध्यान धर, अकल पुरष की ठौर ।
तौ रज्जब सहजै मिलै, परम पुरिष सिरमौर ॥५॥

गऊ जाइ बनखंड मैं, धरै बच्छ पर ध्यान ।
यूं रज्जब ह्वै राम सौं, तो पहुंचै हरि यान ॥६॥

जैसे नटनी बरत चढ़ि, धरै कौन बिधि ध्यान ।
त्यूं रज्जब रमि राम मधि, मिलै प्राणपति प्रान ॥७॥

ज्यूं कामिन सिर कुंभ धरि, मन राखै ता मांहि ।
त्यूं रज्जब करि राम सौं, कारिज बिनसै नांहि ॥८॥

ज्यूं बिषई पर नारि सों, अति गति माडै ध्यान ।
जन रज्जब जगपति मिलै, यूं हरि सों चित सान ॥९॥

ज्यूं भृङ्गी का ध्यान धरि, कीट भृङ्ग ह्वै जाइ ।
त्यूं रज्जब जिव ध्यान धरि, जगपति मांहि समाइ ॥१०॥

पंच तत्त धरि पंच रस, प्राण तत्त धरि ध्यान ।
रज्जब रचे बखान यहि, जो जेहि ठाहर ठान ॥११॥

चौपई : ध्यान यादि श्रुति निरति संभाल, सपत अष्ट पोषंती पाल ।
धरे अधर बिच ध्यान जु होइ, ध्यान निकट पावै ना कोइ ॥१२॥

साखी : ध्यान ज्ञान माहैं रहै, राम काम तरवारि ।
रज्जब रुचि के हाथ मैं, जे जाणै सो धारि ॥१३॥

नांव महिमा का अंग

नमो नांव सम कछु नहीं, साध बेद मत मांहिं ।
तीरथ बरत न जोगि जपि, पटतर कहै न जांहिं ॥१॥

अरध नांव सम कछु नहीं, जप तप तीरथ दान ।
षट क्रम कष्टर साधना, समसरि नांव न जान ॥२॥

नांव ठांव रोकै न कोइ, जप तप तीरथ दान ।
रज्जब साधन कष्ट सब, सुमिरन समि न बखान ॥३॥

सकल धरम हरि नांव मधि, जप तप तीरथ दान ।
ज्यूं रज्जब वृछ बीज मैं, बाहर द्रसै न पान ॥४॥

निहचल ह्वै नामहि भजै, एक महूरत मन ।
ता समि कृतिम न सब कहै, बेदर बेत्वा जन ॥५॥

महंत मुखौ सेती सुणचा, रज्जब भजन प्रताप ।
ज्यूं माया सूं माया उदै, त्यूं नाउं निरंजन आप ॥६॥

बहु विद्या हूं नर बहुत, सुमिरन समि नहिं कोय ।
रज्जब गुण गुण सौं मिलै, नाइं सु नर हरि होय ॥७॥

अज्ञान कष्ट सब शक्ति मैं, सो सेवा हरि नांव ।
ज्यूं भृत भामिन राज घर, सुत संपति द्वै ठांव ॥८॥

नांव धणी सों नांव का, दीसै तेज अनंत ।
लीनौ घर लौंडा भया, साखी साधू संत ॥९॥

नांव धणी सूं नांव की, महिमा अधिक बखान ।
निज बप धरतौं बुड़ि गये, नाइं तिरे पाषाण ॥१०॥

फाटै थंभर मुरति पीव, मंदिर मुख दिस आन ।
रज्जब धनि धनि नांव बल, पानी तिरै पषान ॥११॥

नांवहिं राखे प्रानपति, अपणी ठौरउठाइ ।
तौ रज्जब ता नाउं की, महिमा कही न जाइ ॥१२॥

नर नाराइन सौं बड़ा, प्रकट नांव परगास ।
दून्यूं आगे नांव कै, सेवग स्वामी दास ॥१३॥

रज्जब नांव नराधिपति, अंग अनंग उमराव ।
दल बल महिमा का कहूं, देख्या बिपुल बणाव ॥१४॥

जुगि जुगि राखी नांव की, संकटि करी संभाल ।
रज्जब महिमा का कहै, बेद न जाणैं व्याल ॥१५॥

रज्जब महिमा नांव की, नर पै कही न जाइ ।
जाकै बसि दोउ देखिये, खुदरति सहित खुदाइ ॥१६॥

नख सिख सूरति सुकल मधि, मनसा बाचा मानि ।
जैसे रज्जब नांव मैं, नाव धनी परवानि ॥१७॥

मूल डाल तरु बीज मधि, त्यूं जन जगपति नाउं ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, बड़हुं बड़ी निज ठाउं ॥१८॥

रज्जब एकहि नांव मधि, देखी दीरघ ठौर ।
संत अनंत समावहीं, अस्थल इसा न और ॥१९॥

बड़हुं बड़ी सांई सही, ताहि बड़े सति साध ।
दून्यूं आये नांव मैं, रज्जब नांव अगाध ॥२०॥

ससि सांई तारे सुजन, ध्रू रूपी निज नांव ।
परदछिन देहि साम सूं, जन रज्जब बलि जांव ॥२१॥

साधू सांई सीस पर, नाउं सदा सिरमौर ।
रज्जब रीझ्या देखि कर, अकल कले जेहि ठौर ॥२२॥

रज्जब सुमिरन की सिपत, मो पै कही न जाइ ।
जाकै बसि दून्यूं भये, खुदरति सहत खुदाइ ॥२३॥

नमो नाव समि कछु नहीं, धरे अधर बिच और ।
जन रज्जब तासौं बंधे, स्यौ सत्की एक ठौर ॥२४॥

नमो नाव महिमा अनंत, बोध न बानी माइ ।
रज्जब कहिये कौन बिधि, अकल कह्या नहिं जाइ ॥२५॥

रज्जब रंचक भजन की, महिमा कही न जाइ ।
अरध नांव पसु ऊधरे, नर देखौ निरताइ ॥२६॥

आदम ईदम औलिया, रहिये अगह अलाहि ।
सिपति नांव की क्या कहूं, बंधे अबंधू बाहि ॥२७॥

सारंग श्रप सिस सुर सुनत, मगन होत मुद मानि ।
त्यूं जगदीस रजाय बसि, जन रज्जब जिव जानि ॥२८॥

नाहर जरष सुमंत्र बसि, अबला ह्वै असवार ।
तौ नाव लेत नर नेह सूं, त्यूं नावै करतार ॥२९॥

जन जगपति के मध्य मन, ह्वै दिसि जिव इक नांव ।
रज्जब राखै नाव मन, तिनकी मैं बलि जांव ॥३०॥

नांव निरंजन जीव है, सो साधू मधि सासि ।
तौ रज्जब हरि क्यूं रहै, बिन आये उन पासि ॥३१॥

नांव नाज जीवन सबहुं, आदम की औलादि ।
औरहुं और अहार है, देखिर दीज्यो दादि ॥३२॥

काया काष्ठ मैं बंधी, देखौ आज्ञा आगि ।
सो मुकती ह्वै रज्जबा, नांव अंगारै लागि ॥३३॥

करम काष्ठ कहु क्या करै, जब प्रगटै पावक नांव ।
अठार भार अघ दहम ह्वै, बासदेव बलि जांव ॥३४॥

प्रतिमा पूजा नांव धरि, नाइये तिरे पषान ।
सोई नाव नर उर बस्या, सीझै क्यूं न सुजान ॥३५॥

नांव निरूप आदम अकलि का अंग

नांव नाव आदम गढ़ी, भरचा सु आदम भार ।
आदम खेवहिं अकलि सूं, आदम उतरहिं पार ॥१॥

धनि धनि आदम आकिले, अकल कल्या धरि नांव ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, बुधि बंधन बलि जांव ॥२॥

नांव नेह नरकै बंध्या, निराकार निरबंध ।
रज्जब धनि आदम अकलि, अकलहि बाह्या फंद ॥३॥

अकलि बड़ीदी आदमहिं, नांव निनावैं दीन ।
अगहुं गह्या जिहि बुद्धि सूं, अलग सलग कर लीन ॥४॥

आदम तैं अचरज किया, नांव सु दीपक राग ।
तिमिर हंत सो उर धरहुं, रज्जब जागहिं भाग ॥५॥

सांकल आतम राम कूं, नांव कूप निज जान ।
देखि अबंधू बंधना, जन रज्जब हैरान ॥६॥

मन उनमन मूसल उभै, हाथौ जोड़ी नांव ।
बंद अबंधू बंदगी, हिकमति पर बलि जांव ॥७॥

नांव सबहिं संतौ धरे, गहि गहि गुन उनमान ।
यहु रज्जब इस ओर तैं, सुमिरन का अस्थान ॥८॥

सबहीं नांव सुभाव के, काढ़े अकलि बिचार ।
जन रज्जब गुण गूथि करि, जोड़े सहस हजार ॥९॥

जेती हिकमति हुकम मैं, ये सब तिसके नांव ।
सब साहिब जिस नांव मैं, ताकी मैं बलि जांव ॥१०॥

नांव निनाबैं के धरे, संतौ सोधि सुभाय ।
रज्जब माने राम जी, सुमिरिउं करी सहाय ॥११॥

निराकार का नांव तनु, अलिफ अलह औजूद ।
जन रज्जब यहु गहन गति, मालक है मौजूद ॥१२॥

आकास अनंग आभै गहै, त्यूं अबगति रस नांव ।
रज्जब आवै तहां तैं, अवनि सु आतम ठांव ॥१३॥

निकुल निनावां सुन्नि मैं, आभा रूपी नांव ।
जन रज्जब चित चात्रिगा, जल जीवन जिस ठांव ॥१४॥

मही महादेव तै गये, नीर नांव आकास ।
सो सहस गुन ह्वै स्रवै, समा किया फिरि तास ॥१५॥

जे कछु उपज्या मांड मैं, नांव सबहुं के नाहिं ।
रज्जब काढ़े ज्ञान सूं, जो लच्छिन उनमाहिं ॥१६॥

नांव निनावैं परि धरचा, तापरि नरका नेह ।
या परि और न सूझई, रज्जब देखै येह ॥१७॥

भजन प्रताप का अंग

सुरग रसातल सेस लग, जहां तहां सब ठाम ।
जन रज्जब बंदै सबै, जा हिरदै हरि नांव ॥१॥

जेहि घटि नौबति नांव की, सो परगट संसार ।
जन रज्जब जगि मगि रह्या, सेये सिरजनहार ॥२॥

रज्जब सुकृत नांव की, नित नौबति जहं बाज ।
सो सुखिये सब लोक में, ऊंची अगम अवाज ॥३॥

डाके सुमिरत सुकृति के, दिल सु दमामा साज ।
रज्जब छिपि सु बजाइये, ह्वै सब लोक अवाज ॥४॥

अति गति सौंधा नांव था, सो लीया निज दास ।
रज्जब छाना क्यूं रहै, बाणी सुजस सुबास ॥५॥

तन मन तिली समान है, नांव निरंजन फूल ।
जन रज्जब सूंधै भये, मिलि सूंधै के मूल ॥६॥

अठार भार बिधि आदमी, चंदन च्यन्तन नाम ।
रज्जब सकल सुगंध ह्वै, धनि संतनि बिश्राम ॥७॥

मन इंद्री पति आतमा, तरवर नींब सरूप ।
हरि चितवन चंदन परस, रज्जब पलटि अनूप ॥८॥

तन मन आतम लोह कौं, मिल्या सु पारस नांव ।
तिनि तीन्यूं कंचन्न किये, सति सुमिरन बलि जांव ॥९॥

नाइं प्रताप पषान तिरैं जल, तौ प्रान तिरै क्यूं नाहिं ।
रज्जब राख्यू देखिये, भजन करहु मन माहिं ॥१०॥

देवल फेरचा बक्र ज्यूं, प्रतिमा पीढ़ा माहिं ।
भृत्य भाइ भंजन गढ़चा, कुलाल सु चीन्हैं नाहिं ॥११॥

मंदिर मूरति सुई समि, चंबक च्यंतन नांव ।
अचल चले येकौ मिल्यूं, बधे कौन की मांव ॥१२॥

मंदिर सू मूरति फिरी, मुई जिलाई गाइ ।
तौ नामदेव के भजन की, जन रज्जब बलि जाइ ॥१३॥

नामदेव दिब सांचे देखौ, भरथर सूली धना सु खेत ।
चारचू चेतन पूजिये, रज्जब जड़ौं न हेत ॥१४॥

दास नांव निज दास का, दीप राग व्यौहार ।
असम देव तमहर जग, धन्य जगावनहार ॥१५॥

जै दिन बीजहिं खेती भई, तौ खेतहिं क्या अधिकार ।
जन रज्जब धनि धनि धना, कहै सकल संसार ॥१६॥

सूकी सूली सौं हरी, भई भरतरी भाइ ।
जन रज्जब या जुगल मैं, परै कौन कै पाइ ॥१७॥

जल थलि महियल खंभ खगि, बिष बहनी अहिलाइ ।
रज्जब इष्ट न अष्ट मैं, बंदहि बंदै भाइ ॥१८॥

सिला तिराई समंद सिरि, बंधी बरन परि काज ।
पै रज्जब बंदन समै, रामचंद सौं काज ॥१९॥

लोह तेल दिब ना दहै, सतबादी सु सरीर ।
तौ रज्जब तिहुं तत्त मैं, कौन बंदिये बीर ॥२०॥

पैसेरी पिछलै पलै, अगलै बित व्यौहार ।
हड़का माडैहि कौन दिसि, बेत्वा करौ बिचार ॥२१॥

रज्जब अंडे भाव के, पंषी प्रान सु दीन ।
सेवा कै बलि सुत भये, ठाहर कछू न कीन ॥२२॥

तिन तरु बेली आगि बिन, बहनी ताषै व्याल ।
पावक प्रगटै सकल मधि, सो पनिंग परजाल ॥२३॥

साधू सबिता की कला, सबद सदा परगास ।
वहि सुणतों वहि देखतौं, उर आंख्यूं तम नास ॥२४॥

रज्जब अज्जब काम है, जे सुमिरै कोइ संत ।
सकल लोक सिरि कीजिये, उर सेवग भगवंत ॥२५॥

सब बिधि नर के काम कौं, नांव निरंजन सत्ति ।
जन रज्जब जो यूं भजै, ताकी मोटी मत्ति ॥२६॥

चौपई : पति परमेस्वर बीरज नांव, अबला आतम रति रुचि ठांव ।
मेला या सम कोई नांहि, बिगति बाल ब्रह्म उपजै मांहि ॥२७॥

साखी : नांव निधारे धार बहु, काटै सांकल कोड़ि ।
रज्जब हद हथियार यहु, हथियारहुं की वोड़ि ॥२८॥

रज्जब एकहि जाप मैं, जल ज्वाला गुण दोइ ।
अठार भार आतम उदै, जम सु जवासा जोइ ॥२९॥

रज्जब भागे भजन सुणि, अघ इंद्री गुण चोर ।
ज्यूं भुजंग चंदन तजै, तरसिरि बोलै मोर ॥३०॥

जन रज्जब रामहिं भजै, पाप रहै नहिं संग ।
ज्यूं तूपक की त्रास सुणि, तरवर तजै बिहंग ॥३१॥

पाले के परबत गलहिं, देखि सूर की ताप ।
ऐसी बिधि अघ ऊतरैं, जन रज्जब हरि जाप ॥३२॥

गुण तारे माया तिमर, सीत भरम मन चंद ।
रज्जब सुमिरण सूर सौं, साजि पड़े सब मंद ॥३३॥

भजन भान उर उदित ही, अस्त होइं गुन चारि ।
तम तारे ससि सीत गत, नर देखौ सु निहारि ॥३४॥

नांव निरंजन उर बसै, तौ कोइ गुण व्यापै नांहि ।
जन रज्जब ज्यूं सर्प बिष, गरुड़ द्वार मुख मांहि ॥३५॥

अहि यंद्री आतम डसी, बिष नख सख रह्यौ छाइ ।
रज्जब मंत्र सु राम रटि, तबही ऊतरि जाइ ॥३६॥

दूजी दिल व्यापै नहीं, जे हिरदै हरि आण ।
ज्यूं रज्जब रजनी गई, देखौ देखत भाण ॥३७॥

भाव भान भ्यासत समै, तम तारे गुन नास ।
जन रज्जब रजनी पड्या, फेरि करै परगास ॥३८॥

रज्जब उर गिरि की गुफा, ज्ञान दीप तम दूरि ।
चित चेतन सु चिराक बिन, तहां तिमिरि भरपूरि ॥३९॥

पाप पुंज कुल कालिमा, सकल नांव सों जाहिं ।
ज्यूं रज्जब मद भंजना, फूटा गंगा माहिं ॥४०॥

जाति पांति कुल सब गये, राम नाम कै रंग ।
रज्जब लागा लोह ज्यूं, पारस का परसंग ॥४१॥

तांबे के पातर घणे, लोहे के हथियार ।
रज्जब पारस परस तैं, कुल कंचन व्यौहार ॥४२॥

संगत साधू सूर की, आतम अंभ समान ।
कुल कालिमा कुठौर कसि, सुमिरन सुन्य बिलान ॥४३॥

रज्जब कागत टाट के, मसि माहैं व्योहार ।
बेद पुरान सु बंदिये, जे बिच आया करतार ॥४४॥

पहले चंब सु चूमिये, जे बांध्यन बीचि मुसाफ ।
तौ जाति पांति क्या पूछिये, सोहबति देखौ साफ ॥४५॥

ग्वाल भीलणी सं मिलि खेले, संख बजाया कौनै काज ।
साग अरोग्या कौनै कै घरि, नीच ऊंच की रही न लाज ॥४६॥

नांवहिं भजै सु निरमले, नीच ऊंच राव रंक ।
जन रज्जब रस लीजिये, ईष बंक निकलंक ॥४७॥

साधू चंदन चंद का, बंक बरण कोइ नाहिं ।
वह सीतलर सुगंध वह, वहिकै गोबिंद माहिं ॥४८॥

कडुवी मीठी तुंबिका, अंब नीब की नांव ।
रज्जब तिरिये चहूं चढ़ि, तौ कुल की वोर न आव ॥४९॥

रज्जब नीच न नीच कुल, जे मन उत्तम भाव ।
षारसमंद सुधा रस निकसै, तौ कुल का कौन कहाव ॥५०॥

जे मन उत्तिम भाव ह्वै, तौ कुल का क्या भेद ।
जन रज्जब दृष्टांत कौं, जथा मजारी भेद ॥५१॥

नीम धतूरे आक बिष, मधु निकसै उन माहिं ।
रज्जब बिष अमृत भया, तौ कुल कारण कोइ नाहिं ॥५२॥

जथा पदमिनी नीच कुल, केसरि बिष्टा हीइ ।
रज्जब भुगतै राजवी, कुल कारण नहिं कोइ ॥५३॥

कुल परबत नहिं पूजिये, सुत प्रतिमा की मान ।
त्यूं रज्जब रामहिं भजे, गई सकल कुल कान ॥५४॥

दीरघ कुल सु अतेरू बूड़ै, लघु कुल तारिक तारै ।
सो रज्जब गुण कैसे मेटै, जासों जलनिधि पारै ॥५५॥

प्रतिमा नई पुराने परबत, परतषि देखौ जोइ ।
रज्जब भरम दिनौं का भागा, पूजा किसकी होइ ॥५६॥

भजन जोर भगवंत लग, जाति जोर लग देह ।
जन रज्जब साधौं कह्या, जाणै सो करि लेह ॥५७॥

प्रथमैं कड़वा बीज था, पुनि पाकै सोइ हीइ ।
मधि मीठा तनि तोरई, रज्जब लौजै जोइ ॥५८॥

रज्जब दादा दोजगी, पोता पापी होइ ।
दून्यूं बिच साधू भया, नाहीं अचरज कोइ ॥५९॥

आगा खार समंद मैं, पीछे बाला मूल ।
जन रज्जब बिचि बंदिये, गंगा का अस्थूल ॥६०॥

कुल सांकल काया कड़ी, लोहा मैं जु बिसेखि ।
रज्जब प्रभु पारस परसि, कंचन होत सु देखि ॥६१॥

राम नाम की गरज सुणि, बेधै बंस ज्यूं भाव ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, अति आतुर गति चाव ॥६२॥

आतम फल आतुर उदै, जथा आंवली राति ।
रज्जब अज्जब देखिये, इस अंकुर की जाति ॥६३॥

एक आदमी आंवलणि, फल पावै ततकाल ।
अनिसु अठारह भार नर, सहज सुफल सुनि साल ॥६४॥

रज्जब हरिरिधि तिनहु की, जो जपि जीवत बाल ।
माल न मूवौं कौं मिलै, जे जे खाये क्रम काल ॥६५॥

सोरठा : रज्जब भागी भूख, भजन करत भगवंत की ।
गये सु दालिद दूख, आपइ फिरि आवै नहीं ॥६६॥

साखी : माया छाया पांव तलि, जब सांई सूरज सीस ।
रज्जब कही बिचारि करि, दीसै बिसवा बीस ॥६७॥

रंकार अलफ भीतर लिखे, कागद कंवल कलूब ।
अतुल तुला कैसे तुलैं, बिच बैठा महबूब ॥६८॥

नर नारायन नांव मैं, सुमिरन समये सास ।
भूले भूत बिभूति मैं, रज्जब किया बिमास ॥६९॥

तिती बार माया मुकत, नरहरि नांव समाइ ।
रज्जब छूटै लैलकस, लच्छी मैं ह्वै जाइ ॥७०॥

रज्जब जाप जिकरि करि, तिती बार जिव जाग ।
सुमिरन भूलै सांस जेहि, तब सूता पल लाग ॥७१॥

नांव बिसारन नींद निज, जागण जपि जगदीस ।
मन बच क्रम रज्जब कहै, खैचत बेहद दीस ॥७२॥

निहकाम नाम लै नरनारायन, सुमिरत सकति सकाम ।
रज्जब रज तज काढ़तौं, भजन भेद गति प्राम ॥७३॥

नांव बिसारै नीद है, गृह बैराग सुहाणि ।
रज्जब रटै जु रैणि बिन, सोई जाणचा जाणि ॥७४॥

झूठ सांच कै संगि सदा, ज्यूं दीपक अंधियार ।
रज्जब लोई लै बुझत, तिमिर न आवत बार ॥७५॥

रज्जब रीता राम बिन, भरचा भजे भगवान ।
मनसा बाचा करमना, नीकै किया निदान ॥७६॥

माया काया मसि मिली, प्राण सु पाणी माहिं ।
रज्जब सुमिरन सूर बिन, जिव जल निरमल नाहिं ॥७७॥

रज्जब स्याही सुकल करि, सब आषिर अस्थूल ।
नामैं निरमल ठौर दुहुं, बाकी मैले मूल ॥७८॥

कुलछिन ह्वै कैलों भरी, काया रीठ समान ।
नांव अगिन ऊजल उभै, और उपाव न आन ॥७९॥

अंभ आतमा घटा घटि, तबै बीज बल संग ।
भाण भजन मिलतौं रजब, उभै अनूपम अंग ॥८०॥

बप बसुधा जिव जल पड़े, पंच स्वाद क्रम कीच ।
रज्जब नाउं निहंग चढ़ि, तब सतेन तिन बीच ॥८१॥

काया कुंभनी पैठतौं, जिव जल स्वाद अनेक ।
रज्जब भगवंत भाण मिलि, उभै रूप रस एक ॥८२॥

सूद्र बैस छत्री ब्रह्म, चतुर बरन बेकाम ।
जन रज्जब मद्धिम सबै, जो सुमिरै नहिं राम ॥८३॥

मुखि भुज उपजे पेटि पग, पड़ि धरतीधर होइ ।
दंत केस बिष्टारु नख, रज्जब बिछुटे जोइ ॥८४॥

पारस मैं मूरति प्रभू, चतुर बरन लोह भाइ ।
रज्जब कंचन होत है, ठाहर कहीं लगाइ ॥८५॥

साध परीक्षा का अंग

रज्जब नर नग सो सही, तम त्रास नर उजास ।
जग जल मैं बूड़ै नहीं, सो हीरा हरिदास ॥१॥

महापुरष पारस परख, नहचा रूप न रंग ।
प्राण पषाण सु मानिये, रज्जब पलटै अंग ॥२॥

तन मन तेल कड़ाह बिधि, तपता सीतल होइ ।
सो साधू सृक बावना, रज्जब लीजै जोइ ॥३॥

रज्जब रचना रहित की, दरस परस दरसंत ।
जपि संजम बाणी बिमल, बदन जोति झलकंत ॥४॥

नर नछत्र दोऊ दिपहिं, नांव धजा जिन सीस ।
सो रज्जब कैसे छिपहिं, प्रगट किये जगदीस ॥५॥

हरि हीरा हिरदै रहै, सो घट छाना नांहि ।
रज्जब दीसैं दूरि सौं, ज्यूं दीवा भूडलि मांहि ॥६॥

दुरलभ देही दीन मत, रहै राम कै रंग ।
जन रज्जब जग सूं जुदे, ये संतन के अंग ॥७॥

सकल धरे सौं धूत गति, कहीं न बांधै मन्न ।
जन रज्जब जग सूं जुदे, सोई साधू जन्न ॥८॥

आतम कहीं न बंधहीं, बिन सांई अरु साध ।
जन रज्जब ता संत की, पूरन बुद्धि अगाध ॥९॥

ज्यूं मुख दोष लहै दरपन मैं, फूटा मोती मोती मांहि ।
त्यूं रज्जब साधू सूं साधू, मनचा बाचा छाना नांहि ॥१०॥

सब घटि मैं सांई द्रसै, बोलै भया बिनाण ।
रज्जब साधू परखिये, कहि गुणि कहां बंधाण ॥११॥

धोल दमामा थाल सिर, डांका एकै होइ ।
त्यूं बाइक बहु गुण भरचा, बूझै बिरला कोइ ॥१२॥

रज्जब परखै प्रान कौं, दिल मैं देखै जोइ ।
जैसी ह्वै तैसी कहै, पूरा पारिष सोइ ॥१३॥

नख सख काढ़े नजर मैं, मनमत ले निरताइ ।
जन रज्जब दे हाथ मैं, खोटी खरी बताइ ॥१४॥

जिव की जाणै जौहड़ी, परखै सौंज सराफ ।
जन रज्जब जाणिरु कहै, सौ कहणा सब माफ ॥१५॥

रज्जब मन मंडाण कौं, बिरला परखणहार ।
नग नाणे अंग अंग अनंत, बहु बिधि बित बिस्तार ॥१६॥

अचेत अवस्था नींद नर, यहु चूकण की ठौर ।
पै सूतौं स्याबति रहै, सो रज्जब सिरमौर ॥१७॥

ज्यूं जागत त्यूं सोवतें, सुपनें माहिं सु होइ ।
रज्जब पारिख प्रीत की, लगण कहावै सोइ ॥१८॥

तन त्यागी त्रिभुवन भरे, मन त्यागी कोइ एक ।
रज्जब रैनी सुपन मैं, लहियै बिगति बमेक ॥१९॥

तन जोगी मन भोगिया, रहति रुपैये खोट ।
सुपनै कै सूलाक मैं, उघड़ी पत्री बोट ॥२०॥

मन मुकता काचे बुरे, माहि मनोरथ नीर ।
रज्जब राम जु जौहरी, पाड़ा लागै बीर ॥२१॥

मन की मिटी न लालसा, तन करि परसे नाह ।
रहति रुपैया खोट है, तुछ मति तांबा मांह ॥२२॥

साध असाध परीक्षा का अंग

सब गुण सध हित साध है, अणसधि सोइ असध ।
रज्जब पाई प्राण नै, पूरी पारिख लध ॥१॥

भगवंत न भूलै सो भला, बुरा बिसारै सोइ ।
रज्जब काढ़ै मांड मैं, भले बुरे चुणि दोइ ॥२॥

त्रिगुण तुला ऊपर तुलैं, कंकर पुन्नि कपूरि ।
एक समाने सुन्नि मैं, एक धरा मधि धूरि ॥३॥

धरे माहिं सू धरचा ऊपजै, सो धरती ह्वै जाइ ।
रज्जब साध कपूर सुन्नि सुत, सुन्निह माहिं समाइ ॥४॥

आकार भार दून्यूं द्रसहिं, कांकर पुनह कपूर ।
उभै चढ़ैं आकास दिस, उभै अवनि महि धूर ॥५॥

आधे अवनि सु देखिये, त्यूं साधू संसार ।
एक समाये सुन्नि मैं, एक रहे आकार ।।६।।

पाणी अरु पाषाण के, परबत पिरथी माहिं ।
एक समाये सूर फिरि, एक अवनि सु छाड़ै नाहिं ।।७।।

पाणी पिरथी परि पड्या, पिरथी पाणी माहिं ।
ज्यूं सलिल समाना सुन्नि मैं, त्यूं अवनि अकास न जाहिं ।।८।।

रज्जब सोना सैल सुत, तुले बराबर तौलि ।
तौ कछु आध न एक ह्वै, लहै न समसरि मौलि ।।९।।

दोइ भाव के द्वै पले, तुला हाथि हरि माहिं ।
जड़ चेतनि सु तहां चढ़ैं, मोल एक सों नाहिं ।।१०।।

बस्त बाट दोऊ तुलहिं, लिपैं छिपैं सो नाहिं ।
रज्जब कही बिचारि करि, ताको तुला सु माहिं ।।११।।

प्रान पलै है प्रानपति, प्यंड पलै सुख खानि ।
भाव भार भेले तुला, बिगता बस्त बखानि ।।१२।।

साधू सोने मैं जड्या, खोटा पीतल प्रान ।
जन रज्जब मोलैं बिकैं, परख्यूं भिन्न बिनान ।।१३।।

रज्जब रतनौ मैं फटक, रूप रंग मिलि जाइ ।
आगै आघ न एक ह्वै, बिकै न सो समि भाइ ।।१४।।

खेचर पैडैं बंस ह्वै, साधू सिमरी माहिं ।
जन रज्जब जल मिलि जुदे, भिन्न भिन्न ह्वै जाहिं ।।१५।।

अरिल : संतहु माहिं असंत न भूलि समावई, कपटी दीजै काढ़ि कपट नहिं भावई ।
ज्यूं पानहु में पान चुनौती आन रे, रज्जब दीजै डारि लगे सब खान रे ।।१६।।

साखी : ऊपरि संत असंत समि, अंतरि अंतर होइ ।
रज्जब पानी ईख का, रूप एक रस दोइ ।।१७।।

साधू मिसरी मधुर मत, फोकट फटक पषान ।
जन रज्जब रंग एक से, चाख्यूं भिन्न बिनान ।।१८।।

साधू पारस परम निधि, और सिला संसार ।
जन रज्जब बपि एक से, गुन गति भिन्न बिचार ।।१९।।

साधू कोइल काग जग, दरस एक उनमान ।
जन रज्जब बोलै बिगति, अरु खान पान पहिचान ।।२०।।

निरमोल नगनि मैं ताग ज्यूं, ईख चढ़ै बिख बेलि ।
रज्जब अह चंदन मिलै, गुन गति औरै खेलि ॥२१॥

उल्टा चलै सुऔलिया, सूधी गति संसार ।
जन रज्जब यूं जाणि लै, इनका इहै बिचार ॥२२॥

बिषै बाइ बसि ह्वै बहै, बपु बादल बित नास ।
जन रज्जब उलटे चढ़ैं, तिनकी उर धरि आस ॥२३॥

संसारी अरु साध का, पाया भेद बिनान ।
रज्जब पारस जल तिरै, बूड़ै सोइ पाषान ॥२४॥

साधू हिरदा सुन्नि सम, मुक्ता मल न रहाइ ।
और सकल उर धर मई, बहु बिधि बिघन उपाइ ॥२५॥

संसारी राकेस उर, झांई दरसै माहिं ।
साधू दल सूरिज मई, प्रतिबिम्ब पड़ै सुनाहिं ॥२६॥

दरपन मैं दीपक द्रसै, दीवै दरपन नाहिं ।
यूं संसारी अरहु साध कै, व्योरा उरहु सुमाहिं ॥२७॥

अंगहु अंग मिलै नहीं, गुण लषिन गत गात ।
तौ रज्जब क्यूं होइगा, साधू समि कथि बात ॥२८॥

बादल बंदे सीस परि, सूके सजल अपार ।
रज्जब रत रीतौं नहीं, धन्नि जु बरसनहार ॥२९॥

आंखि उद्र ठाहर उवै, एक समान सू नाहिं ।
एक रज्जब न समावही, उगल गलै एक माहिं ॥३०॥

साध महिमा का अंग

रज्जब साध अगाध हैं, कहिये कौन समान ।
देखौ स्यौ सक्ती सहत, सेवग ह्वै तहं आन ॥१॥

सकल धरे ऊपरि धरचा, सांई अपना साध ।
रज्जब महिमा क्या कहै, असथल अगम अगाध ॥२॥

कीये मैं नहीं किया, साधू समि कोइ और ।
आप समाना इनहुं मैं, इनकौ दी उर ठौर ॥३॥

साधू दिल सांई रहै, हरि हिरदै मैं साध ।
रज्जब महिमा क्या कहै, ठाहर उभै अगाध ॥४॥

साध अगाध अगस्त है, सांई सुद्ध समुंद ।
उभै समाने उभै उर, रज्जब रही न बुंद ।।५।।

बिरिछ बीज मिश्रित सदा, सेवक स्वामी तेम ।
पाला पाणी होत है, पुनि पाणी ते हेम ।।६।।

माया ब्रह्म नै जो किया, सो उन बाहेर नाहिं ।
रज्जब साध अगाध दिल, उभै समानै माहिं ।।७।।

साधू सकति कपूर गति, अकल कला इहि भौन ।
सरगुन निरगुन होत हैं, मिलि परमारथ पौन ।।८।।

चौपई : अठार भार छाया अरु बास, जन कपूर कै चारचू नास ।
अंजन पलटि निरंजन होइ, यहु गति बूझै बिरला कोइ ।।९।।

साखी : साहिब सौं साधू बड़े, साधू बड़ा न कोइ ।
रज्जब देख्या गुर दृष्टि, सब नीकैं करि जोरि ।।१०।।

सेवग स्वामी एक ह्वै, ता ऊपर अधिकार ।
जथा बुदबुदा वारि सिरि, देखै सब संसार ।।११।।

स्वामी सेवग सिर धरचा, आदू अदभुत बंध ।
रज्जब पेख्या पहम परि, पुत्र पिता कै कंध ।।१२।।

स्वामी करि सेवग बड़े, नाहीं अचरज कोइ ।
रज्जब तरु फरु सीस पर, परतषि देखौ सोइ ।।१३।।

भगवंत भौम ऊपरि द्रसै, बंदे बिरछ सुभाल ।
सो रज्जब परमारथी, सब प्राणहु प्रतिपाल ।।१४।।

सांई सुन्नि समान है, बंदे बादल जूनि ।
तिनमाही ह्वै देहि प्रभु, चौरासी कौ चूनि ।।१५।।

आतम माहै ऊपजै, सबद सबित्ता सीस ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, त्यूं ही जन जगदीस ।।१६।।

साधू कै हित सृष्टि यहु, सिरजी सिरजनहार ।
जथा पिता पुत्रिहुं निमति, सुरम करहिं संसार ।।१७।।

हलक मुलक खेती करी, सालिक कसम सु साथि ।
तामै कण जण नीपज्या, हरि हाली कै हाथि ।।१८।।

भजन भौम जन कन उदिम, समा धनी कै होइ ।
यहु खेती सुखदाइकी, बूझै बिरला कोइ ।।१९।।

भगत भेट भगवंत है, जे कछु हरि घर माहिं ।
पर बंदा पैठा बंदगी, सु कछू कबूलै नाहिं ॥२०॥

नांव निनावैं के धरे, करी सु सेवा ठौर ।
ताथै रज्जब राम कै, साधौ सबा न और ॥२१॥

रज्जब भगत भंडार मैं, राख्या नाणा नांव ।
तो देखौ भगवंत घरि, साध सरोवनि ठांव ॥२२॥

व्योम बिराजै ध्रू धरे, पाताल पनिंगपति संत ।
रज्जब मंडण माड के, मन बच क्रम सु महंत ॥२३॥

माति मही मधि पैठि करि, सुमिरै सुखदेव सेस ।
रज्जब छिप्यूं न बित छिपै, प्रगट भये सब देस ॥२४॥

रज्जब सांई साध की, महिमा कही न जाइ ।
अकलि अलप उनमान तुछ, जे कछु कहै बनाइ ॥२५॥

रज्जब महिमा साध की, मो पै कही न जाइ ।
आदि अं[illegible] मधि माड मैं, जो निबहै इक भाइ ॥२६॥

एक रंगि राता रहै, दूजे रंग रुचि नाहिं ।
जन रज्जब ता संत समि, को कहिये कलि माहिं ॥२७॥

बंदे एक खुदाइ के, आदि अंति मधि अब ।
जन रज्जब मस्तक धरे, मन बच क्रम सो सब ॥२८॥

सुक्र सूर बिधु व्रहस्पति, पंचमि ध्रू दिस देख ।
बंदनीक सब देखिये, अचला चलन बसेख ॥२९॥

साधू सूरज सारिखे, द्रष्टि इष्ट संग देस ।
रज्जब रारचूं राजबी, जहां करहि परबेस ॥३०॥

समुझे सोने सारिखे, सो महि गे महिमाहि ।
रज्जब प्यारे पहम पर, जहां जगत मैं जाहि ॥३१॥

साधु उदै सूरिज कला, गुण तारे तम नास ।
रज्जब रारि खुलैं सबै, चषि चेतनि परकास ॥३२॥

लेखै मैं सब आइया, जे कछु उपज्या आइ ।
रज्जब राम अलेख है, अरु साधू लख्या न जाइ ॥३३॥

रज्जब अगह अगाध अंग, सांई साधू दोइ ।
और सु बंधे बंदि मैं, चौरासी लख जोइ ॥३४॥

बृक्ष बीज बसुधा पड़हिं, बीज रहै बप जाइ ।
त्यूं सत साधू गति सकति, नर देखौ निरताइ ॥३५॥

अनेकौं मिलि एक की, सरभरि करी न जाइ ।
रज्जब साधू सूर समि, नर नछित्र निरताइ ॥३६॥

स्वर्ग लोक साधू सदन, बेत्वा बैकुंठ थान ।
रज्जब अज्जब ठौर ये, जहां भजन भगवान ॥३७॥

हरि मंदिर साधू हृदै, जहां रहै निज अंग ।
सोचत चित्रसाला बनी, कवि कहि सकै न रंग ॥३८॥

चौदह बिद्या चतुरई, दहणा रथ दे धाइ ।
साधन कष्ट सबै करै, परि साध न हूआ जाइ ॥३९॥

तीरथ सतसंग का अंग

साधू सरिता सबद जल, इहं गुण कोई जाहिं ।
रज्जब रजमल ऊतरै, मन भागीरथ न्हाहिं ॥१॥

साधू तीरथ ग्यान जल, बिरला पावै कोइ ।
रज्जब यहु अठिसठ अगम, भागि परापत होइ ॥२॥

महंत मुखौं मंदाकनी, बाणी बारि प्रवाह ।
गगन गंग निरमल बहै, मन मंजन करि न्हाह ॥३॥

चिदानंद के चरन निज, साधू के उर माहिं ।
पेखौ पति के पगनि कूं, ठहर और सुनाहिं ॥४॥

ग्यान गंग तहां तैं चली, प्रान प्रबीन सु न्हाहिं ।
रज्जब पाप सु जुगन के, जीव जड़े सू जाहिं ॥५॥

ग्यान गंग पर देही देवल, मो रति आतम राम ।
इहां सांपड़ौ सेइ प्रानपति, सरहिं सिरोमणि काम ॥६॥

सति तीरथ सतसंग है, वारि बिमल बिचि बोध ।
रज्जब रजमल ऊतरैं, बेत्वा बदन सु सोध ॥७॥

सति तीरथ सतसंग है, जल जगदीसर नांव ।
दान पुन्नि कौं बहु किये, रज्जब अठसठि ठांव ॥८॥

तीरथ आतम राम हैं, परसे पावन होइ ।
जन रज्जब पहुंचे बिना, अघ उतरै नहिं कोइ ॥९॥

चरनारबिंद तैं प्रकटि, साधू हृदै मंझार ।
रज्जब गंगा ग्यान की, मन मल मंजनहार ॥१०॥

साधू सलिता ज्वाब जल, मन मल मंजन होइ ।
रज्जब रज यूं ऊतरै, उर अंतरि अघ धोइ ॥११॥

साध संगति परम लाभ का अंग

साधू संगति सुठि भली, घड़े माहिं घड़ि लेइ ।
रज्जब सौंज संवार करि, जिव माहीं जिव देइ ॥१॥

जैसे चंदन बावना, बेधि गया बनराइ ।
त्यूं रज्जब पलटै सबै, साधू संगत आइ ॥२॥

लोहा पारस परसतैं, रुद्र रूप ह्वै जाइ ।
रज्जब गति ग्याता भया, साधू संगति आइ ॥३॥

सोरठा : पारस परसत लोह, सोंवें सूं महंगा भया ।
तौ क्यूं न करीजै मोह, रज्जब सांचे साध सूं ॥४॥

साखी : रज्जब पारस परसतैं, लोहा पलट्या गोत ।
त्यूं निरधन धनवंत मिलि, अबित सबित्ता होत ॥५॥

रज्जब लघु दीरघ मिलत, मानि महातम जोइ ।
जथा तक्र पै परसतौं, जांवण हूं दधि होइ ॥६॥

रीते संगति भरिहुं की, जे होहिं भूरि सुभागि ।
देखि दसगुना होत हैं, सुन्न सु एकहि लागि ॥७॥

भौसागर संसार यहु, साधू सुद्ध जिहाज ।
रज्जब परसे पार ह्वै, कठिन सरै यहु काज ॥८॥

रज्जब निमघे राम जी, साधू जन सु जिहाज ।
काढ़िहिं सकति समंद तैं, प्रभु प्रगटे परकाज ॥९॥

ज्यूं नाले मिलि नापिगा, स्यंध समापित नीर ।
त्यूं रज्जब रामहिं मिलै, सतसंगत बहु बीर ॥१०॥

पारस चंबक लोह मिलि, पुनि चंदन बनराइ ।
जड़ पलटै मिरतग चलहिं, त्यूं सतसंगति आइ ॥११॥

ज्यूं सिल सूकी नदी मैं, जटी तुंबिका बेल ।
सो रज्जब सहजै तिरैं, त्यूं सतसंगति मेल ॥१२॥

तन मन सिमटै सहज ही, जे सतसंगति होइ ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं, बेलि लजालू जोइ ॥१३॥

साधू चंदन बैन बासतैं, कुल काष्ठ गये रोग ।
रज्जब देखौ देखतैं, भये देव गति जोग ॥१४॥

रज्जब पलटैं जीव सुध, साधू संगति आइ ।
पारस लोहा पहुप तिल, स्रिक चंदन बनराइ ॥१५॥

चौपई : सरग नसेड़ी जगत जिहाज, दीरघ दुरभिष माहिं ज्यूं नाज ।
दुख की दारू जीवन जड़ी, रज्जब संत समागम घड़ी ॥१६॥

साखी : रज्जब साधू दरसतैं, साहिब आवै यादि ।
आव न पूजहिं उस पलहिं, देखर दीज्यो दादि ॥१७॥

साधू के दति मित नहीं, सांई आवै हाथि ।
रज्जब और न देखिये, देती ऐसी आथि ॥१८॥

सदा अभूली भूलिये, भूल्या आवै यादि ।
यहु रज्जब सतसंग फल, देखिर दीज्यो दादि ॥१९॥

रज्जब साधू दान समि, दिया किणी की नाहिं ।
मनसा बाचा करमना, समझ देखि मन माहिं ॥२०॥

जो दत जीवहिं जीव दे, तेहिं पसाइ प्रभु दूर ।
रज्जब साधू नांव दे, सुनि सु नरहरि करै हजूर ॥२१॥

चिदानंद का चितवन, चौरासी मैं नाहिं ।
जन रज्जब सो पाइये, साधू संगति माहिं ॥२२॥

नांव नाव साधू कनै, बूड़त लेहिं चढ़ाइ ।
महिमा उस उपगारि की, रज्जब कही न जाइ ॥२३॥

सबद संदेसा ना लहत, साधन गुन जो जीव ।
तौ रज्जब रह चलति नहिं, प्रान न परसत पीव ॥२४॥

परम पुरुष पारस परसि, साधू सोना होइ ।
तौ रज्जब सतसंग सौं, मिलत न बरजौ कोइ ॥२५॥

चौपई : साधू बाणी छांह हमाइ, मागहुं पड़हि सीस पर आइ ।
देखत दून्यूं पावहिं राज, रज्जब होहिं सकल सिरताज ॥२६॥

साखी : साधू संदल पारस पारा, भृङ्गी छांह हमाइ ।
रज्जब मन तन पलटड़ौं, भागहुं मिला सु आइ ॥२७॥

हद बेहद कै बीचि है, साधू संत दलाल ।
सौदा आतम राम सौं, तिन करि ह्वै दरहाल ॥२८॥

रज्जब अज्जब काम है, साधू जन संसार ।
जिन मेलत मोहन मिलै, प्रान परस ह्वै पार ॥२९॥

सोरठा : रज्जब अज्जब रूप, साधू जन संसार मधि ।
जेहिं मिलि मिलै अनूप, सकल बोल कारज सिधि ॥३०॥

साखी : असंख लोक आतम फिरै, तौ भी साध न होइ ।
जन रज्जब सतसंग बिन, सीझ्या सुणा न कोइ ॥३१॥

भाउ भगति सतजत जुदे, अंग न आवहिं अंग ।
रज्जब रीती आतमा, एक बिना सतसंग ॥३२॥

भंजनीक भव ज्यूं दे गये, उरगरि मैं लै लात ।
रज्जब सेझै ग्यान जल, पगि पगि तीरथ जात ॥३३॥

बैन बूंद ज्यूं बरषहीं, साधू घट घन घोरि ।
रज्जब उर धर नीपजहिं, व्योसावहि कुल कोरि ॥३४॥

साधू ससि बरिषै सुधा, पीवहिं प्रान पियूष ।
रज्जब सुख सुलतान है, निकसैं दालिद दूष ॥३५॥

अंब न चढ़हिं अकास दिसि, बिन आदीत अगस्त ।
त्यूं रज्जब सतसंग बिन, हरि आवैं क्यूं हस्त ॥३६॥

मुक्त महोदधि बारि बादलहुं, पारस लहिये पथरौ माहिं ।
त्यूं साधू मैं सांई दीसै, अनठाहरौ ऐन बित नाहिं ॥३७॥

साध का अंग

बादल बंदे एक गति, सुन्नि सुधा रस लेहिं ।
जन रज्जब जल उमंग करि, सरबि सबनि सुख देहिं ॥१॥

सुन्नि सलिल सो लेत है, बादल बेत्वा बीर ।
पीछे परमारथ करहिं, देहिं सबौं सू नीर ॥२॥

साधू जन संसार मैं, आभै का औतार ।
सींचि समावै सुन्नि मैं, आवै पर उपगार ॥३॥

मनिषा देही खेत खित, माहै प्रान कसान ।
रज्जब साधू घटि घटा, बरष्यूं नेपै जान ॥४॥

बादल बंदे एक गति, बाणी बरषा होइ ।
जन रज्जब संसार मैं, पीवै सु गये कोइ ॥५॥
बादल बिधि बंदे किये, सुन्नि सुधा रस भाइ ।
कुल कुलाल के पात्र ज्यूं, अगह न अंब गहाइ ॥६॥
बादल बंदे एक गति, सकल अधर व्योहार ।
जन रज्जब जग सूं जुदे, परसै वहीं बिकार ॥७॥
साधू आभे सारिखा, सदा सुन्नि मैं बास ।
रज्जब आवैंहि पहम परि, निहकामीर निरास ॥८॥
ब्रह्म प्यंड सूं नीकसे, आभै आतम होइ ।
सदा समाने सुन्नि मैं, बादल बंदे दोइ ॥९॥
साध सुधा के कुंड हैं, अवलोकहु दिलि माहिं ।
तिह अमृत आतम अमर, सो पीवहु क्यूं नाहिं ॥१०॥
सांई सौंपी साध कौ, ओषदि अमर अराध ।
जीया चाहै आय ल्यौ, संत सजीवन लाध ॥११॥
रज्जब सुरही सिष्टि मैं, सिस साधू पै थान ।
तिण जण कौं ठाहर इहै, करौ सु अमृत पान ॥१२॥
स्वारथ पैठै सांकड़ै, चौरासी लख प्रान ।
परमारथ कौं एक कौं, रज्जब साधु सुजान ॥१३॥
साधू घट मानहु घटा, सरवहिं तहां सुकाल ।
रज्जब ये बरषैं नहीं, परतषि तहां दुकाल ॥१४॥
जीव ब्रह्म साधू करैं, ज्यूं पारस सोना होइ ।
प्राण पषाण असंखि हैं, पै तिनहु न पलटै कोइ ॥१५॥
बावन सौं न बराबरी, ह्वै न अठारह भार ।
वह सुगंध सब कूं करै, त्यूं साधू संसार ॥१६॥
मति सुपात्र मन उदिक भरि, तन तिष्टैं मैं राखि ।
रज्जब ताता हेम ह्वै, सोरा साधू साखि ॥१७॥
साधू सीतल परसतैं, जलता सीतल होइ ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं, चंदन सरपहि जोइ ॥१८॥
साधू सूरिज सोधि ले, प्रगट गुप्त हरि नीर ।
रज्जब पीवै जीव सुधि, सबद सरोवर तीर ॥१९॥

ऊपरि साधक ठौर गति, जैसी बिधि नालेरि ।
अंतरगति कोमल मतैं, जन रज्जब बिच हेरि ॥२०॥

बाहर साधू बिघन गति, ज्यूं चंदन तरु भुजंग ।
जन रज्जब बिचि जोइ लै, सीतल बास सुगंध ॥२१॥

बाहरि साधू सीप गति, मैली तन जोती ।
जन रज्जब बिचि जोइ लै, मुक्ताहल मोती ॥२२॥

साधू सकणा माहि मन, ज्यूं मक्के की ज्वारि ।
जन रज्जब जोख्यूं गई, पंषी सकै न ष्यारि ॥२३॥

ऊपरि कोमल बेर बिधि, तै पंषी चूथि ले जाहिं ।
रज्जब रहु नालेर गति, कुन्दन कोमल माहिं ॥२४॥

संत सिंघाड़ा नालियरि, कोमल कठिन सु देख ।
रज्जब राख्या बित्तका, बाबै किया बसेख ॥२५॥

पाणी पीया पौन मुख, त्रिषा तरुणि गुण होइ ।
भाई कृत भाई किया, नाहीं अचरज कोइ ॥२६॥

तत्व तत्व के काम कौं, पंचौ प्रीति अपार ।
प्यंड ब्रह्मण्ड त्रिलोक तैं, व्योरा लहै बिचार ॥२७॥

जब दीवै दीवा द्रसै, तब तलके तम नाहिं ।
यूं साधू साधू मिलत, अगम असंक्या जाहिं ॥२८॥

पार पार सौंहै सही, ज्यूं हाथहिं धोवै हाथ ।
मुख मोहन परसै चलै, साफ होइ करि साथ ॥२९॥

आतम निपजै अंड ज्यूं, बैठे साधि बिहंग ।
रमतूं पंषै परि रमै, तपति निवारन अंग ॥३०॥

बैठैं साध बिहंग बिध, आतम अंड सुदान ।
रज्जब रमतौं सुख श्रवहिं, पंषी प्रान सुजान ॥३१॥

परम पुरिष पंषौ सुपरि, सुमिरत श्रवत समीर ।
रज्जब प्रगटै जो जहां, और न निकसै बीर ॥३२॥

काया काठ सु कूं उठहिं, मथतौं गोष्ठी आगि ।
रज्जब सरसैं ग्यान जल, जलहिं नहीं सो जागि ॥३३॥

साध गुसा जल चोट ज्यूं, मारत ही मिलि जाइ ।
रज्जब परसै परसपर, रहै नहीं ठहराइ ॥३४॥

साधू जन जे सुरति करि, अथवा गाली देइ ।
रज्जब तहि रिसि बारनै, रस माहै करि लेइ ॥३५॥

सब जग जाणै पलक मैं, जे साध करै कछु और ।
ज्यूं रज्जब सूरिजगहण, सब समझै सब ठौर ॥३६॥

जो जन सदा अडोल था, सोई ह्वै चक चाल ।
तौ रज्जब जाणै जगत, ज्यूं आया भौचाल ॥३७॥

भगति भाव बैठे फिरहिं, साधू सरवणि कंध ।
दुनिया दिसि देखै नहीं, रज्जब अंधी अंध ॥३८॥

मन मिहरि महूरति का अंग

मिहरि महूरति मैं लखी, जब सांई सिरजे साध ।
प्रानहु सेती प्रीति अति, रज्जब रहम अगाध ॥१॥

मिहरि मेदनी सों सही, जे महि परि बरिसै मेह ।
त्यूं नेह निसानी नरहरिह, जे मेलै साध सनेह ॥२॥

मिहरि मौज देणा दिया, जबहिं मिलाये साध ।
रज्जब संगति तिनहुं की, जीव जनम फल लाध ॥३॥

मिहरि महूरति जाणिये, जब सांई मेलै साध ।
रारि श्रवन रस ना रचै, कोटि कटैं अपराध ॥४॥

मिहरि महूरति जाणिये, जब सांई मेलै साध ।
नांव सुधा रस पाइये, किरिपा अगम अगाध ॥५॥

साध संगति सुमिरन सुकृत, मिहरि महूरति होइ ।
रज्जब अज्जब मुक्ति फल, पावै बिरला कोइ ॥६॥

जब जगदीस दया करै, तब साधु समागम होइ ।
जन रज्जब अघ ऊतरैं, करम न लागै कोइ ॥७॥

मिहरि महूरति माह मैं, काया कुम्भजु होइ ।
दून्यूं मैं द्वै ठाहरैं, जिव जल देखौ जोइ ॥८॥

मिहरि महूरति आदमी, माह महूरति कुम्भ ।
जन रज्जब सीतल उभै, देखौ आतम अंभ ॥९॥

रज्जब मिहरि महूरति उपजैं, महपति मही महंत ।
ज्यूं मुक्ता होइ न स्वाति बिन, समझ्यो साधू संत ॥१०॥

किरिपा कहर समीप थे, जब सिरिजि संघारी सिष्टि ।
रज्जब अगम सुगमि भया, गुर दादू की दृष्टि ॥११॥

परसिध साध का अंग

सकल प्राण परबत जलैं, आपा अगनि सु लागि ।
रज्जब साधू हेम गिरि, तहां न प्रगटै आगि ॥१॥

रज्जब जग जलता मिलै, साधू सीतल अंग ।
चंदन बिष व्यापै नहीं, जे कोटिक भिदै भुअंग ॥२॥

ताकौं कछू व्यापै नहीं, जो समुझै मन माहिं ।
रज्जब रज परसै नहीं, जे कंचन परि जुग जाहिं ॥३॥

ज्यूं सलिता समुंदहिं मिलै, थिरै न खारा साव ।
जैसे रज्जब साध गति, क्यूं भानै कोइ भाव ॥४॥

साधू संदल बावना, नर तरु लावहिं बास ।
आदम भार अठार की, तिनहिं न परसै पास ॥५॥

प्रसिध साध पारस मई, लोहा रूपी लोग ।
रज्जब आप न पलटही, औरहु पलटण जोग ॥६॥

चंदन सरप मिले अमल, मणि भुजंग पणि तेम ।
ज्यूं रज्जब साधू असध, लखिण मलै न नेम ॥७॥

जोक * न लार्गहिं पोरसहिं, घुण नहिं भषै अंगार ।
त्यूं रज्जब साधू सकति, लिपहि न सिसन बिकार ॥८॥

दीपक हीरे लाल का, द्रुम चित्राम सुबेलि ।
रज्जब तैसे साध हैं, मारुत माया पेलि ॥९॥

लोभी लोहा चल मिलै, अह चंबक चित्राम ।
निरहाई कंचन मई, नर निहचल निहकाम ॥१०॥

बीज बाय बादल चपल, पै सुन्नि न चंचल होइ ।
त्योंही जगपति मैं जगत, अहरह लावै कोइ ॥११॥

रज्जब साईं सुन्नि समि, कोई बिरला साध ।
सो सब मैं न्यारा अकल, पूरन बुद्धि अगाध ॥१२॥

---

* नोक पाठ भी मिलता है ।

सुन्नि सरूपी साध हैं, पंच तत्त तिन माहिं ।
रज्जब रहैं सु एकठे, लिपैं छिपैं सो नाहिं ॥१३॥

रज्जब मनसा बीज सों, डरहिं न साधू सेस ।
अकलि अवनि सिर पर सदल, पिसण नहीं परवेस ॥१४॥

अष्ट धात काया कुल पर्वत, मनसा मही सु माहिं ।
रज्जब साधू अनल समि, उस कंटिक कोइ नाहिं ॥१५॥

तारहुं परि तोरा नहीं, दामिनि का लवलेस ।
चपला करि चमकै नहीं, रज्जब रबि राकेस ॥१६॥

यंद्री अहि सु अंगार हैं, साधू मोर चकोर ।
यहु अहार येई करहिं, और थकित इहि वोर ॥१७॥

आतम अंभ अवनि अस्थूल परि, उदै प्रकीरत प्रान ।
रे रज्जब रज तलि तततोये, तहां न दोइ निसान ॥१८॥

तन मन धक्का देत हैं, पुनि धक्का पंचभूत ।
रज्जब इनमैं ठाहरै, सो आतम अवधूत ॥१९॥

मनहु मनोरथ मेटि करि, दिल राखै जु दुरस ।
रज्जब काल कुभाव कूं, पूरा प्रान पुरस ॥२०॥

तन माहै तन तैं जुदा, मन माहै मन दूरि ।
इंद्रयूं माहि अलाहिदा, रज्जब साधू सूरि ॥२१॥

ब्रह्मण्ड प्यंड मनषा मुकत, सोइ सिरोमन साध ।
जन रज्जब नर नीपज्या, अपगति भाव गगाध ॥२२॥

मीच माहिं साबत रहै, नर नारायण हेत ।
जन रज्जब ता संत का, हरि बलिहारी लेत ॥२३॥

जेहि ठाहरि बोलै सबद, तहां भरै तन मन्न ।
रज्जब रहतिहिं कहत मिलि, निपज्या साधू जन्न ॥२४॥

आतम कण सु पकाइये, ब्रह्म अगनि कै माहिं ।
अबगति आदम मुखि पड़ै, सो फिरि आवै नाहिं ॥२५॥

बालपणौं बैलै नहीं, जोबन जुवती त्याग ।
रज्जब बिकल न बृद्धपणि, उरिन अवस्था लाग ॥२६॥

देखौ ध्रुव प्रहलाद दिसि, सनकादिक सुखदेव ।
रज्जब रहे सु एक रस, आदि अंत मधि सेव ॥२७॥

गरभ न व्यापी गरभ की, प्यंड सु परस्या प्राण ।
आन घटौ उरझ्या नहीं, सुखदेव संत सुजाण ॥२८॥

आप उपाये अमल जन, तहां न माया मेल ।
रज्जब रज परसै नहीं, जैसे सोवन सैल ॥२९॥

सकल चकहुं परि चक्कवै, करै न च्यन्ता राज ।
रज्जब रोटी रुद्र मैं, अनि अधिपति दुख साज ॥३०॥

माया मधि मुक्ति का अंग

मणि भुजंग ज्यूं एकठे, गुण गति भिन्न बिचार ।
जन रज्जब ऐसे रहैं, साधू इह संसार ॥१॥

जन रज्जब रबि ससि सदा, रहैं सुन्नि अस्थान ।
एक महलि एका नहीं, देखौ गति मति आन ॥२॥

लोई रंग रांचै नहीं, सूत सदा मधि सेत ।
जन रज्जब जन यूं जुदे, नहीं धरे सूं हेत ॥३॥

दरपन मैं सब देखिये, गहिबे कूं कछु नाहिं ।
त्यूं रज्जब साधू जुदे, माया काया माहिं ॥४॥

जिते चित्त चंदवै महलि, तिते छांह मैं नाहिं ।
त्यूं माया सब साध परि, सो बनही उर माहिं ॥५॥

रज्जब रिधि थोड़ी बहुत, साधू मगनि न होइ ।
ज्यूं बादल सूकै सजलि, बीज बुझै नहिं जोइ ॥६॥

सोषै पोषै सूर ज्यूं, संकट आवै नाहिं ।
त्यूं रज्जब साधू जुदे, माया काया माहिं ॥७॥

सूर न मैला जल गहै, तजि नहिं निरमल होइ ।
बरतणि बरतै साध यूं, रंग न पलटै कोइ ॥८॥

साधू सूरिज सारिका, आदि अंत मधि लाल ।
रज्जब रहै त येक रस, तिमिर न परसै साल ॥९॥

रज्जब बेत्वा बीजली, घट सु घटा कै माहिं ।
सकति सलिल न्यारे निकटि, लिपै छिपै सो नाहिं ॥१०॥

बड़वानल अउ बज्र कौं, पाणी परसै नाहिं ।
त्यूं रज्जब रहते पुरुष, मिले न माया माहिं ॥११॥

पुरिष पहम पहरै सदा, अम्बर भार अठार ।
बाहर देखै बाहले, माँहि निगम व्योहार ॥१२॥

आभे अंबर सुन्नि मै, बोड़े केती बार ।
बागौं मैं बाहर खड़ी, रज्जब समझि बिचार ॥१३॥

साधू सिरटा मक्कई, दस बागे तन धारि ।
ब्रह्म भूमि रस पीजिये, मन कन निपजि अपारि ॥१४॥

बसन तजै दुरबासना, असन तजै उर आस ।
यूं भूखे नांगे रहै, जन रज्जब निज दास ॥१५॥

रिधि सिधि मैं न्यारे रहै, भुगता भगवंत हाथि ।
रज्जब मुकते राम मिलि, सब संपति तिनि साथि ॥१६॥

मिलती मिलहि न संत जन, पाई परसै नाहिं ।
रज्जब रुचै न रासि परि, सो विरकत मन माहिं ॥१७॥

नर नारी रोटी द्रुपड़, ग्यान घीव घट माहिं ।
रज्जब रीझे एकठे, लिपै छिपै सो नाहिं ॥१८॥

सक्ति सलिल माहै रहै, विरकत बीज समान ।
जन रज्जब माहै मुकति, एकमेक अरु आन ॥१९॥

अधके वोछे अंब मधि, अंबुज के आनंद ।
रज्जब रबि ससि सनमुखा, बिघन नहीं ब्रत बंद ॥२०॥

संबूह सुलप सकतिह मुकत, पाया साधू खोज ।
जैरे रज्जब बारि मधि, ससि सु सुरति सरोज ॥२१॥

रज्जब रचै न रिद्धि सौं, बिदु जन बिरचै नाहिं ।
महापुरुष माया मुकत, बैठे हरिपद माहिं ॥२२॥

ऊणति ऊंधी सूधी संपति, बप बाती दरसाहिं ।
रज्जब प्रीति मिली पावक झलि, ब्रह्म व्योम दिसि जाहिं ॥२३॥

अंकूर अगनि सारंग अहर, मुरमुख दिसि आकास ।
यूं रज्जब साधू सुरति, सकति तजे सिव पास ॥२४॥

ज्यूं है फहेम फरास का, त्यूं ही साध सुजान ।
उभै अवनि उकरी रुपै, बंधै सु दिस असमान ॥२५॥

मुदित न माया आवतै, जाती सकति न सोग ।
रज्जब रिधि मधि यूं मुकति, भाबी करहिं सु भोग ॥२६॥

सक्ति रूप आये गये, साधू रस रंग येक ।
सो रज्जब माया मुकत, पाया परम बमेक ॥२७॥

माया काया मैं मुकत, आतम गुणहु अतीत ।
सो भगता भगवंत समि, जन रज्जब तत जीत ॥२८॥

रज्जब तन में मन मुकते रहैं, बरतणि बंधै सु नाहिं ।
पै चर्म दृष्टी देखै उन्हैं, माया काया माहिं ॥२९॥

रज्जब काढ़ै देह दधि, मन माखण सु विलोय ।
छाजन भोजन छाछि मैं, उभै न एकठ होय ॥३०॥

रज्जब माया मैं मुकति, सांई साधू दोइ ।
जथा सिष गुर ग्यान ले, गति मति एकै होइ ॥३१॥

बाहर भावै बरणि मधि, पाथरि भिदै न तेह ।
त्यूं रज्जब माया मुकति, नाहीं सकति सनेह ॥३२॥

घरि बाहरि माया मुकति, जे सक्ति सुरति मैं नाहिं ।
रज्जब रूखौ चौंपडूं, तेल न केसौ माहिं ॥३३॥

रज्जब एक बिचार बिलि, माया मधि मुकत्ति ।
मिले अमिल ज्यूं तेल जल, ऐसे साध सकत्ति ॥३४॥

सलिल सकति उलटे चले, मीन मुनेस्वर माग ।
रज्जब माया मैं मुकति, यहु उत्तम बैराग ॥३५॥

परवनि पानी पुहुप दिल, उभै अंब निधि माहिं ।
रज्जब ससि सांई सुरति, सलिल सकति यूं नाहिं ॥३६॥

सोरठा : समझि सुरति सूं सीप, सकति समुंदर में रहै ।
रज्जब स्वाति समीप, उदधि उदिक सो ना गहै ॥३७॥

साखी : साध सकति मधि यूं रहै, ज्यूं अंबुज अंब थान ।
मिले अमल रज्जब कहै, साखी ससिहर भान ॥३८॥

रज्जब माया में मुकत, ज्यूं जंतर के तार ।
सकल राग माहैं नहीं, बेत्वा करौ बिचार ॥३९॥

साधू दोइज चंद परि, सबकी आवै आंखि ।
मन मयंक सों मोह बिन, दई दृष्टि नहिं नांखि ॥४०॥

रिद्धि रहति अथवा सहति, नर निस्तारा नाइं ।
साखि सुखदेव जन कहै, देखौ दून्यूं ठाइं ॥४१॥

जन पद पाया जनक ने, माया मधि मुकत्ति ।
रज्जब कहै बिदेह बिरुद, साखी साधू सत्ति ॥४२॥

माया मधि मुकत्ति का, भूत न जानै भेव ।
रज्जब राजा जनक गुर, सिष भया सुखदेव ॥४३॥

रज्जब बारि बिभूत मैं, बासण मन गरकाब ।
नाक भाव ऊपर द्रसै, तौ बूड़ा बदहुं न जाब ॥४४॥

सुरति सीप संजम ग्रह्या, देही दरिया माहिं ।
यूं रज्जब मिश्रत मुकति, माहैं माहैं नाहिं ॥४५॥

सारंग सीप ग्रहस्त का, सुन्नि सलिल सूं सीर ।
त्यूं रज्जब तीजै सती, द्वै द्वै निपजैं बीर ॥४६॥

नर नलनी द्वै द्वै गुणी, सकति सलिल समि गेह ।
परमारथ स्वारथ इनहुं, सांई सूर सनेह ॥४७॥

इकग्रही अरु किरत करहिं, माया मध्य उदास ।
जन रज्जब रामहिं मिले, कोटि कुटंतर दास ॥४८॥

एक जोग मैं भोग है, एक भोग मैं जोग ।
एक बूड़हिं बैराग मैं, एक तिरहिं सु गिरही लोग ॥४९॥

अनल पंषि की आंखि अवनि परि, सीप सरोज सुरति आकास ।
ऊंचे नीचे का भ्रम भागा, रज्जब सोधत आसा आस ॥५०॥

खग खाली दीसै उर, रज्जब पिरथी पास ।
सपति सिंधुर ले उड़ैं, अनल पंषि आकास ॥५१॥

सिलहूं सहत असिलहूं आगे, पैतैं पहुंच्या जाय ।
जन रज्जब है हद वहै, मंहगे मोल बिकाय ॥५२॥

सकल सिष्टि सिरि सेस कै, माया मुद्रा माहिं ।
रज्जब भारी कै भजन, हलकै पूजै नाहिं ॥५३॥

मारुतभख पति मरजिवहूं, होड़ न ह्वै नरनीच ।
मही महोदधि उन सिरहुं, बोझ बात अनमीच ॥५४॥

मोर चकोर महंत भख, बिष बहनीर बिभूति ।
अग्नि कटै अरु आंचकथ, तिहूं होत मृत सूति ॥५५॥

सरप सकति बिष ना चढ़ै, गरुड़ द्वार मुख नांव ।
दुहुं कौ दोष न दोइ का, दुनी मरै जिह ठांव ॥५६॥

रैणाइर रिधि मधि धंसि, मोहन मुकता लेहि ।
मरजीवा मुनि सहज कृत, और तहां जिव देहि ॥५७॥

झंपापाती मरि जिवै, पैठी दरिया माहिं ।
इक मुकता ले बाहुड़ैं, एक मरि मधि आवहिं नाहिं ॥५८॥

बीज बारि माहै अबुझ, खनि बहनी बुझि जाहिं ।
ज्यूं रज्जब तारू अतिर, दीसैं जग जल माहिं ॥५९॥

तीरू अणतीरू परै, सकति सु सलितै हैरि ।
उभै अभ्यासैं अंभ मैं, पै तिरण बूझणै फेरि ॥६०॥

सूर सती संसार मैं, अलग सलग दरसंत ।
त्यूं रज्जब साधू सकति, नमो निरंतर मंत ॥६१॥

एक कामिनिह काम ह्वै, सकल साधना येह ।
रज्जब सो सीझ्या सही, वह बन रहौ कि गेह ॥६२॥

जड़ बिहूण जल मंडली, जीवै पानी माहिं ।
त्यूं अतीत आसा रहत, परि आलम न्यारे नाहिं ॥६३॥

अमरबेलि जड़ बीहुणीं, भरी डील सो पान ।
त्यूं रज्जब माया मुकति, संतति सकति सु पान ॥६४॥

अरिल: बेदाने की बेलि फूल फल ह्वै सदा,
त्यूं निरिहाई नरपास सकल पाया मुदा ।
बीज गये गुर ग्यान न सो ठाहर रही,
परिहां रज्जव रहते रिधि रिध मैं यूं सही ॥६५॥

साखा: रज्जब रिधिहि दुहाग दे, दीया भगति सुहाग ।
उभै एक घर मैं रहैं, अभगा सहत सभाग ॥६६॥

रज्जब सतियहुं पोषिये, नर निरखौ निरबाह ।
फूटौं सारे ऊबरैं, औलोकहु सु अबाह ॥६७॥

ररा अषर मात्रहुं भरया, मम्मै मात्रा नाहिं ।
रज्जब अज्जब राम लगि, बंदनीक जग माहिं ॥६८॥

आतम आषिर माया मात्रा, अरथ लगैं परबाणि ।
रज्जब बिमुखे बे अरथ, उभै सु मिथ्या जाणि ॥६९॥

रज्जब अरथ लगैं आषिर सखर, केवल मात्रा संग ।
त्यूं रिधि रहत अथवा सहत, अबगति भाव अभंग ॥७०॥

चित चेतनि छाजा अगमि, बैठै ग्यान बिचार ।
रज्जब रामति राम का, सो देखै दीदार ।।१५।।

रज्जब ज्ञान बिचार ग्रह, जाप जिकरि ठहराइ ।
जैसे भोंडल कै भुवनि, दीया बुझि नहिं जाइ ।।१६।।

समझि समावै संबद में, परखै प्रान प्रबीन ।
जाणिर पैठैं जोति मैं, रज्जब ह्वै लैलीन ।।१७।।

अकलि इनाइत अकल की, प्राणी जो पावै ।
सो काया माया मांड सों, गंज्या नहिं जावै ।।१८।।

बिचार बगहरी टालिये, जो टलै कुबाइक चोट ।
रज्जब उबरै आत्मा, बैठि अकल की ओट ।।१९।।

पाखांण बाण बाइक बुरे, ज्ञान सु गैंड़ै खाल ।
रज्जब बांह बमेक मिलि, चेतनि चोटै टाल ।।२०।।

बप बसुधा मैं बिघन बहु, सो टालै एक बिचार ।
रज्जब पड़ै न प्राणपति, इस माया की मार ।।२१।।

जन रज्जब नट साध कै, साधन सुमती बात ।
द्वै निकसैं बहु अष्यु मैं, चोट न लागै गात ।।२२।।

ज्यों नट निकसै अष्यु मैं, अंगहि लावै नाहिं ।
त्यों रज्जब कहना कठिन, महंत मसंदौ माहिं ।।२३।।

सबद बोलणा सभा मैं, सतरंज का सा खेल ।
रज्जब कीया मात मत, दुर्लभ दुर्जन पेल ।।२४।।

सोरठा : सबद गहै समसेर, प्राणी पाइक की कला ।
टालै घालै हेर, सकल खिलारौं मैं भला ।।२५।।

साखी : रज्जब बाइक बाज परि, चढ़ै सो बावन बीर ।
संसार समुंदहु परि चलै, ले पहुंचावे तीर ।।२६।।

मनसा नटनी बैन बरत चढ़ि, खेलै कला अनूप ।
रज्जब चलतौं धूरि गगन बिच, रीझैं बेत्वा भूप ।।२७।।

बित्त सबित्ती केलवण, साध बेद संसार ।
सौंधी सौं मंहगी करी, नमो केलवण हार ।।२८।।

सबद केलवणि कलिकलै, गिरा गुप्ति गति जानी ।
रज्जब मोहै राम जी, सुनि बेत्तहु की बानी ।।२९।।

छोटे मोटे सबद सुनि, समझ्या बह नहि जाइ ।
सबद सोर ज्यूं श्रवण लगि, अरथ बिचार समाइ ॥३०॥

भली बुरी संसार की, साधू दिल न समाइ ।
पारी छेको नीर ज्यूं, जन रज्जब चलि जाइ ॥३१॥

जब गाफिल गुफ्तार है, तब हांजी तैय्यार ।
और कहाव न कीजिये, रज्जब इहै बिचार ॥३२॥

चंचल बाणी श्रवन सुनि, मुनि जन पकड़ैं मौन ।
साधू छांह सुमेर की, रज्जब डिगैं न पौन ॥३३॥

जांण पड़ें का जीव है, जे छूटै बकवाद ।
समझि समावै सुन्नि मैं, ज्ञान गुरू परसाद ॥३४॥

जथा नगारे चोट सुनि, हिमगिरि करैं उपाधि ।
जन रज्जब यों जानिये, वहां मौन व्रत साधि ॥३५॥

अरिल : जहां बौलैं बीरेदेंत दहाड़े, खेल खबीसौं मांड्या ।
जन रज्जब तिनमै तब बादैं, तब बालिक बप छांड्या ॥३६॥

साखी : सबै दिसावर उठि गया, जबै दृष्टि उठि जाहिं ।
त्यूं रज्जब पलकौ मिल्यूं, बिन दीसै कछु नाहिं ॥३७॥

भला न आवै भलेहिं तजि, बुरा बुरौं बसि जात ।
जन रज्जब जग जीव सों, आइ कहै क्यूं बात ॥३८॥

साध चोर भाई उभै, छांड़ि एक घर जाहिं ।
रज्जब सुख दुख बस पड़े, सो फिरि आवै नाहिं ॥३९॥

अग्यान उदर माहै पड्या, लहै न न्यान निकास ।
रज्जब अरभक अबध की, कहु क्या कीजै आस ॥४०॥

पंषि अंख पावै नहीं, तौ जीवन पद नास ।
रज्जब बिना बमेक यूं, ताकी कैसी आस ॥४१॥

तम मन सुन्नि समझि बिन, सांई साधन येक ।
रज्जब ऊजड़ अकलि बिन, बस्ती नहीं बमेक ॥४२॥

सकति रूप संसार सब, समझ्या कोई येक ।
रज्जब भूति बिभूति मैं, बिरलौं भिन्न बमेक ॥४३॥

जन रज्जब मन सुन्नि कौं, अग्यान सु आभू घेर ।
तौ आतम आदित सहत, बप ब्रह्मण्ड अंधेर ॥४४॥

तहां औषदी अकल है, समझ समीर सु हेर ।
मनसा बाचा करमना, और न छूटन फेर ॥४५॥

पिरथी पुस्तक का अंग

रज्जब बसुधा बेद सब, कुलि आलम सु कुरान ।
पंडित काजी वै बड़े, दुनिया दफ्तर जान ॥१॥

सिष्टि सास्तर है सही, बेत्वा करै बखान ।
रज्जब कागद क्या पढ़ै, पिरथी पुस्तग जान ॥२॥

ब्रह्म बैद ब्रह्मण्ड यहु, कीया सकल कुरान ।
रज्जब मांड मुसाफ कौ, बाचै जान सुजान ॥३॥

रज्जब कागद कुम्भनी, आतम आषिर रूप ।
ब्रह्म बेद बेत्वा पढ़ैं, अकलि सु अजब अनूप ॥४॥

चतुर षानि की काया कागद, आतम आषिर माहिं ।
यहु पुस्तक कोई बिरला बांचै, घटि घटि समझि सु नाहिं ॥५॥

कागद काया कुम्भनी, दफ्तर दुनी दिवान ।
रज्जब आलम इलम यहु, समझै कोई जान ॥६॥

प्रान प्यंड ब्रह्मण्ड मैं, उपजैं चारयूं बेद ।
पै रज्जब मुर मूल है, भेदी पावै भेद ॥७॥

पंच तत्व पुस्तक मई, जिनमै नाना भेद ।
रज्जब पंडित प्रान सौं, जो बांचै यह बेद ॥८॥

कारण पंचौ तत्त हैं, कारज चारयूं बेद ।
जन रज्जब जगि जाण सों, जो पावै यहु भेद ॥९॥

चौपई : बपु मैं बारह सकंद बेद, प्राण पवनि मधि पाया भेद ।
पंच पचीस सिपारे साह, काया ऐन कला मुल्लाह ॥१०॥

अरिल : रुग रुधि चलै जु जरचषि जोये, स्याम श्रवन सुणै भाषा भेद ।
उदर अथरबण सब कोइ जाणै, रज्जब रचे बप सु चतुर बेद ॥११॥

साखी : अठार भार औषदि सबै, बेत्वा बैद लहंत ।
त्यूं पिरथी पुस्तगमई, मुखि मुखि बदति महंत ॥१२॥

बिष अमृत आकार आतमा, उभै उभै सु मंझार ।
रज्जब बसुधा बेद सु बैदक, बेत्वा बेद बिचार ॥१३॥

पाने पुस्तग एक के, हिन्दू मूसलमान ।
सब मैं बिद्या एक ही, पढ़ैं सु पंडित प्रान ॥१४॥

तन मन मथि जोतिग किया, गरग सु गहरे ग्यान ।
गहण सहित गैणागि गमि, रज्जब किया निदान ॥१५॥

कागद मसि के आषिरौं, पाठिक प्रान अनेक ।
रज्जब पुस्तग प्यंड का, कोई पढ़ैगा एक ॥१६॥

सद्गति सेझे का अंग

सरीर सरोवर बुद्धि जल, सबद मीन ह्वै माहिं ।
रज्जब पहले ये नहीं, पीछै मेलै नाहिं ॥१॥

बहुतै सर सरिता भरैं, बादल बारंबार ।
तैसे रज्जब साध गति, बेद भेद तिन लार ॥२॥

जल अनंत आकास मैं, पिरथी पर परिवाणि ।
साध बेद यूं अंतरा, जन रज्जब पहिचाणि ॥३॥

साधू सेझे कूप जल, निगम कलस है चारि ।
जन रज्जब ता नीर की, कुलि पंडित पणिहारि ॥४॥

आसिक सैर समंद है, मसक कुरान कतेब ।
कुलि काजी सक्के फिरैं, रज्जब समझहु सेब ॥५॥

साधू सागर सबद के, बुधि बमेक की खानि ।
जन रज्जब बाणी बिबिधि, सब संतन सौं जानि ॥६॥

साध भौमि निज ग्यान की, कुरान अठारह भार ।
रज्जब ज्यूं थी त्यूं कही, तामैं फेर न सार ॥७॥

चित चेतनि की बात है, चारयू बेद कुरान ।
जन रज्जब सो मानिये, तजिये तिनका थान ॥८॥

बारि बुद्धि माहै उदै, सफरी सबद समान ।
इह प्रकार बाणी बिबिध, समुझै साधु सुजान ॥९॥

परबत प्राणहु सो चलैं, सलिल सास्तर सब ।
अंब अकलि अद्यापि यूं, यूं ही रज्जब अब ॥१०॥

सैलहुं सौं सरिता चली, गुर पीरहुं सों प्रान ।
उदधि सु अबगति कौं मिलहिं, दसा दरसन निदान ॥११॥

बाइक बादल ज्यूं उठहिं, आतम सुन्नि मझार ।
बेद पुरान घटा मिलहिं, अरथ सु अंब अपार ॥१२॥

ज्यूं दीप राग रज्जब करैं, त्यूं तन सेझै ग्यान ।
तहं बहु बहनी बैन लेहि, होहिं नर एक समान ॥१३॥

गैलै गोला ना चलै, गोलै गैला होइ ।
जन रज्जब सांची कही, देखौ रे सब कोइ ॥१४॥

तुरकी तेग कुरान है, श्रुति हिन्दू हथियार ।
जन रज्जब अनभै गुरज, जाकै दह दिस धार ॥१५॥

रज्जब बेद पुरान गहि, जूझण आये सूर ।
ग्यानी अनभै गुरज गहि, मारि किये चक चूर ॥१६॥

रज्जब तुरकी तीर है, बेद बाणि की ढार ।
अनभै बाणी गैब गज, ज्यूं त्यूं करै सुमार ॥१७॥

रज्जब रहता गढ़पती, बहतौं माड्या घेर ।
उकत अलेखै गज चलै, बहुत मुये इस फेर ॥१८॥

साध मिलाप मंगल उछाह का अंग

राम सनेही जब मिलैं, तबहीं आनंद होइ ।
जन रज्जब सो दिन भला, ता समि और न कोइ ॥१॥

साध समागम होत ही, जीव जलणि सब जाइ ।
जन रज्जब जुग जुग सुखी, दुख नहिं लागै आइ ॥२॥

सलिल सैल जड़हू उड़ै, पाये इंद्र अवाज ।
तौ सनमुख किन चालिये, आवत सुणि सिरताज ॥३॥

अति उछाह आनंद अति, मन मंगल सु कल्यान ।
रज्जब मिलतौं संत जन, सुखि सागर दरसान ॥४॥

साधू सदनि पधारतैं, सकल होहिं कल्यान ।
रज्जब अघ उडगन दुरहिं, पुनि प्रगटैं ज्यूं भान ॥५॥

भाग भोगि अस्थल उदै, आवहिं साधू संत ।
जन रज्जब जगि ऊधरैं, जपि जीवनि भगवंत ॥६॥

जिन देखे दुख दूर ह्वै, मिलतौं मंगलचार ।
रज्जब रहिये संगि तिन, बिबिधि बहानौ लार ॥७॥

आंख्यूं आनन्द श्रवन सुख, मन मंगल सु अगाध ।
जन रज्जब रस रंग ह्वै, मिलतौं साधू साध ॥८॥

साध दरसनै नाठरै, सबद परस सुनि कान ।
रज्जब मेला मन मिल्यूं, सब ठाहर सुख सान ॥९॥

रज्जब आंखि कान अड़बी मिटी, सुन्या सु देख्या नैन ।
उभै ठौर आनंद भै, चारचूं पाया चैन ॥१०॥

मंगल सकति समान सब, स्यो मंगल सु अगाध ।
रज्जब सो तब पाइये, जब घरि आवहिं साध ॥११॥

और सकल सूख सुगम हैं, यहु सुख अगम अगाध ।
रज्जब रसन न कहि सकै, जो सुख मिलतौं साध ॥१२॥

साध समागम सुख कौं, कहिबे कों समरथ ।
रज्जब सब उनमान की, जो कहिये कब कथ ॥१३॥

परम पुरिष पारस परस, मन लोहै ह्वै फेर ।
रैन दिवस बेला नवल, रज्जब रारचूं हेर ॥१४॥

जन रज्जब अज्जब दसा, राजा परजा रुख ।
आनंद परि आवहिं सबै, परवनि पातर पुरुख ॥१५॥

अदभू मैं आदम उड़ैं, देखि औ दसा देस ।
रज्जब परवनि परि पुरिष, सुभ ठाहर परबेस ॥१६॥

चरणोदिक प्रसाद का अंग

चरणोदिक परसाद कन, मुखि न पड़ै मति मंद ।
तौ रज्जब अंतर रह्या, कहिये गुर गोव्यंद ॥१॥

चरणोदिक परसाद यूं, जे को ले सत भाइ ।
त्यूं रज्जब मुख मेलतौं, दुख दारु तैं जाइ ॥२॥

परसादी गुरदेव दे, पसु फरदा * पुनि पीर ।
तौ रज्जब किरिया करम, सुखी सौंष इहि सीर ॥३॥

कुमति काट ऊपर फिरै, भये अवनि औलाद ।
सो रज्जब पलटै नहीं, पारस मैं परसाद ॥४॥

---

* 'पसु फरदा' के स्थान पर 'विमुख रहा' पाठ भी मिलता है ।

सोरठा : उड़हिं जो बातहिं बात, सो मनिषा माटी निकण ।
तामैं धरम न धात, बिषै बाइ बसि ह्वै बहैं ॥५॥

साखी : ज्यूं न्यारा नर धोवतें, कंचन किरची मेल ।
तैसे रज्जब साध के, चरनोदिक मैं खेल ॥६॥

कंचन किरची पाइये, नर न्यारे कूं धोइ ।
रज्जब पुंणिग पहाड़ कै, बित्त न लाभै कोइ ॥७॥

सरवी सोवन सैल तैं, तिन सलितौं रज हेम ।
रज्जब लहैं न और नदि, मनसा बाचा नेम ॥८॥

बेत्वा बैरागर मई, निकसै लाल अनूप ।
रज्जब मुगद मुरस्थली, क्या पावै षणि कूप ॥९॥

सतगुर के परसाद मैं, भाव भगति करतार ।
रज्जब बामा व्यंद ले, बालिक होत न बार ॥१०॥

सतगुर के परसाद मैं, रज्जब दोष न कोइ ।
जथा कामिनी बांझ कै, बालक कदे न होइ ॥११॥

दास दीरघ का अंग

रज्जब चारी सुरसुरह, सुरतरु सीचणहार ।
पूजहिं साधू प्रसिध कौं, सु दातारूं दातार ॥१॥

साधू पारस पोरसा, च्यंतामणि दातार ।
तहं रज्जब भृत भीख बिन, सो गति अगम अपार ॥२॥

सती जती सों है बड़ा, सुखदाई सब जंत ।
रज्जब सींचै इंद्र ज्यूं, निहकामी निज मंत ॥३॥

सेवक सांई सारिखा, आस बिना जो दास ।
बैरागर बैराग बस, रज्जब रहे निरास ॥४॥

सिष्ट सहत सांई लिया, साधू नै उर माहिं ।
उभै समाने दास दिल, तौ सेवक सम कोइ नाहिं ॥५॥

जन रज्जब जल दिल निमति, जती सती कै जाइ ।
भगवंत सहत भोजन किया, बड़भागी भृत भाइ ॥६॥

भले बुरे भूलै नहीं, आतम दृष्टी दास ।
रज्जब नातैं नांव कै, सबकौं देइ गरास ॥७॥

रज्जब उपजे दया दिल, मन में साध न चोर ।
ज्यूं यंद्र उधारन देखई, सर ऊसर की ठौर ॥८॥
सरवर तरवर सती कै, मुर ठाहर मत एक ।
रज्जब जलदल सम दृष्टि, यूं ही बड़ा बमेक ॥९॥

लघुता का अंग

बित्त बड़ाई मैं नहीं, बड़ा न ह्वै जो कोइ ।
छाप लही लघु आंगुरी, रज्जब देखौ जोइ ॥१॥
लघु को बंदे लोग सब, लघु को लेहिं सु गोद ।
जन रज्जब जोया नजरि, देखौ सिसु की कोद ॥२॥
अनल पंष पानै नहीं, सो मधुमाखी लेहि ।
रज्जब रज गज ना लहै, सु मीठा मसि यहि देहि ॥३॥
मातहि मुस्कल मेघ जल, पूत करत पै पान ।
रज्जब यूं लघुता लई, देखि दई का दान ॥४॥
लघुतै बसि दीरघ सदा, देखौ पणि चपि नाखि ।
रज्जब अज्जब साखियहु, मन बच क्रम उर राखि ॥५॥
सकित समंद उलंघि करि, दीरघ गया न कोइ ।
पवन पूत पहुंचा तहां, जन रज्जब लघु होइ ॥६॥
मोटा महल न मावई, राम राज दरि जोइ ।
रज्जब पैठे लघु तहां, तिसहि न बरजै कोइ ॥७॥
मोटे डल फूटैं सही, मान भैज तलि आइ ।
रज्जब रज का क्या करै, ऊपर ह्वै फिरि जाइ ॥८॥
गुरू बीज बड़सारिखा, सिष साखा बिस्तार ।
रज्जब अज्जब देखिया, लघु दीरघ व्योहार ॥९॥
बारि बूंद रूपी गुरू, सिष समंद उनहार ।
रज्जब रचना राम की, लघु दीरघ सु बिचार ॥१०॥
गुरू व्रहस्पति सुक्र से, सिष सब देव दयंत ।
ज्यूं मदिरा परि कलस लघु, अति सुंदर सोभंत ॥११॥
सब औतारूं के गुरू, देखौ आद अतीत ।
रज्जब पाई प्रान नै, लघु दीरघ परतीत ॥१२॥

रज्जब चेले चक्कवै, गुरू गरीबै तास ।
उनकौं उस दरबार की, उनमाहैं करि आस ॥१३॥

मुरीद मलूक सलूक के, देखौं राह रसूल ।
रज्जब अज्जब सुख न यहु, सुणि सब करौ कबूल ॥१४॥

सतजत सुमिरन किये का, जे मल होइ न माहिं ।
सो रज्जब रामहिं मिले, संसा कोई नाहिं ॥१५॥

गरबि न गिरवर ठाहरै, आतम अंभ समानि ।
रज्जब आवैं उभै चलि, नमरीभूत निवानि ॥१६॥

नर हरि आवहिं नीर ज्यूं, नम्रीभूत निमानि ।
रज्जब अज्जब दीनता, छह दरसन कहि छानि ॥१७॥

गरीब निवाज गुसाइयां, बिसरज बिरद न होइ ।
निरखि नीच कुल पदमणी, साखि भरै सब कोइ ॥१८॥

मिहदी चंदन चाहि करि, काजल सुरमा जोइ ।
पग छाती नैनहु चढ़ैं, रज्जब नान्हें होइ ॥१९॥

सोरठा : साधू केसरि अंग, कसत घसत ओपम बढ़ै ।
रज्जब रचना रंग, तिलक छंट मस्तगि चढ़ैं ॥२०॥

साखी : नान्हौ सौं नान्हा हुये, बारीकहुं बारीक ।
सो रज्जब रामहिं मिले, जे चाले लघु लीक ॥२१॥

महा मिहीं मन कौं मिलैं, सूषिम सांई आइ ।
जन रज्जब पति परसिये, आपा सकल उठाइ ॥२२॥

बारीक मही झीणौं परैं, सुन्नि समान न कोइ ।
जन रज्जब तासों मिलण, तब तैसा ही होइ ॥२३॥

निसा रूप नर देखिये, सांई सूर सुभाइ ।
उभै सुआवैं आप सौं, जे रज्जब रजनी जाइ ॥२४॥

अकल कलै आपै उठे, दीनहु दीनदयाल ।
रज्जब परचा प्रानपति, होता है इस हाल ॥२५॥

रज्जब अपणै लौभ कौं, ठीकूं ठगि डंडौत ।
जल जगदीसर पाइये, मही महंत निनौत ॥२६॥

रज्जब रज ऊंची चढ़ी, तौ तामै क्या बित बीर ।
सांई सौंपी संकति सब, नीचा चल तौं नीर ॥२७॥

रज्जब ताकि तराजु वहै, पुन्नि पले नर ताइ ।
भारी नीचे कूं धुकै, हलुकै ऊंचे जाइ ॥२८॥

अरिल : तरुवर सुफल सजल अति आभे, मानस सगुन नवै निज दास ।
जन रज्जब फल जल गुन छूटै, तीन्यूं ऊंचे जाहिं अकास ॥२९॥

साखी : रज्जब डरते धुकि धरती मिलहिं, अडर सु ऊंचे जाहिं ।
उभै अंग आभे लिये, क्रिपन कृपालहु माहिं ॥३०॥

जड़ नीचहुं ऊंचे गये, रज्जब नरु तरु साखि ।
मनसा बाचा करमना, तातैं लघुता राखि ॥३१॥

आपैं चढ़ै नीचा गया, उतरचूं ऊंचा जाइ ।
ज्यूं रज्जब कर केण परि, निरख नांद निरताइ ॥३२॥

परमारथी पनिंग पति, सिष्टि मार सिर लीन ।
तौ रज्जब प्रभु पहुम परि, नाम तिनहु के कीन ॥३३॥

गुण डोरी नीची खचत, ग्यान दीप आकास ।
रज्जब उलटे पेंचकौं, समुझै समुझ्या दास ॥३४॥

नीचहुं ऊंचे थान परि, बैठत भारी भोल ।
फूस फेण सो समंद सिरि, पग तलि नग निरमोल ॥३५॥

मीठी मही महंत मति, कण कण निपजै माहिं ।
फोकट फूले खारबै, रज्जब नेपै नाहिं ॥३६॥

सुकलि कली हरि तरु सलग, अलग सु फूलणि फूल ।
तौ रज्जब सिमटचा रहा, त्यूं छूटै नहिं मूल ॥३७॥

मातंग महोदधि नीपजैं, मुकती उभै मंझार ।
रैणाइर गरबै नही, गरबै गज सु गंवार ॥३८॥

साधू मन दीपक बुझै, बह्यूं बड़ाई बाब ।
रज्जब राखहुं जोति कौ, तौ लघुता जतन उपाव ॥३९॥

चौपई : अधपति आभे अवनि अतीत, झुकि झुकि मिलहिं अजब रस रीत ।
गरीब गरद जो जाइ अकास, तौ सब नांव धरै सुणि तास ॥४०॥

साखी : रज्जब राम उमंग भरि, आप सहित दे सरब ।
तऊ दास दिल दीन मत, ग्याता होइ न गरब ॥४१॥

सलिल संठ रस गुण गटी, खांड तरी भई ताइ ।
मिसरी ह्वै मुखि तिण लिया, रज्जब कही न जाइ ॥४२॥

रज्जब लौंडहुं आदरहिं, तिन समि बड़ा न कोइ ।
बूंदहु उठे समंद जी, देखि बुदबुदा होइ ॥४३॥

नीचे ऊंचे आवहीं, दालि भाति दिस जोइ ।
जन रज्जब अज्जब कही, तलै सु ऊपरि होइ ॥४४॥

गरीब निवाज गुसाइयां, पुनि निवाज नरपत्ति ।
रज्जब सीप गजेन्द्र कौं, मुकता देइ सु सत्ति ॥४५॥

गरब गंजन का अंग

आदित आगि यंद अरु उडगन, दामनि दमक सु मूंदि ।
रज्जब जगत जोति बल भागे, लाई जींगनि पूंदि ॥१॥

रे रे केसरि अगर तूं, मत करि मान गुमान ।
गहरी बास सु गुदा मैं, मैल मजारी जान ॥२॥

ब्रह्मा सारद अषिर धर, मान न करियो कोइ ।
मुये स्वान के पूंद तैं, चारि बेद धुनि होइ ॥३॥

गिरवर गरब न कीजियो, सप्त धात घन जोर ।
तांबा निकसै पंख मैं, लागी पूंदनि मोर ॥४॥

बिस हरै निरबिस करै, अति गति मोल बिकाहिं ।
बड़े पाड़ की धात सब, मोर धात समि नाहिं ॥५॥

गांडर जड़हु सुगंध मिटाइ, कौ बावन बल छाड़ि ।
लघु कौं दीरघ दीन दत, पद यूं पदई बाड़ि ॥६॥

लघुतणिकै मधि नाज कीये, दीरघ द्रुमहु सु और ।
गरभ गंजन गोव्यंद जी, ताल दवनि किस ठौर ॥७॥

इंद्र धनुष रंग काढ़ि न गरबी, जैसो काढ़ै किरकांट ।
रज्जब राम रूप दिये सरभरि, बंधी कौन की आंट ॥८॥

तेज तत्त कौं दीध ललाई, सो बुढडी भ्रम भान ।
रज्जब रक्त बरन सब रोये, कान रूप कहं सान ॥९॥

ससि समुंद्र गरबै कहा, जे मधु माखी माहिं ।
तुममै सुधा सहत अजुरी, मैं गरब रह्या कछु नाहिं ॥१०॥

अमी कुंड बैकुंठ मै, ससि मै सुधा सु ठौर ।
सोई सरजा सरप मुख, अलप दिखाया और ॥११॥

अज्जब धन पुस्तग किया, जोतिग ठौर उठाइ ।
अगम कह्या ये बाल नैं, लह्या न जोतिगराइ ॥१२॥

जोतिग जुगति न जाणहीं, खांडर बारलि रेत ।
सो कीड़ी की मत लही, ढूंढ़ि कणौंका लेत ॥१३॥

कीरी कौ कुंजर डरै, सोवै सूंडि समेटि ।
गज गुमान तब का गया, मान मकौड़ै मेटि ॥१४॥

सिंधुर डरपै स्यंघ सों, ताहि सु माछर खांहि ।
पोरस रह्या न पंचमुख, मान सु मरह्या मांहि ॥१५॥

मोटी काया मुगद जिव, आदम छोटा साज ।
दीरघ देह्यूं दरपहर, लघु देही सिरताज ॥१६॥

दर्प हरह्या दरियाव का, उडगि ऊदिध आरोग ।
रज्जब रज सु कहां रही, पड्या अभोगी भोग ॥१७॥

नाल खाल नौसे लियूं, नदी नाथ गरजाइ ।
सो अगस्त अचवनि किया, तौ मति कोइ गरबाइ ॥१८॥

एक सूर तारे अनंत, देखि दरस दबि जांहि ।
रज्जब गरब न कीजिये, बैठि सु बिधु घण मांहि ॥१९॥

परिवार पूर तारे अनंत, चंद रहै तिन मांहि ।
रज्जब पकड्या राह जब, सगौ सरचा कछु नांहि ॥२०॥

चौपई : गरीब निवाज गरब गंजन सांई, उभै बिरद परि बाधी बाई ।
रावहि रंक रंक तौं राजा, समरथ सब बिधि पुरवन काजा ॥२१॥

साखी : गरब गंजन गोव्यंद जी, सदा गरीब नेवाज ।
उभै अंग अबिगत कनै, बहैं बिड़द की लाज ॥२२॥

ब्रह्मा बिष्णु महेस सूर ससि, इंद्र गनेस्वर गौरी देव ।
ये असवार उजह नहिं उतरैं, सावधान सांई की सेव ॥२३॥

ब्रह्मा बिष्नु महेस सूर ससि, यन्द्र लगै असवार ।
रज्जब रथ परि सुरहु न संकट, गरब चढ़ैं भै ख्वार ॥२४॥

अरिल : हंस गरुड़ बृष बाज मिरिग मत, ये रथ सुर असवार ।
रज्जब तिनकों बिघन न व्यापा, गरब गादह परिमार ॥२५॥

साखी : प्यंड चढ़े प्राणहु चढ़े, चढ़े सु दिल दीवानि ।
रज्जब पाले पीटिये, चढ़े जु गरब गुमानि ॥२६॥

चौरासी किस परि चढ़ी, पसु पाले दिन रात ।
रज्जब रामहु ना मिली, हम रीझे इस बात ॥२७॥

न्याव नीति सब ठौर सु प्यारी, रज्जब दीसै तीन्यूं भौन ।
प्यादे चढ़े चाकरी पूरे, तिनके पटे उतारे कौन ॥२८॥

चौपई : बैठे रथौं देवता सारे, सो सब कहौ कहां थै डारे ।
रज्जब सेबग सेवा माहीं, तिनके पैंड उतारै नाहीं ॥२९॥

छप्पय : ब्रह्मा बाहन हंस बिस्न कै, बाहन खगपति ।
संकर बाहन बैल मूस, पर मंडे सु गनपति ॥
कार्तिक स्वामी मोर सकति, सति स्यंघ बिराजै ।
है गै सूरिज यंद्र ससि रथ, सारंग छाजै ॥
सुर सबहिन प्यारे पुहण, तिनके काज न बीगड़े ।
जे रज्जब आपै चढ़े ते, परलै वा मुख पड़े ॥३०॥

साखी : रज्जब रीती बंदगी, जब लग आपा माहिं ।
मनसा बाचा करमना, साहिब मानै नाहिं ॥३१॥

बप हांडी बाराह की, करहु न गरब गुमान ।
रे रज्जब यूं जानि लै, जे तू चतुर सुजान ॥३२॥

करुना का अंग

आदि अंत मधि हम बुरे, हमसूं भला न होइ ।
रज्जब ज्यूं साहिब खुसी, सो लछिन नहिं कोइ ॥१॥

रज्जब हमसूं हम दुखी, तौ राम सुखी क्यूं होइ ।
अजन अजुगि ते कंठि कुचि, खसम न पावै चोइ ॥२॥

बंदे मैं सो बंदगी, जामे सुख नहिं लेस ।
रज्जब सिर की ठौर थी, तहां दीजिये केस ॥३॥

रज्जब समि अधमै नहीं, तुम प्रभु अधम उधार ।
उभै अंग मै फेर क्या, कीजै क्रिया बिचार ॥४॥

रज्जब पापी पहुम पर, रोम रोम रुचि पाप ।
क्रिया करौ तौ ऊधरै, सेवग सुत हरि बाप ॥५॥

साध साध सब को कहै, मैं स्याधा कछु नाहिं ।
पंच पचीसौं त्रिगुन तन, मनर मनोरथ माहिं ॥६॥

तुम जोगे सेवक नहीं, मैं मंद भागी करतार ।
रज्जब गुनही बाप जी, बहुत किये बिभचार ॥७॥

गुनहूं माहै गलि रह्या, गाफिल भया गंवार ।
रज्जब सठ समझै नहीं, साहिब सुनहु पुकार ॥८॥

तन मन सेझा पाप का, अरि इंद्री अघ खानि ।
रज्जब पूछै राम कौं, सजा सु कौन समानि ॥९॥

राम कसौटी सब सुलप, रज्जब पाप अपार ।
सजा सु सूझै साइयां, मो समि तो दरबार ॥१०॥

उदरि उदरि ऊंधे रहे, सहि संकट सब भौन ।
रज्जब जग जामे मुये, सजा देहुगे कौन ॥११॥

बिपति नहीं प्रभु बिमुखि समि, सो सिरजी मम सीस ।
अब रज्जब सों रोस करि, करिस्यूं क्या जगदीस ॥१२॥

अरिल : बदअमली क्या बदन दिखावै, बंदे का मुंह काला ।
प्रभु जी दरस न ऊजल दीजै, क्या बैठे दे ताला ॥१३॥

साखी : करुनामै करुना करौ, देखहु दीनदयाल ।
रज्जब रीता रहम बिन, तुम पूरन प्रतिपाल ॥१४॥

सुठि सेवग बिनती करै, चेरौ चवै पुकार ।
रज्जब दहुं मैं एक है, समरथ सिरजनहार ॥१५॥

चोर जार बट पार ह्वै, पापी करै पुकार ।
रज्जब राम दयाल है, सो अघ मेटणहार ॥१६॥

एक मार परि मौज ह्वै, इक मारि मिहरि सों जाइ ।
रज्जब सों करि रोस रस, भगवंत आवौ भाइ ॥१७॥

कायर सूर पटा लहैं, न्यारी निपट निवाज ।
पै रिजक न मेटै राम जी, कीये की है लाज ॥१८॥

रज्जब सनमुखि बिमुख कौं, बरा बिसंभर देइ ।
कीये की लज्या बहै, गुन औगुन नहिं लेइ ॥१९॥

सुकति मुकति अनि सीप सांषुले, जल जलनिधि इक भाइ ।
मंहगे सूंघे रज्जबा, ह्वै अंकूर सुभाइ ॥२०॥

गुनही कौ मारौ धणी, अपणै हाथ सु आइ ।
अंतिकाल आनंद ह्वै, दरस सु देख्या जाइ ॥२१॥

बिड़द बिहारी बाहुड़ौ, बाहुड़ि बहिये लाजि ।
रज्जब के रिपु मारिये, ये सांई सिरताज ॥२२॥

ग्रब गंजन गोव्यंद जी, पुणि अनाथ के नाथ ।
रज्जब के रिपु मेटिये, ये व्यापक भरि बाथ ॥२३॥

तन मन पंचौ चोर हैं, बसि आवैं नहिं बाज ।
इनके गुनह न वारिये, ये सांई सिरताज ॥२४॥

दीनदयाल दयामई, सदा दीन कै पास ।
रज्जब की फिरियाद सुणि, मेटहु मेरी त्रास ॥२५॥

कला अनंत अनंत कन, आतम कन नहिं येक ।
रज्जब राम रिझावणा, लहिये नहीं बमेक ॥२६॥

रज्जब अज्जब राम है, कहे सुणे मे नाहिं ।
यहु असुद्ध अंतःकरण, वह देखौ दिल माहिं ॥२७॥

गरीब नेवाज गोसाइयां, गुरू गरीबौ दास ।
रज्जब चूक जु हमहुं मैं, नहिं गरीब गुन पास ॥२८॥

रज्जब बिनती परब्रह्म, करुनामै सु बिरद्द ।
पुकार सुन्यूं प्रभु बाहरू, पै मैं मुरथौ कूं रद्द ॥२९॥

घर मैं पारस लोह था, परिलै लाया नाहिं ।
मनसा बाचा करमना, चूक पड़ी मुझ माहिं ॥३०॥

अरिल : निहचा आया नांव का, परि नांव न आया ।
रज्जब रज तज काढ़तौं, प्राणी पछितायां ॥३१॥

बीनती का अंग

सकल पतित पावनि किये, अधम उधारनहार ।
बिरद बिचारौ बाप जी, जन रज्जब की बार ॥१॥

रज्जब ऊपरि रहम करि, हरिजी दीजै हाथ ।
नाता राखौ नांव का, नरक निवारन नाथ ॥२॥

लाखौ माहैं सो लखै, जाका लीजै नांव ।
तौ रज्जब मुखि नांव है, देखौं मैं बलि जांव ॥३॥

रज्जब टेरै रैन दिन, क्यूं बोलौ नहिं कंत ।
कै तुम अब मौनी भये, कै तुम चाहौ अंत ॥४॥

जे तुम राम बुलाइ ल्यो, तौ रज्जब मिलसी आइ ।
जथा पवन परसंग ह्वै, गुड़ी गगन कूं जाइ ॥५॥

बिन आधार अकास कौं, कहौ बेलि क्यूं जाइ ।
त्यूं रज्जब निरधार है, साहिब करौ सहाइ ॥६॥

देही दूतर मन अतिर, मौज मनोरथ माहिं ।
बिषम बार निधि राम बिन, रज्जब तिरिये नाहिं ॥७॥

इंद्री अनंग अंगार है, काया कपड़ै माहिं ।
बप बस्तर बाबै बचैं, नहीं त ऊवौ नाहिं ॥८॥

साहिब राखै मांड मैं, साहिब प्यंड मझारि ।
साहिब राखै आप मैं, और न राखणहार ॥९॥

सूते सुतिहि खुलावहीं, माता पिता जगाइ ।
त्यूं रज्जब सूं कीजिये, भगवंत आवौ भाइ ॥१०॥

बाहर कहिये कौन सों, माहैं मुसकिल काम ।
अंतरि अंतर मेटिये, अंतरजामी राम ॥११॥

रज्जब कीड़ा नरक का, ब्रह्म कवंलि क्यूं जाइ ।
भगवंत भ्रंगी रूप है, जे नहिं लेइ उठाइ ॥१२॥

भ्रंगी नै भ्रंगी करी, कीट किरत कछु नाहिं ।
त्यूं रज्जब सौं कीजिये, क्या देखौ हम माहिं ॥१३॥

बालक बिष्टा मैं पड्या, सु आप न उज्जल होइ ।
जन रज्जब माता पिता, जे सुत लेहिं न धोइ ॥१४॥

जंगम जिव जोड़े बंधे, थावर मही सु माहिं ।
बाबा के बंधन बाबौ खोलै, आप खुलै सो नाहिं ॥१५॥

बालक कै बल रोज का, पड़ि लुड़ि करै पुकार ।
रज्जब सुत मै सकति यहु, समरथ सिरजनहार ॥१६॥

बाबा मानहु बीनती, बेला बरंभू होह ।
जो मिरतग माता पिता, सो सुत धरहिं न द्रोह ॥१७॥

जब तब तुमतै होइगा, जान राइ जिव कांज ।
रज्जब ज्यूं थी त्यूं कही, सुनि श्रवनौ सिरताज ॥१८॥

रैनाइर रिधि मद्धि परि, बोहिथ बेत्वा साथ ।
रज्जब पहुंचै पार तौं, जे खेवहि अनिल अगाध ॥१९॥

मौ मन अघ सागर सही, तुम प्रभु होहु अगस्त ।
रज्जब के अपराध अति, मिटै न त्रिन हरि हस्त ॥२०॥

तन मन कौ धौवै धणी, बुधि के बिबिध बिकार ।
रज्जब की रज ऊतरै, तुमतैं सिरजनहार ॥२१॥

पीतम प्रगटौ ताप ज्यूं, प्यंड तैं प्रान छुड़ाइ ।
मारि मिलावौ आप मैं, जन रज्जब बलि जाइ ॥२२॥

संतहु आतम राम बिधि, माया पुट भरपूरि ।
रज्जब टालै कौन बिधि, जे हरि करै न दूरि ॥२३॥

जो दिनकर अरु दृष्टि बिचि, आभा आड़ा होइ ।
रज्जब कीजै दूरि क्यूं, हिकमति चलै न कोइ ॥२४॥

हरि हजाम मो मन मुकुर, माया म्यान कर माहिं ।
मुख सुखि देखहिं काढ़ि करि, नहीं त काढ़ै नाहिं ॥२५॥

जे तुम राखौ तौ रहै, सेवक सदा समीप ।
रज्जब त्यागै साइयां, तौ बहुत पड़ै बिच दीप ॥२६॥

दासहि द्वारे राखिये, हरि हित आंख्यूं हेर ।
बंदे की यहु बीनती, घरि घरि बारि न फेर ॥२७॥

जीव कृत जगदीस कन, जाया कदे न जाइ ।
रज्जब जब लग राम जी, आप न करै सहाइ ॥२८॥

कुलि कसणी करतूति करि, करम फंद नहिं जाइ ।
रज्जब निबड़ै रहम सूं, भगवंत आये भाइ ॥२९॥

रज्जब ब्रह्म बिहंग के, आतम अंड समान ।
पै बाबा सेवौं नहीं, तौ क्यूं निपजै तन जान ॥३०॥

चौंतिस गढ़हु माहै जड्या, जन रज्जब जड़ प्राण ।
बंदि तुम्हारी तुमतैं छूटै, सांई सुनहु सुजाण ॥३१॥

सदा जीव जल की बरति, देखत नीचा जाइ ।
रज्जब सांई सूरि समि, ऊंचा लेहि उठाइ ॥३२॥

अरिल : अजाजील दिल माहैं बैठा, भली न उपजण पावै ।
साहिब अपणा कौल बिचारौ, तौ जिव तुम पै आवै ॥३३॥

साखी : सब दिन सांई सारिखा, पै हरि हिरदै की लेइ ।
टोटी बहतौ मात पित, बालहिं रोटी देइ ॥३४॥

रज्जब बंदे बाल बिध, बोलहिं बुध उन हार ।
पै अंतरजामी मात पित, मन की लेहिं बिचार ॥३५॥

रज्जब खीरा खीर मधि, मुहड़ै खारा स्वाद ।
यूं बोलि न जाड़ै बिष बिमल, ताका तजि अपराध ॥३६॥

अनंत अंत लेतैं अघौं, तौ न उधरते संत ।
जन रज्जब की बीनती, मानहु अपणा मंत ॥३७॥

भूलि चूक भगवंत की, भिरतहुं मंगलचार ।
रज्जब रज तज काढ़तौं, ह्वै सेवग सिर मार ॥३८॥

चौपई : नांव अलेख अलेख कहावै, लेखा लेत नहीं बनि आवै ।
बाब बिरह की बहिये लाज, रज्जब के सीझैं सब काज ॥३९॥

साखी : बंदे की जो बंदगी, लेखै बदी सु होइ ।
अजर बीनती ब्रह्म सौं, रज्जब कहि बिधि होइ ॥४०॥

नाहीं सौं नाहीं उदै, है सौं है सा होइ ।
रज्जब की यहु बीनती, साहिब देखौ जोइ ॥४१॥

रज्जब अंषि आतमा एक गति, फूटे सारे गोत ।
पै प्रभु पालहिं पलक परि, टंकत दुबिध न होत ॥४२॥

जोगी जटहिं लगाइ लै, टूटा सारा केस ।
त्यूं रज्जब सौं राम करि, इहां नहीं लवलेस ॥४३॥

भले बुरे छूटैं न प्रभु, जे लागे निज अंग ।
घट धारी हूं ले चलै, लूली लंगड़ी टंग ॥४४॥

सुरही सुत मिरतग तुचा, तापरि सरवैं खीर ।
तौ त्यागहु गे कौन बिधि, भगत बछल ब्रद भीर ॥४५॥

ब्रह्म गाइ बंदा सु बच्छ, मूरा मूरति गोर ।
सकति सीर सरवहिं सदा, घटी कृपा नहिं कोर ॥४६॥

भाव भोज की दामनी, काया षड़ै लै खाल ।
बाबा बंगड़ सौं धस्या, रज्जब किये निहाल ॥४७॥

रज्जब गुनही आदि का, अंत लगै हूं सोइ ।
मधि मद्धिम कृत कृत्य हूं, कहु छूटण क्यूं होइ ॥४८॥

मै मेरा पाया मुदा, मन क्रम बिस्वा बीस ।
रज्जब खोटा त्यूं सही, तौ त्यागहिं जगदीस ॥४९॥

गैरी पाड़ैं के चलहिं, बिकहिं बत्तन के साथ ।
रज्जब तूं खोटा सही, जु हरि पकड़ैं नहिं हाथ ॥५०॥

रज्जब गुनही जीव जड़, अपराधी सु अपार ।
मिहरि तुम्हारी ऊपरै, सांचा सिरजनहार ॥५१॥

मीरा मुझमै क्या खता, जे तुम बिसरे बाप ।
अब रज्जब परि रहम करि, दै अघ मोचन जाप ॥५२॥

बदी बिस्याही बहुत ही, नेकी नैक न लीन ।
जन रज्जब जग आइ करि, कहै कहा हम कीन ॥५३॥

जब काजी वाजिद किया, तब का चढ्या कलंक ।
अब रज्जब सौं राम मिलि, मेटी जे अघ अंक ॥५४॥

जुग अनंत का रूठणा, भानहु आतम राम ।
रज्जब लम्बा रोस अति, नहीं भलौं का काम ॥५५॥

रज्जब आया चूकता, सदा चूक ही माहिं ।
पै प्रभु तुम चूकौ सु क्यूं, मुझै उधारहु नाहिं ॥५६॥

कै तुम काढ्या गुनहु परि, कै हूनर परगास ।
पग परसावौं परम गुर, दूर दुखी यहु दास ॥५७॥

भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव ।
यहु तुम्हरा तुमकौ मिलै, तुम क्यूं मिलौ न पीव ॥५८॥

जाण लिया खोटा खरा, सोब भिरै नहिं सांई ।
तौ रज्जब है पुत्र तुम्हारा, करस्या कहा गुसांई ॥५९॥

त्यूं साहिब सनमुख सदा, बंदा बिमुख कदीम ।
तौ रज्जब सौं रोस क्या, कीजै फहम फहीम ॥६०॥

मम कुकृत हैरान हरि, हौं हैरान हरि हेत ।
रज्जब से पापिष्ट कौ, रिजकरि रहम करि देत ॥६१॥

हम समान गुनही नहीं, तुम समि बकसन हार ।
उभै अंग मैं फेर क्या, कीजै कृपा बिचार ॥६२॥

रज्जब रूठा राम सौं, मिलि रामति कै रंगि ।
गुनग्राही गोपाल जी, तऊ गये नहिं भंगि ॥६३॥

पीड़ा पंचौ तत्त कौ, रोगी रवि राकेस ।
तौ आदम कौ ऐब क्या, रज्जब बिसम अंदेस ॥६४॥

सब सुखदाई सुध स्रवै, सोई कलंकी चंद्र ।
तौ आदम मैं ऐब क्या, अचरज क्या गोव्यंद ॥६५॥

ऐबदार आकार सब, औजूद सहित अरवाहि ।
ससि सूरज औगुन भरे, इंद्र उदधि दिसि चाहि ॥६६॥

त्रिबिधि भांति तरुन्यूं तपै, द्योस जनम निसि नास ।
रज्जब रबि राक्यूं निरखि, इक रस भये निरास ॥६७॥

पन्द्रह तिथि सोलह कला, बरतैं ससि सु सरीर ।
तौ रज्जब आतम एक रंग, रहै कौन बिधि बीर ॥६८॥

रज्जब सब दिन एक से, कदे न आवै कोइ ।
त्रिबिधि भांति तरन्यूं तपै, लघु दीरघ ससि होइ ॥६९॥

तुम पूरन प्रतिपाल जी, औगुन दिसा न देख ।
रज्जब बूड़ै राम जी, लीजै काढ़ि अलेख ॥७०॥

सुत मैं सत अपराध ह्वै, परि पिता न पूछै बात ।
त्यूं रज्जब औगुन भरचा, क्यूं त्यागहुगे तात ॥७१॥

सरिता साधू स्यंध हरि, उभै उभै दिसि जाहिं ।
रज्जब रिधि रहता सहित, इष्ट सु बिरचै नाहिं ॥७२॥

नदिया नर मैले बहैं, भरि जोबन मैं मंत ।
रज्जब रज देखै नहीं, देखौ उदधि अनंत ॥७३॥

नदी बहत नर नीकसैं, तिणा गह्यू बहै लाज ।
तौ रज्जब क्यूं बूड़सी, जु बैठा नांव जिहाज ॥७४॥

नाउं बिना नग नीपजै, हीरा मोती लाल ।
तौ रज्जब सुमिरन सहत, सौ किन होत निहाल ॥७५॥

नांव छेद नख भरि पड़ै, पाणी भरिये आइ ।
तौ रज्जब तन क्यूं रहै, जाकों दह दिसि राइ ॥७६॥

जथा कटौरी घड़ी की, बूड़ि जाइ तुछ छेक ।
तौ रज्जब तन क्यूं रहै, जु दह दिसि भरै बसेक ॥७७॥

जत सत सुमिरन करन का, हरिदाता हैदान ।
रज्जब कीयहु बीनती, मुसकिल करन असान ॥७८॥

प्रभु परिपूरन मौज तैं, सत जत सुमिरन होइ ।
रज्जब पावै रहम सौं, और न दाता कोइ ॥७९॥

रोइ धोइ ऊजल किये, द्रग देखन हरि हेत ।
अब रज्जब कौ रहम करि, काहे न दरसन देत ॥८०॥

जैसे मनिषा देह दी, त्यूं प्रभु दै दीदार ।
यहु रज्जब की बीनती, कीजै फेर न सार ॥८१॥

मनषा देही मौज दी, मेहरि मिल्या जे साध ।
अब रज्जब कौं दरस दै, दीरघ दत्त अगाध ॥८२॥

तुम्हौ जोगि तुम क्या करी, हमैं बताऔ पीव ।
सेवग लावै सोधि करि, भेट तुम्हारी जीव ॥८३॥

तुम लाइक तुम ना करी, हम मैं बसत अनूप ।
तौ भेट भली ल्यावै सु क्या, जग मोहन जग भूप ॥८४॥

छाया भूत खबीस की, आतम भूत समान ।
सो तुम्हें भजत भगवंत जी, जीव रहैं की आन ॥८५॥

पड़त अधूड़ी झाड़ जड़, काढ़ै कुचिल सु अंग ।
तौ रज्जब किन पलटिहै, लागत राम सुरंग ॥८६॥

मन की भाई मति करौ, सुणि आतम अरदास ।
सब तुमकौ मालूम है, जौ है जाके पास ॥८७॥

जिव कौ भावै जगत गुर, तनि मनि बिषै बिकार ।
यहु अड़बी आठौ पहर, मेटहु सिरजनहार ॥८८॥

कै मन की दुरमति हरौ, कै मन कौ प्रभु मारि ।
जन रज्जब की बीनती, हरि हमकौ निस्तारि ॥८९॥

तन मन कूं दीजै सजा, रहै रजा मैं नाहिं ।
रज्जब रोकै कौन बिधि, आप आपकौ जाहिं ॥९०॥

जे तुम राखौ तौ रहै, सांई सुनहु सुजान ।
आतम आभै मैं रहै, मनवां ब्रीज समान ॥९१॥

दलिद्र सदा दिल मैं रहै, बहुत जुगौं का बास ।
रज्जब मौज महंत बिन, ह्वै न रौर का नास ॥९२॥

सर बंगी सब अंग दै, तौ सुख सब बिधि होइ ।
रज्जब मौज महंत कूं, बिरला पावै कोइ ॥९३॥

अण मांग्या ओदर दिया, त्यूं प्रभु देहु अहार ।
रज्जब पड़ै न दंद मैं, कीये की करि सार ॥९४॥

बाबा कब की बीनती, हमकूं करि करतार ।
भूत उपाया मुख दे, तौ कीये की करि सार ॥९५॥

कीये परि करि ना सबै, पर परिवरती साज ।
भूत भये भगवंत सूं, तौ भूखौं की लाज ॥९६॥

पल पल अंतर होत है, पगि पगि पड़िये दूर ।
बचन बचन बीचै पड़ै, रज्जब कहां हजूर ॥९७॥

सुजन जनहुं इच्छा सु यूं, जु रहिये सदा हुजूर ।
पै कठिन करम पिछले प्रबल, सु पगि पगि पाड़त दूर ॥९८॥

अंतर ही अंतर घड़ां, आड़ै लोक अनंत ।
रज्जब आवै कौन बिधि, प्रभु पावन लग जंत ॥९९॥

अंतकरण अनंत रिपु, बैरी बहु बलिवंत ।
रज्जब छूटै कौन बिधि, बिन सहाय भगवंत ॥१००॥

आरतहर हरि नांव तू, रज्जब हर न हिराइ ।
कै बिरद बिसारचा बाप जी, कै हरि कह्या न जाइ ॥१०१॥

रज्जब रोग सु ना कटै, बिन दारू दीदार ।
मुख दिखलाऊ मिहरि करि, ज्यूं जिव होइ करार ॥१०२॥

सारंग बूंद समंद है, सुन्नि सलिल उछ छंट ।
रज्जब टेरै हेर हरि, येते परि क्या अंट ॥१०३॥

मनिषा देही देत ही, पै परि आणी सारि ।
अब दाव भाव करि नाव दै, रज्जब उतरै पारि ॥१०४॥

मंदिर मनिषा देह दी, तौ कलस कवल दिखलाइ ।
प्रभु परिपूरन मौज परि, जब रज्जब बलि जाइ ॥१०५॥

सब संतनि के काम कौं, साहिब सदा सकज्ज ।
तौ रज्जब परि रहम करि, राखौ जन पद लज्ज ॥१०६॥

पंच तत्त कौं पेट दै, प्रभु पूरी सब आस ।
रज्जब रुचि दे मिलनि की, क्यूं कीजै सु निरास ॥१०७॥

रज्जब कौं दीजै रजा, तेरा नाव लिवाइ ।
मौज मया करि कीजिये, बंदा बलि बलि जाइ ॥१०८॥

करतौं यादि अनंत कौ, अनतै आवै यादि ।
सांई करी सहाय यहु, जनम न जाई बादि ॥१०९॥

रज्जब रंक निवाजिये, पूरण करौ पसाव ।
और कछू मांगौ नहीं, आपन दरस दिखाव ॥११०॥

रज्जब की अरदास यहु, और कहै कछु नाहिं ।
मो मन लीजै हेरि हरि, मिलै न माया माहिं ॥१११॥

नाव बिना जो आर है, सो मांग्या मति देहु ।
रज्जब चरनौ राखिये, हरि अपना करि लेहु ॥११२॥

रुचि माहैं रहता रहौ, जाता जिव तैं जाव ।
आदि अंति मधि यूं सदा, यहु रज्जब कै भाव ॥११३॥

चिदानंद चित मैं रहौ, मन मोहन मन माहिं ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, अरि उर आवै नाहिं ॥११४॥

भाव इहै उर में बसौ, परम पुरिष सिरमौर ।
रज्जब कै सुख ऊपजै, सत्र न पावैं ठौर ॥११५॥

सुरति माहिं सांई रहौ, सकति सु आवहु जाव ।
मनसा बाचा करमना, यहु रज्जब कै भाव ॥११६॥

रज्जब की यहु बीनती, सांई सुणि दै दादि ।
दिल बैठौ दीवान जी, और न आवै यादि ॥११७॥

अबला यादि न आवई, अबिगति कीजै सोइ ।
रज्जब की यहु बीनती, तुम तैं सब कछु होइ ॥११८॥

आदि यादि आवै नहीं, अंतरि रहै अनादि ।
रज्जब सौं यहु कीजिये, जनम न जाई बादि ॥११९॥

साहिब सौं यहु बीनती, पड़दा सकल उठाइ ।
तौ रज्जब तुमकौं मिलै, बलि आया नहिं जाइ ॥१२०॥

रज्जब कौ दीजै रजा, तेरा नांव लिवाइ ।
बाबा मानौ बीनती, बंदा बलि बलि जाइ ॥१२१॥

सतगुर सांई साध बिचि, पड़दा करी न पीव ।
रज्जब सहसी और सब, यह दुख सहै न जीव ॥१२२॥

रोम रोम मैं रमि रह्या, रमिता राम बिचारि ।
सीप सुरति संतोस देव, कहां पुरिष क़हं नारि ॥१२३॥

मो मन मोर सु नीड़ का, चाहै मोह न मेह ।
रज्जब रटिये मुगुध मति, इन उन कौन सनेह ॥१२४॥

जन रज्जब के जीव कन, सो न कराई नाथ ।
जा ऊपर तुम रोस करि, छांड़हु सेवग साथ ॥१२५॥

जे तुमकौ भावहिं भली, जे तुम जानहु जान ।
रज्जब पावै रहम सौं, दया करहु दीवान ॥१२६॥

संत सहाइ रक्षा का अंग

सब ठाहर रक्षा करै, गुरु गोव्यंद सहाइ ।
जन रज्जब जोख्यूं नहीं, बिघन बिलै होइ जाइ ॥१॥

सबद सुरति आतम अगम, घर दर उर अस्थान ।
रज्जब की रक्षा करौ, सब ठाहर रहमान ॥२॥

रज्जब की रक्षा करौ, कदे न होइ अकाज ।
जो तैं राखै सो रहै, ये सांई सिरताज ॥३॥

पंचभूत मन दैत का, धक्का टालि दयाल ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, राखि लेहु रखपाल ॥४॥

तन मन मतै मनोरथौ, भूत भंजन ये भानि ।
रज्जब की अरदासि यहि, हरि जी हरिये हानि ॥५॥

जन रज्जब जगि जीव का, रक्षा ह्वै गुर बैन ।
बिबिधि भांति टालै बिघन, सदा सु पावै चैन ॥६॥

रज्जब की रक्षा करौ, नाउं निरखि उर माहिं ।
बाइस राखी बाल की, जु चांदी चूंथै नाहिं ॥७॥

मनिष मौज देहि मंगितौ, केवल कीरति काजि ।
तौ रज्जब जस जगदीस करि, उनहिं न इन समि लाजि ॥८॥

प्रभु पाके सब ठौर हैं, काचे सेवग भाइ ।
जन रज्जब जानरि कही, साध बेद निरताइ ॥९॥

मारुत मोड़ि महाबली, काढचा औरहि माग ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, अबिगति टाली आगि ॥१०॥

बिषम बार बाहर चढ़े, धाये आये धाम ।
झल माहै जल रूप ह्वै, रज्जब राखे राम ॥११॥

अंतकि के उर माहिं सूं, काढ़ौ अबकी बार ।
रज्जब सौं अज्जब करी, काल हरन करतार ॥१२॥

ब्रह्म बाहरू देखि कर, मीच गई मुंह मोड़ि ।
रज्जब तंतू आव का, कोई सकै न तोड़ि ॥१३॥

रज्जब बपु बनखंड मैं, बैरी उठे अपार ।
तहां राम रक्षा करी, मुये सु मारनहार ॥१४॥

अरि उर मैं पोरस पिसंण, बिघन रहै मुरझाइ ।
ब्रह्म बाहरू आवतां, बैरी गये बिलाइ ॥१५॥

चौपई : गुर गोव्यंद नै करी सहाय, अब यहु जीव न मारा जाय ।
दोइ दया देखी दिल माहिं, रे रज्जब कोई डर नाहिं ॥१६॥

साखी : पारब्रह्म पूरी करी, हित करि पकड्या हाथ ।
रज्जब रक्षा रहम करि, मीच मिटाई नाथ ॥१७॥

जो तैं राखै सो रहै, जुगि जुगि साधू संत ।
सोई रज्जब सूं करी, मालिक मौज महंत ॥१८॥

महापुरष की मौज का, कहिये कहा बखान ।
रज्जब दति की मति नहीं, जो दे प्यंड परान ॥१९॥

चौपई : षोड़स द्यौस करण नै पाये, सो रज्जब कूं बहुत बधाये ।
रोम रोम उपज्या अति मौज, लघु सेवा परि दीरघ मौज ॥२०॥

साखी : दया मिहर किरपा करन, बरंभू भये दयाल ।
बंदे कन बंदगी कराई, मेटे मेरे साल ॥२१॥

पीव पिछाण का अंग

रज्जब सांई सुन्नि मैं, आभा वो ओंकार ।
सो माया उपजै खपै, पाया भेद बिचार ॥१॥

औतार सु आभौ की कला, सरगुन निरगुन माहिं ।
आदिनराइन सुन्नि समि, लिपै छिपै सो नाहिं ॥२॥

आदि निरंजन सत्य है, अंत निरंजन सोइ ।
बिचि अंजन बप बधि बिलै, रज्जब धीज न कोइ ॥३॥

औतारौं अटकै नहीं, जे ह्वै स्याणा दास ।
ज्यूं रज्जब आकास बिच, आभूं का आकास ॥४॥

चात्रग चित अटकै उरै, तकि आभे आकास ।
औलोकहिं ससि आदिनराइन, जिनहिं पियूष प्यास ॥५॥

जे ससि कीया से बड़हु, राख्या ऊंची कोर ।
तौ बारिज बिगसै नहीं, चाहि न मिटै चकोर ॥६॥

सप्त अष्ट आगै मडे, रज्जब समझे साध ।
सरगुन निरगुन नेह न न्यारे, पूरन बुद्धि अगाध ॥७॥

देखौ सीप सरोज दिस, कौन भांति की भूख ।
वह नदी नाथ तज नीर ले, वह पीवै सु पियूष ॥८॥

चौपई : एक ब्रह्म दूसरी माया, ताहि परैं गुर तत्व बताया ।
स्याणैं सिषौं तहां मन लाया, ज्ञान अकलि का अंत सु आया ॥९॥

साखी : सब कारन आदि नरायन, कारज मैं औतार ।
रज्जब कही बिचार करि, तामै फेर न सार ॥१०॥

उदै अस्त नहिं कारन कहिये, कारज आवै जाइ ।
यहु थी अगम सुगम सतगुर की, ज्यूं थी त्यूं समुझाइ ॥११॥

चौपई : कारण अमर कारिज मरई, ताथें बेत्वा अंतर करई ।
प्राण प्यंड नहिं एक समान, सत्य असत्य उभै पहिचानि ॥१२॥

अरिल : जाती माहिं सफाती न्यारे, सिजदे सो पहिचाड़ें ।
ज्यूं हूनर राग जीव मैं जोलै, करत अलापत जाड़ें ॥१३॥

साखी : निरगुण सरगुण सौं परै, जोति अजोत्यूं दूरि ।
जाण अजाण न जाणई, सकल रह्या भरपूरि ॥१४॥

ज्यूं द्वै दरपन मैं दस मुख दीसै, त्यूं दुबिधा दस राम ।
जन रज्जब दस मैं नहिं दोसत, एक सरै सब काम ॥१५॥

परसराम अरु रामचन्द्र, हुये सु एकहिं बार ।
तौ रज्जब द्वै देखि करि, को कहिये करतार ॥१६॥

नांव अनंत अनंत के, बसत एक उर जानि ।
रज्जब दस दूणे चतुर, सु उर बैठी नहिं आनि ॥१७॥

चौपई : कर लकुटी फुरतौ कु डाला, नर निरस्यंघ भये एक काला ।
रज्जब भोले भरमै नेता, चूकहिं चाकहिं नहिं तत्तबेता ॥१८॥

साखी : अनेक जुगल मन नै किये, पैठिर नींद निवास ।
पैंति कुठौर न प्रानपति, सुनहु बमेकी दास ॥१९॥

पंच तत्त सब ठौर हैं, सब घटि सबही माहिं ।
रज्जब माया बिस्तरी, ब्रह्म सु कहिये नाहिं ॥२०॥

यह सब बाजी नट्ट की, करि खेल्या षट अंग ।
रज्जब मानी जगत जड़, सुतन कहै पित भंग ॥२१॥

रज्जब षट अंग खलक कल, परि खालिक कह्या न जाय ।
चंद सूर पाणी पवन, धर अंबर निरताइ ॥२२॥

रज्जब जीव जोति मधि, औतरे जीवै माया माहिं ।
बैठै ऊठै आतमा, हलै चलै सू नाहिं ॥२३॥

रज्जब माया ब्रह्म मैं, आतम ले औतार ।
भूत भेद जानै नहीं, सिर दे सिरजनहार ॥२४॥

सरगुन सब कछु देखिये, निरगुन सुनि अस्थान ।
रज्जब उभै अगम तत, समझौ संत सुजान ॥२५॥

जोति उदै तम नास ह्वै, त्यूं तम आये जोति ।
तौ रज्जब क्यूं बरनिये, अकल सु इनकै पोति ॥२६॥

तिमिर उजालै सौं परै, है कछु कह्या न जाइ ।
रज्जब रीझ्या बस्त तेहि, जो नहिं सबद समाइ ॥२७॥

ओंकार एक आतमा, ब्रह्मण्ड प्यंड परदेस ।
रज्जब चलि चहुं ठौर सौं, आगे अबिगत देस ॥२८॥

दीपक होहिं न घर घणी, बासण ह्वै न कुम्हार ।
ससि सूरिज साहिब नहीं, यूं आतम ब्रह्म बिचार ॥२९॥

सोरठा : लोहा ह्वै न लुहार, सोना सोनी होइ कब ।
त्यूं ही आतम राम, चित्र चितेरहिं देखि अब ॥३०॥

साखी : घट घट माहीं पंच है, पंच पंच मैं प्राण ।
पै इनकौ ब्रह्म न बोलिये, गुर गोव्यंद की आण ॥३१॥

सब औतारूं आकार तजि, भये निरंजन रूप ।
सो हम सेवैं पंडितहुं, निरगुन तत्व अनूप ॥३२॥

सरगुण निरगुण एक है, तो झगड़ा कछु नाहिं ।
पै हथ लेवा कर दाहिनै, देखौ ब्याह सु माहिं ॥३३॥

आदि नरायन सत्ति है, निगम पुकारहिं चारि ।
तौ साधू कौ क्या कहौ, पंडित पड़ि सु बिचारि ॥३४॥

काया कुंभ जीव जल द्रसै, ससि सूरज प्रतिव्यंब ।
घट फूटै दिनकर गये, अभ्यासत अरअंब ॥३५॥

अरक आरसी उर उदै, अगनि अपरबल अंग ।
रबि रेजे रबि ही मिलै, जन रज्जब जब भंग ॥३६॥

व्यापक बहनी व्योम की, अंघ्रप अगनि औतार ।
मिलहि सु अंतरध्यान ह्वै, तौ है नाहीं उरधार ॥३७॥

कुसन सु काढ़ै अंब कौं, उन्हि सु काढ़ै प्रान ।
त्यूं औतारू आटे कढ़े, मन बच क्रम करि मान ॥३८॥

अनेक रोग जीवहुं लगे, ता औषधि औतार ।
ब्रह्म बैद न्यारा रहै, बिथा बेधसण हार ॥३९॥

अनेक रोग करि मृत्य उपावै, अनेक औषधौं सारा ।
बिथा सु बूटी कै सिर दीजै, हरै करै सूं न्यारा ॥४०॥

साखी : काम उसीले सूं करै, अलख लखावै नांहि ।
पड़दे सूं प्रभु जी कहैं, जीव न समझै मांहि ॥४१॥

पंच तत्त आड़े दिये, काम करैं किरपाल ।
अलख उसीला लख्या न जाई, लोक लोइड़ौं पड़ै न लाल ॥४२॥

चौपई : चेतन नै जड़ जीव जगाया, लोग कहैं परमेस्वर आया ।
रज्जब देखि कला यहु उरैं, अकल पुरिष याहू ते परैं ॥४३॥

गुर अराब के जीव जगाये, जगत कहै जगदीसर आये ।
अगम अगाध साध कोइ जानै, सो रज्जब उर इहां न आनै ॥४४॥

साखी : पियूष न पावक पावई, ससि सूरज प्रतिव्यंब ।
आषि आरसी ना लहै, अवलोकति मधि अंब ॥४५॥

औतार आतमा आरसी, आदि नरायन दीप ।
रज्जब एक अनेक मधि, पै दीपक दीव उदीप ॥४६॥

आतम दीपक जोति हरि, भाव तेल तहं पूरि ।
रज्जब पूजि प्रकास कौं, भूलि न पड़िये दूरि ॥४७॥

चौपई : प्रतिव्यंब परब्रह्म सु जाना, दरपन अंब आतम अस्थाना ।
तवै ठीकरी देखै देसा, रज्जब लहै न सो लवलेसा ॥४८॥

साखी : जड़ जाइ गहै चेतन नहीं, समझे समझौ बीर ।
ज्यूं सुरही के थणहु बिन, सब ठाहर नहिं खीर ॥४९॥

देखौ अबिगति उदधि तैं, औतार सु नाले नीर ।
रज्जब रतन न पाइये, मुकतनि मुकता बीर ॥५०॥

सांई सोवन मेर सौं, औतार नापिगा धार ।
सिद्ध सबहुं का तिनहुं में, रज्जब धोवे संसार ॥५१॥

अबिगत ओंकार बिचि, अंतर रहै सो जोइ ।
रज्जब जीवहु ज्वाब बहु, पै ज्वाबहु जीवन होइ ॥५२॥

एक अबिगत नै किये, पैदा प्रान अनेक ।
रज्जब जीवहु जोर घटि, सबतैं होइ न येक ॥५३॥

सबद न समझैं आतमहि, आतम राम अगम ।
रज्जब कही बिचार करि, नेतौं कहै निगम ॥५४॥

सबद समाना एक गुन, आतम कला अनेक ।
बचन न पूजै बोलतैं, रज्जब समझि बमेक ॥५५॥

जनम अजन्मे के कहैं, अपड़ैं जानैं नाहिं ।
रज्जब समझ न सबद की, बकैं बिकल बुधि माहिं ॥५६॥

जीव ब्रह्म करि बोलिये, गुण लषिण सो नाहिं ।
रज्जब बाइक बादि यहु, समझि देखि मन माहिं ॥५७॥

रज्जब देख्या अमर मर, अचिरज एकहिं अंग ।
बिनिसैं बोलत बुदबुदे, साहिब सबद अभंग ॥५८॥

है नाहीं कै माहिं है, देखौ अचिरज अंग ।
जन रज्जब हैरान यूं, भेले भंग अभंग ॥५९॥

सबद सु सारा प्यारा लागै, पै जलप्या जीव न होइ ।
कैसे आतम राम अभ्यासै, फेर सार नहिं कोइ ॥६०॥

दिनकर दरपन द्रुमनि मैं, अगनि सु नाहीं येक ।
एक निरहार अहार एक, एक बपि बंदि बमेक ॥६१॥

सांई सूरज की अगनि, सब प्राणहु प्रतिपाल ।
दिल दरपन औतार बासदेव, तिनि तन तिनुका जाल ॥६२॥

सांई सूरज चिराग है, पै क्रम काजर नाहिं ।
रज्जब जिव ज्वाला मई, मलमसि निकसै माहिं ॥६३॥

आदि नरायन आदित रूपी, दीपक देई देव ।
अंतक आंधी मुख ते बिनसै, रज्जब पाया भेव ॥६४॥

चौपई : औतार अगनि औजूद अहार, संजोग सहत सो करहि बिहार ।
असन उठैं अंतक बसि होइ, ताकी कला न दीसै कोइ ॥६५॥

संजोग सहत भानै घड़ै, तेता सब औतार ।
रज्जब रचै बिजोग बप, वह कहिये निरकार ॥६६॥

आदि नरायन अकल है, कला रूप औतार ।
आदिम आतम बंधि बिधि, बेत्वा करौ बिचार ॥६७॥

अकल कला कारिज ह्वै, सो सिर सिरजनहार ।
रज्जब जीव घट धरि करै, सो कछु भिन्न बिचार ॥६८॥

देवल मूरति गाइ जलि, फेरि पाइ जिव सेज ।
रज्जब रज तज काढ़तौं, निरखि सु निरगुन हेज ॥६९॥

सूकी सूली सौं हरी, बीज धना कै खेत ।
रज्जब दिब तैं देखिये, निपट निरंजन हेत ॥७०॥

गुर सुत मारि जिलाइये, नर सुत होहिं पषान ।
रज्जब औतारू रहित, गोरख गिरा बखान ॥७१॥

जोगेसुर जम कंस हित, सकल निरंजनदास ।
रज्जब परचै प्रानपति, औतारौं सु निरास ॥७२॥

पुकार लगे प्रगटे प्रभू, रज्जब भये तजि रूठि ।
सो समसरि सब ठौर थे, आवण जाना झूठि ॥७३॥

बाध्या बांधे कू भजै, मुक्त होन की आस ।
सो रज्जब कैसे खुलैं, इहि झूठे बेसास ॥७४॥

रज्जब जो जामैं मरै, ताका तजिये बास ।
हमहिं अमर सो क्या करै, जो आप फिरै ग्रभ बास ॥७५॥

उधरचा कहिये जीव सो, जहि जामण मृत नाहिं ।
तौ रज्जब आवै ब्रह्म क्यूं, उतपत परलै नाहिं ॥७६॥

एक कहै औतार दस, एक कहै चौबीस ।
रज्जब सुमिरै सो धणी, सो सबही के सीस ॥७७॥

अबिचल अमर अलेख गति, सकल लोक सिरताज ।
जन रज्जब सो सिर धरचा, जा सिरि और न राज ॥७८॥

चंद सूर पाणी पवन, धरती अरु आकास ।
जिन साहिब सब कुछ किया, रज्जब ताका दास ॥७९॥

जा घर माहिं असंखि घर, अजौं तु मुकती ठौर ।
रज्जब सेवग तिह सदनि, जा समसरि नहिं और ॥८०॥

उदै अगस्त त्रिगुणी भगति, इनका इहै सुभाइ ।
निरगुण निहचल एक रस, नर देखौ निरताइ ॥८१॥

त्रिगुण रहत त्योरी चढचा, निरगुण निरख्या नैन ।
राज्जब राता ठौर तिहि, कदे न होइ अचैन ॥८२॥

आकार इष्ट जिमि आतमहु, पै निहचै निरकार ।
कहतौं कर ऊंचे करहिं, रज्जब सेवणहार ॥८३॥

निराकार सों नरहु के, मन बच करम सनेह ।
सब कोइ देखै सुन्नि दिस, रज्जब गये सु मेह ॥८४॥

रज्जब जाण अजाण का, निराकार सों हेत ।
प्राण चले प्यंडहि तजत, देखौ डारि सु देत ॥८५॥

निराकार ऊपरि धरचा, पंच तत्त आकार ।
उडगन इंद अकास तलि, आया भेद बिचार ॥८६॥

सुन्नि स्वाति सदजलहिं सों, निपजहिं मोती मन्न ।
बासी बारि न दोइ ह्वै, समुझौ साधू जन्न ॥८७॥

संखि सांखुले सीप सु कौड़ी, काया कुम्हनी नीर ।
पै मन मुकता बिन सीप स्वाति जल, रज्जब होहिं न बीर ॥८८॥

अधर अम्ब ले मोरड़ी, होइ सपूछा मोर ।
सोइ मदन ले मही सों, सो सुत होइ लंडोर ॥८९॥

अधरे अंब सारंग ले, सारै सालि संतोष ।
अनि पंखी पीवहि पहम, त्रिषा न भागै दोष ॥९०॥

धरचा ऊपज्या धरै सो, धरे सु पावै पोष ।
आतम उपजी अधर सूं, अधरै मिलै संतोष ॥९१॥

चौरासी मैं बप बिबिध, ओंकार जिव येक ।
सिन्या सरीरौं मिलि चल्या, जगपति जुदा बमेक ॥९२॥

सींगी पूंगी बासुली, बाजहिं कुंभ सु भौन ।
सहनाई संखि भेरि नफीरी, नाद जुदा इक पौन ॥९३॥

बिहंग बाम घड़ियाल सु नौबति, सहनाई सुनि बात ।
सरीर सुभाव सिंगारौ समझे, सप्त भाग परभात ॥९४॥

षट दरसन षटपंथ सास्तर, गैबी माग सु माहिं ।
सपतौ चलता देखिये, सांई सहज सु जाहिं ॥९५॥

कोई आया कूद करि, कोई बंधि करि पाज ।
रे रज्जब लंका लई, कीया अपणा राज ॥९६॥

स्वयंसिद्धि तत पंच हैं, ब्रह्म बिना ब्रह्मण्ड ।
तौ रज्जब यहु को करै, बंध मुकुत जिव प्यण्ड ॥९७॥

नीचा नीचा है धणी, ऊंचौ ऊंचा सोइ ।
जन रज्जब बिचि सब धरचा, उर बाहरि नहिं कोइ ॥९८॥

सरबंगी सब गुण लिये, अणअंग अंग अनेक ।
जन रज्जब जीवहु रच्या, अपणै काजि न येक ॥९९॥

सोवन मिरिग न मैं रच्या, तौ किन मारन जाहिं ।
ते ते मैं सीता हरी, खबरि नहीं यहु माहिं ॥१००॥

सीता सील सुलाकिया, दिब दे आणी जब ।
रज्जब जाणी राम की, सकलाई तब सब ॥१०१॥

बल बमेक का अंग

बे अकल्यूं बल देख कर, जीव किया जगदीस ।
जो रज्जब जामै मरै, सो हम धरै न सीस ॥१॥

सौपी सिध कारज करै, सोभा सिरि औतार ।
रज्जब भूले भेद बिन, ताहि कहैं करतार ॥२॥

सकति सिद्धि अरु रिद्धि का, जोर मिलै जिव माहिं ।
बल बिलोकि कहिये बरम्ह, पै परम तत्त ये नाहिं ॥३॥

एकूं कौ बल बहु दिया, एक किये बल हीन ।
रज्जब दून्यूं जींव हैं, जगपति के आधीन ॥४॥

गोबरधन धारचा किसनि, द्रोणागिर हणबंत ।
सेस सिष्ट सिर पर धरी, को कहिये भगवंत ॥५॥

पिरथी भार अपार अति, सदा सेस कै सीस ।
रज्जब कहता ना सुण्यां, नर नागहिं जगदीस ॥६॥

सपत सीधुरों ले उड़ै, अनल पंष आकास ।
रज्जब सो भी जीव है, बेत्वा करौ बिभास ॥७॥

देखौ बली बिभूति बल, गढ़ गोलै सु उड़ाव ।
तौ माया जहां जीवती, जोरहिं कहा कहाव ॥८॥

जीव जोर जड़ है न कछु, ले चालै सु अकार ।
बलहिं देखि बहकै जगत, ताहि कहैं करतार ॥९॥

चौरासी लख थान उथैले, बंदहुं बिपुल सु बल्ल ।
रज्जब रजमल ना लग्या, धन्य धूंधली मल्ल ॥१०॥

मनसा मुई जिलावहीं, प्रानहु देइ पै पान ।
बिल द्वारहु कौं फेरई, सबलौं सबल सुजान ॥११॥

समीर सेस मनसा मही, मनुवा मेरु सु माहिं ।
साधू उठावै ये सकल, औरहु ये बल नाहिं ॥१२॥

चौपई : पिरथी आप तेज बाइ आकास, पंचौ तत्त उथेलै दास ।
मांड तलैं सौ ऊपर आवैं, तिनके बलिबर काहि बतावैं ॥१३॥

साखी : रज्जब माहै बल सु महाबली, बाहरि बल बलवंत ।
बाहरि देखैं बाहिले, भीतर साधू संत ॥१४॥

सकल सिद्धि मानहु धुजा, औतार आतमा सीस ।
रज्जब अज्जब देखिये, जहां धरै जगदीस ॥१५॥

बाहर नेत भुजंग मणि, हीरा जींगण जोइ ।
रज्जब रैणी जगमगै, सो बल द्यौस न होइ ॥१६॥

औतार अतीत महातम का अंग

औतार कुंभ प्रतिबिंब धरि, आदि नराइन भान ।
रज्जब दरपन दास दिल, अगनि उदै पहिचान ॥१॥

औतार इदं ऊजल उभैं, आपा ऐब सु होइ ।
रज्जब उडगन अनित जन, कष्ट कलंक न कोइ ॥२॥

अरक इंद औतार बिधि, सूखै पौषै प्रान ।
रज्जब उडग अतीत गति, साखी भूत सुजान ॥३॥

अरक इंद औतार तलि, ऊपर उड़ग अतीत ।
रज्जब लघु दीरघ लखे, पद यूं पर परतीत ॥४॥

रज्जब सुख्या न सूर ससि, अंचया सोज अगस्त ।
यूं औतार अतीत का, लह्या भेद वलवस्त ॥५॥

रज्जब बंदहिं ब्रहस्पति, ससि सूरिज सुर और ।
यूं औतार अतीत बिच, लघु दीरघ लघु ठौर ॥६॥

रज्जब माया ब्रह्म बिचि, बलवंत ठौर अतीत ।
ताकै बसि दून्यूं सदा, रह्या सकल तत जीत ॥७॥

चौपई : दत गोरष हड़वंत प्रहलाद, सास्तरौ पड़े न सुणिये साध ।
मारे मरहि न सिद्ध सरीर, कृष्ण काल बसि एकहि तीर ॥८॥

साखी भूत का अंग

माया मैं माया मुकति, साखी भूत सुजान ।
है नाहीं माया रहति, रज्जब पद निरबान ॥१॥

अठार भार मिश्रत अगनि, स्वादहु परसै नाहिं ।
ऐसे आतम राम हैं, मिल्या अमल सब माहिं ॥२॥

अठार भार अगनी अलिप, सदा सु स्वादौ माहिं ।
परम तत्त तत पंच मधि, पूरण परसै नाहिं ॥३॥

अमिल मिल्या सब ठौर है, अकल सकल सब माहिं ।
रज्जब अज्जब अगह गति, काहूं न्यारा नाहिं ॥४॥

सरबंगी सब बिधि लिये, सब परसंगहु पूरि ।
रज्जब सांई सकल मैं, अरु सबहिन तैं दूरि ॥५॥

सुन्नि तरोवर उडग फल, डाल व्यटंतिह नाहिं ।
अलग सलग यूं आतमा, रज्जब अवगति माहिं ॥६॥

एक अनीकूं मै मुकत, अनेक एक मधि आन ।
जन रज्जब इस पेंच कौं, हेरि हुये हैरान ॥७॥

सुन्नि समानी पंच मैं, पुनि पंचौ सु मुकत ।
रज्जब आतम राम सूं, अलग अलग सूं मत ॥८॥

ज्यूं सुन्नि सकल माहै जुदे, त्यूं सांई साखी भूत ।
यूं रज्जब मिश्रत मुकत, सो समझ्या औधूत ॥९॥

रज्जब सांई सुन्नि मैं, आतम आभौं रंग ।
पंच भांति दरसै इनहुं, निरमल निर्गुन निहंग ॥१०॥

रमिता राम जु रमि रह्या, सकल आतमौ माहिं ।
अरस परस न्यारा रहै, कोइ गुण व्यापै नाहिं ॥११॥

अठार भार बहु भांति के, ता मधि स्वाद अनेक ।
रज्जब अज्जब ता बनी, हरि हरिआल सु येक ॥१२॥

सब नाहीं सब पाइये, दरपन हरि दीदार।
रज्जब ऐसा अंब निज, तामे फेर न सार ॥१३॥

प्रतिबिंब गडे न ऊघड़ैं, देखौ दरपन माहिं।
त्यूं रज्जब माया ब्रह्म, है सु जीव मैं नाहिं ॥१४॥

दरपन रूपी राम है, निरदोषी निरधार।
सकल मांड बिच देखिये, रज्जब रती न भार ॥१५॥

अकल अंग उर आरसी, तहं भ्यासै भाव सु मुख।
रज्जब देखि सु आपकौं, दिल पावै दुख सुख ॥१६॥

मजलिस का मोती ब्रह्म, मुकता मांड सु माहिं।
रज्जब दीसै दिल सकल, लिपै छिपै सो नाहिं ॥१७॥

दरपन मैं दरिया प्रभू, देव दृष्टि पणिहारि।
रज्जब रुचि कलसौं भरै, मुख सुख सलिल बिचारि ॥१८॥

सकल मांड सौं दूध गति, सुटके गति गोपाल।
रज्जब पी भारी नहीं, उगलि न हलका लाल ॥१९॥

रुचि नाहीं अरु सब भषै, रुचि है कछू न खाइ।
रज्जब ऐसा राम है, जैसा अगनि सुभाइ ॥२०॥

काठिहि टोरै काठ पर, अगलि चोट मैं नाहिं।
रज्जब गुण सौं गुण मिलै, निरगुण न्यारा माहिं ॥२१॥

आतम लोहा कूटिये, गुण देही घण मार।
रज्जब रमिता अगनि मैं, ताकौं दुख न लगार ॥२२॥

प्यंड प्राण दून्यूं तपहिं, जथा कड़ाही तेल।
रज्जब हर ससि ज्यूं रहै, अगनि मद्धि नहिं मेल ॥२३॥

रज्जब आतम आभ के, किसण सु अंतक पौन।
परि सुन्नि सरूपी साइयां, तिसहिं छिकावै कौन ॥२४॥

समरथाई का अंग

सूरज रूपी साइयां, साधू सूरज क्रांति।
उभै अकरता करहिं भी, जन रज्जब बिनि तांति ॥१॥

बावन बदलै बनी बपु, नरपति छांह हमाइ।
रज्जब क्रतिम कला ये भ्यासै, यूं गत लखी न जाइ ॥२॥

ससि मंडल सूरज परै, पोषै भार अठार ।
ऋतिम तन ऐसी कला, करता घटि न बिचार ।।३।।

सृक सविता सु अलाहिदे, पलटै अदभू आंखि ।
रज्जब नर नरपति भये, बांह हमाइ सु पांखि ।।४।।

तन कन बाइक हूं बिना, माया करै सु काम ।
रज्जब सिरजी सिष्टि यूं, सब गुण रहतौ राम ।।५।।

ससि सूरज सु हमाइ संदलहिं, सति समरथ गति दीन ।
तौ रज्जब दातार न टोटै, कौन कला सु हीन ।।६।।

सोरठा : महल मसाले बिना उपाये, ब्रह्मण्ड प्यण्ड ठाहर उभै ।
याही तै समरथ गति जानि, साहिब सेती ह्वै सबै ।।७।।

साखी : काया सूं बाया भई, पर काया का क्या अंस ।
तैसे रज्जब देखिये, पारब्रह्म सूं हंस ।।८।।

परभाकर प्रतिव्यंब परि, ब्रह्म जीव पहिचान ।
कहा सु डर झांई भई, समझौ संत सुजान ।।९।।

सब पिरथी प्रतिव्यंब परि, प्रभू प्रभाकर जानि ।
तौ रज्जब हरि हंस मैं, हेरि हुई कछु हानि ।।१०।।

अचल चलावे सबनि कूं, आप न चंचल होइ ।
रज्जब खपै न खेवटा, बोहिथ बिचरै जोइ ।।११।।

करता हरता दुहनि का, अर दून्यूं तैं दूरि ।
निरालंभ न्यारा लहै, सब ठाहर भरपूरि ।।१२।।

प्यंड सरोवर प्रान बल, सांई सूर सरीर ।
रज्जब काढ़ै कैद किरन, बिच बित्त राखै बीर ।।१३।।

निराकार करि न्यारा राखै, निज अंग माहिं न मेलै ।
अगम अगाध अबगति आपै, अकल अगोचर खेलै ।।१४।।

काया करम काष्ठ मैं घुण, जलहिं जलचरें जोइ ।
रकता कियो सु कौन बिधि, सो समुझै नहिं कोइ ।।१५।।

जड़ तत्तौं मैं जीव जड़ि, तन मन साज्या सास ।
यहु बिद्या बाबा कनै, आवै न आतम पास ।।१६।।

नर नाराइन मैं रहै, सदा सुकाल दुकाल ।
कबहीं सिष्ट उपावहीं, कबहूं सबके काल ।।१७।।

रज्जब राम रसाइंणी, सेवग सरबस लेइ ।
पै श्री सिरजि सिंवारनी, बिद्या किसहि न देइ ॥१८॥

जन रज्जब जामण मरण, घरि घरि आथि अनाथि ।
आदम कौं सौंपावनै, राखी अपणै हाथि ॥१९॥

पंच तत्त मैं बाहि करि, बांधे आतम राम ।
रज्जब दिया न और कौ, घट घड़नै का क्या काम ॥२०॥

घड़ै बिनासै सकल मैं, अनंत लोक अबगत्ति ।
थापि उथापै साइयां, जन रज्जब सब सत्ति ॥२१॥

ब्रह्मण्ड प्यंड बादल मई, करि न बिनासति बेर ।
रज्जब हूनर हद हुई, करन हरन दिसि हेर ॥२२॥

अकल अकल परि सब धरचा, ओंकार आकार ।
रज्जब रचना अगनि गति, नमो निपावनहार ॥२३॥

हिकमति की घड़ियाल घट, दिया धरी सौं देह ।
तीन्यूं आतम की अकल, रज्जब अचरज येह ॥२४॥

अरिल : धौल दमामा जंतर साज, नाल चलावहिं आतसबाज ।
जड़ चेतनहु बुलावहिंआये, त्यूं आदम अल्लाह बनाये ॥२५॥

साखी : बिसियर मै बिस रूप हैं, मुख अमृत मणि नाव ।
रज्जब रचना बलि गया, कौण बसत केहि ठाव ॥२६॥

देखौ सोणति सीर ह्वै, सीर पलटि सोणति ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, नमो नियंता मंति ॥२७॥

तिणमैं कण कण मन सुतिण, करता कुदरत धन्न ।
रज्जब रचना अगह गति, कहिकौं समुझै मन्न ॥२८॥

अंडि सु पंषी ऊपजै, पुनि पंषी मधि अंड ।
ब्रह्म बुद्धि बेत्वा बिथक, क्यूं जोड़ै ज्यूं प्यंड ॥२९॥

पाणी मांहि अगनि राखिये, अगिन मद्धि जो पानी ।
रज्जब रचना अगह की, बारि बीजुरी सानी ॥३०॥

सावन मास करै उन्हालौ, उन्हालै बरसालौ ।
रज्जब कहै सुनौ रे जीवहु, अकरन करन सम्भालौ ॥३१॥

पाणी मैं तौ पावक निकसै, पावक मैं तौ पाणी ।
रज्जब रचना अगह गति, काहू जाइ न जाणी ॥३२॥

ज्यूं दिनकर ससि दीप करि, सकल दृष्टि आधार ।
तैसैं रज्जब राम बिन, तन मन घोर अंधार ।।३३।।

रज्जब गुड़ी अनंत कै, एक पवन आधार ।
त्यूं तन मन आतम राम बलि, हलै चलै संसार ।।३४।।

ज्यूं जल कै बल मीन सब, मगन मुदिता माहिं ।
तैसै रज्जब प्रानपति, न्यारे जीवहिं नाहिं ।।३५।।

परम तत्त प्रान मैं बैठा, पंचौ तत्त चलावै ।
असमझ अगम सुगम समझे को, गुर प्रसाद सौं पावै ।।३६।।

आदि किया सो भी भया, मधि करै सो होइ ।
अंति करै सो होइगा, रज्जब समरथ सोइ ।।३७।।

रज्जब रच्या सु ना भया, राम रचै सो होइ ।
यं अबिगति पहिचानिये, करता औरै कोइ ।।३८।।

सांई समरथ सब करै, स्याम सेत सब होइ ।
जन रज्जब दृष्टान्त कौं, बिरध बाल लै जोइ ।।३९।।

मूलारंभ का अंग

ज्यूं जल बीरज जलचरहु, अवनि अठारह भार ।
पीछैं बीरज बीच तैं, यहु मत मूल बिचार ।।१।।

ज्यूं ओले सब अंभ मैं, त्यं पाणी करि प्यंड ।
रज्जब उपजै आप सों, अजौं सतिन के अंड ।।२।।

जन रज्जब आतम अवलि, यहु बित अबगति दीन ।
और तत्त तत्तौं भये, करनहार यूं कीन ।।३।।

ओंकार सों आतमा, पंचैं तत्त करि प्यण्ड ।
यहु भ्रामक भागा सु यूं, इह बिधि सब ब्रह्मण्ड ।।४।।

ब्रह्म मूल बाइक का, बाइक परिये तत्त ।
तत्तौं करि अस्थूल अंग, यहु बाबै का मंत्त ।।५।।

आकास अबिगति तैं उरै, आतम औ उंकार ।
पंच तत्त बरिषा बिपुल, सक्ति समंद तन धार ।।६।।

बप बुदबुदा तामैं बहु, उतपति अनंत अपार ।
अकल अकलि आदित किरन, आतम बिधि व्योहार ।।७।।

चौरासी निदान निरनै का अंग

बिरछ बीज फिर आवई, पत्र प्यंड सूं जाइ ।
तौ चौरासी क्यूं मिटैं, नर देखौ निरताइ ॥१॥

तन सु तूतड़ा जीव कनि, फिर ऊगै धरमाहिं ।
तौ चौरासी रज्जबा, मिटती दीसै नाहिं ॥२॥

चौपई : पंख जाइ अंडा फिरि आवै, तौ चौरासी कौन मिटावै ।
एक चंद माहै गुण दून्यूं, परतष देखि अमावस पून्यूं ॥३॥

बारि जाइ बींरज फिरि आवै, मूल मदन कै मद्धि लखावै ।
प्यंड सु पाणी प्राण अनंग, तौ आवण जाना मंग अभंग ॥४॥

साखी : दोजक माहिं बुरौं का बासा, भले भिस्त कौं जाहिं ।
नरग सरग स्याबति हुये, सब चौरासी माहिं ॥५॥

काचा कण उगलै इला, पाका पिरथी खाइ ।
त्यूं ही आतम राम रुचि, नर देखौ निरताइ ॥६॥

सूरज हू जामै मरै, उदै अस्त दुख होइ ।
जग चषि से चौरासी भुगतैं, रज्जब रारयूं जोइ ॥७॥

चंद सूर तारे फिरैं, तौ आतम क्यूं न फिराहिं ।
इनकौं भंवतै देखि करि, रज्जब धरे डराहिं ॥८॥

तारहुं की गति देखिये, कुल आतम अरवाहिं ।
सांई फेरे ये फिरै, रज्जब डरपे जाहिं ॥९॥

चौपई : बादल बिजली पाणी पौन, निसि बासर इनहू कौ गौन ।
पल पल माहिं सु जामै भरै, ये चौरासी चारयूं फिरै ॥१०॥

आवण जाना किसी न भावै, परि साहिब कहि को समुझावै ।
अरज दीन की सुणिये सांई, जीव जगत में फेरो नाहीं ॥११॥

साखीं : पै मरदी सु पराये सारे, खुद मरदी कछु नाहिं ।
बंदा बंदी बान है, हाजिर हुकम सु माहिं ॥१२॥

जे कुछ खुसी खुदाइ की, बंदौ करी कबूल ।
गाफिल और बिचार ही, सो रज्जब सब भूल ॥१३॥

चौपई : भेज्या जाइ बुलाया आवै, सो सेवग साहिब मन भावै ।
अपणी खुसी मडैगा दूरिं, हुकम माहिं हाजिर सु हजूरि ॥१४॥

साखी : एक परगनौ भेजिये, एक राखिये पास ।
रज्जब बंदे हकुम मैं, कहां जायं सो नास ॥१५॥

चौपई : भेज्या जाइ बुलाया आवै, चाकर चकरी चित्त सु भावै ।
गल मै डोरि पराये सारै, जिव जड़ काठ सु कहा बिचारै ॥१६॥

आज्ञा साहिबी का अंग

आप खुसी आया नहीं, अपणी खुसी न जाइ ।
तौ सब सारै और कै, रज्जब रजू रजाइ ॥१॥

फेरचा चौरासी फिरै, राख्या कहीं न जाइ ।
यहु इनकै सारै नहीं, जे कछु खुसी खुदाइ ॥२॥

गीद न गोई चपल मति, परबस दहुं दिसि जाइ ।
त्यूं रज्जब मन गोइ है, जे कछु राम रजाइ ॥३॥

रज्जब राखै राम जी, सु मन रहै ठहराइ ।
पै चिदानंद बिन चित्त की, चंचलता नहिं जाइ ॥४॥

सक्ति सीत ज्यूं जल बंधै, मुकत सु आदित देखि ।
बंधमुकति हम दिसि नहीं, डभै सु हस्त अलेखि ॥५॥

चतुर थान घोड़े सु घट, जीव अमर असवार ।
बार गीर बाजहुं चढ़े, हुकम सु हरि व्योहार ॥६॥

पवंग पतन पुनि पावहीं, बार गीर असवार ।
उतरे चढ़ै सु हरि हुकम, घोड़े मरहु हजार ॥७॥

साहिब वै घरि बसत बहु, बासण का बस नांहि ।
रज्जब बाहै घर धणी, पड़ै सु पातुर मांहि ॥८॥

पंच षानि के प्रान सु पातुर, बाही बसत करै परगास ।
भीतर होइ सु बाहरि आवै, फेर सार नाहीं कर आस ॥९॥

है गै रासिब चित्र यहु, पुमि प्यादे असवार ।
रज्जब मन न मनोरथौं, भारै सिरजनहार ॥१०॥

चौपई : इंद्री आभे अवनि अकार, आतम अंभ सु इनहु मझार ।
राखे रहै बुलाये आवैं, ज्यूं अबिगति आदित मन भावैं ॥११॥

साखी : आज्ञा आतम मैं धरचा, पंच तत्त आकार ।
सांई सौंप न सेवक छाड़ै, छोड़ा कै करतार ॥१२॥

होतब आज्ञा भावी भौचित, सोई होती जाइ ।
ता ऊपर कहणा न कछु, नर देखौ निरताइ ॥१३॥

पत्थर मैं पैदा किये, पारस हीरा लाल ।
त्यूं आतम सूं अवलिया, साहिब किये निहाल ॥१४॥

अरिल : संपति बिपति आव लघु दीरघ, रज्जब रहै हुकम हरि माहिं ।
दाता देइ सु मंगित पावै यहु, इसका सारा कछु नाहिं ॥१५॥

साखी : सिरज्या सरजनहार का, सोई जीव कौ होइ ।
सुख संपति दुख बिपति क्यूं, मेटि न सकई कोइ ॥१६॥

हुकम हुआ सो होइगा, पै तुम भी कबूल ।
तेरा किया न होइ कछु, भोला भरम न भूल ॥१७॥

आज्ञा अलख अलेख की, आतम लखै न कोइ ।
ज्यूं जाणा यूं ही रहै, साहिब करै सो होइ ॥१८॥

सब घटा घटा समानि है, ब्रह्म बीजुली माहिं ।
रज्जब चमकै कौन मैं, सो समुझै कोइ नाहिं ॥१९॥

अकल गाइ दहै दिसि अनंत, सरगुण निरगुण थान ।
दया दुहावै और की, दुहै न जान अजान ॥२०॥

सकति सलिल रह सुन्नि मैं, जाण अजाण न लेइ ।
जगदाता देणै मतै, तब जल माहै करि देइ ॥२१॥

जा जिव सों जगपति सुखी, खुसी तासों जगत दयाल ।
रज्जब रुचै न राम कौं, तासों सबही काल ॥२२॥

आकार सबै औषद मई, जे बाबा ह्वै बैद ।
रज्जब नहीं त दीस बिसि, करन मतै ना पैद ॥२३॥

सकल सिद्धि नौ निधि सहत, मिली अमिल ह्वै जाहिं ।
काजल सबै अकाज की, जे प्रभु आज्ञा नाहिं ॥२४॥

सबद गहै अरथौं लहै, करणी करत अभूल ।
पै रज्जब रस तौं पड़ै, जे हरि करै कबूल ॥२५॥

राम रिजक इकठौर दे, मिलि इकठौरहिं खाहिं ।
रज्जब संबल ह्वै जुदा, आप आपकौ जाहिं ॥२६॥

गात गोठि के रूप हैं, बाजीगर निजनाथ ।
बषेरि मेलतौं बेरि क्या, ये सब उनके हाथ ॥२७॥

किन नछित्र ससि संग किये, किन कीया सूरज एक ।
यहु रज्जब सब रजा परि, समुझौ बड़ा बमेक ॥२८॥

आज्ञा थी तो ही हुआ, आज्ञा होता जाइ ।
ज्यूं आज्ञा त्यूं होइगा, जे कछु खुसी खुदाइ ॥२९॥

नेति नेति निगमौ कहै, अगम अगाहि जु बस्त ।
किया उनहु कीवै मिलैं, छलि बलि चढ़ै न हस्त ॥३०॥

प्यंड प्राण के गुणौं न गहिये, अगम अगोचर बस्त ।
केवल दया दरसन पाइये, छलि बलि चढ़ै न हस्त ॥३१॥

गैबी का अंग

गहरी बात सु गैब मैं, गुर सिष टोटा लाभ ।
रज्जब अलख अलेखा फल, देखहु गाभर आप ॥१॥

क्या पारस परमारथी, क्या लोहै मैं लोभ ।
अमिल मिलाये रामजी, इनकौं आई सोभ ॥२॥

मनिषा कै मन मैं नहीं, नाहीं हाथि हमाइ ।
गैब माहिं छाया पड़ै, नर नरपति ह्वै जाइ ॥३॥

जीव दलिद्री जुगहुं का, धनपति बाप न आप ।
माल मिल्या बहु गैब मैं, भागै शक्ति संताप ॥४॥

अनभै अगोचर का अंग

पंषी उपना पंख तैं, प्रेम प्रगट परि पान ।
रज्जब गिर तरु सिर बस्या, किरणि उदै भव भान ॥१॥

बसुधा बीज बीज सो बसुधा, इहिं बिधि किरणि सो होइ ।
रज्जब खलक खबरि नहिं पावै, बूझै बिरला कोइ ॥२॥

मध्य मारग निज थान निरनै का अंग

तन मन मैं मारग मिल्या, सदगुर दिया दिखाइ ।
जन रज्जब रम राह उस, परम पुरिष कन जाइ ॥१॥

रज्जब अज्जब घाट है, मनिषा देही माहिं ।
सुरति निरति मधि ऊतरै, पछितावै सो नाहिं ॥२॥

सुरति सांस मधि ऊतरै, नजरि खुलै नभि थान ।
सो आतम देखै ब्रह्म, परचै पहुंच्या प्रान ।।३।।

बांट कहै ब्रह्मंड की, बटाएऊ सु अनेक ।
रज्जब प्राणी प्यंड मैं, पंथ चलै कोइ एक ।।४।।

पंथ पीव का प्यंड मैं, प्राण प्रथी पंथ जाहिं ।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलै, ढूंढै बन बित माहिं ।।५।।

बाहर ढूंढै बावरै, भीतर भेदी प्रान ।
रज्जब आतम राम कन, समझौ संत सुजान ।।६।।

अंतर जो भी उर बसै, साधू दिया दिखाइ ।
रज्जब ढूंढैं माहिलै, बाहरि कीधौं जाइ ।।७।।

माहै सौधौ माहिलौ, आतम अंतर जोइ ।
रज्जब तन मन लेर मैं, सु भीतर कहिये सोइ ।।८।।

इक अठसठ तीरथ फिरैं, इक दहणा रथ देत ।
रज्जब भ्रमि भव में पड़ै, समझ्या नहीं सकेत ।।९।।

उणचास कोटि अह निसि फिरहिं, चतुर पहर ससि भान ।
रज्जब उभै चलाक अति, अबिगति नाथ न जान ।।१०।।

अहुट हाथ रमिबा अगम, सुगम रमण उणचास ।
रज्जब भीतर भरि लहै, बाहर ह्वै बुधि नास ।।११।।

जन रज्जब उणचास फिरि, अंतरि है उर बार ।
नाभि नासिका हाथ इक, निरखि नैन नर पार ।।१२।।

सप्त दीप नौ खंड फिरि, हाथ चढ़ै कछु नाहिं ।
रज्जब रजमा पाइये, आये उर घर माहिं ।।१३।।

स्थल उर आच्छया अगमु, नाभि निराली ठौर ।
यहु इकान्त रज्जब रहौ, ताकहुं गुफा न और ।।१४।।

रज्जब रस एकान्त का, एकांकी कौ होइ ।
प्राण पसारा मैं पड्या, सो सुख लहै न कोइ ।।१५।।

नाभ नासिका बीच ब्रह्म, मेला मनिषा देह ।
सब तीरथ मकै सहत, रज्जब रमि करि लेह ।।१६।।

नभि अस्थानक नाभि है, पंषी प्राण सु जाहिं ।
अनल आतमा ठाहरै, सुन्नि सु मंडल माहिं ।।१७।।

अनल अतीत चलै अति आतुर, ता समि गवन न होइ ।
जन रज्जब यूं जगत उलंघै, बूझै बिरला कोइ ॥१८॥

अंतरि लंघै लोक सब, अंतरि औघट घाट ।
अंतरजामी कौ मिलै, जन रज्जब उर बाट ॥१९॥

रज्जब रहणा सुन्नि मैं, सबद सदन मैं आइ ।
मनसा बाचा करमना, नर देखौ निरताइ ॥२०॥

आतम सीप समान है, देही दरिया माहिं ।
मुख मोहन मुकता तहां, मन मरजीवे जाहिं ॥२१॥

रज्जब बप बसुधा बिरचि, निकसैं नाभ निहंग ।
आगैं अबिगति नाथ है, सदा सुरति सुख संग ॥२२॥

मन तुरंग चेतनि चढ़ै, पावन पंथि सो जाइ ।
रज्जब पैडै सुन्नि मैं, माहैं मिलै खुदाइ ॥२३॥

सुरति समावै प्यंड मैं, पीछै मन मैं जाइ ।
आतम अंतरि ह्वै रमै, आगै मिलै खुदाइ ॥२४॥

आतम थान मुकाम सु मक्का, मदीना मा बूद परै ।
जिकरि जिहाज बैठि तिरि जग जल, रज्जब हाजी हज करै ॥२५॥

रज्जब राह रसूल का, पैडा पंजर माहिं ।
उलटे चलि औजूद मैं, मरद मुसाफर जाहिं ॥२६॥

बेजबां जिकरि जान जमीर मैं, पीर कौ पंदियति पाइय माहिं ।
रज्जब बखाइ बातूनि यहु, बंदगी तरीखत राह तजरीत कोइ जाहिं ॥२७॥

बिन रसना रामहिं रटै, आतम अंतर आइ ।
रज्जब पैड़ै पीव के, चित चेतनि कोइ जाइ ॥२८॥

किस मक्कै मुहमद गया, महादेव किस थान ।
रज्जब चलिये पंथ उस, पंथी प्रान सुजान ॥२९॥

पंथी माहै पंथ सो, बाट बटाऊ माहिं ।
रज्जब रज मघ माहिले, बिरले कोई जाहिं ॥३०॥

रज्जब बेद बतावै काहली, सिद्ध सरीरौं माहिं ।
द्वै बिधि सेवा एक की, यूं दासहुं बणती नाहिं ॥३१॥

रज्जब साधू सेव सरीर मैं, संसारी बारैं ।
अंतरि बसुधा व्योम समि, यहु भेद विचारैं ॥३२॥

ज्यूं सिसन स्वाद नाके नवहु, त्यूं सरब स्वाद नभि थान ।
रज्जब रस बिसकौस घर, समझौ संत सुजान ॥३३॥

रज्जब मन पवन ससि सूर समि, आतम बसहिं अकास ।
तन तोयं प्रतिबिंब परि, बीच नहीं अभ्यास ॥३४॥

साधू खग मग सुन्नि मैं, दौरे दिसि गोपाल ।
जन रज्जब देखै जगत, चलै पवन यहु चाल ॥३५॥

आतम निरनै का अंग

रुई तार ततपंच हैं, बिगति बिनौला प्रान ।
जन रज्जब यहु जुगल यूं, अंकूर आतमा सान ॥१॥

पंच पचीसौ सुई जड़, चेतन चंबक प्रान ।
जन रज्जब जाणी जुगति, समुझौ संत सुजान ॥२॥

बिभौ बारि बहनी सहत, बाइ व्योम जड़ अंग ।
जन रज्जब जाणी जुदी, आतम अकलि सुरंग ॥३॥

जैसे आभै अंभ है, आषिर सबद समान ।
तैसे रज्जब सोधतैं, लहिये प्यंडहि प्रान ॥४॥

आतम परखी अकलि मधि, पंच पचीसहु जान ।
बह्म बिचार न मावई, बेत्वा बेद बखान ॥५॥

अवनिहि असन आप अंभ चाहै, तेजहिं तेज अहार ।
बाइहं बाइ गगन हित गगनहि, आतम अकलि अधार ॥६॥

तत्त तत्त मिलि जीवई, तत्त तत्त बिन नास ।
रज्जब आतम राम यूं, जोग बिजोग बिमास ॥७॥

रज्जब प्यंड पलै ब्रह्मंड मैं, तत्तहिं तत्त अहार ।
प्राण पोषिये भजन ज्ञान सूं, बिरला पोषणहार ॥८॥

रज्जब रचना अगह गति, अदभुत बात अगम ।
पर दीसै बरषा बंदगी, इंद्र धनक आतम ॥९॥

राहु केत राग्यूं ऊपर है, रबि राकेस प्रकास ।
त्यूं रज्जब बिच बंदगी, आतम राम अभ्यास ॥१०॥

मन बच क्रम रज्जब कहै, सुनहु बमेकी दास ।
सकति सूर जब आथवै, तब आतम उडग प्रकास ॥११॥

पिंड न पिरथी पेखिये, प्रभू प्रभाकर अंग ।
रज्जब उभै अभ्यासही, आतम अंभ सु संग ॥१२॥

छह दरसन मत छिद्र हैं, माया मंदिर माहिं ।
तहं सूषिम गुण कण द्रसहिं, नहीं त दीसै नाहिं ॥१३॥

हरि मारग मन मै अलह, ज्यूं निसधन हरि अकास ।
यहु दरसै साधू सबद, वह दामनि परकास ॥१४॥

आदित आगि आरसी लहिये, सुधा सुचंद चकोर ।
यूं अलख लखावै आप सूं, रज्जब लीनहु वोर ॥१५॥

सिकलीगर अरु हंस साधकन, देख्या ब्योर न बंग ।
सार सुनीर सरीर मधि, काढ़ै सूषिम अंग ॥१६॥

जुरे जीव जुदै रहैं, सुन्नि सु सांई माहिं ।
सविता सतगुर सों द्रसै, लिपै छिपै सो नाहिं ॥१७॥

पंच तत्त के पंच रंग, प्रान रूप कछु और ।
रज्जब कहसी एक कौ, जाका पहुंच्या त्यौर ॥१८॥

स्याम गगन बाई हरी, तेज रकत सों अंग ।
जल ऊजल पिरथी जलद, आतम औरे रंग ॥१९॥

रज्जब आतम राम का, बरणत बनै न रंग ।
वे अबिनासी और गति, कहिये सो सब भंग ॥२०॥

पंच तत्त आकार है, परम तत्त निरंकार ।
रज्जब ऊभा उभै बिचि, आतमहुं ओंकार ॥२१॥

आतम ओंकार मैं, सरगुण निरगुण अंग ।
रज्जब प्रगटै प्यंड ह्वै, गुपुत गात सो भंग ॥२२॥

काया केलि मति जुगति मिलि, निराकार आकार ।
आतम ऐनि कपूर गति, तामै फेर न सार ॥२३॥

आषिर आभै चढ़ि रमै, आतम अंभ अकास ।
और इकंग अकार मैं, गमनै गगन निवास ॥२४॥

गोली गोले तीर के, बल लागै कहि ठांव ।
तैसे रज्जब प्राण प्यंड संगि, हरि हिकमति बलि जाव ॥२५॥

चौपाई : प्राणहि पवन मीन कौ पाणी, रज्जब जीवन वहेज पिछाणी ।
समझ्या समुझै सुलझी बात, जड़ जिव का जानी नहिं जात ॥२६॥

काया कपूर इंद्री आभै, प्राणी पावन त्रिगुन गुन लाभै ।
रज्जब रचना अगह अपार, बिरला बूझहिं बूझण हार ॥२७॥

साखी : निरगुण सरगुण होत है, पंच तत्त अरु प्रान ।
जन रज्जब इस पेच कौ, समझै साध सुजान ॥२८॥

ग्यान परचै का अंग

नैनौ अंजन ग्यान निज, सब भागे संधि साल ।
ज्यूं रज्जब सिर लाल धरि, सब दिसि देखै लाल ॥१॥

पीत बाइ जब दृष्टि ह्वै, तब पीला संसार ।
त्यूं रज्जब रामहिं मिल्यूं, सब दिसि सिरजनहार ॥२॥

जे पाइन पैजाइ ह्वै, तौ बसुधा भरि चाम ।
त्यूं रज्जब रामहिं मिल्यूं, बाहरि भीतर राम ॥३॥

ज्यूं सैल सुदामा गत भये, ह्वै दामिन कै माहिं ।
त्यूं रज्जब रामहिं मिल्यूं, देही दीसै नाहिं ॥४॥

नाइ निहंग चढ़ै नहिं दीसै, प्राण सु पंषी जोइ ।
रज्जब सांई सूर समाई, काया छाया होइ ॥५॥

अरिल : ज्यूं लोहा ह्वै लाल, सु पावक परसतै ।
त्यूं रज्जब मिलि राम, सु सांचे दरसतै ॥६॥

उभै एक उनहार, नहीं कछु भेद रे ।
मिले बसत बल होइ, सु किया नखेद रे ॥७॥

साखी : परचा दीपग राग बसि, तिमिर हंत जिव जोति ।
रज्जब प्रगटै बस्त बल, सेवग स्वामी पोति ॥८॥

परचै आतम राम गति, मिले बसत बल होइ ।
रज्जब पाई पारिखा, फेर सार नहिं कोइ ॥९॥

ब्रह्म मिल्या तब जाणिये, जब तन मन छिन नाहिं ।
रज्जब आतम राम बिच, और न भासै माहिं ॥१०॥

मनसा बाचा करमणा, जे जिव पीव सु होइ ।
रज्जब आतम राम गति, दृष्टि न दीसै दोइ ॥११॥

लोभ मोह लागै नहीं, क्रोध न जागै काम ।
रज्जब नहीं सु जीव गति, प्राणी परतषि राम ॥१२॥

पारिख पूरण ऊतरै, सो परचा परवाणि ।
गुण गति गाति न पाइये, तौ बाद बक्या सो जाणि ॥१३॥

पंच पचीसनि त्रिगुण मन, लच्छी गुण गत दोइ ।
सो रज्जब माया मुकति, ब्रह्म समाना सोइ ॥१४॥

कलि कटूब कायम रहै, मुर माया अस्थान ।
तिरगुण तजे ततै रहैं, यहु परचा परवान ॥१५॥

हंस लौह पारस प्रभू, मिलत महातम जोइ ।
रज्जब पलटै परसतैं, सौंघा मंहगा होइ ॥१६॥

प्राण प्रीत पाग्या रहै, हरि हित हिरदै माहिं ।
कलित अंध कंर्ताहि मिली, यद्यपि देख्या नाहिं ॥१७॥

विद्या बिबिधि बिदेस बहु, बचन न ब्यौरा लेस ।
रज्जब पावै प्रान तब, जबहिं करै परबेस ॥१८॥

श्रवन सुखी सांचे सबद, रारि रूप सति जोइ ।
रज्जब परचा प्रानपति, मिलत बस्त बल होइ ॥१९॥

कीट भृङ्ग भृङ्गी परस, दीये दीया जोइ ।
तौ रज्जब रामहिं मिलत, क्यों न बस्त बल होइ ॥२०॥

प्रथमै पवन प्रकासई, दूजै देखैं बैंन ।
तीजै मन मनसा बसै, चौथे आतम ऐन ।
ठौर पांचई प्रानपति, बिरला देखै नैंन ॥२१॥

बिन परचै सब वार हैं, परचैं प्राणी पार ।
जन रज्जब सांची कही, तामै फेर न सार ॥२२॥

लौह काठ काठे घुणुहुं, आरोगै बिच आगि ।
त्यूं रज्जब ग्रास्या गुणहं, ज्वाला जोति न जागि ॥२३॥

रज्जब रहै न सुन्नि थल, चेतन चेतनि जाइ ।
सबद सोर ज्यूं श्रवन लग, अरथ बिचार समाइ ॥२४॥

सौदा करणा सुन्नि मैं, तहं कछु सूझै नाहिं ।
रज्जब बित बिन जे तहां, बड़ व्योपारी माहिं ॥२५॥

रज्जब निकसे मातमहिं, सुत कीड़ी कण काज ।
सो पायूं पैठे पहम, सुफल भये सब साज ॥२६॥

रज्जब बूंद समन्द का, कित सरकैं कहं जाहिं ।
साझा सकल समुन्द सौं, त्यूं आतम राम समाइ ॥२७॥

रज्जब रैन अचेत मैं, दीपग ग्यान प्रकास ।
पै आदित अबिगति उदै, इनका कहा उजास ॥२८॥

उर आंगण आछ्या किया, ग्यान बुहारी फेरि ।
रज्जब प्रभु आवन समैं, इहौ इकंति अयेरि ॥२९॥

बुधि बिचार की चालनी, त्रिगुणी तुस सब छानै ।
आटा अंतह् करन भया सुध, करी चालनी तानै ॥३०॥

चौपई : अबिगति अंब आतम फल लागे, नीच ऊंच अंतर श्रम भागे ।
मुख भुज पेट पाइ गति येकै, पारस प्यंड न भिन्न त्रमेकै ॥३१॥

साखी : सब ठाहरि समसरि प्रभु, ज्यूं मिसरी का गात ।
ता माहैं दुबिधा कहै, सो सब झूठी बात ॥३२॥

श्रिक सुगंध सीतल सब ठाहर, बिपन बिभेद न काया कोइ ।
तौ रज्जब जो सदा एक रस, चतुर भांति कैसैं तन होइ ॥३३॥

परचा भोले भाव का अंग

भोलौं सूं भोले प्रभू, स्याणहुं सौं स्याणे ।
जन रज्जब साधौं सिधौ, इहि भांति बखाणे ॥१॥

स्याणहुं सूं स्याणे प्रभू, भोलौं सूं भोले ।
बालिग बुधि बिन बाल है, अंतरिपट खोले ॥२॥

स्याणें याणे होत हैं, बाप पूत की लार ।
बाणी बोलैं तोतरी, उस बालिक कै प्यार ॥३॥

प्रचंड प्रीति बुधि बालि कै, पितहिं नचावहिं नांच ।
जन रज्जब ज्यूं जीव कूं, खेल खिलावहिं पांच ॥४॥

चौपई: देखौ ध्रू नामा प्रहलाद, बाल समै पाई तिन दादि ।
भोले नांव लिया सब नाषी, बेद भेद में नजर न राखी ॥५॥

परचा भोले भाव का, परचा करै सहाइ ।
परचा परस बिना दरस, परचा रहै समाइ ॥६॥

कौंण गुणहुं सौं नांव संवारे, कहि बिधि भई मिठाई ।
सो समझे बिन सकति घटी कछु, जिनि प्राणहुं ले खाई ॥७॥

नांव भेद गुण कछू ना जाणि, भोले भाइ सु लीन ।
तिनसौं बाबै बेर न लाई, सो मांग्या सो दीन ॥८॥

पात्रों मैं पाणी जम्या, पात्रों के उणहार ।
तैसे रज्जब प्राणपति, भाव भजन बप धार ॥९॥

हैरान का अंग

नींव सीव बिन सूनि घर, स्यो सकती अस्थान ।
रज्जब मुकता मिति बिना, हेरि हुये हैरान ॥१॥

सुन्नि सरूपी साइयां, रज्जब आभा माहिं ।
प्रगट गुपत दह दिस फिरचा, पार सु पावै नाहिं ॥२॥

इक सांई अरु सुन्नि कै, आदि अंति मधि नाहिं ।
सो धन हारे सब थके, जन रज्जब ता माहिं ॥३॥

प्रथमि सुन्नि कौ संग्रहै, को सोधै ता माहिं ।
को पावै वा बस्त कौं, जो रज्जब है नाहिं ॥४॥

अकल न आवै अकलि मैं, सकल न सबद समाइ ।
ज्यूं रज्जब कुंभ कुमार कै, सुन्नि जल लीया न जाइ ॥५॥

अंत न लहै अनन्त का, आतम आवहिं जाहिं ।
ज्यूं रज्जब मुख मुकर मैं, पाणी पावै नाहिं ॥६॥

पंच तत्त सौं प्यंड करि, प्राण बणाया माहिं ।
रज्जब रचना अगह गति, समझे समुझै नाहिं ॥७॥

पंच तत्त सौं प्यंड करि, माहिं समोया प्रान ।
रज्जब रचना राम की, सिध साधक हैरान ॥८॥

रज्जब रचना राम की, रामति अनंत अपार ।
जांण जांण जांगै नहीं, मन मति ह्वै न बिचार ॥९॥

कहीं भांति यहु कछु किया, सो कोई न जानै जान ।
रज्जब रहि गये देखि करि, हरि हिकमति हैरान ॥१०॥

अनजाने जाने कहैं, ज्ञान सु कहैं अजान ।
रज्जब साधू बेद सब, हेरि हुये हैरान ॥११॥

असंखि काव्य बाणी बहुत, निगम कहत मम भोल ।
तौ रज्जब कौ कहैगा, ब्रह्म सरीखा बोल ॥१२॥

ब्रह्म न समावै बुद्धि मैं, बरन्या बैन न जाइ ।
ज्ञान गिरा गहले हुये, ठग के लाडू खाइ ॥१३॥
जिन जिन जाण्या जगतपित, सो जाणिर भये जाण ।
रज्जब दीप उदीप क्या, जब प्रगटया निज भाण ॥१४॥
काया उपजी करम करि, बुधि बेद बषाणै ।
पै आतम की उतपति कूं, जिव ज्वाब न जानै ॥१५॥
जिव कीया किस बस्त का, सो जीव न जानै ।
सब समुझे समुझै नहीं, करतारै जानै ॥१६॥
जीव जड़ भांडा भेद न जानै, काहे का कीना आकार ।
रज्जब अगम आतमौ आगे, यहु जाने करतार कुंभार ॥१७॥
जीव न जानै जीव कौ, कहै कहूं कौ कीन्ह ।
तौ रज्जब इस बुद्धि सों, ब्रह्म कौन बिधि चीन्ह ॥१८॥
जीवहि पूछै ब्रह्म गति, यहु अचरज हैरान ।
जो आपुहिं जानै नहीं, तिन अबिगति क्या जान ॥१९॥
जब लग जीव जाना कहै, तब लग कछू न जान ।
जन रज्जब जान्या तबै, जाणिर भये अजान ॥२०॥
जे तौ जान्या जगत गुर, ते सब भये अजान ।
रज्जब देखहु देखतौं, बेदहुं नेति बखान ॥२१॥
रज्जब तब सब जानिया, जाणिर भये अजाण ।
मनसा बाचा करमना, गुर गोबिन्द की आण ॥२२॥

चौपई : अकलि अनंत रहै ह्वै भोला, ता समि सिष्टि नहीं निरमोला ।
रज्जब अज्जब कहिये वाहि, साध बेद बोलैं अवगाहि ॥२३॥

साखी : कृतिम करतहिं क्या कहै, आतम राम अगम ।
रज्जब बाणी बल मिटया, जे नेतहु कहि निगम ॥२४॥
बेत्वा थर्कहिं बिचारि करि, दाने ह्वै नादान ।
बेद पुरान न कीमति पावहिं, रज्जब है हैरान ॥२५॥
अकलहिं कला कला नहिं कोइ, निरगुणि गुणि न गहावै ।
रज्जब जिव ऋत क्यूं सब थाके, मिहरि आपणी आवै ॥२६॥
करतार अलख करणी अलख, अलख आतमा देव ।
रज्जब अलषौं मैं पड्या, क्यूं लखि कीजै सेव ॥२७॥

अलख अलख सब कोइ कहै, सो लहिये क्यूं पीव ।
पै रज्जब यहु पुन्नि अगम, जु कौन तत्त है जीव ॥२८॥

अबगति ने अबिगत किया, जे देख्या निरताइ ।
रज्जब अकीया को कहै, किया न समझ्या जाइ ॥२९॥

आतम आतम की अकलि, औलोकी नहिं जाइ ।
तौ रज्जब यहु बिषम है, करणी खबरि खुदाइ ॥३०॥

जीव न जाणैं जीव कौ, तौ जगपति जाणै कौन ।
अकलहिं ठौर कहना न कछु, रज्जब पकरहु मौन ॥३१॥

ज्यूं घुण काष्ठ नाज मैं, तरवर मैं फल जोइ ।
रज्जब कीट पषाण मैं, कुदरत लखै न कोइ ॥३२॥

अण देख्या तौ क्या कहै, देख्यूं कह्या न जाइ ।
रज्जब हरि हैरान है, नाहीं सबद समाइ ॥३३॥

रज्जब रसना रहति रस, प्यंड परै की बात ।
सो सुख कहै न प्राण पति, जीभ किती एक मात ॥३४॥

जीव ब्रह्म के खेल की, मुख रुख करनहिं बैन ।
जन रज्जब जु जथा जुगति, सु आनन उदै न ऐन ॥३५॥

अकल न कलिये आतमा, मनमत मद्धि समाइ ।
रज्जब मुख रुख बोलिये, सो नहिं सबद समाइ ॥३६॥

रज्जब सिरि सहनाण कै, सिसु ससि दिया दिखाइ ।
तैसे सांई सबद मैं, मुख रुख बरनी जाइ ॥३७॥

आतम जे कछु ऊचरैं, सब अपणा उनमान ।
रज्जब अज्जब अकल गति, सो दिनहूं नहिं जान ॥३८॥

रज्जब आदम सुत सबद, ह्वै आदम उनहार ।
अकह कहै मैं आणिये, सु निपट न होइ करार ॥३९॥

बंदे उपजै बंदगी, बालक बामा माहिं ।
रज्जब भाग अभाग की, आंख्यूं चीन्है नाहिं ॥४०॥

मति मृत्तिका अनन्त हैं, बहुतै काबि कुंभार ।
सबद पात्र बहु घड़ि गये, घड़िसी और अपार ॥४१॥

पार अपार का अंग

फटगसिलहु मुख बिन महल, ता माहै बहु बस्त ।
आंख्यूं कौ आसान है, मुस्किल चढ़ै तौ हस्त ॥१॥
बप बिलौर पाषान घर, मुख मुद्रित मधि राम ।
ज्ञान दृष्टि सुलभ दरस, दुरलभ परसन काम ॥२॥
खालिक खीर समंद है, पीकरि होइ न पार ।
रज्जब रंचक चाखतौ, सेवग रह्या न वार ॥३॥
बप बिलोर मैं प्रानपति, ज्ञान दृष्टि दरसाइ ।
सेवक कौं संतोष दे, पै ब्रह्म न बसि ह्वै जाइ ॥४॥

थकित निहचल का अंग

रज्जब निहचल बंदिये, देखौ ध्रू दिसि जोइ ।
मूये हिंदू तुरक का, माथा वहि दिसि होइ ॥१॥
ध्रू को देहिं प्रदछिना, उडग यंद अरु भान ।
रज्जब निहचल बंदिये, अरथ इताही जान ॥२॥
जन रज्जब चंचल सबै, उडग आत्मा जोइ ।
नौलछि नछित्र नौखंड मधि, ध्रुव ज्यों निहचल कोइ ॥३॥
नौ लच्छिन चंचल सबै, ससि सूरज तिन माहिं ।
रज्जब ध्रू निहचल किये, और किये यूं नाहिं ॥४॥
रज्जब मैली चपलता, निहचल निरमल प्रान ।
हलचल जल दीसै न मुख, अस्थिर सब दरसान ॥५॥
अस्थिर अमल चपलता मैली, आतम अंभ समान ।
रज्जब जोये जीव जलि, नीकैं किया निदान ॥६॥
जब लग इंद्रयूं चपलता, तब लगि मैला प्रान ।
रज्जब पंचौ थिर रहै, निरमल संत सुजान ॥७॥
निहचल निज सूं निकट है, चंचल चरनू दूरि ।
जन रज्जब जाता जुदा, रहता राम हजूरि ॥८॥
अघ उतरैं अस्थिर भये, आतम रामहिं लीन ।
रज्जब रहता राम मैं, बहता बस्त सुभीन ॥९॥

निहचल मैं निहचल रहै, चंचल चंचल माहिं ।
जन रज्जब जाणी जुगति, यामैं मिथ्या नाहिं ॥१०॥

थिर माहैं थित थिर रहै, चंचल होता जाइ ।
रज्जब दरिया देह की, एकै गति निरताइ ॥११॥

आरंभ करता अघ चढ़ै, चंचलता फल चीन्ह ।
थकित होत थाकैंहि करम, इहै कमाई कीन्ह ॥१२॥

बिन सेवा सेवा करी, जब जिव निहचल होइ ।
जन रज्जब इस पेच कूं, बूझै बिरला कोइ ॥१३॥

चंबक चित्र न चपल ह्वै, उभै थकित इह बिद्धि ।
सुई सुरति सरकै नहीं, मिलि पारस परसिद्धि ॥१४॥

चौपई : लोहा पारस औषदि सार, सो सरकै नहिं चंबक प्यार ।
त्यूं रज्जब आतम रामहि मेल, सकति थकित भागा भ्रम खेल ॥१५॥

साखी : रज्जब राम समुद्र मधि, फिरै सुरीते कुंभ ।
बोलचाल बाई बिथक, भरे सु अबिगत अंभ ॥१६॥

धर गिर तर निहचल बहुत, निहचल कोई नांव ।
जन रज्जब ता संत की, मैं बलिहारी जांव ॥१७॥

माया मैं निहचल सबै, चौरासी लखि जोइ ।
रज्जब अस्थिर ब्रह्म मैं, सो जन बिरला कोइ ॥१८॥

नांव रहै हरि नांव मैं, जीव जगपतिहिं माहिं ।
रज्जब द्वै ठाहर सु थिर, तीजी दीसै नाहिं ॥१९॥

बाइस बैठि जहाज सिरि, बारिनिधि मधि जाइ ।
रे रज्जब तहं तैं उड़ै, बैठेगा कहां आइ ॥२०॥

रज्जब बाइस बोध बिन, बोहिथ बैठे आइ ।
सो जिहाज निधि मधि चल्या, काग कहां उड़ि जाइ ॥२१॥

आसै आसण का अंग

जहां प्रीति तहं जाइ जिव, भंग भये अस्थूल ।
जन रज्जब दृष्टांत कौं, कली कढ़े ज्यूं फूल ॥१॥

नीर न रहै सुमेरु सिर, नीचे निकसै आइ ।
त्यूं रज्जब इस जीव की, जहां प्रीति तहं जाइ ॥२॥

प्रीति प्राण कौ ले गई, काल काया ले जाइ ।
जन रज्जब गति आगिली, सु अब देखी निरताइ ॥३॥

साध सरीरहिं छोड़ई, पर जीव न छांड़ा जाप ।
रज्जब रट ऐसै रही, ज्यूं मिरतग तिन ताप ॥४॥

मन मोती नरकी कला, बिगसि बंधै निरसंध ।
गलि निकसैं कलि कष्ट मुखि, भगति भामनी बंध ॥५॥

चौपई: मन पारा मोती नर अंग, निकसत होहिं सदा मुर भंग ।
पुनि सारे साबति होहिं सोइ, तीन्यूं माहिं न बिनस्या कोइ ॥६॥

साखी: पेसखाना पावक का, धोम व्योम दिसि जाइ ।
ऐसै मनि उनमनि लगै, तौ जीव रहै तहं आइ ॥७॥

जहां मुहब्बति मन्न की, प्यंड प्राण तहं जाहिं ।
रज्जब तीन्यूं एकठे, कबहूं बिछुटै नाहिं ॥८॥

आसै आसण होत है, जहां रचे हित भाइ ।
देखौ दीपक राग की, अगनि सु दीवे जाइ ॥९॥

रज्जब मत कौं मत मिलै, ज्यूं जड़ टूटी आल ।
दीन्हौ पड़ि दूजै नहीं, जे बीतै बहु काल ॥१०॥

सरीरहिं सूंघै नहीं, औषदि रोगहिं जाइ ।
त्यूं आसै आसण होत है, नर देखौ निरताइ ॥११॥

ब्रह्म सुमिरतौं माया लहिये, माया खरचत राम ।
रज्जब समझ्या ग्यान मैं, भाव भेद का काम ॥१२॥

माया माहैं ब्रह्म पाइये, ब्रह्म मद्धि तैं माया ।
फलै सुमन की कामना, रज्जब भेद सु पाया ॥१३॥

सब ज्यूं माया ब्रह्म मधि, उभै आतमा पूरि ।
रज्जब दूरि जु दिल नहीं, हिरदै हित सु हुजूरि ॥१४॥

माया मिलि माया भये, ब्रह्म माहिं तैं जन्त ।
यूं जीव सीव सब सक्ति मधि, प्राण पलट्टण मन्त ॥१५॥

स्यों कौं मिलतै सक्ति मधि, सक्ति मिलति स्यो माहिं ।
आसै आसण जीवका, जुगल सु बिछुटै नाहिं ॥१६॥

भावै भूति विभूति ह्वै, भाइ भूति भगवान ।
रज्जब समझी जीव गति, आसै आसण जान ॥१७॥

हरि हरि सिद्धी होत जिव, मेला हित चित भाग ।
उभै एक संदेह बिन, रज्जब जासों राग ॥१८॥

इति बिभूति अनभूत उत, भूत भाव बिच भेद ।
रज्जब मेला आस दिसि, नीके किया न खेद ॥१९॥

ब्रह्मण्ड प्यंड बाणी बिबिधि, उदै अस्त ह्वै नास ।
रज्जब रहसी प्राणपति, भाव भेद संगि दास ॥२०॥

रज्जब अज्जब भावना, करतै दीपक राग ।
तन तिन चीर न चाखई, सो दीपग ही लाग ॥२१॥

मांगे मिलिहि न स्यो सकति, मोल न लीये जाहिं ।
रज्जब राखौ लालसा, आसण आसै माहिं ॥२२॥

जो मति सो गति होइगी, साध बेद सब साखि ।
मनसा बाचा करमना, जन रज्जब रुचि राखि ॥२३॥

सोरठा : सबद सुन्नि सब ठौर, सकति सहित सांई रहै ।
रज्जब रुचि सिरमौर, गाहन करि गाहक गहै ॥२४॥

साखी : कमठि कोड़िला आड़ि अहि, मरजीवार मुराल ।
रज्जब जल निधि दै डुबी, लेहिं जिनहिं जो ख्याल ॥२५॥

अहार ओषदी आसिरम, आवै भार अठार ।
मधु मंगिचर मेला मनहु, रज्जब रुचि व्योहार ॥२६॥

पहुप पत्र समदी सहत, ओषद फल अरु आगि ।
गूंद दूध गुटीली छाया, भाव भूख तहि लागि ॥२७॥

अपणी अपणी चूणि कौं, चौरासी चेतनि ।
रज्जब लेसे मांड मौं, जो है जाके मनि ॥२८॥

इस ब्रह्मंड बजार मैं, बहुतै बसत बणाव ।
जन रज्जब ले जीव सौं, जाकै जासौं भाव ॥२९॥

रज्जब रामति राम मैं, बहुतै भरे भंडार ।
पै आसै आसन अणसरै, तामै फेर न सार ॥३०॥

आसै आसण होइगा, जाका जहां करार ।
जन रज्जब जाणी जुगति, तामै फेर न सार ॥३१॥

रज्जब बुरी न बेद कन, औषधि अकलि मझार ।
पै रोगी राखै काम की, जासौं ह्वै उपगार ॥३२॥

मनवा निकस्या धोम ज्यूं, सांई सुन्नि समान ।
अंस अंस कन जाइगा, प्राणी पावक जान ॥३३॥

रतन रिधि निधि सिधि सु पदारथ, मुकति भगति हरि राज ।
रज्जब रुचै सु लेहु भजि, जाकै जासौं काज ॥३४॥

ब्रह्म जीव काया करम, लिये जु लच्छी माहिं ।
रज्जब रुचै सु लेइ जिव, दादै दूसण नाहिं ॥३५॥

बिबिधि भांति की बंदगी, दीसै मांड मझार ।
गाहक गौं की लेइगा, रज्जब रुचि व्योहार ॥३६॥

देव सेव बहु मांड मैं, मंडी न मेटी जाहिं ।
रज्जब रुचसी प्राण यहि, जाकै जौ मन माहिं ॥३७॥

जौ दिल मैं सौदागरी, दुनी सौ सौदा होइ ।
रज्जब बिचि व्योपार बिन, बाहरि बणिज न कोइ ॥३८॥

लक्खिण लोक असंखि कुल, घटि घटि नगर बसंत ।
उभै एक अंग मिलि रमहिं, जन रज्जब जग मंत ॥३९॥

जाति पांति सब को करै, सगौं सगाई होइ ।
त्यूं सुकृत सुकृत मिलै, कुकृत कुकृत जोइ ॥४०॥

चौपई : मैलूं मैले मिलि रस रंगा, मैले ऊजल बनै न संगा ।
कान्ह गाइ कै कनै न आवै, पसुहूं पेखि माहिली पावै ॥४१॥

साखी : बक्त्र बारि ह्वै नीकसैं, पैठैं श्रवन सु द्वार ।
रज्जब मिलियहि सगौं सों, बाकी फिरहु हजार ॥४२॥

तीरथ प्रीत सु मीन ह्वै, मूरति कीट पषाण ।
हेत हुतासन समद जिव, आसै आसन जाण ॥४३॥

बगुगा हुदहुद मोर तन, साखा सुकल सु स्वान ।
रज्जब पाई प्रान नै, मन बच क्रम जो मान ॥४४॥

बोक बक्त्र डाढ़ी बढ़ी, रीछ सु डाढ़ी रूप ।
रज्जब रट बिन रोम बल, परस न तत्त अनूप ॥४५॥

निरगुण सरगुण बीज द्वै, अवनि आतमा माहिं ।
नाव नीर सौं पुष्ट ह्वै, आसै आसण जाहिं ॥४६॥

नाद नीर बरिषा बिपुल, प्राण पहम भरपूर ।
रज्जब काढ़िह जाति के, प्रकृति प्राण अंकूर ॥४७॥

लिखे फटकड़ी फहेम सो, कागद कमल सु माहिं ।
नीर नाद सौं भीजतै, आखिर ऊघड़िह जाहिं ॥४८॥

फैम फटकड़ी सौं लिखै, काया कागद माहिं ।
रज्जब भीगै जुगति जल, आखिर देखै जाहिं ॥४९॥

रज्जब दस दिसि तरसों चले, मत मांगहु पड़ि प्रान ।
नगर नाइ आये सबै, मेला रुचि घरि जान ॥५०॥

मनिषा देही मुक्ति मुख, आसै बासा होइ ।
चौरासी बिखि बंदि सब, सरकि सकै नहिं कोइ ॥५१॥

अंतिकालि अंतरा व्योरा का अंग

किसन द्रुबासा कै सबदि, जल जमुना भइ बाट ।
यूं अंतरि अंतक समै, पुनि निरसिंग सौं ठाट ॥१॥

भाव भौमि हलचल ह्वै, काल कष्ट भवैं चाल ।
धरम धात धक्का नहीं, जन रज्जब थिर माल ॥२॥

राहु केत रबि रूप लिये, पै जल चल लई न जाइ ।
यूं अंतक बसि बप द्रसै, आतम भाव समाइ ॥३॥

रुई बिनौलैं खोसिये, ज्यूं चरखी तलि आइ ।
त्यूं प्यंड प्रान जम करि जुदे, बिचि बित लीया जाइ ॥४॥

बासे अणबासे पिलहिं, तिल तन कोल्हू काल ।
खलहल खुसी न खस बुई, तेल तुचा खुलि खाल ॥५॥

नांव नाज आवै नहीं, अंतक समये बाल ।
जन रज्जब जोख्यूं नहीं, जप कौ ठेस सुकाल ॥६॥

सदा अमावस ना रहै, सदा न राहू ग्रास ।
तैसें संकट काल मुनि, पुनि रज्जब परगास ॥७॥

महंत महोदधि माहिं थिर, चंचलता मनि तीर ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, दोइ सुभाव सरीर ॥८॥

रज्जब साधू झूमतै, आसण अधर अकास ।
तन तोयूं की लहरि मैं, तेऊ चपल अभ्यास ॥९॥

प्यंड प्रान ज्यूं हालई, बिपति बात की घात ।
महापुरिष मन मूल मत, सो अस्थिर दरसात ॥१०॥

खंड खंड प्यंडहि करै, परि प्रानहि परै नाइ ।
त्यूं बिघन समै बाणी बिकल, पै हेत हत्या नहिं जाइ ॥११॥

काल नींद काया गहै, पै मन पवन बसि नाहिं ।
यूं अंतर अंतक समै, रज्जब समझ्या माहिं ॥१२॥

सुन्नि समीर न फटि रहै, गोली गोलै गौन ।
तैसै रज्जब प्रानपति, तौ अंतकि अंतर कौन ॥१३॥

अंतकि पड़ै न अंतरा, जासौं जिव की प्रीति ।
मीन आड़ जल चोट तकि, मिलि जाणी रस रीति ॥१४॥

देही दारा दह्म ह्वै, अंतकि लागहि आगि ।
प्रान पंषि सो ना जलहि, देखि जाहिं डड़ि मागि ॥१५॥

चौपई : अंतक मनहु पाहुनी आगि, प्राण लोह सौं रहै न लागि ।
आरंभ उठै उदंगल आइ, सु रज्जब रहै नहीं ठहराइ ॥१६॥

साखी : फिरत फिरै त्यूंरी फिरी, जथा तनै तुछ सुद्धि ।
सो धर गिर देखै भ्रमति, भोला भोली बुद्धि ॥१७॥

पतिब्रता का अंग

पतिबरता कै पीव बिन, पुरिष न जनम्या कोइ ।
त्यूं रज्जब रामहिं रचे, तिनके दिल नहिं दोइ ॥१॥

आन पुरिष परसै नहीं, दोस न दे भरतार ।
तौ रज्जब रामहिं भजौ, तैंतीसौ तसकार ॥२॥

सुर नर देई देवता, सब जग देख्या जोइ ।
रज्जब नाहीं राम सा, सगा सनेही कोइ ॥३॥

नछित्र रूप निरजर सबै, पै तम न नैन नर नास ।
रज्जब रबि रमता दरस, जे न करहिं परकास ॥४॥

जथा नापिगा नीर ले, स्यंध समापति जाहिं ।
त्यूं रज्जब सरबंस वै, सौंपौ साहिब माहिं ॥५॥

रज्जब रमिता राम तजि, जाइ कहां किस ठौर ।
सकल लोक एकहि धणी, नहिं साहिब कोइ और ॥६॥

रज्जब राजी एक सूं, दूजा दिल न समाइ ।
देखौ देही एक मैं, द्वै जिव रहैं न आइ ॥७॥

एक आतमा राम एक, एकै हित चित होइ ।
दूजा दूसत क्यूं करै, दिल दीये नहिं दोइ ॥८॥

पनिग रहै पाताल मैं, अनल पंख आकास ।
त्यूं बंदे बस्तहिं लगे, दासा तन मे दास ॥९॥

दुनिया दिल दरपन मई, सरब रूप समि भाइ ।
मो मन भया मुदाज सिल, मित्र मोर दरसाइ ॥१०॥

रज्जब माया ब्रह्म मधि, ठिक पावै ह्वै ठौर ।
निहचै बिन नर हरि निकट, बैठण लहै न और ॥११॥

एक मिल्यूं सारे मिले, सब मिलि मिल्या न येक ।
ताथैं रज्जब जगत तजि, बूझौ बड़ा बमेक ॥१२॥

दोजग भिस्तहिं क्या करै, जो अल्लह के यार ।
रज्जब राजी एक सों, ता मिलि इहै करार ॥१३॥

भिस्ति न भावै आसिकौं, दीन दुनी रुचि नाहिं ।
रज्जब राते रब सूं, एक स्याम मन माहिं ॥१४॥

बैकुंठहिं बीदै नहीं, सो बिखिया क्यूं लेहि ।
रज्जब राते राम सों, औरहि उर क्यूं देहि ॥१५॥

स्यंघ न सूंघै घासि कौं, जे बहुतै होहिं उपास ।
त्यूं रज्जब दीदार बिन, कछू न चाहै दास ॥१६॥

दरस बिना जो दीजिये, सो ले मूरख दास ।
बैकुंठ सहित बसुधा मिल्यूं, रज्जब रह्या निरास ॥१७॥

रज्जब रिधि सिधि निधि सब, लह्यूं गह्या कछु नाहिं ।
जब लग आतम राम सूं, मेला नाहीं माहिं ॥१८॥

असंखि लोक रिधि सिधि सहित, जीवहुं दे जगदीस ।
रज्जब रीती राम बिन, आतम बिसवा बीस ॥१९॥

रीती रामति राम बिन, खलग सु खाली खेल ।
सुरपुर नरपुर नागपुर, कदरज क्रीड़ा केल ॥२०॥

रज्जब जहिं खड़ि जड़ घणी, सो सूकै ततकाल ।
डाभ उन्हालै मैं हरचा, एकै मूल पताल ॥२१॥

रज्जब बरषत बन हरचा, तिण तरवर गति दोइ ।
एक सूकै इक सजल अति, उभै उन्हालै जोइ ॥२२॥

अठार भार बिधि आदमी, मही सु मनसा बंधि ।
सबद सलिल जड़ जानिबा, फेरि लहै सो संधि ॥२३॥

रबि ससि गहिये गगन मैं, पंनिग गह्या पाताल ।
रज्जब रहिये सरणि कहि, जु ह्वै धूजै भ्वैंचाल ॥२४॥

ब्रह्मा बिसन महेश कै, सरनै कुसल न होइ ।
तौ रज्जब तैंतीस तजि, राखणहार सु जोइ ॥२५॥

स्यो सिर गह्या सु चंद्रमा, ब्रह्मा रहै न बेद ।
राम कृष्न रमणी गमी, रज्जब पाया भेद ॥२६॥

गोपी लूटी कृष्न की, रावण ले गया सीत ।
रज्जब रहिये सरणि तेहि, सुणि सु हुआ भैभीत ॥२७॥

सीता सील सुलाकिया, दिबदे आणी जब ।
रज्जब जाणी राम की, सकलाई तब सब ॥२८॥

स्यो सिर परि ससि संग रह्या, राह केत नै आइ ।
तौ सरणै तैंतीस मैं, रज्जब किसकै जाइ ॥२९॥

रइयति रमिता राम जी, तैंतीसहुं सिरताज ।
बास बसे बलिवंत कै, जा सिर और न राज ॥३०॥

चाकर राम रहीम कै, अबिनासी का दास ।
सुर नर सौधे सेस लग, उर न और की आस ॥३१॥

पैगम्बर सब परिहरे, मालिक सौं मोहीत ।
रज्जब फारिक तुल्लि सौं, मखसूदी रस रीत ॥३२॥

साहिब सौं पैदा हुये, साहिब सौं ना पैद ।
रज्जब तिसकी बंदगी, दूजे की क्या कैद ॥३३॥

फरद खुदा की बंदगी, सुन्नति किसकी होइ ।
रज्जब यूं हैरान है, कछु साहिब हैं दोइ ॥३४॥

कहै निमाज खुदाइ की, नवै सु मक्कै वोर ।
रज्जब यूं हैरान है, अल्ला पैठा गोर ॥३५॥

रज्जब सांई सुमिरतौं, सिधि साधिक सब हस्त ।
जैसे सलिता समंद सौं, अचई आनि अगस्त ॥३६॥

डाल पान फल फूल कै, जड़ सींचे संतोष ।
त्यूं रज्जब रामहिं भज्यूं, सुर नर धरहिं न दोस ॥३७॥

सब संतन की रासि हरि, सोइ पुंज उर धार ।
यूं रज्जब सब सेइये, गुर मुखि ज्ञान बिचार ॥३८॥
जैसी बिधि पैपान करि, घीव दही तक्र पीन ।
तैसी बिधि हरि सों मिलै, सो रज्जब सब लीन ॥३९॥
सांई मैं जो आइया, साधू दिल सु समाइ ।
ज्यूं रज्जब आषिर पढ़े, लुगमी बाची जाइ ॥४०॥
पहम पड्या पाणी पिवहिं, पंषी प्रान अनेक ।
रज्जब अंभ अकास का, सो सारंग ले येक ॥४१॥
जतन सीप सुत काग है, यूं मन राखै साध ।
सलिस सकति परसै नहीं, पूरण बुद्धि अगाध ॥४२॥
चात्रिग का पतिबरत गहि, सीर स्वाति ही माहिं ।
रज्जब सर सरिता भरे, ताकौं भावै नाहिं ॥४३॥
पाणी सौं पतिबरत गहि, मीन रहै मन लाइ ।
रज्जब खेलै बहुत बिधि, बाहर कदे न जाइ ॥४४॥
गहि पतिबरत पषान का, आगि रह्या उर लाइ ।
रज्जब जुग जनमैं भये, पै पाणी मिल्या न जाइ ॥४५॥
छाया रूपी बरत गहि, रही तु चैतनि लागि ।
रज्जब दुख सुख संगि सों, कदे न जाई भागि ॥४६॥
ज्यूं जल मीन भुजंग मणि, दोऊ पतिब्रत माहिं ।
मीन मुदित औरै जलै, सरप और मणि नाहिं ॥४७॥
रज्जब ताकहु तोरई, पहुप प्रीत परि जोइ ।
ससि सज्जन संगि जीवतैं, सूर समै सिर खोइ ॥४८॥
सूरिजबंसी कमलनी, ससि देखें कुंभिलाइ ।
त्यूं रज्जब ब्रत राम सों, दूजा दिल न समाइ ॥४९॥
सीप समंदहि पीठ दे, मुख कीना दिसि मेह ।
रज्जब बिरची बार निधि, स्वाति बूंद कै नेह ॥५०॥
रज्जब केलि सीप सारंग कै, स्वाति बूंद आधार ।
छंट छंट मैं छानि ले, धनि पतिब्रत व्योहार ॥५१॥
सीप बभीसन का बरत, बरतहु पाल्या अंक ।
तौ स्वाति मुक्त उनकौं दिये, उनहिं समरपी लंक ॥५२॥

सारंग सीप सरोज कै, पतिब्रत देखहु दीठ ।
त्यं रज्जब रहि राम सूं, ब्रह्मंड प्यंड दै पीठ ॥५३॥

रज्जब दोसत दीप का, ससि संतोष न भाण ।
जासों रत तासों रजू, लघु दीरघ नहिं जाण ॥५४॥

लघु दीरघ समुझै नहीं, प्राण प्रीति तहं जाइ ।
देखि दिवाकर कौं तजै, दीपग पतंग समाइ ॥५५॥

सुहागै सूं ना मिलै, कंचन अमिल कपूर ।
देखौं किहि ठाहर निकट, किहि ठाहर सों दूर ॥५६॥

चौपई : आषिन सिदुक निहचा निरसंध, अडग अडोल अबिहड़ दिठि बंध ।
थिक पतिब्रत अखंडित प्रीति, नाम अनंत एक रस रीति ॥५७॥

साखी : जिनि बातौं साहिब खुसी, रज्जब राजी होइ ।
पतिबरता सो जानिये, जाकै एक न दोइ ॥५८॥

तन मन की मेटै खुसी, आतम आज्ञा माहिं ।
सो रज्जब रामहि मिले, उर मैं और सु नाहिं ॥५९॥

संतति आभौ सुन्नि की, तोयं तरुन बमेक ।
त्यूं रज्जब रमि रजा मैं, अपणी दोइ न येक ॥६०॥

साधू चलै सु राम रुचि, अगम अगोचर भाइ ।
रज्जब रत सौं रत ह्वै, बिरतौं निकट न जाइ ॥६१॥

रज्जब मिलते सौं मिले, अनमिलते न मिलाइ ।
सांई साधू एक गति, नर देखौ निरताइ ॥६२॥

अणमिलतौं सौं अणमिले, मिलतौं सेती मेल ।
सू रज्जब जन की दसा, पतिबरता का खेल ॥६३॥

रज्जब एकौं एक है, अनेकौं अनेक ।
सांई सेवग एक मत, यहु पतिबरत बमेक ॥६४॥

चौपई : एक सौं एक दूजे सौं दूजा, रज्जब राम खुसी इह पूजा ॥६५॥

साखी : रोजा राखै द्वार दसि, बरत करै बसि पंच ।
जन रज्जब निज नेम यहु, लगै नहीं जम अंच ॥६६॥

बरत न छोड़ै राम कौं, बरत न भुगतै काम ।
बरत न मद मासहिं भखै, नवै न निरंजन धाम ॥६७॥

गंठजोड़ा गुर ज्ञान करि, हथलेवा हरि लेत ।
रज्जब भामणि भामणै, भांवरि भरि भरि लेत ॥६८॥

सरबंगी पतिव्रत का अंग

सूरिज देखै सकल दिसि, चलिबे कौं दिसि एक ।
त्यूं रज्जब रहि राम सूं, यहु गहि बरत बमेक ॥१॥

गिरद फिरै इक दिसि गमन, चितबि चक्र की चाल ।
त्यूं रज्जब सब दिसि समझि, पाया पंथ निराल ॥२॥

प्राण पवन सब दिसि फिरैं, गवन गगनि कौ होइ ।
जन रज्जब चखि और यहु, बिगति बिबूला जोइ ॥३॥

ढोल बोल सब दिसि परस, करी सैन दिसि सैल ।
जन रज्जब सरबंग मिलि, गही गिरा गुर गैल ॥४॥

रज्जब बुधि बूटी ब्रह्मंडि प्यंड, रमि रग रग सब अंग ।
यहु सरबंगी पतिबरत, हरि बिछोह दुख भंग ॥५॥

रज्जब निज निज नापिगा, सव दिसि फिरती जाहिं ।
बेत्वा बंक न बींदही, फिरि घिरि दरिया माहिं ॥६॥

त्रिबिधि भांति जिव रंग धरै, धनु हर देखि अकास ।
पै एकै ठाहर एक सों, अबिगति आभौं पास ॥७॥

पोसत पुहपौं बहु बरन, अमल अकारहुं येक ।
तौ भेषौं बोला न कछु, बेत्वा करौ बमेक ॥८॥

जन रज्जब बपि बहु बरन, जल चल देखौ जोइ ।
नीर नेह अरु तिरण गति, सबकी एकै होइ ॥९॥

देखौ सुरही संत जन, तिन तनि रूप अनेक ।
पुनि ये प्यार असंखि कै, रज्जब दरसै येक ॥१०॥

षट दरसन पंखै सुपरि, बहु बरनै बहु बीर ।
रज्जब अज्जब यहु मता, सुमिरण एक समीर ॥११॥

अधपति लावहिं अरगजा, सकल सुगंधौ सानि ।
त्यूं षट दरसन सौ खुसी, भेद भजन की मानि ॥१२॥

छप्पन भोग न संपजै, बिना छत्रपति थाल ।
त्यूं षट दरसन खलक सब, भावहिं भावति भाल ॥१३॥

सोइ चक्कवै निरपती, ज्ञान चक्र हृद हाथ ।
सात्रहु सब दिसि गमि गवन, सरबंगी सब नाथ ॥१४॥

पतिबरता परमारथी, जो नरु तरु समि रूप ।
सबकौं सुख दे सबद फलि, सदा सु दृढ़ भौ भूप ॥१५॥

आतम बेलि सुरति जड़, ब्रह्म भूमि रस लेइ ।
सकल तत्त बेलैं बधै, सोभ रसन भल देइ ॥१६॥

बिभचार का अंग

बिभिचारी जिव बंध बिन, घट मैं नहीं बमेक ।
जन रज्जब पति छांड़ि करि, धक्के खाहिं अनेक ॥१॥

जैसैं कीला कीच का, खैंच्या दह दिसि जाइ ।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलै, इहिं बिभिचारी भाइ ॥२॥

मकरी चकरी तार परि, अह निसि आवै जाहिं ।
मन मनसा ऐसे फिरहिं, तैसे पति पतिआहिं ॥३॥

नैनहु बैन श्रवण करि, जे कतहूं चलि जाइ ।
तौ रज्जब नारी नाह बिन, मार सरोतर खाइ ॥४॥

निहचा छांड़ै नांव का, आन धरम उर धार ।
सीप स्वाति मधि स्यंध जल, मन मुकता ह्वै ख्वार ॥५॥

मुखि मानै मन मै अमन, दिल दुबिधा नहिं जाइ ।
रज्जब सीझै कौन बिध, इह बिभिचारी भाइ ॥६॥

रज्जब रही न मीत बिन, पीहरि अरु ससुराड़ि ।
सो सु कली मानै नहीं, बचन बड़हुं की बाड़ि ॥७॥

सोरठा : नारी पुरष न नेह, दुख दुहाग निस दिन भरै ।
रज्जब कौन सनेह, सती भई सठ भाव ले ॥८॥

साखी : तनि पतिबरता मनि मुखी, लखै न पिव प्रसताव ।
रज्जब रूठे से रहैं, उभै सु सारी आव ॥९॥

रस का अंग

रज्जब रमि रमि राम सौं, पीवै प्रेम अघाइ ।
रसिया रस मैं ह्वै रह्यो, सो सुख कह्या न जाइ ॥१॥

निरमल पीवै राम रस, पल पल पोषै प्रान ।
जन रज्जब छाक्या रहै, साधू संत सुजान ॥२॥

परमपुरिष मैं पैठि करि, पीवै प्रान पियूष ।
रसिया रस मै ह्वै रह्या, अरु रस ही की भूष ॥३॥

रसना लागी राम रस, हिली मिली ता माहिं ।
जन रज्जब सो स्वाद सौं, कबहूं बिहड़ै नाहिं ॥४॥

अबिगति अलख अनन्त रस, पीवै प्रान प्रबीन ।
जन रज्जब रस मै हुआ, निकसि न होई भीन ॥५॥

हरि दरिया मैं मीन मन, पीवै पेम अगाध ।
महा मगन रस मैं रहै, जन रज्जब सो साध ॥६॥

रज्जब रहै न देह मैं, मगन मुदित ह्वै जाहि ।
लूंण गूणि ज्यूं नीर मैं, तामै क्या ठहराहि ॥७॥

अमल अमोलिक नांव का, साध सदा पीवंत ।
मसत बसत मैं ह्वै रह्या, जुगि जुगि सो जीवंत ॥८॥

रज्जब अज्जब नांव रस, पाया गुर परसाद ।
पोष्या प्राण पियूष समि, छूटा बाद बिबाद ॥९॥

रज्जब दुनिया हद्द मैं, साधू जन बेहद् ।
जाति पांति देखै नहीं, पीया हरि रस मद् ॥१०॥

गुन औषदि मिसरी सु मन, सेवा सलिल मिलाइ ।
रज्जब प्याले प्रीति भरि, आतम राम पिलाइ ॥११॥

मत मिसरी जिव जलि घुली, प्रान पियूष समानि ।
अमरत पीर्वाहि आतमा, कोई ल्यो तहां आनि ॥१२॥

काया कूंडा भरि लिया, भावै भंग समान ।
कुरतक कुंदन ज्ञान की, रज्जब रस रुचि प्रान ॥१३॥

प्रेम का अंग

नौलछि नछित्र नौधा भगति, रज्जब रजनी माहिं ।
प्रेम प्रभाकर ऊगतैं, दिष्टि सु दीसै नाहिं ॥१॥

बिबिधि बंदधी बप सु बिधि, प्रेम प्रान की ठौर ।
जन रज्जब तिस जीव बिन, सब गुन मिरतग और ॥२॥

नवौखंडि नौधा भगति, दसवीं दसवैं द्वार ।
पेम लच्छिनै प्रभू जी, तिलक दिया संसार ॥३॥

रज्जब पावक पेम है, कंचन आतम राम ।
गालि मिलावै दुहुन कौ, पेम करै ये काम ॥४॥

पेम प्रीति हित नेह के, रज्जब दुविधा नाहिं ।
सेवग स्वामी एक ह्वै, आये इस घर माहिं ॥५॥

पेम प्रीति हित नेह की, रज्जब उलटी बाट ।
सेवग कौ स्वामी करहिं, स्वामी सेवग ठाट ॥६॥

चौपई : अमलवेत सु औषधि पेम, मो मनसार सुई सत नेम ।
पैठै माहिं सु जाहिं बिलाइ, गुण है गात नहीं निरताइ ॥७॥

साखी : दाष बंदगी सब भली, बेदाना है पेम ।
रज्जब देख्या बीज बिन, जैसे वोला हेम ॥८॥

प्यार प्रीति हित नेह मुहबति, पंच नाम एक पेम ।
उभै अंग एकठे करहिं, मनसा बाचा नेम ॥९॥

सूरातन का अंग

सांई सींति न पाइये, बातौं मिल्या न कोइ ।
रज्जब सौदा राम सूं, सिर बिन कदे न होइ ॥१॥

जब लगि सिर डारै नहीं, तजै न तन की आस ।
तब लगि राम न पाइये, जन रज्जब सुणि दास ॥२॥

सोरठा : जन रज्जब रज रेख, राहै सो रिण में रहै ।
जुध करता जग देख, सुजस साख सारे कहैं ॥३॥

साखी : जे साधू रण में रहै, खंड खंड करि गात ।
सो रज्जब रामहिं मिलै, सुर नर आये जात ॥४॥

साहिब सनमुख पांव दे, ता समि कोई नाहिं ।
जन रज्जब जगपति मिले, सिर साटै जग माहिं ॥५॥

जैसे सूरा सीस ले, कोटचूं माहै जाइ ।
त्यूं रज्जब हरि नांव मैं, सिर दे सूर समाइ ॥६॥

महा सूर सुमिरण करै, सिर की आस उतारि ।
जन रज्जब ता संत कौं, परतषि मिलै मुरारि ॥७॥

हरि मारग मस्तग धरै, कोइ एक पूरा दास ।
सो रज्जब रामहिं मिलै, कदे न जाइ निरास ॥८॥

सति स्यंधोरा हाथ लै, काटचा मोह अमराइ ।
जन रज्जब पिव कौ मिलौ, देखौ देह जराइ ॥९॥

जेहि रचना मैं सीस दै, सोई काम अडोल ।
जन रज्जब जुगि जुगि रहै, सूर सती संत बोल ॥१०॥

साध सराहै सो सती, जती जो जुवतिवं जान ।
रज्जब साधू सूर का, बैरी करै बखान ॥११॥

माया काया जाति लग, धरम न छांड़हि धीर ।
रज्जब सूरे साहसी, बेत्वा बावन बीर ॥१२॥

हरि के मारग चलन का, जे कछु है चित चाव ।
तौ रज्जब त्यागौ जगत, दै तन मन सिरि पांव ॥१३॥

ज्ञान खड्ग तैंतीस हति, होइ चक्कवै प्रान ।
जन रज्जब नौखंड परि, बाजै तबल निसान ॥१४॥

निरति नाल दारू दरद, गोला बाइक ज्ञान ।
दुमति कपाटर करम गढ़, जन रज्जब यूं भान ॥१५॥

साधू लड़ै कमंद ह्वै, पहलैं सीस उतारि ।
जन रज्जब मारै मुवा, करै मार ही मारि ॥१६॥

लड़ै पड़ै बहुत्यूं चढ़ै, सूर करै संग्राम ।
जन रज्जब जोधार जिव, महा अड़ीले ठाम ॥१७॥

दिनप्रति कैसौं काढ़िये, बैठि रहै सो नाहिं ।
रज्जब सांचा सूरमा, यहु लच्छिन जा माहिं ॥१८॥

सरीर सफर तबका किया, जब गाजी असवार ।
सो रज्जब कैसे फिरै, खिलखाने वेजार ॥१९॥

प्यंड प्रान सम कलप करि, सूर चढ़ै संग्राम ।
जन रज्जब जग कौं तजै, गृह दारा धन धाम ॥२०॥

सती सरोतरि राम कहि, मारण उरै मरि जाइ ।
जन रज्जब जग देखतूं, ज्वाला माहिं समाइ ॥२१॥

साहिब सनमुख पांव दे, पीछा पलक न देष ।
रज्जब मुड़तौं मारिये, मीयहु लाजै भेष ॥२२॥

घरि आंगण बाजार मैं, बांका सब कोइ होइ ।
रज्जब रण मैं बांकुड़ा, सो जन बिरला कोइ ।।२३।।

अति गति सूधा देखिये, सूर सहर कै माहिं ।
काम पड्यूं ह्वै केसरी, रण मैं मावै नाहिं ।।२४।।

सीधू सुर सरवनौ सुनत, सूर सनाह न माइ ।
रज्जब भागै जतन सब, ह्वै गया औरहि भाइ ।।२५।।

अरिल : राम री आणछै राम मेल्हू नहीं, वले बीजौ का सूं कहीजै ।
रज्जब रामनौ छाणिनै वेगलौं, कहौ नैवले कै काल जीजै ।।२६।।

साखी : सेवग सूरा स्यंध मनि, बिरच्यूं करै बिहंड ।
जन रज्जब डरपै नहीं, पड़तौं आपण प्यंड ।।२७।।

मरिबे मांझी ऊतरया, पूरा पाइक होइ ।
रज्जब रावत क्यूं टलै, आड़ा आवौ कोइ ।।२८।।

सुभट सूर जेती तजै, तेती बहुड़ि न लेइ ।
जन रज्जब पूरा पुरिष, पाछा पग क्यूं देइ ।।२९।।

आसंघ बिन न कमाल परि, सूरा खैंचै नाक ।
जन रज्जब जब आसंघै, तब छिन छिन होइ निसाक ।।३०।।

रोटी पोवत कर जलै, तब सुन्दरि फूंकै हाथ ।
जन रज्जब जब आसंघै, तब भरै सले सौं बाथ ।।३१।।

ज्ञान खड्ग तलि सीस दै, ब्रह्म अगनि मैं संत ।
लरिबा जरिबा आव भरि, कौन गहै यहु मंत ।।३२।।

सूर सती साहस सुलप, निबडि जाहिं पल माहिं ।
साधू जुद्ध सु आव भरि, भारत छूटै नाहिं ।।३३।।

सूर सती संग्राम इक पल, साध लड़ै भरि आव ।
रज्जब मन मनमथ सिरि, घालै निस दिन घाव ।।३४।।

संग्राम सदा मन जीव कौ, अहनिसि होइ अखंड ।
रज्जब जाणै जोध जन, पूरा प्राण प्रचंड ।।३५।।

जगत जुद्ध जरिबा सुगम, पल मै प्यंड प्रहार ।
पै जोग संग्रामर ब्रह्म अगनि सति, रज्जब अगम अपार ।।३६।।

सब सूरूं सिरि सूरिमा, जो जीतै गुण जोध ।
जन रज्जब जूझार सो, ता का ऊतिम बोध ।।३७।।

बहुत सूर बहु भांति के, जोध बड़े जग माहिं ।
जो रज्जब मारै मदन, ता समि कोई नाहिं ॥३८॥

मन यंद्री जिन बस करी, मारचा मदन भुवंग ।
सो रज्जब सहजै मिलै, परमपुरिष कै संग ॥३९॥

माहै मारै गुणहुं को, बाहरि जग सूं जुद्ध ।
जन रज्जब सो सूरिवां, रोपि रहा कुल सुद्ध ॥४०॥

बहु बिधि मारै बहुत गुण, तोड़ै तीन्यूं साल ।
जन रज्जब सो अमर ह्वै, जीत्या अपना काल ॥४१॥

पंच अपूठे फेरि करि, घरि आणे सो सूर ।
साहिब सौं सांचा भया, रहसी सदा हजूर ॥४२॥

पंचौ इंद्री निरदली, तिनि खाया संसार ।
जन रज्जब सो सूरिवां, प्राण उधारनहार ॥४३॥

पंच पचीसौ त्रिगुण मन, मैवासा भरपूरि ।
ये अरि दल जोई दलै, सो प्राणी सति सूरि ॥४४॥

रुप्यो बिना रिपु क्यूं टलै, सूर सत्य करि जोइ ।
रज्जब जोधा जीतणा, हांसी खेल न होइ ॥४५॥

सूरा ह्वै संग्राम चढ़ि, अरि इंद्री अड़ि मारि ।
जन रज्जब जुध जीतिये, ज्ञान खड्ग कर धारि ॥४६॥

ज्ञान खड्ग जब कर धरै, तब अरि मरै अज्ञान ।
जन रज्जब संसार सौं, यूं पग मांडै प्रान ॥४७॥

सतगुर के सांचे सबद, ज्ञान खड्ग कर साहि ।
रज्जब रहै सनाह क्यूं, पेम प्राण दे बाहि ॥४८॥

भेष पेख भावै नहीं, भरम भुजागल भान ।
रज्जब रनि भागै नहीं, मरद मंडे मैदान ॥४९॥

रज्जब मरद मंडे मैदान मैं, सिर की आस उतारि ।
अंगि उघाड़ै अगम गति, बाना बखतर डारि ॥५०॥

टीका साधू सूर का, साच बाच मुख घाव ।
चरचा चोट चतुर दिसा, आगे भाव सु पाव ॥५१॥

जेर सूर संग्राम सिरि, साहिब सों दै पीठ ।
तौ रज्जब सरबस गया, पीछैं भला अदीठ ॥५२॥

रज्जब सती समाइ सलि, जीवहि ले भाजै ।
तौ हासा तिहुं लोक मैं, दोऊ कुल लाजै ॥५३॥

सूर डिगै संग्राम सिरि, सती चलै सल छांड़ि ।
तौ भट चारण बिरद तजि, तबै उठै तन भाड़ि ॥५४॥

कायर को भरमाइये, बहुरि लड़ै सो नाहिं ।
रज्जब बिचलैं देखता, किरका नाहीं माहिं ॥५५॥

सूर सती अरु संत कै, मरणै मंगल माड़ि ।
रज्जब सरमुख मोड़तौं, भूत भगत करै भाड़ि ॥५६॥

रज्जब काइर सूर नै, प्रगट गुप्त की खोड़ि ।
एकैं करि करि हाहड़ै, दूजै मुच्छ मरोड़ि ॥५७॥

सूर बिना संसार सौं, बिरच्या कदे न जाइ ।
रज्जब काइर कोटि मिलि, बाहर धरे न पाइ ॥५८॥

सबद सुरति पंचौ मिल्यूं, रज्जब कटै बिकार ।
जथा जेवड़ी कूप सिल, बिहरै बारूंबार ॥५९॥

जे मन पवन मिलि लीन ह्वै, तौ प्राण पिसण परहार ।
ज्यूं कणिजा रेतहि मिल्यूं, रज्जब काटै सार ॥६०॥

सोरठा : रे रज्जब हरि संगि, हारि जीति दून्यूं भली ।
तोतै खेलि अघाइ, बरि उछाह आणदी रली ॥६१॥

साखी : धीरज धरना कठिन है, बिषम दुहेली बार ।
रज्जब रिण मैं रुप रहै, सब आसंधि मरि मार ॥६२॥

सिकार का अंग

चेतनि चीता हाथ ले, मूठी मन परि डारि ।
रज्जब सैल सिकारि करि, मन मिरगा तकि मारि ॥१॥

पंच पचीसौ मारिये, मन मनसा पुनि मार ।
रज्जब बप बनखंड मैं, खेलहु सैल सिकार ॥२॥

सबद परीक्षा का अंग

एक सबद माया मई, एक ब्रह्म उनहार ।
रज्जब उभै पिछाणि उर, करहु बैन व्योहार ॥१॥

कौड़ी लाल सबद है, सौंघे महंगे बोल ।
मधि मनि गन समि बैन बहु, पावहिं बित्त सु मोल ॥२॥

मुख मंदिर टकसाल मैं, नाणै सबद सुजान ।
दमड़ी खुड़ दे मुहर लौं, बिकसे बित उनमान ॥३॥

कौड़ी तांबा रूपा कंचन, नग नाणै नग लाल ।
त्यूं रज्जब बाइक बिबिध, फेर मोल अरु माल ॥४॥

प्यंड प्राण पहमी पबै, तहां सपत इक खानि ।
रज्जब कंचन लोह लगि, सबद सुबित्तहिं जानि ॥५॥

एक सबद राजेन्द्र मैं, एक परजा उनहार ।
बैनौ मैं व्योरा बहुत, परखै परखनहार ॥६॥

रज्जब काया कुम्भ कौं, परखै प्रान प्रवीन ।
सारे का सारा सबद, फूटा बाणी हीन ॥७॥

बेत्वा बीज समान है, बाणी बोध प्रकास ।
रज्जब बोल बिगास तौं, श्रवन नैन तम नास ॥८॥

यंद्र गाज बोली बड़ी, बाणी बीज बसेख ।
एकहि तिमर न दूरि ह्वै, एकहि सब कछु देख ॥९॥

जगति जाण जीवण जुगति, बेत्वा बीज समान ।
जन रज्जब चमकहिं उभै, बल पौरिष न समान ॥१०॥

अरिल : दामिनि दमक दिसावरि दीसै, जैंगन चमक सु ग्वाड़ी ।
तैसै बाणी बदहि सु बंदे, जैसी जिने मैं बाड़ी ॥११॥

साखी : चिड़ी चील कूंजी कुरल, समि न होहिं सुर जोख ।
एक नेड़ै एक नगर मैं, एक सत जोजन सुत कोख ॥१२॥

ग्वाड़ी गमि सींगी सबद, संख सबद अति सोर ।
अधिक अत्ति कर नाल का, त्यूं कबि काव्यूं फोर ॥१३॥

आतम आभा जल सबदि, निकसै निरमल नीर ।
पिरथी पड्या पिछानिये, रज्जब रज सौं सीर ॥१४॥

पंच तत्त परस्या सबद, पिरथी पड्या सु नीर ।
रज्जब तबही जाणिये, सघण स्वाद सो सीर ॥१५॥

बहते रहते सबद का, रज्जब इहै बिचार ।
बहता बोलै गुणउ मैं, रहता निरगुण सार ॥१६॥

रज्जब साह दिवालिये, आध कहै मुखि येक ।
पै उनकै बस्त सु पाइये, उनकै बात अनेक ॥१७॥

बचन बराबरि के कहै, तौ भी धीज न कोइ ।
रज्जब रथहु सु भारभिन, खोज एक सा होइ ॥१८॥

बादल बाइक जल अरथ, बरिषा सुन्नि मन माहिं ।
रज्जब गरद गुमान रज, उभै ठौर छुपि जाहिं ॥१९॥

रज्जब सबद समीर समि, बोध बारि निज जानि ।
तहां बैन बाई चलैं, उठै न गरद गुमानि ॥२०॥

दोष न उपजै किसी कै, सुमत सबद निरदोष ।
बकता कै बंधन खुलैं, अरु सुरता होइ मोष ॥२१॥

काया केलि सुकतिह मुकत, सबद स्वाति जल पोष ।
मुर मानौ यूं ऊपजैं, तहां दखल नहिं दोष ॥२२॥

गवन गावनै बात बल, बिषै बाइ की आंधी ।
रज्जब रज तज काढ़तौं, मारुत की गति लांधी ॥२३॥

ज्ञान परीक्षा का अंग

सांचे झूठे ज्ञान का, पाया पारिख माग ।
रज्जब राग अनंत है, परि दीवा दीपग जाग ॥१॥

रज्जब पनिंग पतंग नर, पंख ज्ञान परगास ।
एक सु रिधि दीपक पतन, एक स्त्रक सांई पास ॥२॥

रज्जब रसना कर गहै, ज्ञान खड्ग षट खान ।
प्रान पईसा ले उठैं, सो कोइ औरै पान ॥३॥

जो मत काढ़ै मांड सौं, ले राखै हरि थान ।
रज्जब बिचि उलझै नहीं, सोई उत्तम ज्ञान ॥४॥

रज्जब रिधि रज मैं पड़ैं, हंस अंस सुत सार ।
सो मत चंबक नीकसै, ज्ञान गराब सुधार ॥५॥

सपत धात का ज्ञान तजि, अगम अष्टवां लेह ।
रज्जब राखै राम मैं, तोड़ै त्रिगुण सनेह ॥६॥

जन रज्जब उर अष्टवां, बोध बस्या मन माहिं ।
सपत धातु के ज्ञान कौं, करण कबूलै नाहिं ॥७॥

पनिंग पतंग पपीलका, तीन्यू पंख प्रकास ।
इक सृक सीतल कौ मिलै, एक भये तन नास ॥८॥

बाइक बादल ज्यूं उठहि, सपति रंग सिरि पाल ।
रज्जब परखै पारख्यूं, मस्तग मोटे भाल ॥९॥

सिष्टि दिष्टि आवै नहीं, परम ज्ञान परगास ।
ज्यूं रज्जब रबि के उदै, तम तारे गुन नास ॥१०॥

निरमल ज्ञान उदै भये, नर नारी हित नाहिं ।
रज्जब रत रंकार सौं, मिलै न माया माहिं ॥११॥

ज्ञान गुमानहि काढ़ि दे, काम क्रोध का काल ।
रज्जब काटै सकल गुण, आतम करै निसाल ॥१२॥

रज्जब गंगा ज्ञान की, क्रम रेती नरुकाइ ।
पाप पहाड़ौ फोड़ती, हरि समुंद कौं जाइ ॥१३॥

ज्ञान बाइ संग उड़ि गये, करम कपूर अपार ।
रज्जब जिव हलुका भया, उतरचा अमित सु भार ॥१४॥

सक्ति सलिल आकास तैं, आया केल मैं आइ ।
बस्त एक गुन तीन ह्वै, कथा कपूर कहाइ ॥१५॥

चौपई : मुख फानूस रसन है बाती, बहनी बैन जोत तहि राती ।
काजर कपट उजासु बिचार, चतुर भात दीपक व्यवहार ॥१६॥

प्राण परीक्षा का अंग

ज्यूं आभौं आदीत की, करी मंद गति जोति ।
त्यूं रज्जब आतम भई, मिलि माया कै गोति ॥१॥

जो प्रानी माया मिले, सो माया का रूप ।
रज्जब राता राम सों, सो नित तत्त अनूप ॥२॥

ईख अफीमहि दोइ गुन, प्राणी एकै आथि ।
रज्जब गुण गति ह्वै गया, मिलि तोयं तिनि साथि ॥३॥

मन चंचल माया मिले, निहिचल लागे नाइं ।
जन रज्जब पाया परखि, देख्या दून्यूं ठाइं ॥४॥

माया अगनि समंद हरि, आतम बूंद बिचार ।
रज्जब रिधि पड़तौं पचन, हरि संगि आव अपार ॥५॥

मन मैला मंदिर सुतनि, तब लग है अपराध ।
आतम अस्थलि आवतैं, निरमल सुरति सु साध ॥६॥

रज्जब बसुधा बिष बिड़ौ, अबिगति ईख समान ।
देखौ गुण गति होत है, जिव जल जा मधि सान ॥७॥

आदि पुरष आदीत सौं, जिव जल आवै जोइ ।
रज्जब पैठै बपु बनी, स्वाद सीर समि होइ ॥८॥

तिमर उज्याला सुन्नि मैं, जैसे निस दिन होइ ।
त्यूं आतमा अचेत चेतना, रज्जब देखौ जोइ ॥९॥

पंच तत्त सौं मिसरत माया, छाणै ब्रह्म समान ।
ओंकार जिव आतमा, बंध मुकत गति जान ॥१०॥

देख्या सुण्या सु बीज है, मनसा मही मंझार ।
रज्जब ऊगै नींद जल, फूलै फलै अपार ॥११॥

स्यंगीर सुण्या जागै मदन, सुन्दरि आवै चीत ।
रज्जब सूंतूं दिन पड़ै, पीछै ह्वै बिपरीत ॥१२॥

रज्जब मन फूलै फलै, सुणि सुणि सरगुण बात ।
निरगुण सुणतौ झड़ि पड़ै, डाल फूल फल पात ॥१३॥

जहि घटि सरगुण बीज ह्वै, तहि निरगुण न सुहाइ ।
रज्जब बरष्यूं बन बधै, जोइ जवासा जाइ ॥१४॥

चौपई : धरे अधर ह्वै बातैं ठाणी, जिन ज्यूं सुणी सो बैठि बखाणी ।
रज्जब पसू भषैगा जोइ, देखौ बैठि उगालै सोइ ॥१५॥

साखी : सतगुर सबद सु नीबुआ, प्राण पटी तरिवारि ।
जन रज्जब कसि लीजिये, अंगहु अंग बिचारि ॥१६॥

रज्जब आभे अकलि के, बैन बूंद बुधिवंत ।
अंकूर उदै आतम अवनि, परिषर पोषै संत ॥१७॥

सांच माहि सतजुगि बसै, कलिजुगि कपट मंझारि ।
मनसा बाचा करमना, रज्जब कही विचारि ॥१८॥

जब लग भूख न नाव की, तब लग रोगी जानि ।
जन रज्जब या जीव की, यहु पारिख पहिचानि ॥१९॥

ज्यूं जहमति मैं जीव को, जल दल रुचै सु नाहिं ।
त्यूं रज्जब रोगी जुदा, सतसंगति रुचि नाहिं ॥२०॥

नर नाराइन नाउं मैं, सुमिरन समये सास ।
भूलैं भूति बिभूति मैं, रज्जब किया बिमास ॥२१॥

किती बार माया मुकत, नर हरि नांव समाइ ।
रज्जब छूटै लैलकसि, लच्छी मैं ह्वै जाइ ॥२२॥

रज्जब जाप जिकरि करै, तिती बार जिव जाग ।
सुमिरण भूलै सांस जिह, तब सूता पल लाग ॥२३॥

नांव बिसारण नींद निज, जप जागण जगदीस ।
मन बच क्रम रज्जब कहैं, खैंचत बेद हदीस ॥२४॥

रज्जब रैणी आव लग, सुमिरण लागै सास ।
नींद न भूला नांव हरि, जो जाग्या निज दास ॥२५॥

नांव बिसारे नींद है, गृह बैराग सुहाणि ।
रज्जब रटै सु रैण दिन, सोई जाग्या जाणि ॥२६॥

सब सूते सुमिरण बिन, जागे की कहै बात ।
रज्जब घोरै रैन मैं, कै सुपिनै बरड़ात ॥२७॥

साधहि संकट ना दिया, परख्या पूरा प्रान ।
ज्यूं ताव तौल सूलाकन लागा, खरा रुपैया जान ॥२८॥

गुपत गोपि जीव प्रगट परीक्षा का अंग

बारि बूंद मधि बिभौ धरि, नख सख रोमर छेद ।
नुकस न लहिये नीर मैं, प्यंड पूरण श्रब भेद ॥१॥

चौपई : अंड मनोरथ बात बिहंग, नारि निपूंसिक निरखि नर अंग ।
जैसे बीती मूठि न मही, गोपि न जानी परगट सही ॥२॥

साखी : उडग आतमहु कौन पिछानै, जैसे षान सुरति सनेह ।
रज्जब प्रगटचूं पिरथी जाणै, तम दुरै ते बेह ॥३॥

परा जु प्राणहु सौ परै, परसपसंती होइ ।
बीचि बिचारै मद्धिमा, बोलि बैखरी सोइ ॥४॥

मत परगास परीक्षा का अंग

दसौं द्वार दस सिर सुमत, एक बात सब ठौर ।
जिव की उपजी जीभ मैं, बकतर बदै न और ॥१॥

उर उपज्यूं अहरय़ू उदै, समझौ साथी सेस ।
यूंही माया ब्रह्म रत, सो कृत केसहिं केस ॥२॥

पंचतार जंतरि चढ़ैं, सोलह सिर मिरदंग ।
सुरमंडल सुर बहुत हैं, बाजत एकहिं अंग ॥३॥

सुरमंडल सु सरीर है, सब रग तार सु साज ।
रज्जब राग सु एक ह्वै, जो जाणै सु निवाज ॥४॥

पगर पाणि पल्लव चलहिं, जीव जिभ्या एक राग ।
रज्जब निरखहु निरति मैं, नृतिकारी का माग ॥५॥

अपारिख का अंग

परख बिहूणा परहरै, परम पदारथ मन ।
जन रज्जब रीते रहै, त्यागि अमोलिक धन ॥१॥

बिन पारिख आघै नहीं, कंचन कांच समानि ।
रज्जब रोटी कौर तन, लखै सु लाभ न हानि ॥२॥

महंगी सौं सौंघी करी, सौंघी महंगी होइ ।
रज्जब रोस न कीजिये, पारख नाहीं कोइ ॥३॥

जे नग नाख्या मूरिखौं, तौ कछु घटचा न मोलि ।
तैसैं रज्जब साध गति, कहा खुसै जग बोलि ॥४॥

थापै उथपैं परख बिन, खोटा खरा सुनाहिं ।
जन रज्जब ऐसै बणिज, हाणि हुई घर माहिं ॥५॥

खोटा खरा न जाणिये, पारख नाहीं माहिं ।
ज्यूं सुपिनै संपति बिपति, उभै सत्य सो नाहिं ॥६॥

क्या कहणा सुणि कीर लियै, भोलैं भूलि सुभाष ।
रज्जब बूड़े परख बिन, देखौ देखत लाष ॥७॥

प्राण पवन ह्वै परख बिन, करै अनीत अनंत ।
रज्जब दुख दे सकल कौं, बिर्णै न संत असंत ॥८॥

मूरख हरण्या हंस हति, परकीरति हती न जाइ ।
त्यूं रज्जब साधू सुजस, रह्या सकल जग छाइ ॥९॥

कनक थाल हनि सैल सुत, कीजै कहा बखान ।
मिसरि न उतरचा मोल तन, चढचा न अरघि पषान ॥१०॥

परख बिना प्राणी दुखी, ज्यूं अंधा बिन नैन ।
रज्जब धक्के दसौं दिसि, पगि पगि नाहीं चैन ॥११॥

ज्यूं गोरख गोदावरी, पुरषौं परख्या नांहि ।
जन रज्जब जाणे बिना, कोण हुई उन मांहि ॥१२॥

तन मन सुर गुर गोव्यंदा, पायूं पायै नांहि ।
रज्जब जिव न्यारा निकट, पारिख नाहीं मांहि ॥१३॥

कौड़ी कौड़ै बहुत न पावै, जे मुहरूमैं बैठी ।
मुहर न उतरी मोल सों, जे कौड़्यूं माहै पैठी ॥१४॥

जाचंध न जानै रंग को, कोटि भांति समझाइ ।
काला पीला ऊजला, उनि देख्या नहिं आइ ॥१५॥

रज्जब जाणै रंग की, जु देखि हुआ ह्वै अंध ।
पै सो बूझै क्या बरण की, जो जनम्या जाचंध ॥१६॥

पहप पगौं तलि दाबिये, माथै महंदी मेल ।
रज्जब यहु गति जीव की, बिन पारख का खेल ॥१७॥

तरु हरि हरु नर सीस परि, पहप बिराजै दास ।
सो कैसे पग चांपिये, रज्जब परम सुबास ॥१८॥

जलचर जाणै जलचरा, सिस देख्या जल मांहि ।
तैसे रज्जब साध गति, मूरख समझै नांहि ॥१९॥

प्रतिव्यंब प्यंड सूरिज परि साधू, सलिल सकति कै मांहि ।
रज्जब बंधै सु जाल जलचर, त्यूं गहिये ते नांहि ॥२०॥

नर पंषी पंषी कहै, साधू सूरिज जोइ ।
तौ रज्जब तिस भाण मैं, पंखी की गति कोइ ॥२१॥

साध सबद प्रतिव्यंब समि, सूनौ सुन्नि न सूझ ।
अकलि अकास अभ्यासहीं, कैब बारि जहं बूझ ॥२२॥

परख किना पाषाण कौं, पूजै पामर प्रान ।
रज्जब खोटा माहि सौ, सो उर अंध अजान ॥२३॥

दिष्टि बिना गोबिंद दस, परख बिना पति कोड़ि ।
बिन जाणे जारहि भजै, रज्जब मोटी खोड़ि ॥२४॥

अज्ञान कसौटी का अंग

अति गति आतुर देखिये, नांव बिमुख बहु दौर ।
रज्जब भरम्या चाक ज्यूं, अंत वोर की ठौर ।।१।।

रज्जब दौरै नांव बिन, चल्यूं चल्या सो नांहि ।
मनसा बाचा करमना, रह्या भुवन गति मांहि ।।२।।

नांव निरंजन छांड़ि कर, गहै कसौटी रूप ।
जन रज्जब अहनिस चलै, अंति रहट बिचि कूप ।।३।।

बहुतै चलैं बिचारि बिन, ज्यूं घाणी का बैल ।
जन रज्जब चारचूं पहरि, कटी कोस नहिं गैल ।।४।।

कोट कष्ट केवल सुजल, नांव सुधा रस नीर ।
हंस अंस ले खीर का, समझि करहु सो सीर ।।५।।

अज्ञान कष्ट सब सक्ति मैं, स्यो सेवा हरि नांव ।
ज्यूं भृत भामनि राजघरि, सुत संपति द्वै ठांव ।।६।।

कूकस कष्ट अज्ञान अनि, नांव नाज कण ऐन ।
रज्जब भोजन भजन बिन, तुसहुं सु तृपति न चैन ।।७।।

अज्ञान कष्ट खोजे मिले, आतम अब्रलहि आइ ।
पै रज्जब भजन भरतार बिन, हरि सुत जण्या न जाइ ।।८।।

षट करनी साधन करम, क्रम गलिता नहिं होइ ।
रज्जब सहज समाधि बिन, सीझ्या सुण्या न कोइ ।।९।।

हठि अज्ञान न हरि मिलै, ज्ञान गलि तजै नांहि ।
रज्जब कही बिचारि करि, समझे समझौ मांहि ।।१०।।

गुर गोव्यंदर गऊ लग, नाइ अराधे जाहिं ।
रज्जब साधन संकटै, सो न मिलै महि मांहि ।।११।।

समंद न सलितौ पूछई, सीप स्वाति दिसि जात ।
त्यूं सरीर नाड़चूं निकस, सुमिरन सुरति करात ।।१२।।

पसू प्यंड सूई सुरति, चरि गया चेले संगि ।
चंबक नांव सरीर श्रवन धरि, फोड़ि सु निकस्या अंगि ।।१३।।

बसुधा बमई बाड़ितैं, व्यालहि काढ़ै नाद ।
त्यूं तन तैं सुमिरन निकसि, और झूठ बकवाद ।।१४।।

अज्ञान कष्ट सूने सदन, नहिं नरहरि निरताइ ।
नांव धाम बसता सदा, सुमरचूं करै सहाइ ॥१५॥

सांई पैठा सांकड़ै, सुमरचूं करी सहाय ।
रज्जब रत रंकार यूं, बिगहु न बंधी बाय ॥१६॥

रज्जब भेरा नांव का, नरहु निबंध्या मूलि ।
ताबिन करहि सु और कछु, भूंदू पढ़े सु भूलि ॥१७॥

बीरज ब्रह्म बिचार है, जोग जुगति प्रतिपाल ।
रज्जब थिर चंचल पवन, नांव नीर बिन काल ॥१८॥

तन मारे मन ना मुवा, देखौ भूत मसाणि ।
अज्ञान कष्ट आतम सु यूं, जन रज्जब पहिचाणि ॥१९॥

भूषौं मारि भुअंग तन, लिया अनिल आहार ।
रज्जब जोगी इह जुगति, बध्या सु बिष अहंकार ॥२०॥

अरिल : अज्ञान कष्ट कसि देह न मन कौ मारिहै,
ज्यूं संकट मधि सरप बिषहिं अधिकारि है ।
तैसै सठ हठ देखि न कबहूं कीजिये,
रज्जब परखौ पान प्रचंड न धीजिये ॥२१॥

साखी : ग्यारसि रोजे बरत बंध, कणि कणि तिनका काल ।
सो रज्जब क्यूं करहिंगे, प्राणहुं की प्रतिपाल ॥२२॥

जंतर तार तत पंच तनि, रचि जंतृक सुर भौन ।
रज्जब तंत उतार करि, राग बजावै कौन ॥२३॥

बाइ बिना बोहित थकित, त्यूं सुमिरन बिन सांस ।
रज्जब रचना राम की, समझि बमेकी दास ॥२४॥

पवन प्यंड पोरस गया, गिरड़ी चाटे बीर ।
चाकी चून न पीसिये, रज्जब रोके नीर ॥२५॥

जल दल निगलै पवन सों, बाहरि काढ़ै पौन ।
तौ रज्जब पैंडा पौन का, प्रानी बंधै कौन ॥२६॥

चौपई : गोरख ज्ञान अनंत अपार, मारुत बिन क्यूं करहि बिचार ।
प्राण प्रमोधै बाई तौड़ि, निरखि नरेस निनाणवै कौड़ि ॥२७॥

साखी : मोटी बाई बंधिये, जथा मसक मैं पौन ।
गुनहगार छूटे फिरैं, कारिज सरै सु कौन ॥२८॥

बाई बंधहि बेगुनहि, उलटि करै बिकटंग ।
गुनहगार छूटे फिरैं, यूं लागै जम डंग ॥२९॥

रज्जब अबिगति नाथ कौ, मिलै न बाई बंध ।
आंटा पड़ै त मीच ह्वै, कै कुष्टी ह्वै अंध ॥३०॥

पौन साध प्राणी उड़हिं, तौ पंषी परि पेखि ।
बाई बंद बिहंग कौं, व्योम न मिल्या अलेखि ॥३१॥

करी पवन की साधना, नट भांडहु भरपूरि ।
रज्जब रीते राम बिन, बस्त रही सो दूरि ॥३२॥

रज्जब अज्जब नांव तजि, साधैं सुकल सु सांस ।
परम तत्त पावैं नहीं, प्राणी जाइ निरास ॥३३॥

साध न पूजै साधना, साध कहै समझाइ ।
जनि रज्जब निज नांव बिन, नर निरफल सो जाइ ॥३४॥

रज्जब पौन मौन कै साधिवै, मूसे की सींगोर ।
सास सबद संकट पड़े, नहीं ज्ञान की कोर ॥३५॥

चंद सूर पाणी पवन, धरती अरु आकास ।
रज्जब अस्थिर देखिये, कहु किन साध्या सांस ॥३६॥

सुमिरण जाकी सुरति मैं, सो साधन सूवै नाहिं ।
परम तत्त मन मैं बस्वा, पंचहि न पंचौ माहिं ॥३७॥

सुकल सास कै बंध तैं, सुरति बंधी ता माहिं ।
ज्यूं रज्जब जल हेम करि, सीत सु न्यारा नाहिं ॥३८॥

जीव जवारे की अणी, बस्त बूंद वप येक ।
सुरति तिणैं नहिं दोइ सिर, रज्जब समझ बमेक ॥३९॥

अनल अंड वोले उडग, अरक यंद त्यूं मन्न ।
रज्जब रहै सु ज्ञान गुर, अनिल न अटकहि जन्न ॥४०॥

रज्जब ओंकार कै आसिरे, तन मन पंचौ तत्त ।
काचे पाके सबद मैं, आदि अंति यहु मत्त ॥४१॥

रज्जब प्रथम पंच का पेड़ है, ओंकार सो आदि ।
अजौ सु सीझै सुर सबद, पौन साधिये बादि ॥४२॥

सकल पसारा सबद का, रहै सबद ही माहिं ।
जन रज्जब इस पेच बिन, तन मन बंधन नाहिं ॥४३॥

ओंकार आतम सबद, कथा नीति निरबरति ।
रज्जब पंचौ पीठि दे, पहुंत जीव परबरति ॥४४॥

रज्जब अटकै पंच मैं, सो परबरती ज्ञान ।
निरवरती न्यारा करै, ले जाइ सुन्नि अस्थान ॥४५॥

बप बाई बस जीव कै, आये न अब ये जाहिं ।
तौ रज्जब तजि भजन कौ, उलझि न साधन माहिं ॥४६॥

बप बाई बल जीव कै, बंधे न खुलसी मूल ।
तौ रज्जब हिति आव कैं, साधन करैं सु भूल ॥४७॥

आज्ञा बसि बाई बहै, ब्रह्मंड प्यंड के पौन ।
रज्जब राखै राम जब, तब सु चलावै कौन ॥४८॥

सुन्नि रूप जिव मैं जुट्या, पवन रूप गुरदेव ।
यहु गोपि गांठि दे खोलिबा, भूत न जानै भेव ॥४९॥

रज्जब मारुत रोकिबा, अब परपंच उपाइ ।
बाबा खोलै बाइ बप, तब सु न बंधी जाइ ॥५०॥

नाद न छोड़ै नाभि कौं, व्यंद सकल बप माहिं ।
कौन चढ़ावै कहां कौ, मु रज्जब समझै नाहिं ॥५१॥

नाद व्यंद नख सख भरया, ज्यूं काष्ठ मैं आगि ।
कौन चढ़ावै कहां कौ, सोध्या सीसर पागि ॥५२॥

मदन बीज मस्तग रहै, कहै न ठाहर और ।
तौ रज्जब सुत अंग पै, त्यूं निपजै सब ठौर ॥५३॥

बीरज बींबा चित्र का, अरभख अंबर भांति ।
रज्जब उनमैं नकस है, प्रगटै सोई कांति ॥५४॥

किस नाड़ी मैं बस्त है, किस नाड़ी मैं नांहि ।
रोम रोम मैं रमि रह्या, रज्जब नख सख मांहि ॥५५॥

सुरमंडल सु सरीर यहु, रज्जब रग सब तार ।
उभै राग मैं एक ह्वै, माया ब्रह्म बिचार ॥५६॥

काया तरवर नीम का, जिव जल जुगति सु माहिं ।
रज्जब रग डाल्यूं फरच्यूं, निरमल मीठे नाहिं ॥५७॥

बप बसुधा बनराइ ते, आतम अंभ निकास ।
रज्जब सुमिरण सूर सौं, स्वाद रूप बिन नास ॥५८॥

सरवर सूं सूकै कमल, उलझि न भौंरा मन्न ।
साधन परै बताइया, नांव निरंतर धन्न ॥५९॥

नाड़ी चक्र सु प्यंड मैं, प्राण मध्य नहिं सोधि ।
रज्जब जाणा जिव परै, यहु गति उत्तिम बोधि ॥६०॥

दार देह मैं चक्र रग, पावकि प्राण सु नाहिं ।
रज्जब रहति न ऊपरै, साधू सुरति सु जाहिं ॥६१॥

चक्रहु चित अटकै नहीं, बोड़ि सहित षट स्थान ।
रज्जब रज हो जायंगे, मन उनमन लै सान ॥६२॥

आंख्यूं अंजन बाहिया, सतगुर सोधि बिचार ।
भरम न भ्यासै साधना, सूझ्या नांव अधार ॥६३॥

धोखै धुनि मुनि छांड़ि करि, सोधै नाड़ी चक्र ।
रज्जब भूलै नांव निधि, टलतौं खाई टक्र ॥६४॥

चक्र भंवर जिव जल पड़हि, देही सलिता थान ।
रज्जब उभै न भ्यासही, पैठै भजनि सुभान ॥६५॥

काया कोठे कवल रग, चक्र सोध मन मान ।
रज्जब रहसी क्यूं तहां, जहां नये अस्थान ॥६६॥

नाड़ी चक्र न सास मन, ब्रह्मंड प्यंड नहीं ठौर ।
जन रज्जब जुगि जुगि रहै, सो ठाहर कोइ और ॥६७॥

चौपई : अहनिसि मन उनमन मैं राखी, नाड़ी चक्र साथि सुनि नाखी ।
साध बेद सुमिरन कहै सारा, रज्जब रटै सु उतरै पारा ॥६८॥

साखी : साधन सूनी साधना, आतम ह्वै अन आस ।
जन रज्जब ता जीव कै, नाइ नहीं बेसास ॥६९॥

निहचा नाहीं नांव परि, जे कष्ट आदरहि और ।
सूना साधन मैं परचा, लहै न ठावी ठौर ॥७०॥

देही देसौ मैं पड्या, करम कुलषण काल ।
नांव नाज नर घर नहीं, प्राणहु की प्रतिपाल ॥७१॥

कपट कसौटी ठग विद्या, आपै भरी उपाधि ।
कायर सूरा सूम ठग, भ्रमि भ्रमि काया साधि ॥७२॥

ज्ञान कसौटी कोटि बिधि, काया कसहिं अनेक ।
रज्जब निपजै साध मन, सोइ समझै कोइ येक ॥७३॥

कष्टि करामति पाइये, संकटि उपजै सिद्धि ।
तप तैं राजा होत है, नरक जाण की विद्धि ॥७४॥

रज्जब सठ हट छाणि दे, करि न कामना कष्ट ।
न्याव नीति मघ पाव दै, नष्ट मती तजि नष्ट ॥७५॥

हठि करि मांगै हरि कनै, दादा दुष्टहि देइ ।
पै स्वाद न उपजै बाद परि, क्या लीये में लेइ ॥७६॥

सेवा निरफल का अंग

सकति सलिल बहु बिधि खरचि, सांई सूर सु लेहि ।
नाइ अरथ औरै लगै, सो पलटा नहिं देहि ॥१॥

सपत बार अठ सठ सहित, पूजि परब देई देव ।
सब पूजा प्रभु को चढ़ै, सेवग निरफल सेव ॥२॥

रज्जब भाव न भोमि सौं, पै धन धरती खाइ ।
यूं अनहित थिति लेंहिं प्रभु, जिव जड़ निरफल जाइ ॥३॥

जड़ पातरू परोसिये, देखौ चेतन खाइ ।
त्यूं बासन ब्रह्मंड कै, बाबा लेइ उठाइ ॥४॥

भाव अभाव गराही गोबिन्द, आगै मुरबिधि छान ।
समझि भोल भूल हरि भ्यासै, दादा देत्यूं दान ॥५॥

रज्जब सनमुख बिमुख की, सकति सिष्ट धरि लेइ ।
बिलोकि वभीषण रावणहिं, देखौ क्या क्या देइ ॥६॥

नीर पड़हिं नौखंड पर, जाहिं सु सूर समंद ।
सरगुण सेव निरगुण मिलहिं, अइया मुहकम बंद ॥७॥

सब दिसि सीस नवाइये, मस्तक माटी मेल ।
त्यूं धोक धरे की अधरहि लागैं, रज्जब अज्जब खेल ॥८॥

तुपक तीर दह दिसि चलहिं, परहि सु पिरथी जाइ ।
त्यूं रज्जब ध्यावहु धरे, पूजा अधर समाइ ॥९॥

रज्जब भाव बिना भगवंत मैं, चौरासी लख जंत ।
सरबस ले सब सों जुदा, अलग सलग सु अनंत ॥१०॥

रज्जब कोई ना करै, धोम व्योम कै भाइ ।
पै अगनि तेज आकास कौं, सहज आपही जाइ ॥११॥

भरम सिद्धान्त का अंग

अहरि बौड़ि आकार कै, भोजन भजन अहार ।
पुष्टि पीति पगि पति लगै, तामै फेर न सार ॥१॥

रज्जब लगै पनिग पति, नख सख पीड़ा प्रान ।
तौ सुमिरण की सांइया, समझे क्यूं न सुजान ॥२॥

आतम कमल कमोदनी, ससि सूरिज करतार ।
बिच बादलौं सु ना बधै, प्रीति पीतमहु पार ॥३॥

सप्त खंड मधि सुन्नि एक, त्यूं ब्रह्मंड इकीस ।
खंडौ खंड सुन्नि के, रज्जब बिसवा बीस ॥४॥

जब लग जिव देखै नहीं, चेतनि ब्रह्म बदन ।
तौ रज्जब क्या कीजिये, सूने सुन्नि सदन ॥५॥

तली हथेली केस घर, सूने सदन अपार ।
बिलोकि बाल देखैं सु किन, त्यूं बहु सुन्नि बिचार ॥६॥

रज्जब करना कुंज कौ, अलग सलग भये अंड ।
तौ संत सुरति सांई बिना, अटकैं किस ब्रह्मंड ॥७॥

सुनि सरीर न सुरति मैं, पंच तत्त सौं पीठि ।
लोकहु अवलोकै नहीं, परम तत्त पर दीठि ॥८॥

उपदेस चेतावणी का अंग

रज्जब कीजै बंदगी, जेती जिव सौं होइ ।
सो साहिब सौंपी नहीं, तासौं बल नहिं कोइ ॥१॥

मनिषा देही दिन उदै, जन रज्जब भजि तात ।
चौरासी लख जीव की, देही दीरघ रात ॥२॥

बित ऊपर बीती पड़ी, नर नारायण देहि ।
जन रज्जब जगदीस भजि, जनम सुफल करि लेहि ॥३॥

रे प्राणी पासा पड्या, मनिषा देही माहिं ।
जन रज्जब जगदीस भजि, यहु औसर भी नाहिं ॥४॥

आदम सेती औलिया, नर नाराइन होइ ।
मुकति द्वार मनिषा जनम, रज्जब बादि न खोइ ॥५॥

हरि सुमिरन की ठौर यहु, मनिषा देही माहिं ।
सो ठाहर सौंपी तुझैं, रज्जब समझै नाहिं ॥६॥

इंद्री दमि सुमिरण करै, यहु सम दम सुध माग ।
जन रज्जब जो जिव चलै, ताके मोटे भाग ॥७॥

चौपई : सरीर सु सांचा मैण मति, ब्रह्म अगनि औटावहु धत्ति ।
जारहु गारौ गाभा ग्यान, मूरति उपजे पद निरबान ॥८॥

साखी : दया न दीसै दृष्टि मैं, देह दया का मूल ।
रज्जब सुमिरण सारिखा, अजब बण्या अस्थूल ॥९॥

सकल भजन की ठौर है, मनिषा देही माहिं ।
रज्जब जीव जाणै नहीं, कहै दया कछु नाहिं ॥१०॥

मनिषा देही मौंजदी, सत जत सुमिरण काज ।
रज्जब मारिन माजरै, सौंज दई सिरताज ॥११॥

चौरासी सौं काढ़ि करि, जब दी मनिषा देह ।
राम कछू राख्या नहीं, रज्जब समझि सनेह ॥१२॥

देणा था सौं सब दिया, जब दी मनिषा देह ।
सब सुकृती की सौंज यहु, हरि सुमिरण करि लेह ॥१३॥

सत जत सुमिरण कौ दई, मनिषा देही जाणि ।
जन रज्जब जग जोनि बहु, परि इनतिहुं थोंकौं हाणि ॥१४॥

रज्जब नर हरि मिलण कौं, मनिषा देही ठौर ।
चौरासी तन चाहि त्यूं, ऐसी मिलै न और ॥१५॥

सांई अपणी सौंज कौं, कीया आदम ठाट ।
रज्जब जिव जाणै नहीं, भूला निपट निराट ॥१६॥

इक नेकी अरु नांव कौं, नर नाराइन कीन ।
सो हरि हित समझै नहीं, तौ रज्जब मति हीन ॥१७॥

जन रज्जब जगि आइ जिय, लहि आदिम औलादि ।
सत जत सुमिरण भूलतौं, जनम गमाया बादि ॥१८॥

मनिषा देही अलभि धन, जामैं भजन भंडार ।
सो सुदृष्टि समझै नहीं, माणस मुग्ध गंवार ॥१९॥

येक अलिफ कौं यहु किया, आदम का औजूद ।
रज्जब समुझौ यहु सुखन, मालिक है मौजूद ॥२०॥

रज्जब इस औजूद मैं, सैर सुगल है सौख ।
सब सूरति सुबिहांन की, तहां नहीं यहु जौख ॥२१॥

रज्जब इस औजूद मैं, इस्क अलम मासूर ।
आसिक सौं असनाव है, फासिक सौं सब दूर ॥२२॥

रज्जब रीता तू नहीं, गुर गोव्यंद सु माहिं ।
अंखै अभै भंडार कौं, काहे बिलसै नाहिं ॥२३॥

मनिष देह माया बरम्ह, जे कोइ लेइ कमाइ ।
यहु देख्या उपदेस यहु, आगे कह्या न जाइ ॥२४॥

बिरचै बसुधा बह्नि तै, मुकति मद्धि परबेस ।
यहु दष्या दूतर तिरण, यहु उत्तिम उपदेस ॥२५॥

तन धन ल्याया जनम तैं, मरत गया सो खोइ ।
सुकृत माल न मधि किया, जो आगै कूं होइ ॥२६॥

प्राण पाणि पूंजी सु प्यंड, मूलि सु मनिषा देहि ।
रज्जब सौदा राम सौं, इह औसर करि लेहि ॥२७॥

आदम देह अलभ्य धन, पाई पूरब भागि ।
तौ रज्जब भगवंत भजि, हरि सुमिरण लै लागि ॥२८॥

रज्जब रतनहु सो भरी, मानहु मनिषा देह ।
रे नर निरधन होइगा, चौरासी के गेह ॥२९॥

चौपई : मनिषा जनम राम बिन हारा, मानहु पारस पीसि पहम परि डारा ।
सेवा सोना तिनहुं न होइ, या समि हाणि नहीं कलि कोइ ॥३०॥

हीरालाल मिनष तन देहा, पिसण पीस करि डारै खेहा ।
वह माटी नाहीं वहि मोला, रज्जब चेतन देखै भोला ॥३१॥

कामधेनु कलपतर जाना, मनिषा देही नाहिं समाना ।
सब स्याबति सबही सब पावै, रज्जब बिनसे सौं न लखावै ॥३२॥

साखी : पारस पोरस कलपतर, कामौधैन कहात ।
मनिष देह माधौ मिलति, सु महिमा कही न जात ॥३३॥

मनिष देह माया मई, धरचा अधर बिच धन्न ।
इह छूटयूं छूटै उभै, समझे समझै जन्न ॥३४॥

काया कागद पर लिखे, ब्रह्म बिलाइत माहिं ।
रज्जब प्यंड पटै पडयूं, दरसि दिसावर नाहिं ॥३५॥

हाणि न मनिषा देह समि, जब जिव कन सौं जाइ ।
भजन बिमुख भंजन मिलहिं, चौरासी निरताइ ॥३६॥

दलिद्र दिवाला जिव अनंत, मनिषा देही जात ।
चौरासी जामण मरण, चहु दिसि चोटै खात ॥३७॥

रज्जब अज्जब साज यहु, अज्जब सेती लाइ ।
मनिष देह यहु मौज महानिधि, नर देखौ निरताइ ॥३८॥

तन मन ज्वाबर जीव की, सकति न सकता कोइ ।
जिसकी तिसकों दीजिये, तौ पल्ला स्यावति होइ ॥३९॥

मनिष देह मेहरी तज्या, काइर जिव निरताइ ।
साम काम आया नहीं, दून मिलौ तोहिं आइ ॥४०॥

रज्जब तजि ब्रह्मण्ड कौ, प्यंडहि दीजै पीठि ।
मन मनसा सौं काढ़ि करि, आगे धरिये दीठि ॥४१॥

रज्जब छांड़हु स्वाद सुख, तन की यारी त्यागि ।
मनहि मनोरथ मेटि करि, परमपुरिष सौं लागि ॥४२॥

रज्जब बिरचहु रूप रंग, रचहु न बप्प सरीर ।
मन की मेटहु कामना, पहुंचौ पैली तीर ॥४३॥

रज्जब त्यागहु त्रिगुण यूं, तिहूं ठौर सौं सोधि ।
माया काया कलपना, निकसै प्राण प्रमोधि ॥४४॥

तन तै त्यागहु त्रिगुनता, मनहु मनोरथ मेटि ।
रज्जब जिव ब्रत छांड़ि करि, परमपुरिष कौं भेटि ॥४५॥

ब्रह्मण्ड प्यण्ड मन मांडतैं, कठिण सुरति बे खम्म ।
आतम परै अलाह है, मेलि तहां नहीं जम्म ॥४६॥

ब्रह्मण्ड प्यण्ड उलझै नहीं, रहै न सूषिम देस ।
रज्जब नर निरगुण भया, निरगुण मैं परबेस ॥४७॥

जब निज बपि बाई दई, तब रिधि रसनहि मीठ ।
जन रज्जब मन क्रम बचन, प्राणी परतषि दीठ ॥४८॥

पड़दे बिचि पड़दा करै, तिसहि न पड़दा कोइ ।
जन रज्जब जगदीस का, दरसण देखै सोइ ॥४९॥

हरि सिद्धी हरना करै, सोइ प्राण परसिधि ।
रज्जब मुकता नीपजै, जे सीप रहति जलनिधि ॥५०॥

ब्रह्मण्ड प्यण्ड टलि नीकसै, मन इंद्री तजि जाइ ।
तौ रज्जब ता जीव कौ, आगे मिलै खुदाइ ॥५१॥

प्यण्ड प्राण आगे धरैं, भाव सु पाव अगम ।
रज्जब सुरति समाइ सुख, जहां न जौंरा जम ॥५२॥

ब्रह्मण्ड प्यण्ड प्राणी तजहु, अगम अगोचर खेल ।
रज्जब पैठैं सुन्नि घर, सुरति सु सांई मेल ॥५३॥

बप सौं बिकृत होत हीं, तब त्यागे ब्रह्मण्ड ।
रज्जब इसहि उलंघते, लाघी माया मण्ड ॥५४॥

तन त्यागे परकिरति तजि, मनहु मनोरथ मेटि ।
रज्जब जीवन जीव बुधि, आगै अबिगति भेटि ॥५५॥

तन मन आतम सौं अगम, सेवा सुरति सु जाइ ।
भगति बंदगी करि तहीं, सुख मैं रहै समाइ ॥५६॥

संसार सरीर सुषिम तजौं, चौथे त्यागे जीव ।
चतुर थान तजि आगे रमई, सुरति सु पावै पीव ॥५७॥

तन मन इंद्रचू उग्र है, आतम आगे जाइ ।
जन रज्जब सोई सुरति, सुख मैं रहै समाइ ॥५८॥

मिलै नहीं मंडाण सौं, तन मन न्यारा होइ ।
जन रज्जब इस पेच कौं, बूझै बिरला कोइ ॥५९॥

ब्रह्मण्ड प्यण्ड न्यारा रहै, पंच तत्त सौं पीठि ।
रज्जब पाया पंथ प्राण नैं, परम तत्त परि दीठि ॥६०॥

रज्जब हस्ती मन चढ़ौ, चलौ ब्रह्म दरबार ।
मुजरै ढील न कीजिये, समया समझि बिचार ॥६१॥

रज्जब दिल के तखत सौं, और उतारौ आन ।
मनसा बाचा करमना, ज्यों बैठै दीवान ॥६२॥

एक न पावै एक बिन, तू ह्वै रहा अनेक ।
जग त्याग्यू जगपति मिलै, रज्जब समझि बमेक ॥६३॥

अनेकौं एकै कही, बेत्वा बारंबार ।
रज्जब चाहै लच्छि बर, तौ लच्छी तसकार ॥६४॥

एकहिं मिले सु एक ह्वै, तू मिलि सातहु सात ।
अजौ पंच द्वै छाणि दै, ज्यूं रस आवै बात ॥६५॥

ब्रह्म ब्रह्मण्डौ दोष दे, बंदौ सों करै राग ।
यहु तन तजै न तिन कुटी, ता आतम बड़ भाग ॥६६॥

निकसै काया काठ सौं, बंदे बादल होइ ।
रज्जब पाया तौ तिनहु, सुन्नि सुधा रस सोइ ॥६७॥

रज्जब रचिये राम सौं, तौ तजिये संसार ।
देखौ तरु फल ना लहै, बिना भये पतझार ॥६८॥

जगत जिमी जनकन उदै, उनमैं इनकी बोधि ।
जन रज्जब सीझण समै, कुलि काढ़िये सु सोधि ॥६९॥

रज्जब तन मन माड़ि कै, तजि कुसंग भजि राम ।
यहु दष्या उपदेस यहु, सरै सु आतम काम ॥७०॥

रज्जब अज्जब यहु मता, तजि बिषया भजि राम ।
यहु दष्या उपदेस यहु, सरै सु आतम काम ॥७१॥

रज्जब निरबिषि सुरति करि, सांई सनमुख राखि ।
सीझण में संसा नहीं, सतगुर साधू साखि ॥७२॥

अंब अवनि आकास तैं, निकस्यूं करै सु काल ।
यूं आतम अस्थूल नीकसी, सब प्राणिहुं प्रतिपाल ॥७३॥

ये दून्यं तत माहिं मरहिं जब, रज्जब परतषि काल ।
आतम अनुतन तिनके निकसै, तबहीं होइ सुकाल ॥७४॥

सरीर सैल अरु समंद तलि, जीव धात नग अंग ।
काढ़ि कैद करि धनपती, नहीं त दालिद संग ॥७५॥

व्योम बिच्च अहरनि असम, आतम अगनि अधार ।
रज्जब पंचनि प्रगटै पावक, तबही ह्वै उजियार ॥७६॥

घट घड़ियाल झालरि मुरगे, संख सबद सहनाइ ।
षट बाजे षट दरसनहुं, पति परभात बताइ ॥७७॥

पैड़ी पंच तीनि परि पैड़ी, सपतै अष्ट सिवाण ।
रज्जब चढ़ै सु कोटि मैं, ऊंचा अगम दिवाण ॥७८॥

जन रज्जब पंचौ धजा, चढ़ै सुमेर सिरि बंधि ।
सिध साधक देखै सबै, कोई साधू आया रंधि ॥७९॥

तन मन ऊपरि अमल करि, बैरी पंचम जाइ ।
रज्जब सकति सुमेर सिरि, नांव निसान बजाइ ॥८०॥

रज्जब संत गुर सैल तैं, सबद सिला आवंत ।
मन समुंद सिरि पाज करि, रोस राव नहिं हंत ॥८१॥

सबद सिला रंकार जटि, मन समुंद सिरि पाज ।
रज्जब रावन रोस हति, काया कंचनि राज ॥८२॥

आतम रथ है राम कौ, आतम का रथ देह ।
ये रथ देखहु सागड़ी, परम सयानप येह ॥८३॥

जैसी संतति सकति सौं, तैसी स्यो सौं होइ ।
तौ रज्जब रामहि मिलै, कदे न दीसहि दोइ ॥८४॥

जैसें मन माया मिलै, जीव ब्रह्म यूं मेल ।
रज्जब बहुरि न पाइये, यहु औसर यौं खेल ॥८५॥

रज्जब मनर मनोरथौं, मेला अचल अमंग ।
ऐसे आतम राम हित, सदा सु सांई संग ॥८६॥

रज्जब आभे अंभ का, देखौ सुन्नि सनेह ।
ऐसे आतम राम सौं, सिष्या देख्या येह ॥८७॥

ज्यूं जल दल सौं जीव का, अति गति स्यंत्राचार ।
त्यूं रज्जब करि राम सौं, सिरै सीष निज सार ॥८८॥

ज्यूं कामी कामणि भजै, त्यूं नहिं कामी राम ।
मनबंछत फल नीपजै, जन रज्जब इह धाम ॥८९॥

मन पवन ससि सूर कौं, राहु केत ह्वै लाग ।
रज्जब पकड़ न पेच यहु, सुणि लै सीष सभाग ॥९०॥

रज्जब राहुर केत ह्वै, रबि राकेसहिं लाग ।
आतम उडग सु उग्रहै, मस्तगि आया भाग ॥९१॥

रज्जब चलिये राह उस, जेहि पथ पहूंचै साध ।
निज मत मघ उठि गवनि करि, जे है बुद्धि अगाध ॥९२॥

रज्जब रीझ्या ठौर कहि, जहां जगत की मीच ।
चेति चिमकि चालहि नहीं, बैंठि रहा क्यूं नीच ॥९३॥

मरणा मुह आगै खड़ा, बूढ़े कौं तब सेख ।
अब तोसौं कहु क्या कहैं, रे आंधा कछु देख ॥९४॥

काया कुंभ जल सौं भरचा, ज्ञान तेल भरपूरि ।
मारुत बाती सबद उज्याला, अचेत तिमिर ह्वै दूरि ॥९५॥

दसौ दिसा मन फेर करि, जहां उठै तहां राखि ।
जन रज्जब जगपति मिलै, सतगुर साधू साखि ॥९६॥

जहि जाइगै सौ मन उदै, तहां असत करि बंधि ।
रज्जब रहिये राम सौं, मन उनमनि लै संधि ॥९७॥

जैसे छाया कूप की, फिरि घरि निकसै नाहिं ।
जन रज्जब यूं राखिये, मन मनसा हरि माहिं ॥९८॥

रज्जब सब सुणि सीखिया, जे मन राख्या ठौर ।
मन बच क्रम सीख्या सही, जे उर उठै न और ॥९९॥

मनसा चकमक चिनग ज्यूं, उठत बुझाये सुख ।
जन रज्जब प्रगटचूं छिपै, बहुत दिखावै दुख ॥१००॥

पावक यहि प्रचंड है, बैरी बन बप माहिं ।
सो रज्जब सूते भले, जागे कुसल सु नाहिं ॥१०१॥

सुमिरन करै सबहि मन, तनहि न सरकण देहि ।
रज्जब अज्जब काम यहु, जनम सुफल करि लेहि ॥१०२॥

चौपई : श्रवन नैन नासिक कर पाइ, पंच दूण मत एक समाइ ।
मिलि चलणै का होइ सनेह, तौ इहै सीख इनहू कन लेइ ॥१०३॥

साखी : अन्धौ कन उपदेस ले, पंषि पीब कै आव ।
रज्जब डग मग सोधि करि, पीछे धरै सु पाव ॥१०४॥

साध सबूरी स्वान की, लीजै करि सु बमेक ।
वह घरि बैठा एक कै, तू घरि घरि फिरहि अनेक ॥१०५॥

स्वान सबूरी अति भली, आतम घरि अखत्यार ।
मनिषा तजि मालिक महेल, मांगै मुलिक अपार ॥१०६॥

रज्जब अहि अहरचूं उभै, देखौ दे उपदेस ।
सो मति गति गहि करि करौ, गुर ग्रह सिष परवेस ॥१०७॥

चौपई : देख्या मुह मुहड़े की लार, रज्जब दुमुही सरप बिचार ।
त्यूं सतगुर सत एक सरीर, पै चेतनि जड़ि व्योरा बहु बीर ॥१०८॥

बैत : मुरीद मुरदा पीरग साल । गुफ्तम बुजुरग अजब मिसाल ॥१०९॥

साखी : रज्जब काढ़ौ सून्य सत, पीवै प्राण प्रबीन ।
इह औषदि आरोग ह्वै, नख सख रोम सुभीन ॥११०॥

श्रवनौ बानी रसन रटि, नैनौ निज अंग सोध ।
नास बास हरि पद कवल, रज्जब निज परमोध ॥१११॥

चौपई : साबुन सुमिरण जल सत संग, सुकल कृत करि निरमल अंग ।
रज्जब रज उतरै इह रूप, आतम अंबर होइ अनूप ॥११२॥

साखी : अघ सागर अनीत अंभ मैं, आतम अंबर मीन ।
सो सुकाइ सबिता सुमिरण सौं, पाणी पाप सु छीन ॥११३॥

प्राण प्यंड तत पंच का, मन मनसा मल धोइ ।
नांव नीर जल ज्ञान कै, गृह सब पावन होइ ॥११४॥

पहलै तन करि बंदगी, पीछै मन गहि मूल ।
रज्जब रांचौ राम सूं, जैसे सूरिजफूल ॥११५॥

सपत समंदौं जो तिरै, सो तेरू संसार ।
रज्जब अज्जब काम यहु, प्राण पुरिस ह्वै पार ॥११६॥

रज्जब कौ अज्जब कह्या, मेरे नाइ सु लागि ।
सबल पसारा झूठ है, मन बच क्रम तजि भागि ॥११७॥

रज्जब अज्जब यहु मता, सब तजि भजिये राम ।
मनसा बाचा करमना, इह काया यहु काम ॥११८॥

रज्जब रसना राम कहि, राखि निरंतर नाद ।
औसाण लगावहु सांइयहिं, छांड़ि देहु बकवाद ॥११९॥

रज्जब अज्जब यहु मता, तजि बिषया भजि राम ।
सिध साधक संसार मैं, सब सीझे यहि काम ॥१२०॥

रज्जब रटिये रैन दिन, राम नाम इक तार ।
फिर पीछे पछिताहुगे, यहु औसर यहु बार ॥१२१॥

रज्जब अज्जब काम है, सिर सांई कौ देहु ।
मनिषा जनम सु मौज निज, बहुरि न औसर येहु ॥१२२॥

इहि औसर औसाण यहु, सत जत सुमिरण होइ ।
सो रज्जब जुगि जुगि सुखी, ता समि और न कोइ ॥१२३॥

अब कै जीते जीति है, अब कै हारे हार ।
तौ रज्जब रामै भजौ, अलप आव दिन चार ॥१२४॥

अलप आव बहु बिघन बिचि, अति गति अहमक मन्न ।
रज्जब अज्जब समै मैं, करै न सुकृत धन्न ॥१२५॥

आदम कै सिर करि धरचा, अबगति करणा यादि ।
इस काया यहु काम जी, नहीं त निरफल बादि ॥१२६॥

रज्जब खेवहु रैन दिन, कीजै तौबह त्राहि ।
राम बिसारण रोग कौं, ओषदि येही आहि ॥१२७॥

राम बिसारण रोग जिव, ओषदि करणा यादि ।
रज्जब बैद बताइ दी, देषिर दीज्यो दादि ॥१२८॥

खुदरति देखि खुदाय की, खालिक कीये यादि ।
सांस सबद लागै अरथ, जनम न जाई बादि ॥१२९॥

रज्जब अज्जब अकलि यहु, साहिब कीजै यादि ।
सो साइबहिं बिसारतौं, बिबिध बुद्धि सो बादि ॥१३०॥

माया तजि ब्रह्महिं भजै, येते कौ सब ज्ञान ।
रज्जब मूरिख चतुर ह्वै, मन उनमन लै सान ॥१३१॥

मन बच क्रम तिरसुद्ध ह्वै, माया तजि भजि राम ।
जन रज्जब संसार मैं, येता ही है काम ॥१३२॥

रज्जब भजिये राम कौ, तजिये कामर क्रोध ।
निरमल कौं निरमल मिलै, यों ही निज परमोध ॥१३३॥

ओषदि अबगति नांव ले, पछ परिहरै बिकार ।
रज्जब रोगी इहि जुगति, काटै रोग अपार ॥१३४॥

रज्जब भजिये राम कौ, तजिये यहु संसार ।
ऐसी बिधि कारिज सरै, भेटै सिरजनहार ॥१३५॥

चित चेतनि ह्वै देखि मन, मनिषा जनम न हार ।
जन रज्जब जगदीस भजि, उलटा अनल बिचार ॥१३६॥

कपट करहु सौं डार दे, नेकी निरमल साहि ।
रज्जब दुबिधा दूर करि, हाथ हरी कौ बाहि ॥१३७॥

भांति भांति का गरब तजि, गुरमुख होइ गरीब ।
रज्जब पावै पीर कौं, निरमल नेक न सीब ॥१३८॥

तन त्रिभुवन मन मैं भरचा, सो काढ़ै सब छाणि ।
रज्जब राखै राम तहं, काम किया तहि प्राणि ॥१३९॥

भजणै कौ भगवंत है, तजणै कौ परताति ।
करणै कौ उपगार कछु, इहि औसर इहि गाति ॥१४०॥

मनिषा देही माया सहत, पाई पूरन भागि ।
तौ रज्जब गुर साध की, सेवा दृढ़ करि लागि ॥१४१॥

सेवा कन सेवा सकति, घरि आई गुर साध ।
समये सुकृत लेहु करि, जे है बुद्धि अगाध ॥१४२॥

रज्जब दोसत जीव की, सांई सतगुर साध ।
इहै सीख सुणि सेइ सो, जे है बुद्धि अगाध ॥१४३॥

हरि भजतौं तजतौं बिषै, करतौ साधू सेव ।
रज्जब इह रह चाल तौ, मानिष सौं होइ देव ॥१४४॥

गुर गोव्यंदर साध की, होह चरन रज रैन ।
मन बच क्रम कारिज सरै, सुनि रज्जब निज बैन ॥१४५॥

रज्जब रज हो संत की, जा मुख निकसै राम ।
साधू सेती मिल रही, तो सरसे सब काम ॥१४६॥

रज्जब रहिये रजा मै, साधु सबद सिरि धार ।
मन बच क्रम कारज सरै, कदे न आवै हार ॥१४७॥

दास दमामे देव के, बाणी बिंब सु होइ ।
रज्जब बाजे हरि हुकमि, भूलि पड़े मति कोइ ॥१४८॥

मन उनमनि लागा रहै, माया मधि न जाइ ।
ब्रह्म अगनि मैं जारै बीजहिं, फिरि ऊगै नहिं आइ ॥१४९॥

रज्जब राखै मीच मनि, हरि कौ भूलै नाहिं ।
यहु दष्या उपदेस यहु, साधू के मत माहिं ॥१५०॥

राग करहु रंकार सौं, अलफ अराधौ मन्न ।
रे रज्जब संसार मैं, और न ऐसा धन्न ॥१५१॥

बहु बिद्यार बिभूति बहु, बहु सुन्दर सु कुलीन ।
रज्जब चहुं मैं चूक यहु, सुमिरण सुकृत हीन ॥१५२॥

बिभूति भूति बहु बिधि बध्या, चकहु चक्कवै राग ।
भजन बिमुख विद्या सबै, सो रज्जब केहि काज ॥१५३॥

बुधि बिद्यार बिभूति बहु, है गै हेम अपार ।
जन रज्जब बेकाम सब, जे भजै न सिरजनहार ॥१५४॥

रज्जब रिधि जिव्र कौ दई, राम रहेम करि राग ।
पूटा लहै परि पीठ दे, मस्तगि बड़े अभाग ॥१५५॥

रज्जब उल्लू आदमी, रारिमई रिधि जान ।
प्रगट प्रभाकर पुनि दिसि, जे पलक न खोलै प्रान ॥१५६॥

रोग रहित मनिषा जनम, हरि सिद्धी घरि ठाट ।
तापरि राम न सुमिरिये, तौ रज्जब भूलि निराट ॥१५७॥

चित्राम सकल बाजी चिहरि, भोला देखि न भूल ।
बिच काजी गर सक्ति है, सो पकड़ी मन मूल ॥१५८॥

यहु ठग बाजी ठग्ग की, ठग्या सकल संसार ।
त्यूं रज्जब देखहिं सु जिन, जे न ठगावणहार ॥१५९॥

रज्जब अज्जब काम यहु, हरि सुमिरौ हित लाइ ।
उलझि न अलि अल आसिरै, जो दीसै सो जाइ ॥१६०॥

सब जग जाता देखिये, रहतौ कोई नाहिं ।
जन रज्जब जगदीस भजि, समझि देखि मन माहिं ॥१६१॥

जल तरंग कै जीवणै, गाफिल कहा गंवार ।
पीछे ही पछिताहुगे, रज्जब राम संभार ॥१६२॥

प्रान पचन ह्वै पलक मैं, छिन माहै चलि जाइ ।
रज्जब सु समझि यूं समझि, बहिला बारि न लाइ ॥१६३॥

पाणी पानि न ठाहरै, प्राण प्यंड यूं जाणि ।
तौ परमारथ पाइ जन, बात कही निज छाणि ॥१६४॥

मनिष देह दामिन दमक, बेगाबेग सु जाइ ।
रज्जब देखौ हरि दरस, ढीलाढील न लाइ ॥१६५॥

तन धन गृह गाफिल असति, ज्यूंब सलिल के झाग ।
दल बादल सब झूठ है, रज्जब परिहरि राग ॥१६६॥

रज्जब मृग जल मांड सब, मानहु मित्थ्या जग ।
देखण कौ दरियाव है, तहां न पाणी नग ॥१६७॥

राम बिना सब झूठ है, ज्यूं सुपिनै सुख होइ ।
रज्जब जागे चलि गया, कछू न देखै जोइ ॥१६८॥

राम बिना सब झूठ है, मृग तृष्णा का रूप ।
रज्जब धावै नीर कौं, जहां जाइ तहं धूप ॥१६९॥

सीत कोटि अरु भुंडलि का, तीजैं सुपना सैन ।
रज्जब यूं संसार है, नहीं सु दीसै ऐन ॥१७०॥

रज्जब बादल बुदबुदे, तीजैं जल के झाग ।
चतुर खानि चषि देखिये, है नाहीं भ्रम भाग ॥१७१॥

चौपई : रज्जब सुपना सकति सैन, मन मिथ्या देखै सु मैन ।
जाग देखि दीसै सू नाहिं, रे मन मूरिख समझी माहिं ॥१७२॥

साखी : सुर नर देई देवता, सूता सुपिनै माहिं ।
जो रज्जब रामति रचै, सो जागै कोइ नाहिं ॥१७३॥

गुदड़ी ज्यूं गृह के मिले, तिन बिछड़त क्या बेर ।
रज्जब संतति सकति की, हठ वारे दिसि हेर ॥१७४॥

रज्जब रज घर बास तन, सिसु रामति संसार ।
सने मंदिर रचि मेटतौं, कहौ किती इक बार ॥१७५॥

जन रज्जब रजु सर्प जग, यूं जानै संसार ।
तिनहिं न संक्या बिसु चढ़ै, औषदि परम बिचार ॥१७६॥

जन रज्जब सुपना जगत, सोता देखै सत्ति ।
जाग्यूं मिथ्या पूत सब, नींद सु न्यारी मत्ति ॥१७७॥

रज्जब सीसे का सलिल, तैसा यहु संसार ।
सरगि नरक फिरता रहै, जुगि जुगि बारम्बार ॥१७८॥

ब्रह्म बिछोह बियोग न उपजै, मीच न आवै यादि ।
रज्जब रीता प्राण सो, जनमि गंवाया बादि ॥१७९॥

मिथ्या तन मन बानी प्राणी, रज्जब भजै न राम ।
सौंज सिरोमनि मनिषा देही, बादि गमी बेकाम ॥१८०॥

कौल चूक जिव आदि का, भूला भोंदू बाच ।
रज्जब झूठा राम सौं, सो क्यूं बोलै साच ॥१८१॥

जगपति जीव जुदे किये, तब के झूठे जाणि ।
अबहि साच बोलहिं सु क्यूं, पड़ी झूठ की बाणि ॥१८२॥

प्राण प्यंड की संसति झूठी, तौ सांच कौन सो होइ ।
रज्जब मिथ्या माया मेला, जिनरु पतीजै कोइ ॥१८३॥

सांचे नै झूठी करी, सो सांची क्यूं होइ ।
रज्जब देखौ दिब दृष्टि, मनसा बाचा जोइ ॥१८४॥

रोम न टूटा नट्ट का, करि दिखलाई खंड ।
यूं मिथ्या रामति राम सति, ब्रह्म रचे ब्रह्मंड ॥१८५॥

चतुर खानि बाजी चिहर, सबल पसारा झूठि ।
रज्जब ज्यूं थी त्यूं कही, रुजू होइ भावै रूठि ॥१८६॥

चावल कीये धूलि के, पंख परेवा कीन्ह ।
झूठ दिखाया सांच करि, बिरले पुरिसा चीन्ह ॥१८७॥

सुपना कौ सांचा नहीं, नहीं मूछन मधि नीर ।
सीत कोट कोटै नहीं, त्यूं बसुधा सब बीर ॥१८८॥

बिन कैवछ काया कुमत, मरकट मनहिं सु मीच ।
रज्जब सो न उपाड़ही, बैठे मूरिख सीच ॥१८९॥

मोह मूंज के जेवड़हु, गांठि दई है घोलि ।
रज्जब छांटै प्रेम जल, निकस्या चाहै खोलि ॥१९०॥

कुल कुटुंब थोहरि बिड़ा, नख सख काटे बीर ।
सोणित सीर परसत पड़ै, स्वारथ हेत समीर ॥१९१॥

जग थोथा थोहरि बिड़ा, कुमति सु कांटहु पूरि ।
बुधि बस्तर फाटै निकट, रज्जब निकसौ दूरि ॥१९२॥

कुल कुटुम्ब कैवछ कनी, मन मरकट तहं जाइ ।
साध सबद मानै नहीं, मरसी मूढ़ खुजाइ ॥१९३॥

कुल कुटुंब कलजुग सही, कलि कलणौं की ठांव ।
रज्जब बिरच्या यूं समझि, ताथै तहां न जांव ॥१९४॥

छाजन भोजन बिषै रस, जीव लहै जग बास ।
रज्जब पाये पान मुर, पिरथी बिरछ पलास ॥१९५॥

उद्दिम उभै न कीजिये, मन मूसा सुण येह ।
बाति चुरावत करड़ काटतौं, कुसल सु नाहीं देह ॥१९६॥

मन मरकट माया चरम, तृष्णा सीत न जाइ ।
या परि बादर बृन्द मिलि, सगा सगैं को खाइ ॥१९७॥

मांड मांडरी कौं धवै, खलक खलावर प्यंड ।
राम बिमुख बाई बलै, रज्जब इह ब्रह्मंड ॥१९८॥

कारे केसौं कृष्णपष, मैन रैन मधि चोर ।
रोम सेत रंजनि सुकल, तजि तस करता मोर ॥१९९॥

रज्जब रजक बुढ़ापनै, हेरि दिखाया हेत ।
चीर चिहुर की स्यामता, धोइ करी सब सेत ॥२००॥

सत सुकृत सुमिरण करत, बिलम न कीजै बीर ।
गुर गिरवर गहरे तिरत, रज्जब गहिये धीर ।।२०१।।

महत महीपति नरु सु तरु, जड़ सेवग संसार ।
माली समि मुंह आगिलै, मूलहु सींचणहार ।।२०२।।

चौपई : सतगूर साईं साध सबद, बंदनीक चारयू ये हद ।
रज्जब समझै समुझै माहिं, इन ऊपरि थापण कौ नाहिं ।।२०३।।

साखी : रिण न उत्यारा राम का, प्यंड प्राण निज दीन ।
रज्जब तिनहिं उधार दे, मन बच क्रम सो छीन ।।२०४।।

पंच पचीसौ त्रिगुण मन, कीड़े काया माहिं ।
रज्जब राखै साध ये, जुंबह खुलावै नाहिं ।।२०५।।

अरिल : सफरी स्यसन सलिल सुमिरण मधि, बास कुबुधि बपि बिलै न होइ ।
सोइ जात रज्जब जल जप सों, मारि पकावै बिरला कोइ ।।२०६।।

सरणा का अंग

सरणा सांई साध का, पकड़ि रही रे प्राण ।
तौ रज्जब लागै नहीं, जम जालिम का बाण ।।१।।

सतगुर सांई साध कै, सरणै धक्का नाहिं ।
काल चोट कौ वोट यहु, समझ देख मन माहिं ।।२।।

सरणा लीजै साध का, सरणा गहि गुर पीर ।
रज्जब खांडा लाख का, रहै म्यान मैं बीर ।।३।।

सांचे के सरनै बचे, सूत पानि दिव देत ।
तौ रज्जब सुणि सांच का, सरणा क्यों नहिं लेत ।।४।।

सारदूल स्यंघ सींधुर सहित, रहै सैल सरणाइ ।
तौ रज्जब सरणा बड़ा, नर देखौ निरताइ ।।५।।

जलनिधि नै जलचर बड़े, तौ सौ जोजन देह ।
सो भी सरणै सलिल कै, मन मत मानी येह ।।६।।

अरिल : बिरछहिं जाइ बिहंग असणि कै आवतैं ।
तू तकि आतम राम डरी जमराव तैं ।।७।।

वोलै होइ उबार सुर सरणा चाहिये ।
रज्जब कही बिचारि पठंगा छांह ये ।।८।।

प्राण सु सरनै प्यंड कै, प्यंड सु सरनै प्राण ।
सरणै का सरणै सुखी, रज्जब समझ सुजाण ॥९॥

उदर आसिरै ऊपज्या, प्राण पठंगा माहिं ।
सो सरणा क्यूं छांड़ई, मूरिख समझै नाहिं ॥१०॥

अगनि आसिरै काठ कै, काठ सु सरनै आगि ।
जुदे होत जिव सूं गये, रहे एकठे लागि ॥११॥

अठार भार अंधियार कौ, देखौ दीपक खाइ ।
सो रज्जब सरनै बिना, बाइ लागि बुझि जाइ ॥१२॥

तिहूं काल ताकै सरन, तन मन काचे जानि ।
आश्रम बिन अंतक उदै, प्राण प्यंड ह्वै हानि ॥१३॥

देई देव दरखत रहैं, प्यूंदि लिल्हरिया चीर ।
रज्जब बोलै झाड़ कै, घास बधै है बीर ॥१४॥

अनलपंष पंष्यू बड़ी, पै सरनै रहै अकास ।
सो अहार उड़ती करै, डरपै धरती बास ॥१५॥

तकै दिसा कौं आसिरा, सरणा छांड़ै साध ।
ताकौं क्या परमोधिये, मूरिख बुद्धि अगाध ॥१६॥

काल का अंग

काल किसी छोड़ै नहीं, सुर नर सब ब्रह्मंड ।
जन रज्जब द्रष्टान्त कौं, जथा अगनि बनखंड ॥१॥

काल न छोड़ै ज्ञान गुणि, बेद पढ़ै जे चारि ।
जन रज्जब मंजार ज्यूं, पढ़चा अपढ़ सुकमारि ॥२॥

रज्जब रहै न राज बलि, छूटै रंक न होइ ।
जम ज्वाला नर तर सु तृण, क्यूं करि बंचै कोइ ॥३॥

साहिब बिन साहिब किया, सो रज्जब सब जाइ ।
काल सहित सब काल मुखि, जे देख्या निरताइ ॥४॥

सोरठा : रज्जब रहै न कोइ, सबकौ मरना है सही ।
काल कंवल जग जोइ, भूष भेष मेल्है कही ॥५॥

साखी : रज्जब कोल्हू काल कै, सब तनि तिली समान ।
सो उबरै कहै कौन बिधि, जो आये बिचि घान ॥६॥

निसि दिन जामन मरण मैं, चंद सूर आकास ।
जीव सहित सब सानि करि, काल करै इक ग्रास ॥७॥

जैसे ससि कै सकल दिसि, मंडल मडै अकास ।
त्यूं रज्जब रहसी नहीं, प्यंड प्राण कै पास ॥८॥

ज्यूं आभे आतुर उठैं, बिलै होत नहिं बार ।
त्यूं रज्जब तन काल बसि, छिन मैं होंसी छार ॥९॥

जैसे सावण कै समै, धनक उदै आकास ।
रज्जब पलटै पलक मैं, त्यूं तन छिन मैं नास ॥१०॥

दामिन दमकहि देखि लै, केतक बेर उजास ।
त्यूं रज्जब संसार मैं, अस्थिर नाहीं बास ॥११॥

जैसे अहरणि उष्ण परि, बूंद बिलै होइ जाइ ।
त्यूं रज्जब देही दसा, हरि भजि बार न लाइ ॥१२॥

यहु तन जल का बुदबुदा, अलप अधूरी आव ।
रज्जब रती न ठाहरै, तापर कहावै बाव ॥१३॥

जन रज्जब संसार मैं, रहसी रंक न राव ।
सब घट जाता देखिये, बोलौं कीसी आव ॥१४॥

करिही करि क्या कीजिये, अति गति ओछी आव ।
जन रज्जब जोख्यूं घणी, जरा बिपति जमराव ॥१५॥

आभौं परि अस्थल नहीं, बिहंग न बैठा जाइ ।
तौ रज्जब संसार मधि, आतम क्यूं ठहराइ ॥१६॥

आदित अंतक देखतौं, बोले ज्यूं अभिलाख ।
अठार भार आगिन मिलत, पान फूल फल राख ॥१७॥

कहां इंद्रासन इंद्र कौं, कहां पहुम पुनि राज ।
जे रज्जब जीजै नहीं, तौ जगत्र केहिं काज ॥१८॥

रजधानी सब लोग की, आवै बिसवा बीस ।
सो रज्जब झूठी सबै, जे जम आमिर सीस ॥१९॥

लघु दीरघ आव सु अलप, जे सिर ऊपरि मीच ।
रज्जब राम संभालिये, ढील न कीजै नीच ॥२०॥

चंद सूर पाणी पवन, धरती अरु आकास ।
ये रज्जब जोख्यूं भरे, खलक सहित षट नास ॥२१॥

आवष्या तरोवर कटै, अहनिसि बहै कुहाड़ ।
जन रज्जब सो क्यूं रहै, जो आया बिच दाड़ ॥२२॥

आवष्या सरवर घटै, मानै मनिष न मीन ।
जो रज्जब माता जगत, माया मोहमद पीन ॥२३॥

कड़ी ज़ड़ी तुलि जाल की, मीन मुदित जल माहिं ।
त्यूं रज्जब जीत्या जुरा, जीवहि सूझै नाहिं ॥२४॥

रज्जब काया कूप मैं, आव अधारे नीर ।
रहत रैणि दिन घड़ि घड़ी, भरिये सलिल समीर ॥२५॥

तन तरकस तैं जात है, सांस सरूपी तीर ।
मांगे मिले न मोलि सों, अरये निघटे बीर ॥२६॥

घड़ी घड़ी कर तीर है, पट प्राणी की आव ।
रज्जब रेजा कछु रह्या, सो तूं भुजा चढ़ाव ॥२७॥

रज्जब धवणि लोहार की, त्यूं सुर नासिक दोइ ।
भजन बिमुख पावक पवन, देखौ दहेम सु होइ ॥२८॥

जीवी ऊपरि जतनि बहु, टूटी टूटै सब ।
कहना था सो यहु कह्या, मन बच क्रम रज्जब ॥२९॥

जीवी ऊपरि जतन भौ, आवहिं अनत उपाव ।
रज्जब राम सु काढ़ि ले, तब थाकै सब डाव ॥३०॥

होती आव उपाव बहु, ओषद जतन अनेक ।
सो सरकावै सांइया, तब तहि का मन येक ॥३१॥

जीव जतन बहुतै करै, क्यूं ही मरिये नाहिं ।
रज्जब रोकै बाहिले, मारणहारा माहिं ॥३२॥

जुगति जतन सारे रहे, जब जम पकड्या सीस ।
रज्जब धन धणि यूं लिया, कहा करै तैंतीस ॥३३॥

सकति सकति सो नीकसी, कहै और की और ।
रज्जब काढ़्या धन धणिहु, उठी आतमा ठौर ॥३४॥

छहै सहस इक बीस बीरियां, मारुत माग गहंत ।
रज्जब अहनिसि उठि चलै, कहु कैसे सु रहंत ॥३५॥

अहुठ कोड़ि इकईं उभै, इते माग मग येक ।
रज्जब जिव जल क्यूं रहै, काया कुंभ ये छेक ॥३६॥

रज्जब रज मारुत लगी, बप सु बघूला हेर ।
गात बात गत गांठि कौ, कहु छूटति क्या बेर ॥३७॥

रज्जब रुकसे घाट सब, काल कष्ट तन भौन ।
सांस सबद संकट पड़ै, तब सुमिरेगा कौन ॥३८॥

रज्जब राम न सुमिरिये, मिलै सकल संजोग ।
तब सुमिरौगे कौन बिधि, जब बपि बाइ बिजोग ॥३९॥

बिषम व्याधि क्यूं टालिये, कठिन काल की चोट ।
रज्जब केसरि काटसी, धाइ गही हरि ओट ॥४०॥

काया माया मांड सब, सकल जीव को काल ।
रज्जब काटै कौन बिधि, यहु अंतरि गति साल ॥४१॥

च्यंता चिता कुकाल है, मनहु मनोरथ मीच ।
रज्जब जानै राम बिन, यहु जौं राम न नीच ॥४२॥

काम कल्पना कोटि बिधि, नीच मार मन मौज ।
जन रज्जब जिव क्यूं रहै, देखी दह दिस फौज ॥४३॥

मन कुरंग कित जाइ चलि, चेतनि चीता काल ।
रज्जब पटकै पलक मैं, काटै करि करि छाल ॥४४॥

जैसे सुसा सिकार मैं, बचै न कानहु ओट ।
त्यूं रज्जब हम होइ करि, क्यूं टालै जम चोट ॥४५॥

अंतक आतम राम विच, अंतर नाहीं कोइ ।
जोष्यूं की जाइग वही, जतन वही तैं होइ ॥४६॥

सजीवन का अंग

अमर मिले आतम अमर, बिछुरत बिनसै सोइ ।
रज्जब रहे सु यूं रहै, सब संतन दिसि जोइ ॥१॥

जगजीवन जीवै सदा, तामै ताका दास ।
जन रज्जब जोष्यूं गई, कदे न होइ बिनास ॥२॥

ज्यूं पावक झल सुन्नि मैं, त्यूं परि आतम मैं प्रान ।
रज्जब मारै कालि क्यूं, जु निकसि न होई आन ॥३॥

सुन्नि ठाहरै सुन्नि मैं, तबहीं आनंद होइ ।
चेतनि चेतनि कौ मिलै, काल न लागै कोइ ॥४॥

सब सों सुरति उठाइ करि, जो पैसै प्रभु पाहिं ।
जन रज्जब सो काल कर, क्यूं ही आवै नाहिं ॥५॥

रज्जब साधू सुन्नि ह्वै, सीस सबहु तलि देइ ।
अंतक भै उसको नहीं, अकल आप मैं लेइ ॥६॥

सुन्नि सजीवन उरि अमर, रसना रहते माहिं ।
जन रज्जब आष्यूं अखिल, प्राणी मरै सु नाहिं ॥७॥

अडिग सुरति आठौं पहर, अस्थिर संग अडोल ।
सो रज्जब रहसी सदा, साखी साधू बोल ॥८॥

अरि इंद्री आपा गये, अंतक उठ्या अनंग ।
रज्जब जीवै जीव सौं, काटचा करम कुसंग ॥९॥

रज्जब मुये जु मारतै, बिनसे बैरी पंच ।
तब ताकौं लागै नहीं, जुरा मरण जम अंच ॥१०॥

सुरति माहिं सांई सदा, यादि अखंडित होइ ।
सो रज्जब आतम अमर, बिघन न व्यापै कोइ ॥११॥

मन उनमन ले राखिये, परम सुन्नि अस्थान ।
तौ रज्जब लागै नहीं, जम जालिम का बान ॥१२॥

नांव ठांव निरभै सदा, सुमिरि सजीवन संत ।
जन रज्जब लागै नहीं, तहां जोर जम जंत ॥१३॥

प्राण प्यंड ब्रह्मंड मधि, नांव सु निरभै दुंग ।
रज्जब चढ़ चौबास करि, जम जीतै नहिं जंग ॥१४॥

नर निरभै हरि नांव मैं, यहु गढ़ अगम अगाध ।
रज्जब परि लागै नहीं, सदा सुखी तहं साध ॥१५॥

नांव ठांव निज जीव कौ, सदा सजीवन बास ।
रज्जब रहिये ठौर तेहिं, षट रितु बारा मास ॥१६॥

बसै निनावा नांव मैं, ताथैं लीजै नांव ।
जन रज्जब ता संत की, मैं बलिहारी जांव ॥१७॥

रज्जब अज्जब ठौर है, सुमिरन मैं ठहराइ ।
अमर सु आदम आतमा, सुख मैं सुरति समाइ ॥१८॥

रज्जब मन पंचौ पिसण, लूटै देही देस ।
इन बलिवंतौ पास छुड़ावै, बलिवंत प्राण नरेस ॥१९॥

इंद्रिय हाथ न आवई, सु अंतकि गह्या न जाइ ।
रज्जब आतम राम समि, नर देखै निरताइ ॥२०॥

प्रबल प्यंड पतिसाहि परि, पंच पिसण लिये साथ ।
रज्जब पैठे ज्ञान गढ़, सो प्राणी चढ़ै न हाथ ॥२१॥

गुण इंद्री परकिरति के, प्राणी पड़ै न बंदि ।
जो रज्जब रामहि भजै, जु बैठा ज्ञान गिरंदि ॥२२॥

काल कटक देखत रहै, और सकल दुख दंद ।
जन रज्जब देखत गया, चढ़ि गिरिवर गोव्यंद ॥२३॥

गुर गिरवर बिहड़ै नहीं, प्राणी पगहु सयान ।
मिलै न स्वारथ साह कौ, आतम अनमी रान ॥२४॥

मिलै न स्वारथ साह कौ, त्यागि दई पथ दोइ ।
ज्ञान गिरौहौं मैं रहै, रज्जब राणा होइ ॥२५॥

उदधि ज्ञान मैं मीन मन, सूर सकति तप अंग ।
उभै न दगधहिं उभै तन, पाया सीतल संग ॥२६॥

रज्जब सूर सरीर बिधि, आतम अकलि सु अंभ ।
सो रज्जब सोखत सबै, सेझै सीर सु थंभ ॥२७॥

पातिसाह पहरै भया, तब देसहु डर नाहिं ।
रज्जब चोर कहा करै, जो राजा चेतन माहिं ॥२८॥

श्रवनि द्वार ह्वै दुंग दिलि, चढ़ै सबद सावंत ।
रज्जब रिप मारे सु मधि, बाहरि बिघन न जंत ॥२९॥

रज्जब साधू जोध मत, जे बैठै जिव माहिं ।
सो निरभै नौखंड मैं, पिसण सु गंजै जाहिं ॥३०॥

साध सबद अमृत अंचै, अमर होत आतम ।
पीवै प्राण पियूष यहु, जीव न लागै जम ॥३१॥

जीव ब्रह्म अंतराइ निरनै का अंग

रज्जब जीव ब्रह्म अंतर इता, जिता जिता अजान ।
है नाहीं निरनै भया, परदे का परवान ॥१॥

जान जगत गुर सलगही, अलग अजान अचेत ।
रज्जब नेड़े दूरि का, समझि कह्या संकेत ॥२॥

पून्यूं पूरा चांदिणा, अमावस घोर अंधियार ।
रज्जब समझि असमझि का, बाकी बिच व्योहार ॥३॥

सबद न समझै आतमहिं, त्यूं आतम राम अगम ।
रज्जब कही बिचारि करि, नेतौ कहै निगम ॥४॥

प्राण सु पेई लोह की, पति पारस ता माहिं ।
रज्जब तन सुख सौं मढ़ी, कंचन होत सु नाहिं ॥५॥

रज्जब राम बडहु बड़ा, कोइ न सारिष जोट ।
सो सुमिरे सांई छिप्या, तनि तिनुकै की ओट ॥६॥

रज्जब चाकर प्यंड के, चौरासी लख प्राण ।
सब आतम उलझी यहां, आगै लहै न जाण ॥७॥

उनमानी का अंग

रज्जब कीजै बंदगी, जेती जिव तैं होइ ।
जो साहेब सौंपी नहीं, तासों बल नहिं कोइ ॥१॥

रज्जब राखहु बंदगी, जे लघु दीरघ होइ ।
ज्यूं कर अंगुरी हालतां, दाग न देवै कोइ ॥२॥

सौ कोसांस तल चलै, लहै मौज साबास ।
लरिकहुं लौन उतारिये, उभौ होत उल्लास ॥३॥

रज्जब अजरी अनल का, एक उड़ान न होइ ।
त्यूं सुकृत सुमिरण सबै, बित उनमान सु जोइ ॥४॥

कीड़ी कुंजर अनल का, एक नहीं उनमान ।
बोझ उठावैं बल जथा, समझौ संत सुजान ॥५॥

एकौ जानी गहन गति, एकौ मिलै सु आइ ।
इक राहु केत ज्यूं गिलि गये, ससि सूरज निरताइ ॥६॥

कीड़ी कण अवनी अहि माथे, बल उनमान उठावहिं बोझ ।
त्यूं ही भाव भगति भगता जन, जन रज्जब पाया निज सोझ ॥७॥

उनमान चल्यूं दीसै भला, बिन उनमान खराब ।
रज्जब कही बिचार करि, बहुरि बड़ौं का ज्वाब ॥८॥

रज्जब रद्द न कीजिये, जे कछु रजमा होइ ।
इक सांई अरु संत जन, बुरा न मानै दोइ ॥९॥

कौन भांति साहिब खुसी, जो जीव न जानैं ।
पै रज्जब कीजै बंदगी, अपनै उनमानै ॥१०॥

जिते अंग उनमाने के, तेते जीवहुं पास ।
जो साहिब सौंपी नहीं, सो पावै क्यूं दास ॥११॥

सब ठाहर सब कहि गये, साध बांच कबि राव ।
ऊंट न गरजै यंद्र समि, अपणा करै सुभाव ॥१२॥

हणवंत दौण कहु कौण दे, को देखावन बीख ।
पै जीव जुलणि छाणै नहीं, रज्जब देखै लीख ॥१३॥

फल्लहि सु फौरी आवलणि, बधि बहिला इत बांस ।
तौ अलिफ अठारह भार कुछ, निरफल रहै न कांस ॥१४॥

निरपषि मधि का अंग

रज्जब तांबा लोह पषि, पारस है प्रभु नांव ।
परसै सौं कंचन भये, यहु निरपषि निज ठांव ॥१॥

फक्कड़ जाति खुदाइ की, उभै निरति परबेस ।
रज्जब अल्लह ज्यूं रहै, सो सांचा दरबेस ॥२॥

ब्रह्म जाणै सो ब्राह्मण, सौदै सैयद होइ ।
रज्जब राखी बड़हु नैं, फेर सार नहिं कोइ ॥३॥

ब्रह्म बरणि ज्यूं ब्राह्मण, सौदै सैयद होत ।
बेद कुराणहु मैं कही, छूटे गाफिल गोत ॥४॥
ओंकार साठी सकति, कलम अंट कुल होइ ।
रज्जब अलफ अतीत यूं, सो बंदै सब कोइ ॥५॥

द्वै पष बीरज दालि हैं, बिच अंकूर अतीत ।
सो रज्जब ऊंच्या चल्या, यहु तीजी रस रीत ॥६॥

संसार समंद पषि सीप द्वै, मधि मुक्ता सु महंत ।
सो रज्जब उर सिर धरै, ब्रह्म आदिपुर जंत ॥७॥

संसार सर्प मंडाण मुख, पष जाड़च्यूं ब्रिष होइ ।
तहां मुनी मणि नीपजै, निरपष निरब्रिष सोइ ॥८॥

जैन कसाई की छुरी, पारस परसी आइ ।
रज्जब देखौ देखतां, कुल क्रम कुलि कटि जाइ ॥९॥

हींदू तुरक हसेब करि, दून्यूं देख्यो जोइ ।
जन रज्जब रहती रती, सु पावै बिरला कोइ ॥१०॥

हींदू पावैगा वहीं, वोहीं मूसलमान ।
रज्जब रजमा रहम का, जिसको दे रहिमान ॥११॥

चंद सूर पाणी पवन, आभे उडग मझार ।
मधि बासी प्रतिपाल महि, धर अंबर सुनियार ॥१२॥

चंद सूर पाणी पवन, आभे उडग अतीत ।
धर अंबर परसै नहीं, यहु तीजी रस रीति ॥१३॥

पग पिरथी मस्तक गगन, जीव रहै नभि थान ।
पषि पोषै निरपषि रहै, आतम संत सुजान ॥१४॥

जड़ मत छांड़ि सु जिमी घर, तजि अभिमान अकास ।
रज्जब रहिये बीच बण, षटरितु बारह मास ॥१५॥

आकास रूप अबिगति कर, बइयै बंदहु ठाम ।
पंच तिणे रज्जब रचे, मद्धि मनोहर धाम ॥१६॥

माया बिन मरि जाइये, माया पायूं मीच ।
जन रज्जब जीवन मतै, जु दुर्जन बैठैं बीच ॥१७॥

देही दीपक जोति जप, जगति मद्धि ठहराइ ।
सकति समीर सु बहु बना, जन रज्जब बुझि जाइ ॥१८॥

सकति सुता तो बहन है, श्रीपति पतिनी मात ।
तासौं रंग न रूठणा, रिधि सौं कैसी घात ॥१९॥

रज्जब साबुन सलिल का, सुनहु सनेही हेत ।
देखौ हींदू तुरक के, बस्तर करहि सु सेत ॥२०॥

अनंत नांव प्रभु पुहुप हैं, प्रान पाणि पषि दोइ ।
रज्जब करहिं सुगंध सो, हिये हाथ ले जोइ ॥२१॥

महादेव कौं आदम कहिये, गोरख तन्न सु हाजी ।
इष्ट एक द्वै द्वै पषहुं, किस रूठे किस राजी ॥२२॥

रचहिं न हींदू तुरक सों, बिदु जन बिरचै नाहिं ।
नारायन रूपी सु नर, निरपषि न्यारे माहिं ॥२३॥

रज्जब साधू सूर का, मरणा ह्वै मैदान ।
पसु पंषी प्यंडहि भखैं, नाहीं गोर मसाण ॥२४॥

गोर मसाण न तिनहु कौं, जेर पड़े संग्रामि ।
रज्जब सोभा सब रही, सरबस आया कामि ॥२५॥

रज्जब हींदू तुरग की, रिण नाहीं रस रीति ।
कृत काया मुखि मुखि चढ़ै, भोले ह्वै भयभीति ॥२६॥

पहम पवन मिलि एक ह्वै, अवनि उदक ता माहिं ।
रज्जब तुरग न पाइये, हींदू देई नाहिं ॥२७॥

कै परम तत्त सों प्राण है, कै परम तत्त कै माहिं ।
रज्जब सोधे उभै घर, हिंदू तुरक सु नाहिं ॥२८॥

सुन्नति सेती बाप था, मां के बींधै कान ।
दून्यू बिच बालिक भया, तहां नहीं नुकसान ॥२९॥

सुन्नति सेती बाप था, बेटा हींदू होइ ।
रज्जब कहिये तुरक क्यूं, कटचा न आवै कोइ ॥३०॥

हिंदू गति हिरदै नहीं, तुरक तमा कछु नाहिं ।
रज्जब बंदे बस्त के, कहा घुसैं इन माहिं ॥३१॥

हिंदू गति हिंदू खुसी, तुरक जु तुरकी माहिं ।
रज्जब आसिक एक के, तिनकै दून्यूं नाहिं ॥३२॥

हेत न करि हिंदू धरम, तजि तुरकी रस रीति ।
रज्जब जिन पैदा किया, ताही सों करि प्रीति ॥३३॥

रज्जब हींदू तुरक तजि, सुमिरहु सिरजनहार ।
पषा पषी सों प्रीति करि, कौन पहूंच्या पार ॥३४॥

द्वै पष दारा त्याग करि, प्राणी लै बैराग ।
जन रज्जब सो नीपजै, ता सिरि मोटे भाग ॥३५॥

दून्यूं पष सौ कढ़ि रही, जब जिव जोगी होइ ।
जन रज्जब किलिकिलि मिटी, नांव न लेवै कोइ ॥३६॥

एकहिं तज्यूं एक बल बांधै, घर मैं होइ उपाधि ।
जन रज्जब परिहरि पष दून्यूं, सहजै होइ समाधि ॥३७॥

खैंचाताणी द्वै द्वै मिटी, तब घर मैं आनंद ।
ज्यूं रज्जब काढचा रई, सहजि गये दधि दंद ॥३८॥

लोहा जल पावक परस, सीत सलिल पाषाण ।
रज्जब उभै अलाहिदा, समझ्या सत्ति बखाण ॥३९॥

रज्जब चले महंत मुनि, मधि मत्तै के मागि ।
सीत ऊष्ण मन बन दहै, दून्यू दीसै आगि ॥४०॥

जन रज्जब पथि पैठतौं, पड़ै पिसणता प्रान ।
निरपषि मिलि निरदोष ह्वै, साधू संत सुजान ॥४१॥

पषा पषी मधि पिसुणता, प्राणहु दुबिधा दंद ।
जन रज्जब निरपषि नर, निरबैरी निरदंद ॥४२॥

पषा पषी मैं पिसणता, निरपषि मनि निरबैर ।
मनसा बाचा करमना, रज्जब कही न गैर ॥४३॥

पाप पुन्नि मूरति चतुर, झूठे जाति कुजात ।
जन रज्जब सोवै सबै, जो न अंधेरी रात ॥४४॥

हिंदू सेवै मूरती, मुसलमान सू गोर ।
रज्जब मुरदे मानिये, जग ज्यद्रा किस ओर ॥४५॥

जे देवल मिले दयाल जी, अरु मालिक मिले मसीति ।
तौ रज्जब अणमिलन कौ, यहु सबकै रस रीति ॥४६॥

द्वै पष थापै दोइ दिसि, करै अष्ट दिसि यंदि ।
रज्जब सांई सकल दिसि, देखि दसौ दिसि बंदि ॥४७॥

देवल पास मसीत ह्वै, दोइ न ढाहैं दोइ ।
रज्जब राम रहीम कहि, बोलैं बिघन न कोइ ॥४८॥

पीपल बड़ बाढ़हिं नहीं, हिन्दू तुरक फहीम ।
तौ रज्जब क्यूं मारिये, कहतो राम रहीम ॥४९॥

बमेक समिता का अंग

घरि घरि दीपक देखिये, पावक परस्यूं येक ।
यूं समझे एकै हुये, रज्जब संत अनेक ॥१॥

एक सरोवर सब भरै, भाव भिन्न घरि जाहिं ।
रज्जब सब मिलि एक ह्वै, उलटे सरवर माहिं ॥२॥

एकै कंचन काटि करि, बहु भूषन करि जाहिं ।
रज्जब भान्यूं मिलि गये, ताके ताही माहिं ॥३॥

साईं सबका येक है, सब समझे ता माहिं ।
जन रज्जब रामहिं भजै, तिनकै दूजा नाहिं ॥४॥

सब संतन का एक मत, जैसा अगनि सुभाय ।
जन रज्जब जगि एक सी, दह दिसि देखौ जाइ ॥५॥

षटदरसन सलिता बहैं, देखत दह दिसि जाहिं ।
रज्जब रहसी राम मैं, फिरि घिरि दरिया माहिं ॥६॥

काठ लोह पाषान की, अगिन उजागरि येक ।
त्यूं रज्जब रामहिं भजै, सो नहिं भिन्न बमेक ॥७॥

रज्जब रहते जगत सौं, सुलझे एकै जानि ।
बहुत काष्ट में धूम ज्यूं, मिले सुन्नि में आनि ॥८॥

यथा अठार भार की, बिनस्यूं सबकी खेह ।
त्यूं रज्जब रामहिं भजै, सो सब एकै देह ॥९॥

माया माटी सूं घड़े, बप बासण सु अनेक ।
रज्जब रिधि रज नांव बहु, अरथ सोधता येक ॥१०॥

कृतिम कुंभ मत छिद्र बहु, माहिं जोति जग मौर ।
रज्जब प्राण पतिंग परि, आइ परै इक ठौर ॥११॥

रज्जब समिता आवतैं, मनिषा देव समान ।
धरणि गगन पानी पवन, साषी ससि हर भान ॥१२॥

चंद सूर पाणी पवन, धरती अरु आकास ।
देव दृष्टि दुबिधा नहीं, सब आतम इखलास ॥१३॥

जगन्नाथ की हाडी समिता, भोजन भेद सुनाहिं ।
नीच ऊंच अंतर सु उठाया, दृष्टि आतमा माहिं ॥१४॥

षटदरसन मैं षाण का, धातरि भेद न कोइ ।
रज्जब जनमे तिनहु में, सो न्यारा क्यूं होइ ॥१५॥

रज्जब अज्जब काम यहु, जौ जिसही कन होइ ।
समिता घरि पैठै सुरति, कदे न देखै दोइ ॥१६॥

षटदरसन सलिता बहै, देखत दह दिसि जाहिं ।
सांई समंद सु सनमुखी, उभै उभै अंग माहिं ॥१७॥

नारायण अरु नगर कौं, रज्जब पंथ अमेक ।
कोई आवौ कहीं दिसि, आगैं अस्थल येक ॥१८॥

है गै प्यादहु पंथ बहु, रथ बैठ्यू मघ येक ।
रज्जब नर हरि नगर निज, पहुंचै प्राण अनेक ॥१९॥

व्यापक वैसी बोलता, पाणी वैसी प्यंड ।
रज्जब बंस पिछाणिये, इन बंसौ ब्रह्मंड ॥२०॥

चौपई : हिंदू तुरक उदै जल बूंदा, कासौं कहिये ब्राह्मण सूदा ।
रज्जब समिता ज्ञान बिचारा, पंच तत्त का सकल पसारा ॥२१॥

साखी : चौरासी लख संपदा, सानी सकल सरीर ।
जन रज्जब घटि घटि इती, त्यूं पूछै कै बीर ॥२२॥

चौरासी लख संपदा, करी बिसंभर लोइ ।
रज्जब रची बखाणिये, औरू करै सु होइ ॥२३॥

जे सिन्या ब्रह्मंड मैं, सोई प्यंड पहिचान ।
रज्जब निकसे सबद मधि, पंथ पड्या यूं जान ॥२४॥

महंत सु दीपक हीर मैं, सब दिस सम परगास ।
रज्जब धुकहिं न एक रुख, सुणहु सनेही दास ॥२५॥

षट दरसन मैं सब मिलैं, पौणि छतीसौ आइ ।
जैसे सपत समुंद मैं, नौ सै नीर समाइ ॥२६॥

मेलग का अंग

ग्रासों गहिये पंच मिलि, त्यूं पंचौ मिलि राम ।
जन रज्जब मेला भला, मेलै सरै सु काम ॥१॥

श्रवण नैन मुख नासिका, अधर दंद कर पाइ ।
रज्जब निरखत नौ जुगल, मोह्या मतै मिलाइ ॥२॥

अंट सु लेषण दोइ सिरि, कारिज काले येक ।
त्यूं रज्जब द्वै मिलि चलैं, योंही बड़ा बमेक ॥३॥

पंच तत्त करि घट भया, प्राण करै तहं राज ।
रज्जब बिखरे बहु बिघन, आतम होइ अकाज ॥४॥

पंच मिलै मधु ऊपजै, पंच मिलै मधु होइ ।
रज्जब पंचे पंच मैं, बिगता बिगति सु जोइ ॥५॥

इक अजरी वजरी मिलहिं, इक मधुरिष मधु ठौर ।
मेला देखि न मुगदि मिलि, मेल मेल रस और ॥६॥

एक पाकि पलटि ह्वै पै मई, एक पाकि पुनि पीव ।
रज्जब पाकहुं फेर बहु, नर निरखौ सु नसीब ॥७॥

पंच तार जंतर चढ़ैं, सोलह सुर सु मृदंग ।
सुरमंडल सुर बहुत हैं, बाजत एकै अंग ।।८।।

रज्जब घड़ौं घड़ै नहीं, जे मन एकहि रंग ।
ज्यूं सोलह सुर तूर के, मिलि बाजहिं एक संग ।।९।।

तूंबी समि जो आतमा, तिरहि सु एक अनेक ।
सो संगति क्यूं छोड़िये, रज्जब समझ बमेक ।।१०।।

येकहु माहिं अनेक है, अनेकौ मैं येक ।
रज्जब पाया संग का, पूरण परम बमेक ।।११।।

दया निरबैरता का अंग

मुक्खि दया निरबैर ह्वै, सब जीवहु प्रतिपाल ।
तौ रज्जब तिनि प्रान नै, मेल्या मंगल माल ।।१।।

निरबैर होत बैरी नहीं, चौरासी मैं कोइ ।
रज्जब राखत और कौं, अपणी रक्षा होइ ।।२।।

चोट न काहू कौ करै, तौ चोट न इसकौ होइ ।
जन रज्जब निरबैर सौं, बैर करै नहिं कोइ ।।३।।

बिघन टालतौं और के, अपनै बिघन सु जाहिं ।
नेकी सौं नेकी बधै, समझ देखि मन माहिं ।।४।।

नर निरबैरी होत ही, सब जग वाका दास ।
रज्जब दुबिधा दूरि गइ, उर आये इखलास ।।५।।

निरबैरी नौखंड मैं, साधु सु हिरदी होइ ।
तौ रज्जब तिहुं लोक मैं, बैरी नाहीं कोइ ।।६।।

चौरासी लख जीव परि, साधू होइ दयाल ।
रज्जब सुख दे सबनि कौं, तन मन करि प्रतिपाल ।।७।।

इसकै मारण की नहीं, तौ इसहि न मारै कोइ ।
कुसल वांछता और की, अपणे कुसल सु होइ ।।८।।

दया तरोवर धरम फल, मनसा मही सु माहिं ।
मिहरि मेघ हरि नीपजै, रखवारे फल खाहिं ।।९।।

राग दोष कासौं करहिं, सबमैं साहिब जाणि ।
रज्जब बुरा न बांछिये, छांड़ि देहु गत बाणि ।।१०।।

विभूति बाकरी तन लागै, थन सु गलथने चारि ।
यों साध असाध इक ठौर हैं, नर निरबैर निहारि ॥११॥

रज्जब ह्वै निरबैरता, तौ बैरी कोइ नाहिं ।
मनसा बाचा करमना, यों समझी मन माहिं ॥१२॥

नांव सगोती बोलिये, कहिये ते मा अंस ।
सो रज्जब क्यूं खाइये, परतषि अपणा बंस ॥१३॥

गोसपंद गावमेस माजर, हंस सीर सब भाइ ।
रज्जब ऐन अजीज बोलिये, गाफिल गोसत खाइ ॥१४॥

षटदरसन औ खलक कौ, षोड़ि खात मद मास ।
रज्जब सोच न दिलि दया, ह्वै आया पर नास ॥१५॥

पंच बखत जो बांग दे, वह तो दीनी यार ।
सो मुरगा क्यूं मारिये, काजी करौ बिचार ॥१६॥

मुसलमान कौ मारणा, मुरगा माफिक नाहिं ।
पंचौ बिरिया बंग दे, मुल्ला समुझौ माहिं ॥१७॥

बंदनीक बाराह सु बधिये, मुल्ला मुरगा मारै ।
दून्यूं दृष्टि बिहूणै दीसैं, इष्टौं कौन बिचारै ॥१८॥

कुलि मैं मोहित मालिक, सबहूं मैं सु बिहान ।
रज्जब यूं जाणी जाहिर, रहेम माहि रहिमान ॥१९॥

मुल्ला मन बिसमिल करौ, तजहु स्वाद का घाट ।
सब सूरति सु बिहान की, गाफिल गला न काट ॥२०॥

घात घाट कौं करै जाहिर, कहैं सु हक्क हलाल ।
रज्जब यहु पंधी पकड़ै, जाहि पचि पैमाल ॥२१॥

चौपई : सबमैं सांई मास सु खाहिं, तौ निज ज्ञान नजरि मैं नाहिं ।
जाहि भजै ताही सौं बैर, रज्जब नाहिं कही कछु गैर ॥२२॥

साखी : तन मंदिर मूरति मधि आतम, फोड़ैं फूटै दोइ ।
उभै उजाड़ एक की कीजहिं, खसम खुसी क्यूं होइ ॥२३॥

बक्र तिणा लिये नीकसैं, खून खता खित क्षोभ ।
तौ घास गास जिन मुख सदा, तिन मारचूं क्या सोभ ॥२४॥

घुण हाड़ी मैं घुलि गया, माखी सहन कमाहिं ।
रज्जब खाइ कबूल करि, मैं मुरदारी नाहिं ॥२५॥

मछली किनत कबीर की, घुण किन किये हलाल ।
अंडे किन बिसमिल किये, सब खाणे का ख्याल ।।२६।।

अजाजील अर आदमहि, देखि अदावत आदि ।
दोषि लागि ह्वै दिसि बिमुख, जनम गमाया बादि ।।२७।।

रामचन्द अर रावनहिं, बैर बान भई मीच ।
तौ रज्जब दोष न राखिये, समझी मनवा नीच ।।२८।।

कीड़ी कुंजर सबनि सों, मेटि बैरता मंत ।
पीड़ा देत पषाण कौं, देखौ हजरत दंत ।।२९।।

कृष्णदेव की बहन लघु, हती कंस करि खीझ ।
रज्जब दामिन दोषहीं, कासों पड़ै सो बीज ।।३०।।

हरनकसिब अरु होलड़ी, भये पिसण पहलाद ।
साधू मारत ते मुये, तजहु बैरता बाद ।।३१।।

राहु केत ससि सूर का, देखहु बैर बिरोध ।
इहै जानि निरबैर रहु, रज्जब निज परमोध ।।३२।।

दोष दोष सों ऊपजै, नर देखौ निरताइ ।
राहु केत ससि संग रहै, सपत नछत्रु सु भाइ ।।३३।।

रज्जब अज्जब काम है, जे ह्वजै निरदोष ।
परै न बंधन बैरता, मानहु दूजे मोष ।।३४।।

रज्जब अज्जब काम है, जे दिल न दुखाया जाइ ।
इहां खलक उस परि खुसी, आगे खुसी खुदाइ ।।३५।।

हंस हते हत्या सही, परि आदम अघ अधिकाइ ।
रज्जब निरखहु नरहि डसि, पंनिग पूंछि गरि जाइ ।।३६।।

राग दोष दीरघ उदधि, पंच दोइ लघु लार ।
जन रज्जब उतरत उभै, सपत समंद नर पार ।।३७।।

रज्जब अज्जब यहु मता, सब सों रहु निरबैर ।
उदिध उपाधि न डरपिये, जोख्यूं जल जिव पैर ।।३८।।

औगुण ढाकै और कै, अपणै औगुण नाहिं ।
रज्जब अज्जब आतमा, निरबैरी जग माहिं ।।३९।।

मारचा जाइ त मारिये, मनसा बैरी माहिं ।
जन रज्जब सो छाणि कर, मारन कौ कछु नाहिं ।।४०।।

मारणहारा मारिये, कीजै नहीं उपाधि ।
जन रज्जब यूं जीतिये, घट का बैरी साधि ॥४१॥

काहू पर चढ़िये नहीं, मन क्रम बिस्वा बीस ।
रज्जब रथ तलि कृष्ण कै, सोइ पंषि पर सीस ॥४२॥

पग पहूण प्रभु जी दिये, अति गति होइ कृपाल ।
रज्जब तिनहु चढया फिरै, निरबैरी सु दयाल ॥४३॥

दया अदया मिश्रत का अंग

समरथ मारि जियावणै, दोष दया मैं जान ।
अमर सजीवण राख तूं, बेत्वा करौ बखान ॥१॥

पुन्नि सु पाणी स्वाति का, सुरति सु सीप मझार ।
पाप पणींगा खार जल, मन मुकता मिलि ख्वार ॥२॥

खैरि खहर सूं मिलत ही, खलहल होइ सु खास ।
बे कीमति जु बदी बधै, नेकी होति सु नास ॥३॥

चौपई : ज्यूं मिसरी माहिं घोलि रस पीजै, ज्यूं सुकृत मैं कुकृत कीजै ।
दया मध्य दुष्टता ऐसी, ज्यूं घर माहिं सु डाइण बैसी ॥४॥

साखी : पुन्नि पिसणता एकठे, तब लग धरम न कोइ ।
भाई हति भाई कौं पोषै, समझे बहु दुख होइ ॥५॥

मिहरि कहर माहै मिली, ता खैर खैर मैं नाहिं ।
यहु रज्जब अज्जब कही, समझि देखि मन माहिं ॥६॥

पुन्नि प्रभाकर उदै कौ, पाप प्रचंड सु राह ।
अंग उजास सु गिलत हैं, चषि त्रिभुवन तन बाह ॥७॥

सुत सुकृत कौं गिलत हैं, सांपनि सुधि बिन दास ।
पुन्नि मधि पापहिं करत हैं, प्रानी जाइ निरास ॥८॥

सुकृत मैं कुकृत कुचिल, ज्यूं ससि मद्धि कलंक ।
पुन्नि पिपूष सु प्रान पोषिये, बपहु बुराई बंक ॥९॥

धरम अस्थान कुकरम न सोभै, जथा नैन मधि फूला ।
आतम आंखि अंध्यारा भइला, कहिये कहां सु सूला ॥१०॥

दुष्ट दया का अंग

देखहु दुष्ट दयाल गति, ज्यूं बालिक पित मात ।
रज्जव काटै मारि मुख, मूरख माटी खात ॥१॥

सकल प्राण प्रीतम किये, पर हरि कुमति कुसंग ।
रज्जब कै रस रोस यहु, दुष्ट दया का अंग ॥२॥

कुलिरवाह सौं रहम करि, बदअमलौं सौं बैर ।
मिहरि गुसा मखसूद का, रज्जब कै नहिं गैर ॥३॥

मनि दयाल मुखि दुष्ट गति, जथा नीब संजोग ।
रज्जब कड़वा पीवता, पीछे काटै रोग ॥४॥

कंवला काढ़ का अंग

रज्जब रिधि रतनौ मई, मन समुंद के माहिं ।
कोइ जन काढ़ै कमठ ह्वै, नहीं त निकसै नाहिं ॥१॥

कंवला काली ये कहै, सो देही दह माहिं ।
कोई एक काढ़ै कृष्ण ह्वै, नहीं त निकसै नाहिं ॥२॥

माया मणि मन मक्ष मुखि, दुल्लभि लेता दोइ ।
रज्जब ठौर सु विषम है, बेत्वा काढ़ै कोइ ॥३॥

बित बीरज पारामई, काया कूप मधि बास ।
साधू सुंदरि परसतूं, बाहर ह्वै परगास ॥४॥

आकास अवनि अरु उदधि अष्ट कुल, माया राखी माहिं ।
हुकम हिकमत्यूं कर चढ़ै, नहीं त लहिये नाहिं ॥५॥

जन रज्जब जल जीव मैं, सिरिया सीर समान ।
बिषम बारि तैं काढ़ि कर, हंस करै कोइ पान ॥६॥

मन तैं माया काढ़नी, ज्यूंब दही तैं घीव ।
जन रज्जब बल बुद्धि उस, महा बमेकी जीव ॥७॥

कंचन किरची चुणि ले रज मैं, पारै पूरि बमेक ।
तैसै मन तैं माया काढ़ै, साधू कोई येक ॥८॥

माया मधु बिधि काढ़ही, मति सागर मधुरिषि ।
तिनकी सरभरि करन कौं, रज्जब बिरला पिषि ॥९॥

मन माया मिश्रत सदा, जथा अकलि मैं राग ।
रज्जब राजी एक कौं, दत दीपक धुनि जाग ॥१०॥

काया कुंभनी मैं रहै, सकति सरप औतार ।
साघू ज्ञाता गाड़री, इनके काढ़नहार ॥११॥

चौपई : मनुवा रावण रिधि सु परान, आसै आदित माहि धरान ।
कब कोइ जीव लषमण होइ, माया मारि उतारै सोइ ॥१२॥

साखी : सकति सजीवन जड़ी ज्यूं, दुरलभ लई न जाइ ।
को ल्यावै हणवंत ज्यूं, उरगिर सहित उठाइ ॥१३॥

मनसुमुरस्थल देस समि, सकति सलिल अति दूरि ।
साध सगर काढ़्ही, औरौं कढ़ै न मूरि ॥१४॥

मन समंद माया मुकत, सुरति सीप के माहिं ।
साधू मरजीवा बिना, रज्जब निकसै नाहिं ॥१५॥

ज्यूं अपछर आकास मैं, त्यूं हरि सिद्धिहिं जाणि ।
रज्जब सूर सु संत परि, उभै ऊतरै आणि ॥१६॥

नर उर हिमगिरि ज्यूं झरै, साधू सूरिज देष ।
जन रज्जब तन ताप मैं, बिगता बिगत बिसेष ॥१७॥

संसार सुई ज्यूं उठि मिलै, साधू चंबक चाहिं ।
सारा किसही का नहीं, बाबै बस्त सुबाहिं ॥१८॥

माया मन मिश्रत सदा, नख सख सानी राम ।
रज्जब रिधि काढन कठिन, महा सु मुसकिल काम ॥१९॥

जन रज्जब नर नाज मैं, उभै ठौर भरपूर ।
पै बाणी पाणी भेइये, तौ निकसै सक्ति अंकूर ॥२०॥

सुकृत का अंग

सकल जोग जिव को मिलै, कहु सुकृत किन होइ ।
रज्जब पहरै पुन्नि कै, नकरि नीद कछु जोइ ॥१॥

माया काया कारबी, प्राणहि परिहरि जाइ ।
ताथैं रज्जब समै सिरि, सुकृत लीजै लाइ ॥२॥

रज्जब पावक प्राण का, अंति निरंतर बास ।
तौ धन काढ़ौ धौम ज्यूं, पहलै धरौ अकास ॥३॥

जेता सुकृत कर लिया, तेता प्राण अधार ।
जन रज्जब धन धाम मैं, पीछै चलै न लार ॥४॥

सुकृत संबल कीजिये, इहिं औसर इहिं देह ।
जन रज्जब यहु सीख सुणि, परमारथ कर लेह ॥५॥

गृह दारा सुत बित्त की, यहु सब झूठी आथि ।
जन रज्जब रहती इती, सुमिरण सुकृत साथि ॥६॥

सरीर सहित सब जाइगा, कहूं कहा लग और ।
जन रज्जब जगदीस भजि, कछु सुकृत कौं दौर ॥७॥

सकल पसारा झूठ का, झूठी जग की आथि ।
रज्जब रहसी जीव कन, सुमिरण सुकृत साथि ॥८॥

सुकृत सिंघहिं देखतौं, कुकृत जाहिं तुरंग ।
ज्यूं रज्जब रबि की किरणि, तम तुंगनि ह्वै भंग ॥९॥

पुन्नि प्रभाकर कै उदै, पाप पुलहि ज्यूं तार ।
मन बच क्रम रज्जब कही, तामै फेर न सार ॥१०॥

धरम सुकाती करम की, पुन्नि पिसण है पाप ।
एक सु अंतक एक कौं, रज्जब रचे सु आप ॥११॥

रज्जब ताला पाप का, पुन्नि पूंची करि राखि ।
जीव जड्या ऐसे खुलै, साध बेद की साखि ॥१२॥

मनसा मैली पाप करि, पुन्नि पाणी करि धोइ ।
सुमिरण साबुन लावना, रज्जब ऊजल होइ ॥१३॥

अघ अनंत अहं तम कनै, जुग अनंत नहिं जाहिं ।
धरम राह देखत चलै, पाप प्यंड पल माहिं ॥१४॥

तुपक तीर बरछी बहै, कठिन काल की चोट ।
रज्जब कछु लागै नहीं, सत्ति सिपर की ओट ॥१५॥

सतियहुं का सत रहत है, बिघन न बिघनौ माहिं ।
परतषि पेखि पटूलिका, पावक परसै नाहिं ॥१६॥

आतम जननी ऊपजै, सुकृत सुत मणि मत्थ ।
जम ज्वाला मातहु टली, राज काज समरत्थ ॥१७॥

खैरि खैरि माहै रहै, यापरि और न खूब ।
रज्जब करि रंजसि नहीं, मिहरबान महबूब ॥१८॥

पापी की पीड़ा टलै, लै हृत पुनि का नाम ।
सो सुकृत किन कीजिये, रज्जब अज्जब काम ॥१९॥

चंद सूर गगनहि रहै, दान पुन्नि महि थान ।
रज्जब देणा अति भला, जेहिं छूटै ससि भान ॥२०॥

सुकृत सुत जीव सदा, द्वै उपगार सहेत ।
पिता सुजस राखै इहां, इहां सुरुचि फल देत ॥२१॥

पुनि पारस है कलपतर, कामधेनु धरम धन्नि ।
रज्जब पलटहिं प्रानपति, मांग्या मिलहि जु मन्नि ॥२२॥

सांई सुकृत सनमुखा, साध बेद की साखि ।
सत संतोषण प्राणपति, सती पुरुष उर राखि ॥२३॥

सोच रहित सुकृत करहिं, सो सुख लहैं अच्यंत ।
रज्जब माया ब्रह्म का, फलै कामना मंत ॥२४॥

सुकृत सुख सरवैं सदा, कुकृत दुख दातार ।
अब आगै आतम कनै, कदे न छांड़ै लार ॥२५॥

फिरि आवै तौ खैरि खजाना, प्रभु कन रहै पुन्नि उपगार ।
संकट मैं सुकृत सगा, मित्र सनेही दोसत यार ॥२६॥

हरचंद हेरि गहिये धरम, मन न डुलावहु कोइ ।
रज्जब रहतौं सत्ति के, सकति सबल फिरि होइ ॥२७॥

अहूंठ हाथ हरि हेत दे, तौ पावै उनचास ।
जन रज्जब जिव की फलै, सांई दासौ दास ॥२८॥

परमारथ मैं प्यंड दे, सो पिरथीपति होइ ।
तिन रोमहु राजा मिलहिं, नाहीं अचरज कोइ ॥२९॥

रज्जब रज मुख मेलिये, सो सहस्र गुन होइ ।
तौ छाजन भोजन साध कौं, देत न संकौ कोइ ॥३०॥

खैरि कहै सतरी गुणी, दत्ति सहस्र गुण लाहि ।
रज्जब बोले चूकि चषि, जे चहुं रोटयू पतिसाहि ॥३१॥

जे आप उतरि रथ देत हैं, परमारथ के प्यार ।
तौ बिबिधि भांति बाहन मिलहिं, है गै नर असवार ॥३२॥

सकल करहुं परि करन कै, कनक देन का राग ।
तौ रज्जब पाया तिनहुं, हाथौं ऊपरि दाग ॥३३॥

परमारथी पनिंग पति, सिष्टि भार सिरि लीन ।
तौ रज्जब प्रभु पहेम परि, नांव तिनहुं के कीन ।।३४।।

ब्रह्मण्ड बड़ा परमारथी, तौ आव बड़ी दी रब ।
ये प्यण्ड प्राण सब स्वारथी, बेगि मरै सो अब ।।३५।।

अरिल : नेकी ऊपरि धनि बदी, धिक्कार सु बोलिय
घटि घटि ब्रह्म बसत, तिनहुं मुख पाट सु खोलिय ।
पुन्नि पाप का फेर, सु पलटा आइया
देखौ बक्त्र बदंति, सु श्रवण सुनाइया ।।३६।।

साखी : रज्जब अवनि अकास बिचि, सतजत थंब सु दोइ ।
यो मंदिर आधार इह, बिरला बूझै कोइ ।।३७।।

षट दरसन अरु खलक की, लेणी दुवा दुलंब ।
रज्जब रहै असंखि जुग, रोप्या कीरति थंब ।।३८।।

परमारथ पिरथी बवै, बिभूति बीज हरि हेत ।
रज्जब रुचि भर नीपजै, सती पुरिष का खेत ।।३९।।

अतीत अवनि हाली सति, बाहौ सुकृत बीज ।
भूखा भोजन करि खड़ौ, समनि होइ द्यौ धीज ।।४०।।

रज्जब धरती धरम की, ब्रह्मौ बीज बिभूति ।
मेघ मिहर मीरा करै, आवै साखि सु सूति ।।४१।।

षट दरसन दल दुवां के, सती पुरुष कै संग ।
रज्जब बिघन न व्यापई, आड़ा सुकृत अंग ।।४२।।

रज्जब पावक पाप की, जालै प्यण्ड पराण ।
परम पुन्नि पाणी परसि, सीतल साध सुजाण ।।४३।।

कुकृत करम कुआगि में, सब जग जलमठि होइ ।
रज्जब सुकृत समंद मधि, तिसहिं नहीं डर कोइ ।।४४।।

रज्जब सुकृत सुकलपषि, आतम अनकन पोष ।
कुकृत अंध अंध्यार निसि, भागे भ्रामक दोष ।।४५।।

रज्जब कुकृत काल तजि, सुकृत समै सू आव ।
मनसा बाचा करमना, जे जीवन का भाव ।।४६।।

खैर खजाना जीव कन, प्यण्ड पड़त पुन्नि साथि ।
सो रज्जब किन कीजिये, धरम आपणै हाथि ।।४७।।

प्यण्ड पड़ै पुन्नि ना पड़ै, परलै पचन न होइ ।
रज्जब संगी जीव का, सुकृत सिवाय न कोइ ॥४८॥

माल मुलक सब जाइगा, सगे सरीर सहेत ।
जन रज्जब रहसी धरम, जो दीया हरि हेत ॥४९॥

सौदा इह संसार मैं, सुकृत समि नहिं कोइ ।
रज्जब सो किन कीजिये, जो आगे को होइ ॥५०॥

रज्जब करता धरम कौं, धुकपुक चितिह न आणि ।
आगे को संबल इहै, रे प्राणी परबाणि ॥५१॥

रज्जब ढील न कीजिये, दासा तन कर दास ।
उत सुकृत दीसैं संबल, स्यो सत्ती बस जास ॥५२॥

चौपई : संबल सुकृत तोसा खैर, रज्जब कह्या सु नाहीं गैर ।
खैर खजाना पुन्नि करि हाथ, जो बित चलै जीव के साथ ॥५३॥

साखी : तंदुल कोपी दो बटी, रोटी पईसा पोट ।
जन रज्जब सुकृत बध्या, समसरि कौ नहिं जोट ॥५४॥

रज्जब सांई लग सुकृत सदा, सुखी सुकृती होइ ।
पलटा पूरे पुरष का, मेटि न सकई कोइ ॥५५॥

द्रुपदि सुदामा क्या दिया, तिमिरल्यंग क्या दादू ।
भलै भाइ पावहुं पड्या, खानि उघाड़ी आदू ॥५६॥

द्रुपदि सुदामा दादू दतबि, तिमिरल्यंग का त्याग ।
रज्जब पातर पूजतैं, भृतहूं भूरि सु भाग ॥५७॥

पंच भरतारी पुन्नि का, कहा सुदामा दीन ।
जन रज्जब लघु दान परि, बड़हु बड़ी पर कीन ॥५८॥

देखि सुदामा द्रौपदी, दान तनक तुछ कीन ।
ता परिता के कनक घर, वाहि अमित पट दीन ॥५९॥

देणा सब ठाहर भला, जे कछु दीया जाइ ।
ताही माहि बसेख यहु, जु खरचै भगवंत भाइ ॥६०॥

हरि हित दसबन्ध खरच तौं, आवै दसा सु द्वारि ।
रज्जब राजा चोर जम, ले हरि सकैं न मारि ॥६१॥

सरबस दीजै तौ भला, नहीं त दसबन्ध काढ़ि ।
रज्जब अज्जब बात यहु, बहुत कहैं क्या बाढ़ि ॥६२॥

अतीत अवनि हाली सती, बीज बिभूति संभालि ।
कर मुकतौं मुकती किरषि, मूठ्यू मूंदी तहं ठालि ॥६३॥

किरपन सुगल थमादानि थन, अजा सु मुकरी माहिं ।
जन रज्जब श्रवते सुफल, नीझर नृफल सुजाहिं ॥६४॥

रज्जब दवा फकीर को, राजेसुर कौं दान ।
उभै ठौर अघ ऊतरै, मन बच क्रम करि मान ॥६५॥

असन बसन अधपत उदित, साधू दान असीस ।
सती जती बाछै भला, भला करै जगदीस ॥६६॥

जे आसिक अल्लाह के, सोई अतीतौं यार ।
ज्यूं रज्जब हित बींद कै, होत बरात्यूं प्यार ॥६७॥

खाणे की सब खलक कन, खुलावण की नाहिं ।
खालिक सकहुं खुलावई, कै खालिक कामहिं माहिं ॥६८॥

सुख दीये सुख पाइये, दुख दीये दुख होइ ।
उभै आंगना के अनंत, जन रज्जब करि जोइ ॥६९॥

आतम संबल सोभ जगि, तीजै सुख दाइक ।
जन रज्जब मुर काम ह्वै, कर सुकृत लाइक ॥७०॥

पेट भरया बहु पुन्नि करि, धाये धरम सु धन्नि ।
रज्जब भूख न भ्यासही, जुगि जुगि तिनकै मन्नि ॥७१॥

रज्जब रज रोटी भली, सुकृत सालण लाइ ।
आरति अहर सु लीजिये, भूख जुगनि की जाइ ॥७२॥

रज्जब पोषे पुन्नि के, सदा सुखी दरसंत ।
दुख पावैं नहिं दिल दिया, सुखदाई मनि मंत ॥७३॥

चतुर पहर संतोष ह्वै, पेट भरै निज अंग ।
परमारथ पर कै दिये, भूख सदा की भंग ॥७४॥

परमारथ पुनि पोरसा, पाया प्राण पसाव ।
रज्जब स्यावति भाव सिरि, घटै न खरचौ खाव ॥७५॥

जीव दया जगदीस दत, तब सुकृत सुत होइ ।
तब रज्जब पुन्नि पूत कौं, पावै बिरला कोइ ॥७६॥

जीवन जड़ी न जीव कन, राखी राम जुगोइ ।
दई देइ तौ पाइये, सुमिरण सुकृत दोइ ॥७७॥

परमारथ परलोक धन, स्वारथ है संसार ।
जन रज्जब जाणिर कही, तामैं फेर न सार ॥७८॥

मनिषा देही मौज मैं, ह्वै कर लीजै मन ।
रे रज्जब परलोक कौं, सुमिरण सुकृत धन ॥७९॥

सत की चेरी लच्छिमी, आदि कहैं सब कोइ ।
जे दलिद्र तौ सत नहीं, सत तौ लच्छी होइ ॥८०॥

रज्जब रिधि चंचल सदा, जैसे बर बिन बाम ।
पुन्नि पुरिष सुंदर सकति, नित निहचल तहि धाम ॥८१॥

सदन सरोवर सकति जल, सुकृत मोरी राखि ।
बिभूति बारि ज्यूं ठाहरै, सब संतन की साखि ॥८२॥

सूमहु सौं रिधि रूठि करि, हेरि छुड़ावहि हाथ ।
रज्जब राती सखी संगि, मुवौ न छोड़ै साथ ॥८३॥

रज्जब रिधि लोहू भरचा, तो सुकृत सीर छुड़ाइ ।
इहि कारी कर ऊबरै, नाहीं तौ मरि जाइ ॥८४॥

आरंभ भार अपार ले, तौ रिधि रुधिर मराइ ।
ताकौ जीवन जुगति यहु, सुकृत सींगी लाइ ॥८५॥

कंवला सही कपूर गति, मन बच क्रम है नाहिं ।
मोहन हित मिरचौं रहै, नाहीं तौ उड़ि जाहिं ॥८६॥

सक्ति सुमति अपणौं घर आवै, कुमति परे घरि जाइ ।
मंगलगोटा कैथ फल, नर देखौ निरताइ ॥८७॥

सुमति सत्य सुकृति मैं, सकति रहै ठहराइ ।
कुमतिहुं संग कुलक्षणहु, देखत लच्छी जाइ ॥८८॥

धरे माहिं करि अधरहिं पहुंचै, जो बित जीव चढ़ावै ।
काया माया छाजन भोजन, भाव सु भगवंत भावै ॥८९॥

रज्जब राखौ रिधि कौं, भाव भगति भंडार ।
भंडारी भगवंत भल, कोई सकै न टार ॥९०॥

रज्जब राखौ माल कौ, खैर खजाना माहिं ।
खालिक तहां खजानची, ख्यामति खलहल नाहिं ॥९१॥

रज्जब रिधि बहती सबै, रहता सुकृत धन ।
मनसा बाचा करमना, सो कछु कीजै मन ॥९२॥

माल धणी अरु माल कौं, मालिक मिलतौं येक ।
जैसे पावक परसतैं, कण कूकस न बमेक ॥९३॥

धन धणी धणियहुं चढ़ै, हुये सु होते आदि ।
कण कूकस व्योरा नहीं, पावक परसे बादि ॥९४॥

कै हरि सुमिरे ऊधरे, कै सेये कोइ संत ।
जन रज्जब द्वै काम की, बाकी और अनंत ॥९५॥

साधू घटि ह्वै आदरै, असन बसन कौ राम ।
रज्जब रिधि आई अरथि, और गई बेकाम ॥९६॥

अंतरजामी गरभ गति, साधू सुंदरि माहिं ।
रज्जब जाये एक के, दून्यूं पोषे जाहिं ॥९७॥

ब्रह्म बिरछ धरती धरचा, जड़ सु जती उणहार ।
सेव सलिल माली सती, सींचत फल दीदार ॥९८॥

रज्जब साधू पूजिये, साहिब कीजै यादि ।
दुनिया में द्वै काम की, बाकी की सब बादि ॥९९॥

चौपई : दत गोरख मोहमद चौबीस, बोधहुं बोध धरे गुर सीस ।
दरसनि दुनी अतीत अराध, रज्जब साधू माहिं अगाध ॥१००॥

साखी : षट दरसन चहुं बेद मधि, पूजा साध परसिधि ।
इनसे यूं सेया धनी, बोधि बताई बिधि ॥१०१॥

अंधूप रूपी आतमा, परमारथ सब ठाट ।
रज्जब रिधि सुक्रत लगी, सतपुरिषौं की बाट ॥१०२॥

बैरागर परमारथी, मुकता देइ समंद ।
त्यूं सतपुरिषौं की सकति, परमारथ ज्यूं यंद ॥१०३॥

बिबिधि घटा सुकृति स्रवहिं, धरम सु धरती आइ ।
रज्जब नौखंड नीपजै, दुख दालिद्र सु जाइ ॥१०४॥

माया बरषै मेघ ज्यूं, महंत मही परि आइ ।
अतीत अठारह भार लेहि, परमारथ मैं जाइ ॥१०५॥

रिद्धि रहंट ज्यूं बहत है, पुरिष पारीछैं पूरि ।
खलक खिता षट खेत मधि, पीवहु तन तृण दूरि ॥१०६॥

मकै मदीनै द्वारिका, जीव गया जगन्नाथ ।
पगहु न पहुंचै प्राणिया, जौलौं चलै न हाथ ॥१०७॥

पग चलाइ पिरथी चढ़चा, हस्त नालि हिरदै जीव ।
रज्जब चरनहु चाउ परि, कर कृत पहुंचै पीव ॥१०८॥

परमारथ पंथि ले गये, सकति मिलाई सीव ।
रज्जब करता साम धरम, द्वै दत पाया जीव ॥१०९॥

रज्जब पावै प्राणियहिं, साधौ के घर माहिं ।
सुकृत नसीणी सुरग की, सती पुरिष चढ़ि जाहिं ॥११०॥

पुन्नि पंथ बैकुंठ का, पुन्नि आतमा सु जाहिं ।
भागौं माग सु पाइये, साधू मंडल माहिं ॥१११॥

सीलव्रंत सुमिरण करै, अरु सुकृत की बाणि ।
रज्जब मनिषा जनम कौ, फल पाया तिन प्राणि ॥११२॥

रज्जब रिधि मैं एक फल, जे परमारथ होइ ।
नहीं त निरफल निरखिये, बिन सुकृत सहु लोइ ॥११३॥

रज्जब कुकृत गिरगिजा, करि ढोलण सु सुगम्म ।
सुकृत नालि सु सैल सिरि, ले जाणी सु अगम्म ॥११४॥

चौपई : रज्जब राम कहै दे रोटी, यापरि बात और नहिं मोटी ।
जती सती सीधै यहु ठौर, बाकी बहु बेकामी और ॥११५॥

साखी : छांछ जती सु रही सती, पै रूपी पुन्नि होइ ।
जन रज्जब निरदेहु कै, दूध न दतबी कोइ ॥११६॥

सती ऊधरै धरम सति, जती नाउं तत्त राधि ।
रज्जब येक दून्यूं भली, सब संतन की साधि ॥११७॥

भाव भगति बैराग मधि, सकति भगति सु गिरस्त ।
रज्जब कही बिचारि करि, सोधिर साधू मत ॥११८॥

सतियहिं सुकृत चाहिये, जती अजच संतोष ।
रज्जब द्वै बिन दोइ कै, दीसै दीरघ दोष ॥११९॥

जति तृष्णा सति सूम गति, द्वै ठाहर द्वै मार ।
जन रज्जब सांची कही, तामै फेर न सार ॥१२०॥

रीती मालारहट की, पाणी पुन्नि न कोइ ।
सत जत घड़ि बांधे बिना, कहुं नेपै क्या होइ ॥१२१॥

दानि पुन्नि गिरही धरम, बैरागी जति जाप ।
जन रज्जब द्वै काम की, बाकी सकल कलाप ॥१२२॥

सरवर तरवर सती कै, मुरठाहर मत येक ।
रज्जब जल दिल सम दृष्टि, यौं ही बड़ा बमेक ॥१२३॥

अरिल : बैरागीर बिहंग दास द्रुमि आवहीं,
माया छाया ठौर सबै सब पावहीं ।
उभै न राखहि अंग भंग नहिं जाहि रे,
रज्जब रोपे राम जुगल जग माहिं रे ॥१२४॥

साखी : सती तरोवर जती खग, बैठें आइ बिहंग ।
रज्जब अज्जब यहु मता, सब सों एकहि रंग ॥१२५॥

पंच दोइ पूजें परमारथ, आतम राम सगाई ।
सिसन सनेह सु स्वारथ सौदा, मन बच क्रम सु ठगाई ॥१२६॥

षट दरसन देखे खुसी, जग जीवन भावन मोचनं ।
रज्जब पोषै पंच द्वै, सती सपत ये लोचनं ॥१२७॥

खलक खिता षट खेत मधि, बाहौ सुकृत बीज ।
रज्जब निपजै भाव भरि, जे न होइ यूं धीज ॥१२८॥

षट दरसन षट खेत भल, जगत जिमी मधि जान ।
ग्यारसि बारसि बाहिये, निपजै एक समान ॥१२९॥

धारा तीरथ धार तलि, देस दिसंतरि नांहि ।
त्यूं रज्जब सुकृत भजन, समझि देख मन मांहि ॥१३०॥

जीव जमी सौं जात है, जप जल उभै अकास ।
रज्जब चढ़त न चषि चढ़ै, उतरत प्रगट प्रकास ॥१३१॥

अवनि भेट आकास कौं, अंभ अलोप सु जाइ ।
तापरि बरंभू व्योम ह्वै, बिपुल सु बरिषै आइ ॥१३२॥

रज्जब दे ले एक कौं, परमेसुर कै भाइ ।
मन मूरिख माया खरचतौं, सबका सरबस जाइ ॥१३३॥

जन रज्जब रिधि राम बिन, स्वारथ खरच्यूं हाणि ।
सुकृत सेवा साध का, यहु परमारथ जाणि ॥१३४॥

रज्जब रिधि स्वारथ गई, सो ठग चोर कुलीन ।
भगवंत भोग क्यूं नीबड़ै, हरि हित कदै न दीन ॥१३५॥

हाली भूलै भोग भरि, क्यूं छूटै जिव जाणि ।
त्यूं रज्जब रिधि राम बिन, स्वारथ खरच्यो हाणि ॥१३६॥

थाली छूटै भोग भरि, सती सु सहि सिर धार ।
सती जती सीझै सु यूं, रज्जब समझ बिचार ॥१३७॥

चौपई : करसा सती जती रजपूत, उभै राम राजा आगे भैभूत ।
गिरही भोग भरै भंडारि, बैरागी खाइ सीस उतारि ॥१३८॥

साखी : गाड़ी गांठि गिली गई, गाफिल काया साथि ।
रज्जब रिधि तेती रही, जु हरि हित खरची हाथि ॥१३९॥

रज्जब आतम अवनि परि, बाणी बरिषा होइ ।
उभै अंकूर न भ्यासहीं, तौ बीच बिघन है कोइ ॥१४०॥

साधू दरसन देखतै, दृग जु दुरै दिलि माहिं ।
बीज बल्या सो जाणिये, जो बरष्यूं ऊगै नाहिं ॥१४१॥

दरसन दाहा देखि करि, मुखां कंवल कुंभिलाइ ।
तौ रज्जब तिहि दास द्रुमि, सेवा फल को खाइ ॥१४२॥

रज्जब सेवा संत की, मन मैलै कर कीजै ।
सो कृषि कैसे नीपजै, भूमिर बाह्या बीजै ॥१४३॥

चौपई : दया धरम जे दिल मैं नाहीं, गह ला ज्ञान अज्ञान्यूं माहीं ।
यूं आगा क्यूं होइ न सामा, रज्जब आइ गये बेकामा ॥१४४॥

साखी : स्वारथ की गांठैं खुलीं, सुणि सतगुर की साखि ।
परमारथ पच्ची हुआ, साध बेद कहैं साखि ॥१४५॥

सुमिरण सेवा सबद मधि, सुकृत का अस्थान ।
मुर मंदिर सोषै चलैं, रज्जब संत सुजान ॥१४६॥

रज्जब सत सुकृत बिना, सूने सहर सरीर ।
असन अतीत न पावई, भूखा जाइ फकीर ॥१४७॥

सती बिना सूने सहर, सत्य सगाई नास ।
रज्जब ऊजड़ वोदरहुं, असन अतीत निरास ॥१४८॥

जती सती कौ पूछई, सबको देहिं बताइ ।
बस्ती मैं बस्ती उहै, नर देखौ निरताइ ॥१४९॥

चौपई : बस्ती बंदे ऊजड़ और, आये गये न पावैं ठौर ।
सुफल बृच्छ खग सैन्या बास, निरफल तरवर जाहिं निरास ॥१५०॥

दान निदान पुन्नि प्रबीन का अंग

रज्जब धरिये धरम कौं, सारै बासण माहिं ।
फूटे मैं जोख्यूं घणीं, हरि पुर पहुंचै नाहिं ।।१।।

जन रज्जब जेहि पात्र में, दह दिसि दीसै राइ ।
पाणी पुन्नि न मेलिये, तबहीं नीकसि जाइ ।।२।।

राम बिमुख ऊसर सबै, साध सिरोमणि खेत ।
जन रज्जब तहं बीजिये, राम राइ कण हेत ।।३।।

रज्जब सुरही सर्प समि, पात्र कुपात्रहिं जोइ ।
वहि तृण चरि अमृत स्रवै, वहि अमृत विष होइ ।।४।।

ठौर कुठौर न देखई, इंद्र उदार सु जोइ ।
पै रज्जब निपजै भली, त्यों ऊसर नहीं होइ ।।५।।

खार समंद मुकता सुकति, कदली केसर खेत ।
रज्जब निपजै ठौर जल, त्यूं पातुर पुनि हेत ।।६।।

सेबे कौं सांचा गुरू, भजिबे कौ भगवंत ।
जल दल कौ ये जीव सब, यहु रज्जब निज मंत ।।७।।

रज्जब जल दल सम दृष्टि, सेवा समुझे होइ ।
बुधि बेटी गुर बींद कौ, जान्यूं देइ न कोइ ।।८।।

गुरु पूज्या गुरू पूजिये, गुर पूजण की आस ।
रज्जब अज्जब ये कही, सुनहु सनेही दास ।।९।।

सुकृत निदान का अंग

तन मन मारिर नाव ले, बंदा ब्रह्म समान ।
दया धरम का दूजा डेरा, रज्जब किया निदान ।।१।।

रज्जब दीया पाइये, निरबैरचूं निरबैर ।
तब लग चाकर चूक चाकरी, तन मन किया न घेर ।।२।।

रज्जब दीया पाइये, मारचा मारै आइ ।
यहु सौदा संसार मधि, साहिब लिया न जाइ ।।३।।

निरबैरी निरमिलाप का अंग

पौणि पौणि की कहै न पौणी, सहरि बसै सब कोइ ।
निरबैरी नर नगर बिराजै, मेला जनमि न होइ ॥१॥

खाने बहुत खान सुलतानौ, देख दरोगहुं दोष न कोइ ।
कामि कमैती निसि दिन लागै, निरबैरचूं मेला नहिं होइ ॥२॥

आरंभ अटके आदमी, सरक्या रती न जाइ ।
निरबैरी न्यारे रहैं, क्यूं करि मिलै सु आइ ॥३॥

नर नापिग निरबैर जीव जल, हरि सु हंस सों आये ।
बिचि बिगते आतम अंभ दसि, सांई सूर समाये ॥४॥

तन तरकस के तीर थे, दह दिसि चलाये ।
सो फिरि बहुरि न मिलि सके, कछु रोस कसाये ॥५॥

बिबिधि भांति की बंदिग्यूं, बहु सेवक लाये ।
साहिब सबमें पैठ करि, सब ठौर रंजाये ॥६॥

पात्र कुपात्र का अंग

पात्र कुपात्र पिछाणिये, जे सिरजे करतार ।
रज्जब उनमें राम जी, उनमें बिसै बिकार ॥१॥

बिसै बिरचि रामहि रचै, सारा साधू पात्र ।
जन रज्जब सो पूजिये, सेवा सुफल सुजात्र ॥२॥

जन रज्जब ज्यूं ईख बिष, त्यूं पात्र कुपात्र बसेख ।
पाणी पुन्नि सु सींचिये, क्या क्या निपजै देख ॥३॥

खलक खबरि बन खारदा, बैन बीज बलि धूर ।
रज्जब बुधि बसुधा मधुर, उपजै अरथ अंकूर ॥४॥

सेवा का अंग

सेवा सोना सोलहां, निपजै तन मन माहिं ।
यहु प्राणी खित खानि यहु, तिहिं घरि टोटा नाहिं ॥१॥

खालिक खिजमति खूब खित, बैरागर की खान ।
राम रतन तहं नीकसै, सो ठाहरि उर आन ॥२॥

परमारथ पारस परस, हंस लोह ह्वै हेम ।
जन रज्जब जाणिर कही, मनसा बाचा नेम ॥३॥

बिबिधि भांति बित बंदगी, कठिन करी नहिं जात ।
सेवा कै बसि साइयां, सुर नर किती एक बात ॥४॥

रज्जब सेवा बंदगी, दिल दासा तन होइ ।
सतगुर सांई साध सुर, ताकै बसि सब कोइ ॥५॥

रज्जब अज्जब काम है, मन बच क्रम बंदा होइ ।
तौ बंदौं बंदा धणी, छान्यो छावै सोइ ॥६॥

बंदौ बंदा है धणी, हरि दासौं का दास ।
सेवग घरि सेवग सुण्या, रज्जब बिरद प्रहास ॥७॥

भगतबछल भगवंत जी, सुनिये दासौं दास ।
बहु बलिवंती बंदगी, बिरलै बंदौ पास ॥८॥

माया ब्रह्म महंत महीपति, मुलिक मसक्त मान ।
रज्जब बाल्ही बंदगी, मन बच क्रम करि जान ॥९॥

एक मना दृढ़ एक सों, तौ क्यूं न निवाजै देव ।
अंडे सों बच्चे भये, रज्जब सांची सेव ॥१०॥

खालिक मुलक सबकौं मिलै, माया मसकति माहिं ।
तथा बंदगी ब्रह्म परापति, कुल कारण कोइ नाहिं ॥११॥

बिबिधि बंदगी ब्रह्म पाइये, किरत अनेकौं कौला ।
अणसमझे कौं उलटी लागा, समझे कौं सब सौला ॥१२॥

महा मोहिनी बंदगी, मोहै सांई साध ।
रज्जब महिमा क्या कहै, सेवा सदन अगाध ॥१३॥

सेव पियारी साइयां, सेवा कै बसि साध ।
जीव सीव सेवा रचै, सेवा महल अगाध ॥१४॥

मन बच क्रम तिरसुद्ध ह्वै, मिलै प्राणपति दोइ ।
सेवा करि हाजिर हुआ, सेवा हाजिर होइ ॥१५॥

सेवा कर अकलि कलै, सेवा अबंध बधाइ ।
रज्जब सुर नर सेव बसि, सेवा बड़ी खुदाइ ॥१६॥

बड़ा बड़ी सौं बंदगी, जापर रीझै राम ।
तौ सेवा समि कौन है, संत सुधारण काम ॥१७॥

सेवग भाव सु सुरति मैं, सदा रहै ठहराइ ।
यहु बंदे की बंदगी, आगे खुसी खुदाइ ॥१८॥

सेवग मिलै न बीछुड़ै, जब दिल सेवा माहिं ।
रज्जब रच्या सु बंदगी, एक दूसरा नाहिं ॥१९॥

ब्रह्म बंदगी मैं सदा, सेवा मैं सब सिधि ।
खिजमति मैं अजमति रहै, रज्जब पाई बिधि ॥२०॥

रज्जब बैठी बंदगी, बंदे के दिल माहिं ।
सेवग सेवा मैं गरक, सो फल चाहै नाहिं ॥२१॥

सांई पद सब त्याग करि, सेवग सेवा लेइ ।
रज्जब महंगी राम सौं, सो सेवा नहिं देइ ॥२२॥

सांई सेवा सोध ली, सो किसही नहिं देइ ।
जुग प्रतिपालत जुग गये, अरन अघाने सेइ ॥२३॥

बाबा देइ न बंदगी, बंदे करहिं बिलाप ।
तौ सेवा समि कौ नही, जापर झगड़ै आप ॥२४॥

जी[illegible] जड़ी न जीव कनि, राखी राम जुगोइ ।
दई देइ तौ पाइये, सुमिरण सुकृत दोइ ॥२५॥

खिजमति खूबहुं खूब है, सेवा सब सुख रासि ।
बड़ौं बड़े होहिं बंदगी, जन रज्जब जिस पास ॥२६॥

सांई सेबै सबन कौं, सांई कोई नाहिं ।
मनसा बाचा करमना, मैं देख्या मन माहिं ॥२७॥

रज्जब बेटी राम की, भगति सु सेवा अंग ।
रिधि सिधि निधि लौंडी सबै, आडै तन के संग ॥२८॥

रज्जब बेटी बंदगी, जाई सिरजनहार ।
जा जुव कौं सो दीजिये, रिधि सिधि बांदी लार ॥२९॥

सांची सेवा बंदगी, जापर रीझै राम ।
दरस परस दासौं मिलै, सेवग सीझै काम ॥३०॥

भगवंतहि भावै भगत सौं, सांई मानी सेव ।
ब्रह्म कबूली बंदगी, रज्जब पाया भेव ॥३१॥

भाव गराही बंदगी, परि किसकै सो भाव ।
जापरि अनखानहु रुचै, खैबे का ह्वै चाव ॥३२॥

नांव ठांव निज थाल है, भाव भगति भोजन ।
यूं प्रसाद लेहिं प्रानपति, देहि सु साधू जन ॥३३॥

प्याले नांव नौ बात के, सीर सनेह पिलाइ ।
रज्जब अहि सेवा करत, सांई बलि बलि जाइ ॥३४॥

सेवा संकट बंदगी, दासा तन दुख होइ ।
रज्जब भूत भैभीत गति, आसंघि सकै नहिं कोइ ॥३५॥

रज्जब भंजन भाव कै, सदा रहै भगवंत ।
ज्यूं पंच तत्त के प्यंड मैं, जुगति सजोड्या जंत ॥३६॥

भाव भगति के भुवन मैं, गुर गोव्यंद ह्वै साध ।
जन रज्जब बड़ भाग भृत, यहु मन महल अगाध ॥३७॥

माया मनिष उपावई, हूनर करि सु हजार ।
त्यूं रज्जब हरि दरस कौं, सेवा भांति अपार ॥३८॥

अनेक भांति की चाकरी, चाकर चतुर अनेक ।
रज्जब पावै राज कन, माया मुद्रा येक ॥३९॥

बहुत टांगरे बहुत अंग, बणिजै बणिया जीव ।
रज्जब आरंभ इहि अरथ, भाल सु लच्छी पीव ॥४०॥

जीव महाजन अंग टांगरे, करि आये बणिये का साज ।
रज्जब बणिज करैं व्योपारी, केवल सांई संपति काज ॥४१॥

बिबिधि भांति के बहुत अंग, जिव सौदागर पाइ ।
एक बणिज बित टूटई, एक बणिज बधि जाइ ॥४२॥

बिबिधि सास्त्र सैन्या बिबिधि, बिबिधि सु आवध राज ।
एक भंग एक भागहीं, एक सु आवहिं काज ॥४३॥

नौधा करि नर निस्तरहिं, एक एक गुण राखि ।
रज्जब सो सीझे सुणै, बेद बोध की साखि ॥४४॥

सकल गुणहु संजुक्ति जन, सो तौ आवै आप ।
पै एक सुलक्षण होइ मन, ताहि न तीन्यूं ताप ॥४५॥

बारहिं सोलह दुरत हैं, राहु केत की छांहिं ।
रज्जब गृह उगृह समै, सकल कला खुलि जाहिं ॥४६॥

रज्जब राखौ बंदगी, जे लघु दीरघ होइ ।
त्यूं कर अंगुरी हालतौं, दाग न देवै कोइ ॥४७॥

रज्जब रद्द न कीजिये, जे नुकता निज होइ ।
सांच ठेलतौं सत्र हरि, बुरा कहैं सब कोइ ॥४८॥

केसरि करि कांटा चुभ्या, काटचा किसही प्रान ।
सेवा मानी स्यंघ नै, तौ भूत गति सति जान ॥४९॥

कुरुड़ी खौरै कूंकड़ी, केवल कण ही काज ।
चुगै चुगावै चीटलहुं, काढ़ि सुरौड़ी नाज ॥५०॥

गुर मत नाई नांव धर, भाव बीज बहु बाहि ।
रज्जब हरि भरि देहिंगे, हाली जिव की चाहि ॥५१॥

नांव नाज निज बाहिये, ऊगे सेवा घास ।
रज्जब सो क्यूं काटिये, सहसगुणी कण आस ॥५२॥

गुर सेवा सिष प्राण की, सिष सेवा गुर गात ।
रज्जब दून्यूं दास हैं, नहिं स्वामी की बात ॥५३॥

अंतरजामी गरभ गति, साधू सुंदरि माहिं ।
रज्जब जाये एक के, दोन्यूं पोषे जाहिं ॥५४॥

पंचौ पोषे पोषिये, देखौ घटि घटि प्रान ।
तैसैं रज्जब राम जी, दीवानौ दीवान ॥५५॥

साधू निरमल आरसी, हरि आभौं बिन भान ।
रज्जब भोजन भाव बिचि, अनखानौ सो खान ॥५६॥

सेवा सुमिरण का अंग

आरंभ करत न हरत है, अबला का आधान ।
तौ सेवा सुमिरण क्यूं घटै, समुझौ संत सुजान ॥१॥

संकट नाहीं सेस कौं, जद्यपि सिर परि सृष्टि ।
रज्जब भंग न भजन मधि, परमारथ मैं दृष्टि ॥२॥

बृच्छ बधौतर ना घटै, मिटहि न फलहु सु पोष ।
तौ रज्जब भृत कृत करत, भजन न उपजै दोष ॥३॥

बादल बिद्याधर फिरहिं, पै बारि न बिद्या छीन ।
तौ टहल करत टहलै नहीं, जे उर हरि सौं लीन ॥४॥

गुर सेवा गोव्यंद भजन, उभै बात बित येक ।
रज्जब बीरज दालि द्वै, अंब अंबृपा येक ॥५॥

गुली बंध द्वै दाल कैं, बीज्यूं बिरछ सु येक ।
त्यूं सुमिरण सेवा धणी, रज्जब समझ बमेक ॥६॥

सुमिरण सुकृत सौं भला, सब काहू का होइ ।
रज्जब अज्जब उभै गुण, करत न संकहु कोइ ॥७॥

जन रज्जब गढ़ ज्ञान कै, दीसै द्वै दरबार ।
एकै सुमिरण संचरै, एक पुन्नि व्योहार ॥८॥

जन सुमिरण सुत ऊपजैं, तहं परमारथ होइ ।
रज्जब देखौ दृष्टि सौं, सदा समीपी दोइ ॥९॥

जहं सुमिरण सुत ऊपजैं, तहं दासा तन दूध ।
मन बच क्रम रज्जब कही, बाति बिमल तिर सूध ॥१०॥

सुत सुमिरण जीवन जुगत, पै परमारथ पोष ।
रज्जब देखौ देखिये, द्वै कै द्वै बिन दोष ॥११॥

ओषदि बिन पछ क्या करै, पछ बिन ओषदि बादि ।
यूं सुमिरण सुकृत अमिल, उभै न पावहिं दादि ॥१२॥

जीव जगत गुर नांव निज, यूं सुकृत रूप सरीर ।
यूं उभै मिलत आनंद अमर, मिरतगि अमिल सु बीर ॥१३॥

ब्रह्म आतमा सुमिरण सेवा, जगपत जोड़ा साज ।
इनहिं सुनि सुख सुत उपजै, अमिल तहां दुख राज ॥१४॥

सेवा सुमिरण पाव प्राण कै, हरि के मारग जोग ।
इन चरनौ चलि जाइ ब्रह्मपुर, बिचि बल बिरह बियोग ॥१५॥

तब लग मात्रा काम की, देखौ आषिर संग ।
जन रज्जब रामहि लगे, सबल सुकृती अंग ॥१६॥

राज काज की देखिये, चतुरंग सेन्या संग ।
तैसैं रज्जब नांव कन, सकल सुकृती अंग ॥१७॥

श्री मंगल कौ तार बहु, सो सुर साधन साज ।
त्यूं रज्जब सुकृत सबै, नांव निरूपन काज ॥१८॥

सुकृत सेना गंध सब, मिले अरगजा होत ।
रज्जब लाइक लावहीं, नांव निरपती गोत ॥१९॥

रज्जब पंषी नांव परि, पंष सबै सुकृत ।
उभै अंग एकै भये, अगम अकासहिं जत ॥२०॥

सकल प्रानपति साइयां, त्यूं सुकृत पति नांव ।
उभै अंग लागै इनहु, जन रज्जब बलि जांव ॥२१॥

सत जत सुमिरण मिश्रत का अंग

सत जत सुमिरण सारिखा, जिव कै सगा न और ।
वहि सुखदाई प्रवति वह, वह पहुंचावै ठौर ॥१॥

सत सुखई जति जत जतन, नाइ लगे निस्तार ।
जन रज्जब जग जीव कौं, तीनि सगे संसार ॥२॥

नर निस्तारा नांव लगि, पुनि राखै सत जत ।
रज्जब कही बिचार करि, सोधिर साधू मत ॥३॥

सीझे सीझै सीझ से, सत जत सुमिरण माहिं ।
मनसा बाचा करमना, चौथी ठाहर नाहिं ॥४॥

रहति सहति सुमिरण करै, सतबादी अरु सूर ।
रज्जब तिन सौं राम जी, कहौ किती यत दूर ॥५॥

सुमिरण सुकृत सील ब्रत, जिनकौं दे करतार ।
रज्जब पाई मौज मुर, धन्न जनम औतार ॥६॥

रज्जब जत मैं जोग सब, धरम दया अस्थान ।
नांव ठांव निरगुन रहै, मन बच क्रम करि मान ॥७॥

सत जत सुमिरण मैं रहै, सांई साधू दोइ ।
जा तनि जोवै जगत गुर, ठाहर डेरा होइ ॥८॥

धन सरीर सुकृत करहिं, जप तप ते प्रतिपाल ।
रज्जब पाई मौज मुर, भाग भले तेहि भाल ॥९॥

रज्जब सुमिरै राम जी, सत जत सुमिरण साज ।
मन बच क्रम तारहिं तिरहिं, जग जलनिधि सु जहाज ॥१०॥

सील रहै सुमिरण गहै, सत संतोषण नेह ।
रज्जब परतषि राम जी, प्रगट भये तेहि देह ॥११॥

एक रहत रंकार रत, तीजै सती सु होइ ।
रज्जब पाई मौज मुर, ता सम और न कोइ ॥१२॥

हरि हिरदै न बिसारिये, यंद्रिव राखि जतन ।
रज्जब सत जत माहिं ले, पाये प्राण रतन ॥१३॥

यंद्रचूं जत हाथौं सती, मुख मीठा उर नांव ।
जन रज्जब ता संत की, मैं बलिहारी जांव ॥१४॥

दृग दरसन साधू सुखी, रसना रटि रंकार ।
रज्जब आतम राम रुचि, ते बिरला संसार ॥१५॥

सांच बांच माहैं सदा, सील सिसन ठहराइ ।
रज्जब जन रंकार रत, महिमा कही न जाइ ॥१६॥

सांच सहित सुमिरण करै, सतबादी जिव जंत ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, नमो नमो निज मंत ॥१७॥

जत मत माहै पाव दृढ़, सुमिरै सांई नांव ।
रज्जब सत सुकृत लिये, ताकी मैं बलि जांव ॥१८॥

सुमिरण सुकृत सांच बांच गुर, प्राण सनेही पंच ।
रज्जब रहिये सगहुं मैं, तौ न लगै जम अंच ॥१९॥

सुमिरण सुकृत सील सांच सों, साहिब हासिल होइ ।
चारयूं जुग, चारयूं सगे, रज्जब देखौ जोइ ॥२०॥

सुमिरण सुकृत श्रवण धरि, सांच सील परबेस ।
चारि पदारथ प्राण गहि, यहु उत्तिम उपदेस ॥२१॥

भाव भगति सुकृत लिये, जे जत सुमिरण होइ ।
मनिषा देही चतुर फल, पावै बिरला कोइ ॥२२॥

आदम की औलादि कौ, बड़े च्यार ये काम ।
सात सहित सत जत लिये, रज्जब सुमिरै राम ॥२३॥

मनिषा देही चतुर फल, भाव भगति जत जाप ।
रज्जब दीये राम जी, आदम कौं ये आप ॥२४॥

भाव भजन भामा रहित, पुलि लै सत संतोष ।
पंच पदारथ पाइये, रज्जब रहिये मोष ॥२५॥

दया धरम निरबैरता, सांचर सुमिरण माहिं ।
पंच पदारथ कर चढ़ै, रज्जब टोटा नाहिं ॥२६॥

रिधि सिधि निधि मुखत्यूं सहत, रतन पदारथ सब ।
रज्जब पावै राम सौं, जीव सु सुमिरै अब ॥२७॥

चौपई : भाव भगति सत जत संतोष, ज्ञान ध्यान धीरज धुनि मोष ।
षिमा दया दासा तन लीन, रतन सु राम चौदहा कीन ॥२८॥

साखी : भाव भगति गुन ज्ञान गरीबी, सांच सील संतोष ।
दया धरम पतिव्रत षिमा, नित पारष प्रभु पोष ॥२९॥

बप बलि बिद्या बुद्धि बल, बखत बली बलराम ।
रज्जब पाये पंच बल, क्यूं न सरै जिव काम ॥३०॥

प्यंडै उपना राज कुल, पान गुरू मत मधि ।
रज्जब पाई मौज मुर, यापरि क्या दे बधि ॥३१॥

रज्जब अज्जब बस्त ली, साहिब जी का नांव ।
मनिष देह का फल मिल्या, इह औसर इह ठांव ॥३२॥

रत बिक्रत का अंग

जा माया मैं जग खुसी, साधू के दुख सोइ ।
रज्जब रजनी एक मैं, घूघू चकवा जोइ ॥१॥

जा जल सौं बन बृद्धि, सोइ जवासै हाणि ।
रज्जब रिधि जीवन सबौ, साधौ मृत करि जाणि ॥२॥

रज्जब सुख संसार का, साधू कै देख हाणि ।
जीवहु जीवनि मीच मुनि, रत बिक्रत रति जाणि ॥३॥

साधू असध यूं सक्ति मधि, ज्यूं मुराल जल मीन ।
रज्जब दीसै भिन्न गति, होतहुं अंभ सु भीन ॥४॥

एक कपूत मातहिं भषै, एक मात सुत खाइ ।
बिभूति सु बीछनि व्यालनी, नर देखौ निरताइ ॥५॥

जो तत चौरासी चरै, ताकौं चुगै चकोर ।
ऐसे माया मनिष मुनि, देख्या द्वै दिस ठौर ॥६॥

अरिल : चौरासी लख जंत सुसंत चकोर हैं,
बहनी प्रगट बिभूति बहुत आतम दहैं ।
एकहु ऐन अहार एक संहारिये,
एकहु जीवनि जड़ी एक पुनि मारिये ॥७॥

साखी : बरतनि बरतै साधु सिध, सोई सकति संसार ।
रज्जब रिधि जीवनि तनहु, मन मनि भिन्न बिचार ॥८॥

माया के त्यागे मनिष, आपदवंत अपार ।
रज्जब चलहिं बिभूति तजि, ते बिरला संसार ॥९॥

रज्जब रूठा रिद्धि सौं, कोई कोटि मधि येक ।
मन माया सौं मिल चलै, ऐसे प्रान अनेक ॥१०॥

सकति सूर सम देखिये, नर नैना सु अनेक ।
उभै उभै अंग मिलि चलैं, तहं घूघू कोइ येक ॥११॥

चौरासी चेतनि ह्वै, माया मेघ की पोष ।
रज्जब बासा जगि जुदे, दून्यूं उपजै दोष ॥१२॥

रज्जब मन माया बंधे, ज्यूं अहि कठिन करंड ।
त्यागी ताषा क्यूं बंधै, जामैं अगनि प्रचंड ॥१३॥

माया दीपक देखि करि, नैन नरौं ह्वै पोष ।
तहां उदरें पतंग जिव, तिनकौं उपजै दोष ॥१४॥

काया काष्ट प्राणी पावक, सांई सुन्नि समान ।
इन दून्यूं पलटैं सो पावैं, लौजै पद निरबान ॥१५॥

अरबाहि तलै औजूद कै, तब लग माया रूप ।
प्राण पुरिस जब प्यंड परि, तब निज तत्त अनूप ॥१६॥

ओंकार ऊपर सकति, बूड़े प्राण सुवार ।
रज्जब रिधि आतम तलैं, ते तिरि लंघे पार ॥१७॥

काया मसक बिषै जल भरिया, यहु जल जलमैं भारं ।
सो रीती करि भरौ ज्ञान दम, रज्जब उतरौ पारं ॥१८॥

काया सिर धरि बूड़िये, तन तलि दे तरि जाइ ।
जन रज्जब यूं जानि लै, जीवन मरन उपाइ ॥१९॥

रज्जब बूड़ै आतमा, सिर परि सिला सरीर ।
सो बप बोहित पांव तलि, तिरिये जल गंभीर ॥२०॥

हंस अंस दे हीर ले, मिले सु माया मंड ।
प्यंड प्रान न्यारा भये, सहज तजे ब्रह्मंड ॥२१॥

प्राण प्यंड पहराइये, तबहीं सकल उपाधि ।
न्यारै नाराइन कल्या, सहजै होइ समाधि ॥२२॥

गुड़ महुवा अरु बेर जड़, अगिन उदकि मिलि मद्द ।
ये रज्जब न्यारे निर्मल, संगति ही सों रद्द ॥२३॥

नर नारी का बंद दृढ़, मुकता मदन खुलान ।
रज्जब समझे उभै घर, संकट मुकत सुजान ॥२४॥

एक गये निज काम करि, एक गये बेकाम ।
रज्जब एक बिमुखे बसत, एक सनमुखे राम ॥२५॥

सुमति कुमति का अंग

रज्जब मन माया सब ठौर है, पै सुमति कुमति का फेर ।
वह पहुंचावै सुरग कौं, वहि नरकि न जाता बेर ॥१॥

सुमति पंथ सौ सुरग का, उत्तिम ऊंचे जाहिं ।
दुरमति मारग दुरमती, रज्जब नर किस माहिं ॥२॥

दुरमति दिल दीरघ दुखी, सुमति सदा सुख रासि ।
जन रज्जब जोइर कही, देखौ सकल बिमासि ॥३॥

कुमति कुकरमहु कंद है, सुमति सुकृतहुं मूल ।
जन रज्जब जाणी जड़ी, उभै एक अस्थूल ॥४॥

रज्जब बंदा भाव का, गुण औगुण सु खिलार ।
एकहुं जीत्यूं स्वर्ग है, एकहुं नरक बिहार ॥५॥

आदम ईदम औलिया, आदम ईदम होइ ।
सूर स्वान मनिषा सही, रज्जब लक्खल जोइ ॥६॥

दास भाव सुत सुमति का, मोहै आतम राम ।
कुमति कूखि अभिमान ह्वै, मां बेटे बेकाम ॥७॥

पांच तत्त सो धरम ह्वै, पंच तत्त कर कर्म ।
बरतणि ज्ञान अज्ञान की, रज्जब लाह्या मर्म ॥८॥

इंद्री आभे ऊनबन, तब लग खिवणि खिवाहिं ।
समझि सुन्नि सत के फिरे, मनसा बीज बिलाहिं ॥९॥

आतम अंभ अकास में, तब लग नीचे जाहिं ।
जन रज्जब तन त्यागतैं, उभै अकास समाहिं ॥१०॥

अनल अंड अज्ञान गति, तब लग नीचे जाहिं ।
रज्जब पाये ज्ञान पर, उलटे सुन्नि समाहिं ॥११॥

अंडा अवनि न छांड़ई, बिना पंष परगास ।
रज्जब रहसी रज पड़्या, गम्म न गगन निवास ॥१२॥

तेरू तोयं तिरि चलैं, अतेरू जल बूड़ि ।
कुट पंषी पिरथी पड़्या, सपंषा जाई ऊड़ि ॥१३॥

अचेत अंग लोहामई, छित छांड़ै नहिं अंग ।
रज्जब सो रज त्यागि दे, चेतन चंबक संग ॥१४॥

नरक नहीं निहकाम कौं, तापरि करहु रनबाद ।
देखौ दुरमति घी बिना, दोजक नहीं दमाद ॥१५॥

सुरग अस्थाने सुख नहीं, दुख नहिं दोजक्र माहिं ।
रज्जब सीतल तपत जिव, आपद साले जाहिं ॥१६॥

अगनि अज्ञानी देखिये, ज्ञानी सीतल नीर ।
रज्जब दून्यूं ठौर का, व्योरा पाया बीर ॥१७॥

दुरमति दारू सौं भरे, बप सुआन बिधि माहिं ।
रज्जब त्रिगुणी जरे बिन, निहचल उभै सु नाहिं ॥१८॥

कठिन कुमति की गांठि है, दई मुगद मति घोलि ।
जन रज्जब सो सुमति बिन, कौई सकै न खोलि ॥१९॥

मूंजि जेवड़ा मुगद मति, गांठि गरग की देइ ।
जन रज्जब खोलण मतै, ता मसतौ ये भेइ ॥२०॥

कूवै कच्छिब कोल धरि, त्यूं कुमति सु पाया माहिं ।
जन रज्जब तीन्यूं ढहैं, कबहूं उबरै नाहिं ॥२१॥

सक्ति उभै गुणी का अंग

चौपई : माया बेड़ी बेड़ी माया, हरि सिद्धी का भेद सु पाया ।
नरक नसेणी सरगि बिमान, रज्जब रिधि के दोय बखान ॥१॥

साखी : स्वारथ परमारथ सकति, तौ धृग माया धन्न ।
रज्जब रुचि सौं काढ़ि ल्यो, जो है जाके मन्न ॥२॥

परमारथ पहुपै मिलै, स्वारथ पड़ै अहार ।
रज्जब त्रिगुणी तिली मैं, समझि करौ व्योहार ॥३॥

घोड़ थोड़ा कौन दिसि, चढ़ि चौगान खिलाइ ।
यूं स्वारथ परमारथहिं, सकती चलै संघाइ ॥४॥

चौपई : माया ब्रह्म ब्रह्म सोइ पाया, काया काष्ट भेद सु पाया ।
जागे जोति सोवतें कठै, समझै नाहिं सु मूरिख सठै ॥५॥

साखी : अठार भार उभै गुणी, हरि सिद्धी गुण दोइ ।
याही मैं जीवत जड़ी, याही सो मृत होइ ॥६॥

इक बहनीर बिभूति मैं, दो दो गुण इन दोइ ।
एक बधै इक बालियहि, बन बप देखौ जोइ ।।७।।

रज्जब माया मन सम, बैरी मीत न होइ ।
कुकृत उपजै इनहुं सौं, इनसौं सुकृत होइ ।।८।।

जिभ्या रूपी जीव है, दादमई सु सकति ।
ये सास्तर रसना हुये, समझ्या साधू मति ।।९।।

माया जड़ चेतनि का अंग

रज्जब जड़ चेतनि द्रसै, गुर ज्ञातहुं के संग ।
लोहा पारस मिरतग जीव ते, परसत पलटै अंग ।।१।।

नर नग मादा थानर जंगम, बिछुरे बहुरि मिलाहिं ।
यूं माया मुइ जीवति देखहिं, मुनिवर नैनौ माहिं ।।२।।

हाथा जोड़ी मूसल मेलै, चंबक सुई चलावै ।
जन रज्जब जड़ चेतन दीसैं, जे सतगुर दिखलावै ।।३।।

रज्जब बसुधा बीज जड़, मिलतौ चेतनि होइ ।
तौ दीसैं सब जीव ते, मूवा नाहीं कोइ ।।४।।

काचा ऊगै कूभनी, पाप का काया माहिं ।
जलदल दीसै जीव तैं, कहौ कौन बिधि खाहिं ।।५।।

माया अमर मरै नहीं, बाली बल न घटाहिं ।
रज्जब रिध दारू दसा, दगधी दुंग उड़ाहिं ।।६।।

सितिया सकति समानि है, संकट स्वाद सु पुष्टि ।
माया मिसरी मरदत दीपहिं, देखै कौ दिब दृष्टि ।।७।।

चौपई : रज्जब ओषदि रोग लड़ाई, जड़ौ माहिं चेतन गति पाई ।
तौ मूवौ मूवा सों कोइ नाहिं, जीवत गति दीसै सब माहिं ।।८।।

साखी : पंच तत्त जीवहिं सदा, आतम अमर अनादि ।
जन रज्जब बिछुरहिं मिलहिं, मूये कहैं सु बादि ।।९।।

ब्रह्म कामि ब्रह्मंड सु चेतनि, रज्जब रजासु होइ ।
मुई जीवती माड कौं, बूझै बिरला कोइ ।।१०।।

चौपई : माया मनसा मरै न कबहूं, जाल्यूं भूत होत है अबहूं ।
ज़ड़ चेतनि देखी हरि सिद्धी, मुई जीवतौं खाइ सु गिद्धी ।।११।।

गुड़ महुवा अरु बेर जड़, जल ज्वाला मिलि मद्द ।
यूं पंच तत्त मिलि माया पाकी, जीवकरन कौ रद्द ॥१२॥

रज्जब मुई न मिरतगा, अदभू ऊगै माहिं ।
अंतक मुखि अबला भये, तनै तनैया नाहिं ॥१३॥

माया का अंग

रज्जब आतम राम बिचि, कनक कामिनी कोट ।
यहु आभा अंतरि इहै, यहु पड़दा यहु वोट ॥१॥

माया बांध्यूं मन बंधै, खोल्यूं खुलता जाइ ।
रज्जब ग्रह उग्रह कह्या, नर देखौ निरताइ ॥२॥

ब्रह्मंड छिप्या फूलहु तल, केतक बड़े सु जोइ ।
त्यूं लघु माया दीरघ ब्रह्म परि, जीव सु आड़ी होइ ॥३॥

मन माया सों बंधि करि, निहचल कदे न होइ ।
रज्जब पींडा चाक परि, अस्तिर सुण्या न कोइ ॥४॥

रज्जब माया मिलत दुख, बिछुरत बिहरै प्रान ।
करवत रेती साण कै, आवण जावण जान ॥५॥

बणि अनार बित आये फाटैं, नीर गये परि फाटैं ताल ।
त्यूं रज्जब संपति बिपति, मन कौ करै बिहाल ॥६॥

रज्जब रिधि बाहिली रमत ही, जीव माहिला जाइ ।
तौ मन माया मीन जल, नर देखौ निरताइ ॥७॥

रज्जब राचहिं रिद्धि सों, मिलहि मानबी आइ ।
बिरचै सोइ बिभूति बिन, जब सकति सदन सौं जाइ ॥८॥

धर धामनि पहु पुरिष गति, स्रोवन सुत उनहार ।
रज्जब जातग जार कै, भ्रम भूले भरतार ॥९॥

माया मारै मीच ह्वै, बिण बाछीही आइ ।
रज्जब सिध साधिक डसे, सो टाली नहिं जाइ ॥१०॥

जो माया मुनियर गिलै, सिध साधिक से खाइ ।
ता माया सों हेत करि, रज्जब क्यूं पतियाइ ॥११॥

एक गये नट नाच करि, एक कछे अब आइ ।
जन रज्जब एक आइये, बाजी रची खुदाइ ॥१२॥

माया तरवर पत्र घट, इक उपजै इक जाहिं ।
रज्जब पूरण दसौ दिस, रीता कबहूं नाहिं ॥१३॥

ज्यूं सूरिज दीसै समुंदि मैं, मीन मरै नहिं कोइ ।
त्यूं रज्जब माया मगन, हरि गुन लिखत न होइ ॥१४॥

पड़दा परबत पलक का, उभै एक करि जानि ।
जन रज्जब जोख्यूं इहै, हरि देखणि की हानि ॥१५॥

नामरदौ भुगती नहीं, मरद गये करि त्याग ।
रज्जब रिधि क्वारी सु यूं, पुरिष पाणि नहिं लाग ॥१६॥

चेरी के चेरी किये, चौरासी लख जंत ।
तौ रज्जब कहि कौन है, सकति समान महंत ॥१७॥

रज्जब सकति सुमेर समि, चरन चकहुं दिढ़ि बास ।
सो ठाहर छोड़ै नहीं, छाया निस नर नास ॥१८॥

भ्यौं नगदी परि होत है, चाकर मनिषा खान ।
सो सब एक समानि है, रज्जब फेर न जान ॥१९॥

माया मुखि बोलै नहीं, सदा लिये चुप चार ।
रज्जब बकते सब फिरैं, इस मौनणि की लार ॥२०॥

सक्ति शिव सोध का अंग

ब्रह्मंड प्यंड प्राणी सहित, यहु सब रिद्धि सरीर ।
रज्जब पावै कौन बिधि, सक्ति समंदर तीर ॥१॥

ब्रह्मंड प्यंड जिव जोति लगि, मधि माया मुर रूप ।
रज्जब निकसै कौन बिधि, रिधि छाया हरि कूप ॥२॥

ओंकार आतम सहत, तन मन सत्ति सरीर ।
रज्जब न्यारा रिद्धि सों, कौन कौन बिधि बीर ॥३॥

ब्रह्मंड प्यंड माहै रहै, पुनि मन मनसा माहिं ।
रज्जब रमहिं सु रिद्धि मैं, बाहरि कहिये नाहिं ॥४॥

लागी सों त्यागी तबहिं, मोहि कहौ समझाइ ।
एक ब्रह्म दूसरी माया, यहु संसा नहिं जाइ ॥५॥

जन रज्जब मन सुन्नि समि, बादल मैं सु बिभूति ।
सरगुण निरगुण संगि सों, क्यूं काढ़िये सु सूति ॥६॥

माया बादल बार गति, आतम सुन्नि समान ।
सरगुण निरगुण सकति ह्वै, रज्जब रिधि बिधि सान ॥७॥

ज्यूं कूकस कण मैं रहै, त्यूं माया मधि प्राण ।
जन रज्जब यहु जुगलि यूं, करै कौनै बिधि छाण ॥८॥

ज्यूं कायहि छाया लगी, त्यूं ही छूटै नांहि ।
त्यूं रत बिकृत रज्जबा, दीसै माया मांहि ॥९॥

पाणी मैं प्रतिव्यंब देखिये, नहीं त दीसै नांहि ।
रज्जब जीवै जीव यूं, माया काया मांहि ॥१०॥

सक्ति सलिल माहै द्रसै, प्रतीव्यंब परि प्रान ।
जल गह्वै नाहीं नहीं, समुझौ संत सुजान ॥११॥

सरीर सुखी ह्वै सक्ति मधि, औरै देह गरास ।
बिन माया घरि घरि फिरै, छाजन भोजन आस ॥१२॥

प्यंड प्राण मैं माया सानी, ज्यूं आटै मैं लूंण ।
सुमिरण सितिया स्वाद ढांकिये, मिली सु काढ़ै कूंण ॥१३॥

रज्जब बाल बिभूति के, मूल सुतन मन मांहि ।
कोटि बार काटच्यूं अकट, जड़ निकसै सू नांहि ॥१४॥

सुन्नि सरूपी साइयां, बादल मैं सु बिभूति ।
रज्जब परगट गुपत ह्वै, सदा रहै इह सूति ॥१५॥

सलिल सूर मैं सरगुण निरगुण, पुनिह पेख तू पाणी ।
जीव ब्रह्म मैं ऐसे दीसै, प्रगट गुप्त गति जाणी ॥१६॥

जीव ब्रह्म मैं सरगुण निरगुण, तब लग माया मान ।
रज्जब रजतज काढ़तौं, एकमेक भिन जान ॥१७॥

चौपई : जीव ब्रह्म मैं तब लग माया, एकमेक भिन भेद सु पाया ।
ज्यूं सुन्नि माहैं आभै नीर, सरगुण निरगुण होंहि सरीर ॥१८॥

साखी : पान फूल फल सब गये, तरु नरु सूके अंग ।
रज्जब गति जामण मरण, छाया माया संग ॥१९॥

चौपई : दीसै बाहर भीतर बैठी, जामण मरण सु आगै पैठी ।
माया जीव जीव सोइ माया, रज्जब छुटै न छूटै काया ॥२०॥

साखी : काल कया सू काढ़ई, पै माया कढ़ै न मन्न ।
तौ बिरकत ह्वै कौन बिधि, समझौ साधू जन्न ॥२१॥

सुपनै तजै सरीर कौ, तौ तन गया न त्यागि ।
त्यूं बिकृत सु बिभूति मधि, जे देखिहि जिव जागि ॥२२॥

चौपई : एक ब्रह्म दूसरी माया, जीव जीव का भेद सु पाया ।
सक्ति समंदर जिव जलचरा, भरम पुकारै बाहरि परा ॥२३॥

साखी : तन मन मनसा जीव लग, यहु माया मुरजादि ।
रज्जब सुरति न ये तजैं, त्यागी कहैं सु बादि ॥२४॥

सक्ति सौंज सब देखिये, ब्रह्मंड प्यंड लग प्रान ।
रज्जब रट बिन षट दरस, माया मैं सब जान ॥२५॥

षट दरसन अरु खलक सब, माया के मुख माहिं ।
रज्जब निरगुण मिले बिन, न्यारा कोई नांहि ॥२६॥

रज्जब गुण यंद्री सब दंत हैं, माया के मुख माहिं ।
सुर नर चाबे नाज ज्यूं, कोई छूटे नांहि ॥२७॥

नगन रहौ बस्तर पहिर, माया मीच ज्यूं खाइ ।
भजन बिमुख छूटै नहीं, रज्जब उभै उपाइ ॥२८॥

स्यंघनि सक्ती स्यंघ जिमि, चौरासी चुनि खाहि ।
नागहु बागहु ना डरहिं, गूदड़ि गुदरि न जाहिं ॥२९॥

सक्ति स्यंघनी स्यंघ जिमि, सुमिरण मंत्र किलाहिं ।
रज्जब दसा छतीस धरि, बलिवंत बैरी खाहिं ॥३०॥

रज्जब खाये व्याल बिष, उघड़े ढके न बोत ।
तैसे माया मीच मुनि, जे जाप घड़ी नहिं होत ॥३१॥

काया माया सारिखी, आतम आया ऐन ।
रज्जब जिव जिव मैं रहै, तब लग परै न चैन ॥३२॥

अस्थूल छलावै का गया, भूत रह्या मन माहिं ।
तब लग जिव जीवै नहीं, रज्जब कुसल सु नांहि ॥३३॥

मानि बाइ संगि यूं गये, मन कपूर कृत कीन ।
ज्यूं खग खोज न पाइये, लहै न कौ मघ मीन ॥३४॥

खानि मानि नीचै दबे, सो नर निकसै नांहि ।
जन रज्जब जिव मूढ़ गति, मिलै मीच कौ माहिं ॥३५॥

मान मेर नीचे फिरहिं, मन्न पवन ससि सूर ।
रज्जब सोय उलंघणे, दोन्यूं दोन्यूं दूर ॥३६॥

निसि बासर नीरहि रहै, आदित रूप अरूप ।
त्यूं रज्जब रुचि रिद्धि सों, भेष भिखारी रूप ॥३७॥

मानि गुपत जल सुन्नि का, माया परगट नीर ।
तृष्णा आरसा कै तपै, तिनकी मेट न पीर ॥३८॥

भांति भांति की भूख बहु, रिधि सिधि पूजा मानि ।
कोटि कष्ट तापरि करहिं, हरि दरसन की हानि ॥३९॥

चौपई : जो मत मुख मैं माया मंडाण, सु बाहरि कौण धरै जिव जाण ।
सब सुरत्यूं मधि सक्ति समाणी, बाणनहार इसी बिधि बाणी ॥४०॥

साखी : सुन्नि सरीर सु ब्रह्म का, लागी अंग बिभूति ।
रज्जब रिधि बिधि सौं बणी, क्या कहिये अस्तूति ॥४१॥

मन पवन ससि सूर समि, मनसा लच्छी मेर ।
रज्जब देहि सु रैन दिन, परदच्छिन चहुं फेर ॥४२॥

माया फेर अरधहिं फिरहि, मन पवन ससि सूर ।
तौ रज्जब कहि को चढ़ै, सक्ति सैलपति दूर ॥४३॥

अंघ्रप नहीं अलाहिदी, अमरबेल जड़ हीन ।
त्यूं रज्जब माया मुकत, जैसे जल बिन मीन ॥४४॥

कंचन किरची सोधि ले, पारा राखि मंझारि ।
तौ जीवत जिव कैसे तजैं, रज्जब देखि बिचारि ॥४५॥

गिरही राखै गिरह मधि, बैरागी बप माहिं ।
धात सु प्यारी सबहुं कौ, कोई त्यागै नाहिं ॥४६॥

सुन्नि सलिल मधि सैल तलि, सांई धरी सकति ।
रज्जब रिधि राखी जतनि, नमोनरायन मति ॥४७॥

चौपई : एक ब्रह्म दूसरी माया, जीव सीव का भेद सु पाया ।
भजै त कंवला अंभ जब लाइ, रज्जब रिद्धि न निकस्या जाइ ॥४८॥

साखी : चरणकमल प्रभु के सुमिरि, आतम कंवला होइ ।
रज्जब प्रगटे बस्त बल, परि लोहा अगनि सु दोइ ॥४९॥

परम जोति बसि जोति बहु, सो सब सकति सरूप ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, एकमेक भिन भूप ॥५०॥

माया सों माया बिरचि, प्रभु पाहन दिसि जाइ ।
चरणकंवलि कमला रहै, सु आड़ी बैठी आइ ॥५१॥

माया छाया ब्रह्म तर, रही पेड़ पग पूरि ।
रज्जब बर बनिता बनी, करै कौन सौं दूरि ॥५२॥

चरणहुं संगि सदा रहै, कंवला कलित कदीम ।
सो रज्जब रिधि क्यूं रहै, हरि पद भजत फहीम ॥५३॥

चरनकंवलि कंवला रहै, तहां मुनेसर जाहिं ।
नेत नेत सारे कहैं, मति गति माया माहिं ॥५४॥

काची पाकी सक्ति कन, अकल कल्या नहिं जाइ ।
तौ रज्जब रिधि मधि सबै, नर देखौ निरताइ ॥५५॥

कौंला कला असंखि है, लखहिं जौहरी संत ।
जन रज्जब पारिख बिना, भामा ह्वै भगवंत ॥५६॥

ब्रह्मा बिष्न महेस लौं, माया के औतार ।
रज्जब कौंला अगम है, जामैं कला अपार ॥५७॥

ओंकार करि प्रगट ह्वै, अंतकि अंतरिध्यान ।
रज्जब रिधि आभामई, सांई सुन्नि समान ॥५८॥

अलछि कला लच्छिहि लहै, जिव जड़ जाणै नाहिं ।
ब्रह्म बदै जिस ठौर कौ, सो सब माया माहिं ॥५९॥

त्यागनहारे त्यागि करि, भागि भजन दिसि जाइ ।
रज्जब यूं छूटै सकति, स्यो मुखि सुरति समाइ ॥६०॥

चरनिकंवलि कंवला रहै, हमहूं सुमिरे सोइ ।
रज्जब फलसी भाव की, पै रिधि दूरि न होइ ॥६१॥

भोलै भ्यन्न मिली सब ठाहर, बिभूति भूति मैं सानी ।
पंच तत्त मन मनसा मिश्रत, बिचार चालनी छानी ॥६२॥

रज्जब स्याही सकति मधि, अंभ आतमा सानी ।
सो सूरिज सांई छणहिं, मन बच क्रम करि मानी ॥६३॥

सब अंगहुं सब अंग मिलि, सेवग स्वामी येक ।
रज्जब रिधि लांघै सोई, बंदा ब्रह्म बमेक ॥६४॥

रे रज्जब रिधि रैन रबि, चलहिं कौन बिधि टालि ।
तिमिर उजालै सौं परै, को निकसै निरबालि ॥६५॥

सक्ति सीव बिकृत निकट, रत कौं कहुं वै नाहिं ।
रज्जब कही बिचारि करि, समझि देखि मन माहिं ॥६६॥

माया सौं करणा ब्रह्म, समझी साधू साखि ।
रज्जब रिधि आतम सहित, क्या राखैं क्या नाखि ।।६७।।

स्वारथ का अंग

जूं डारे जोख्यूं नहीं, पूत मरत ह्वै पीर ।
जन रज्जब बालिक उभै, परिस्वारथ रोवैं बीर ।।१।।

रज्जब स्वारथ सबल, इह सारे संसार ।
लोभ सु लावें जेबड़ौ, बांध लिये सब लार ।।२।।

रज्जब स्वारथ ठगि ठगे, चौरासी लखि प्रान ।
तन मन धन सबका लिया, कहिये कहा बखान ।।३।।

स्वारथ बसि संकट सबै, स्वाद सहावै मार ।
रज्जब रोटी दोबटी, दुखदाई संसार ।।४।।

स्वाद सनेही जीव का, जीव न छोड़ै स्वाद ।
तब लग सहसी मार सब, कहा किये बकवाद ।।५।।

रज्जब स्वारथ साणि संगि, परमारथ मणि नास ।
मिसरी मधि बिष पीजिये, ताकी कैसी आस ।।६।।

दिन दीपक करि लीजिये, खानि सु पैठण काज ।
सो बाहरि किस काम का, जहं रज्जब रबि राज ।।७।।

रज्जब रबि राकेस बिन, रारिहुं तम हर आस ।
सपत दोष दीपक बसहिं, पै तुंगनि तौरा तास ।।८।।

अपस्वारथ मन बेग ह्वै, परमारथ पगि पंग ।
रज्जब पहुंचै ठौर क्यूं, भाव भगति का भंग ।।९।।

गुर सेवा सेती बिमुख, स्वारथ सबदौं लेत ।
रज्जब नर निपजै नहीं, जैसे कालर खेत ।।१०।।

जन रज्जब संसार मैं, स्वारथ बसि सब कोइ ।
ज्यूं सुरही सुत सीर बिन, माता निकट न होइ ।।११।।

स्वारथ की सरकार मैं, यहु सारा संसार ।
मनसा बाचा करमना, तामैं फेर न सार ।।१२।।

षट दरसन अरु खलक का, जलदल मेला मुखि ।
रज्जब भजनर भोग कों, पीछै आवहिं रुखि ।।१३।।

जलदल मेला मुख ह्वै, और तबै तिनि पिष्टि ।
षट दरसन अरु खलक की, खाये खुलहिं सु दिष्टि ॥१४॥

असन बसन कै आसरे, आदम की औलादि ।
राम काम पावण लहण, जोगि भोगि की दादि ॥१५॥

सबद सुखी ह्वै आतमा, असन बसन आकार ।
रज्जब पावै प्राण ह्वै, तौ जनमि न छोड़ै लार ॥१६॥

अबेसास तृष्ना का अंग

तीनि लोक मन कौ मिलै, तृष्ना तृपति न होइ ।
रज्जब भूखे देखिये, सुरपति नरपति जोइ ॥१॥

जे जिव लोक असंखि लै, तौ भरै न भूख भंडार ।
जन रज्जब षुध्या घणी, नाहीं धापणहार ॥२॥

कर धरि पातर पाहिका, भरचा न भरसी कोइ ।
रज्जब रीता देखिये, सो पूरण नहिं होइ ॥३॥

तृष्ना तरसत ही मरै, माया मुकती खाय ।
जन रज्जब उर की अगनि, मुहड़ै कही न जाय ॥४॥

जन रज्जब तन ताल मैं, माया मेघ जल जाहिं ।
सो दीसै सूका सदा, तृष्ना बंबई माहिं ॥५॥

बड़वानल तृष्ना रहै, मन समुद्र कै सीर ।
रज्जब सोखै मांड के, माया रूपी नीर ॥६॥

बड़वानल बणि बपि व्यापति, रावन चिता च्यंत मन माहिं ।
ज्वालामुखी जगमगै मनसा, रज्जब क्योंहि बुझाई जाहिं ॥७॥

असंखि लोक अहार करि, काल सुधा पै नाहिं ।
बड़े घटहुं षुध्या बड़ी, बड़वानल बप माहिं ॥८॥

तन की षुध्या तनक बुझ, खाये सेर अघाइ ।
रज्जब रोटी जिमी ससि, मन की भूख न जाइ ॥९॥

आवष्या पूरी हुवै, पै पूरा होइ न मन ।
भूख न भागी भूत की, रज्जब बिछुरे तन ॥१०॥

रज्जब रुचि दिन दिन बधै, रहै न रिधि सौं थाकि ।
भूत प्राण भूखे सबै, भखतौं लगी भड़ाकि ॥११॥

तृष्ना अगिन बुझाइये, दुनिया दारू आनि ।
जन रज्जब जीव यूं जलै, मति मूरिख सब जानि ॥१२॥

आदि अंत मधि मंडि रही, तृष्ना तन मन पूरि ।
रज्जब यूं संतोष सुख, जिव सो रह्या सु दूरि ॥१३॥

उदिक उदधि काष्ठ अगनि, जीव सकल जम खात ।
सिसन संतोष न बिषै रस, तिस्ना तृपति न जात ॥१४॥

तृष्ना स्वारथ लोभर लालच, मांगण माया जाहिं ।
रज्जब चारचूं लाज बिन, भूखे मांडहु माहिं ॥१५॥

तिस्ना तिरगुन कुनारि द्वै, मिल्यूं न मंगल होइ ।
रज्जब राम भरतार बिन, भूख न भागै कोइ ॥१६॥

चौदह बिद्या बिबिध कृत, एक उदर कै राज ।
रज्जब भरैं सु राम यूं, वै करहिं किये की लाज ॥१७॥

तन मन घटतौं ये बधै, नरवर केस तृष्नाइ ।
जन रज्जब हैरान है, महिमा कही न जाइ ॥१८॥

तृष्ना बेसास का अंग

तृष्ना तरल तरंगनी, जहां बहै जग जेर ।
जन रज्जब निरभै भये, चढ़ि संतोष सुमेर ॥१॥

बहुतैं जक बेसास बिचि, अजक तहां जहं पाहि ।
रज्जब सुख संतोष मैं, दुख दीरघ तहं चाहि ॥२॥

मांगत माया ना मिलै, त्यागत आवै हाथि ।
बिभूत भूत ऐसै बणी, रज्जब बाणी नाथि ॥३॥

बेसास सहित संतोष का अंग

सबही बसि बेसास कै, माया ब्रह्म समेत ।
सो रज्जब सूं गह गही, सतगुर कह्या सचेत ॥१॥

जन रज्जब बेसास गहि, सब साहिब परि राखि ।
बेसासी बस्तहिं मिले, यूं सतगुर की साखि ॥२॥

ज्यूं आज्ञा त्यूं होइगा, यहु बरतणि व्योहार ।
तातैं रज्जब राम की, त्यूं जिनि छांड़ै लार ॥३॥

रे रज्जब बेसास गहि, तकि तरवर की बाणि ।
सिदक सबूरी ऊपरै, ज्यूं जल बरषै आणि ॥४॥

चौरासी लख जीव का, राम रिजक भरि देइ ।
जन रज्जब बेसास गहि, सो सांई सुणि सेइ ॥५॥

स्वामी सेवग ह्वै रह्या, इहि सारे संसार ।
रे रज्जब बेसास गहि, मूरख हिया न हार ॥६॥

चौरासी कौ चूणि दे, प्रभु प्राणहु प्रतिपाल ।
रज्जब सो न बिसारिये, जो सबकी करै संभाल ॥७॥

रज्जब रोटी दो अटी, देहै दीनदयाल ।
तौ आसा तजि और की, बेत्वा ब्रह्म संभाल ॥८॥

जिनि जननी के उदर मैं, तेरी करि प्रतिपाल ।
सो अब क्यूं भूलै तुझै, परि तू भी तिसहिं संभाल ॥९॥

आरंभ बिना अहार दे, उदर माहिं अबिगति ।
यहै समझि संतोष करि, रज्जब अज्जब मति ॥१०॥

उदर माहिं उदरहिं भरै, पावै अरभख पोष ।
सो दाता सिरि पर खड़ा, रज्जब गहि संतोष ॥११॥

उद्यम नाहीं उदर मैं, तहां करी प्रतिपाल ।
सो अब क्यूं भूलै तुझै, रज्जब दीनदयाल ॥१२॥

बलं साहस नहिं बंदि मैं, बिभै बिना बित नास ।
बुद्धि रहित बप मैं सु बप, तब तोहिं दिया गरास ॥१३॥

सैल सिलौं मैं देत हैं, आरंभ बिना अहार ।
तौ रज्जब बेसास का, छोड़े मत व्योहार ॥१४॥

अगम ठौर सु अहार दे, संकट सारै काज ।
जन रज्जब बेसास इस, उसहि किये की लाज ॥१५॥

आरंभ बिना अहार दे, गै अनलहिं गोव्यंद ।
तौ रज्जब रोवैं पेट को, हरि अराध मति मंद ॥१६॥

रज्जब मोटे मच्छ अति, सौ जोजन सु सरीर ।
तेउ पेट पूरन भरै, तौ गहि बिसास मन बीर ॥१७॥

भजन बिमुख भोजन लहै, चौरासी लख चूनि ।
तौ रज्जब सुमिरण सहित, तिनकै कैसी ऊनि ॥१८॥

असन अकास असंखि कौं, पाताल पूरि परसाद ।
मही सु मुकता करि परचा, सु तुझै न करसी याद ॥१९॥

असंखि लोक ब्रह्मंड के, वोदर उदधि निवान ।
रज्जब पूरे ठौर सब, तुझै न देई खान ॥२०॥

असंखि लोक प्रतिपाल हरि, सकल किये की च्यंत ।
तौ रज्जब भूखा सु क्यूं, सो सांई करि म्यंत ॥२१॥

साहिब सबकौं रजक दे, बंदे को तौ बसेखि ।
रज्जब रहु बेसास बिचि, करणहार दिसि देखि ॥२२॥

जरा बिपति अरु मीचसी, मिलै अबाछी आइ ।
तौ रज्जब बेसास गहि, रजक कौन पै जाइ ॥२३॥

रज्जब राग न रोग सौं, मीच महब्बति नांहि ।
योंही माया मन रहै, पै सिरजी आवै मांहि ॥२४॥

रज्जब रोग न छांड़ई, मूकै मनिष न मीच ।
तौब रजक कहं जाइगा, समुझी मनुवा नीच ॥२५॥

अणबाछी आवहि अवसि, जरा बिपति अरु मीच ।
त्यूं माया मिलसी तुझै, मन मति कलपै नीच ॥२६॥

ज्यों अहि कठिन करंड में, मूसा पैठा काटि ।
जन रज्जब भोजन बिना, अरु निकस्या वहि बाटि ॥२७॥

सिरज्या आवै सुरग सौं, जल थलि करै सुकाल ।
रज्जब रहै न बिन रच्या, खाया होइ उखाल ॥२८॥

अनल अंड ज्यूं ठौर बिन, नहीं पोष पंष बाव ।
जन रज्जब सो नीपजै, तौ पूरण पूरा गाव ॥२९॥

कूंजी कूरम अनल के, अंडे देखौ जोइ ।
रज्जब राखै सो कहां, तौ क्यूं बेसास न होइ ॥३०॥

उदर दिया सु अहार देइगा, गला बनाया गाले काज ।
रज्जब चौंच चूणि को सिरजी, किये किये की सबकौं लाज ॥३१॥

असंखि लोक अंतक सहित, भोजन दे भगवंत ।
ता पूरण सों प्रीति करि, सोच करै क्यूं संत ॥३२॥

आसमान जिमी अंबर अरपि, आभे भार अठार ।
बागे दे ब्रह्मंड कूं, प्यंडहि कहा बिचार ॥३३॥

नौ निधि जाके नांव मैं, सब संतनि की साखि ।
जन रज्जब सो सुमिरिये, कहा करै कित राखि ॥३४॥

दह दिसि देबे कौं खड़ा, दीनानाथ दयाल ।
रज्जब यूं जाण्यूं कटे, बित बंधन के साल ॥३५॥

बैरागी बित क्या करै, जो बेसासी होइ ।
रज्जब मच्छा मसक सो, जलहिं न जोया कोइ ॥३६॥

ब्रह्म व्योम दिसि देखहीं, साधू सारंग दोइ ।
जन रज्जब बेसास यहु, नजरि निवाण न कोइ ॥३७॥

रोटी मोटी करि धरी, बाबै बसुधा माहिं ।
रज्जब दीसै दसौं दिसि, कहौ किती एक खाहिं ॥३८॥

करतार कमाऊ जिनहिं कै, तिनकै क्या परवाहि ।
सदा सुखी आनंद मैं, जुगि जुगि वै अरवाहि ॥३९॥

करतार कमाऊ जिन घरहु, तिनकै कैसी हाणि ।
यूं बैठे बेसासि मैं, सब कछु देसौ आणि ॥४०॥

नहीं तहां तैं सब किया, रज्जब प्यंडर प्राण ।
सो अब भूलै क्यूं तुझै, करि संतोष सुजाण ॥४१॥

पूत पांगुला पेट मैं, आरंभ असन न आस ।
पुष्टि पराये पगन परि, बिघन नहीं बेसास ॥४२॥

असंखि लोक आतम भरी, सबकी करै संभाल ।
गुण औगुण देखै नहीं, कीये के प्रतिपाल ॥४३॥

जड़ बासण जड़ का गह्या, रीता रहै न सोइ ।
कुंभ कुम्भार कमाऊ दून्यूं, सो पूरण किन होइ ॥४४॥

मात पिता माया ब्रह्म, बालिग बंदा कंध ।
मोह मिहरि मैं ये सदा, यूं बिसास निरसंध ॥४५॥

साधू सुखिया समै मैं, दुखी न होंहि गोपाल ।
रज्जब जिनकै राम जी, सदा करै प्रतिपाल ॥४६॥

रज्जब रहै बिसास मैं, बादी कहां बिभूति ।
सदा सुखी सुमिरन करहिं, सब बिधि आई सूति ॥४७॥

राम काम जिनकै करै, तिनके कारज सिधि ।
जन रज्जब बेसास परि, बनि आई सब बिधि ॥४८॥

जन रज्जब अज्जब कही, सुनहु सनेही दास ।
बिनु परचै परचा भया, जब आया बेसास ॥४९॥

धरे अधर का मूल है, नांव निरंजन पास ।
जन रज्जब बेसास इस, करै कौन की आस ॥५०॥

मनिष मनिष कौं सेवतौं, सुखि संपति इह भौन ।
तौ रज्जब रामहि भजै, तिनकै टोटा कौन ॥५१॥

च्यंता अणच्यंता भरै, वोदर कौ अबिगति ।
तौ रज्जब बेसास गहि, सोधिर साधू मति ॥५२॥

मांग्या अणमांग्या मिलै, जु जिव कौं जगपति कीन ।
बंदे बेपरवाह यूं, मूल न भावै दीन ॥५३॥

चाकर अणचाकर लहै, बरा बिसंभर देइ ।
पूरण पूरै सकल कौ, सो पलटा नहीं लेइ ॥५४॥

साध सबूरी मैं लहै, निहकामीर निरास ।
तौ रज्जब ता दास धरि, सांई होइ सुदास ॥५५॥

निहचल मै निहचल रहै, निज जन नांव निवास ।
तौ रज्जब माया ब्रह्म, होंहि दास घरि दास ॥५६॥

मात पिता माया ब्रह्म, चौरासी प्रतिपाल ।
पर संतोषी सुत ऊपरैं, दून्यूं सदा दयाल ॥५७॥

आस उलटि तृष्णा तजै, संतोषी हरि साथि ।
रज्जब सो बेसास मैं, सरबस आया हाथि ॥५८॥

जे बंदे बिचि सिदुक ह्वै, तौ भेजै बिसियार ।
जन रज्जब राजक मिलै, रिजिक सबै तहि लार ॥५९॥

सहज सबूरी सांच लै, सुमिरै निरमल अंग ।
सो रज्जब रामंहि मिलै, सब सम्पत तेहि संग ॥६०॥

जब जिव पैठै सिदुक घरि, साहिब कै दरबार ।
तौ रज्जब बाकी कहा, पीछै पलै हजार ॥६१॥

बेसासी बैठ्या रहै, हरि भेजै सो खाइ ।
रज्जब अजगर की दसा, चलि कतहूं नहि जाइ ॥६२॥

भावै कुंभहि कूप भरि, भावै भरौ समुंद ।
जन रज्जब परवान परि, अधकी चढ़ै न बुंद ॥६३॥

अणबेसासी आतमा, करै अनेक उपाइ ।
रज्जब आवै हाथि सो, जो कछु राम रजाइ ॥६४॥

लिखी लच्छमी पाइये, अरपी आव सु होइ ।
रज्जब ग्रह बैराग मैं, घटै बधै नहिं दोइ ॥६५॥

रज्जब नर तरु सीस परि, माया मधु बिधि होइ ।
आवत जात अच्यंत मैं, दोस न दीजै कोइ ॥६६॥

चौपई : आव अजाचिक बरतण लेइ, खाइ सु पहरै औरै देइ ।
यहु रज्जब सन्तोष सरूप, चलहिं मुनेस्वर चाल अनूप ॥६७॥

साखी : रज्जब माया छाया मैं सदा, लघु दीरघ व्योहार ।
अचिग आस अस्थूल विधि, यहु साधू मत सार ॥६८॥

चीरी च्यंत न घटि बधी, लघु दीरघ भया लेख ।
तौ रज्जब कहु दोस क्या, करणहार दिसि देख ॥६९॥

रज्जब जब लग यहु मता, करै कहै मन चाहि ।
तब लग नहीं बिसास गति, तिहुं बिधि येहू पाहि ॥७०॥

जन रज्जब करिबे रह्या, कहिबे थकित निरास ।
तब तृष्ना तन मन गई, पूरा पुष्टि बिसास ॥७१॥

मनि अबंछ मुहड़ै अजब, पुनि काया कृत नास ।
यू परि कौड़ी कोड़ि होइ, वह बेसासी दास ॥७२॥

रज्जब रहु बेसास मैं, मन बच क्रम तिरसूध ।
ता ऊपरि तोहिं राम दे, सो माता का दूध ॥७३॥

त्रिभुवन तन तृष्ना परै, सुनि संतोष सु थान ।
रज्जब पहुंचै मीच मघ, कोइ बेसासी प्रान ॥७४॥

तृष्ना तिरै तरंगनी, स्वारथ स्वाद समंद ।
सो पहुंचै संतोषपुर, जन रज्जब निरदंद ॥७५॥

सक्ति समुंदहु के परै, सुनि संतोष सु थान ।
मन बच क्रम तृष्ना रहित, सो पहुंचै कोइ प्रान ॥७६॥

संतोष सदन बप पाइये, जब तृष्ना तनि नास ।
ब्रह्मंड प्यंड सेती जुदा, जन रज्जब बेसास ॥७७॥

संतोष सबूरी अगम घर, गुर पीरहुं अस्थान ।
बेसास तवक्कल मैं रहै, निहचा दुरस इमान ॥७८॥

बैदा नहिं बंदे मिले, बीज रहित बिन चाहिं ।
रज्जब फिरि ऊगै नहीं, गये सु जनमि निभाहिं ।।७९।।

रज्जब धाये ध्यान हरि, भूत भूख भई भंग ।
भूरि भाग भै मैं सुखी, उठै सु उन्नति अंग ।।८०।।

जन रज्जब जिव सब तज्या, जब मनसा धरि धोइ ।
भूत भार भ्यासै नहीं, करता करै सु होइ ।।८१।।

रज्जब आसा मैल मन, निरमल सदा निरास ।
आगे खुसी खुदाइ की, यहु बेत्वा बेसास ।।८२।।

जे कोइ धूरि उठाइ ले, धरती धोखा नाहिं ।
जानै कित लौ जाइगा, मेरी मुझही माहिं ।।८३।।

रज्जब रिधि रज एक है, बसुधा में बेसास ।
बिभूति भूति कौ ले चलै, धरचा धरे कै पास ।।८४।।

बसत न मिलै बिसास बिन, बहु बिधि करौ उपाव ।
रज्जब रती न पाइये, भावै दस दिसि जाव ।।८५।।

जे हिरदै बेसास ह्वै, तौ हरि हिरदा माहिं ।
जन रज्जब बेसास बिन, बाहर भीतर नाहिं ।।८६।।

पेट भरै बहु पाप करि, पापी प्राण अनेक ।
असन बसन आरंभ बिन, आतम लहै सु येक ।।८७।।

अबेसास आरंभ करि, मघ मधि लेहिं अहार ।
असन बसन बेसास बिच, निहकामी व्योहार ।।८८।।

आस निरासी असन कन, सुनहु बमेकी बोल ।
पड़ै पंचमुख पंजरै, पनिग पिटारै खोल ।।८९।।

षट दरसन अरु खलक सब, दीरघ स्वामी दास ।
जन रज्जब बेसास बिन, जत सत माहिं निरास ।।९०।।

बैराग्यूं की बरात ऊतरी, सेवग सतियौं सीस ।
जैसे तरु फर पंषी पावहिं, बिधि बानी जगदीस ।।९१।।

बरात ऊतरी ठौर जेहिं, बरात तहां सो लेहिं ।
बिन आज्ञा देसी न कोइ, दोस किसी मति देहिं ।।९२।।

हाथ सबै हरि हाथ मैं, कृपन कृपालहु येक ।
दोस देइ कहु कौन कौ, पाया परम बमेक ।।९३।।

जा दिन ज्यूं राखै प्रभू, ता दिन त्यूं रहिये ।
रज्जब दुख सुख आपणा, काहू नहिं कहिये ॥९४॥

अच्यंत बेसास का अंग

बैराग बिसंभर परि मड्या, करि च्चंता चिति नास ।
बिहंग बोझ न बिहंग सिरि, देखे उड़त अकास ॥१॥

उडग अतीत अकास आस बिन, भार न काहू देहिं ।
रज्जब मिले असंखि एकठे, रिजक राम पहिं लेहिं ॥२॥

बैराग सु बादल सम सदा, सकल अधर व्योहार ।
लागे सांई सुन्नि सौं, भूतहिं देइ न भार ॥३॥

अठार भार इक्र अवनि परि, त्यूं आतम अबिगति ।
रज्जब चित च्यंता उठी, जब आई यहु दुरमति ॥४॥

जलनिधि मैं जलचर बिबिधि, पै कासिरि काठ का बोझ ।
त्यू रज्जब सब राम परि, समझै नहीं सु रोझ ॥५॥

रे रज्जब राकेस कन, सदा सु मंडल तार ।
किसकी चिन्ता कौन कूं, किसका किस परि भार ॥६॥

निरिहाई निरबान का अंग

रज्जब पाई प्रान नै, नांव निरंतर लूटि ।
पाप पुन्नि की ताखड़ी, गई हाथ सौं छूटि ॥१॥

पुन्नि किये पुन्नि पावई, देणै लेणा होइ ।
रज्जब इहि सौदे रहै, सुन्नि समानै सोइ ॥२॥

लेबे का लालच नहीं, नहिं देबे करतार ।
रज्जब अज्जब मुकत मत, जीव ब्रह्म उणहार ॥३॥

भली बुरी भावै नहीं, परसै पाप न पुन्नि ।
सो रज्जब रामहिं मिले, सहज समाने सुन्नि ॥४॥

बमेक बेसास मधुकरी का अंग

रज्जब मीठी मधुकरी, मेरे मन भाई ।
सिध साधक जोगी जती, जगि मांगि सु खाई ॥१॥

भूप भूत मिलि भीख कौं, तब सु भिस्त कौं जाइ ।
तौन मेहणा मधुकरी, नर देखौ निरताइ ॥२॥

एकहुं कोपी एकहुं पैसा, एकहुं तंदुल रोटी ।
महा मसंदौं भीख आदमी, मान मधुकरी मोटी ॥३॥

जे औसर सिरि सिलक कूं, भूपति माडै हाथ ।
तौ रज्जब कछु रंक गति, राजा दालिद साथ ॥४॥

छाजन भोजन देह लग, सिध साधक सब लेहिं ।
जन रज्जब परवान परि, मन मनसा नहिं देहिं ॥५॥

छाजन भोजन देह लग, जा बिन रह्यो न जाइ ।
रज्जब अधिक उपाधि है, तासौं मन न लगाइ ॥६॥

जन रज्जब रथ रहंटिया, पुनिह पखावज जोइ ।
काष्टहूं बांगे से चलै, तौ बिन बरतन नहिं कोइ ॥७॥

चौपई: छाजन भोजन दे भगवंत, अधिक न चाहै साधू संत ।
रज्जब यहु संतोषी चाल, मार्गहिं नाहिं मुलक अर माल ॥८॥

साखी: मनि बिन माया संगि रहै, मनि बिन मिहरी जाइ ।
यहु रज्जब मुनियर मता, नर देखौ निरताइ ॥९॥

संजम कसौटी का अंग

काया कुंदन सारखी, हरि सोनी कसि लेइ ।
जन रज्जब ताये बिना, दरसन दरब न देइ ॥१॥

कसि कसि लीये काम के, नर निरमल निरताइ ।
जन रज्जब जगमगि रहै, महिमा कही न जाइ ॥२॥

नर तरनी लौ मैं रहै, ब्रह्म बासदेव माहिं ।
बिन सूकै सोख्यंति बिन, रज्जब प्रगटे नाहिं ॥३॥

तन तूंबा सोख्यंति बिन, धुनि सुन्नि माहिं न होइ ।
रज्जब गूंगा गूंद भरि, बाजत सुन्या न कोइ ॥४॥

जंतरि माहैं निकरि करि, जंतरि चढ़े सु जाइ ।
रज्जब पाई नाद निधि, लोहा कसनी आइ ॥५॥

रसना निकसी पाठ मैं, जंतरि निकसे तार ।
रज्जब मुखि जंतरि चढ़े, सरवहिं सुधा अपार ॥६॥

कंगहिं करवत सीस सहि, तब साहौं सिर जाइ ।
तौ रज्जब जाणी जुगति, तन मन कसि हरि भाइ ॥७॥

सिरि कटाइ लेखण चढ़ी, कर कागद अरु कान ।
रज्जब इहि बिधि पाइये, परमपुरिष निज थान ॥८॥

देखहु कुंभ कुंभार घरि, निपज्या कसणी खाइ ।
रज्जब रज पग तलि सदा, सु सिरि परि बैठी आइ ॥९॥

कागद कूंडी कागही, कोल्हू निरखि कुंभार ।
त्यूं रज्जब कसनी गुरू, लखि सु लोहार सुनार ॥१०॥

दुखभंजन दुखि पाइये, जद्यपि है दिलि माहिं ।
ज्यूं काष्ट कष्ट बिना, पावक प्रगटै नाहिं ॥११॥

दाख छुहारै रस रह्या, जे सुकचे सु सरीर ।
यूं रज्जब सरबस रहै, तन मन सिमटचूं बीर ॥१२॥

संतहिं सोभा सिमटतौं, जत कौं जतन सु जोति ।
रज्जब रस रंग रहति मैं, जथा सीप मधि मोति ॥१३॥

रज्जब रेसम मन्न का, संकटि सूधा तार ।
ए दून्यूं बांधे भले, खोल्यूं होइ सु ख्वार ॥१४॥

पसरचूं पगि पगि मार है, सिमटचूं नाहीं सोइ ।
जन रज्जब द्रष्टान्त कौं, मन कच्छिप दिसि जोइ ॥१५॥

अस्थूल उदधि ज्यूं पीजिये, आतम होइ अगस्त ।
जन रज्जब ऐसी कला, खेलि गहै कोइ बस्त ॥१६॥

पाप ताप लंघणि घटैं, तौ रोजे ब्रत राखि ।
रज्जब रोग बिषम ह्वै, बैदर बेत्वा साखि ॥१७॥

जल दल खैचै तन मरै, मन मारै गुर ज्ञान ।
रज्जब ये यूं जीतिये, साधू कहै सुजान ॥१८॥

काया मारै स्वाद तजि, मन मारै भजि नाथ ।
रज्जब गढ़ घेरे बिना, गढ़पति चढ़ै न हाथ ॥१९॥

नींद सुबेटी नाज की, नाज नींद का पूत ।
रज्जब साधै जोग कूं, जुगल साधि औधूत ॥२०॥

रज्जब निकसै धातु धरि, महा मसक्कति द्वारि ।
तौ कष्ट बिना क्यूं ऊधरै, आतम इह आकारि ॥२१॥

तन कसणी निहकाम मन, द्वै घट द्वै कोपीन ।
जन रज्जब यहु रहति गति, आतम रामहिं लीन ॥२२॥

उनमन लागै मन सधै, सबद सधै सु बिचार ।
रज्जब तनि तामस सधै, बिरला साधनहार ॥२३॥

संख सुक्ति मुकता सहत, सदा महोदधि दानि ।
पै रज्जब चौदह रतन, सो संकट दे आनि ॥२४॥

मन मयंक मोटे भये, मैले मुलिक न मान ।
क्रम कलंक कसतौं कटै, सब जग बंदै जान ॥२५॥

काया काच निरमल करै, चसमैं सरिखा होइ ।
जन रज्जब पड़दा डठ्या, पिव कौं देखौ सोइ ॥२६॥

कुमति कटै करमौं घटै, काम क्रोध का नास ।
जन रज्जब वा जीव कै, परतषि ह्वै परकास ॥२७॥

अरिल : अज्ञानी अरु भेष मोह मनि अंतरा
तिनि चतुर करमि जाइ नरकि सु नाहीं पंतरा ।
षुध्या नांव रन गोत आव ठिक देत रे
रज्जब रट जटि राम सु चहूं समेत रे ॥२८॥

साखी : आतम उग्रह चंद ज्यूं, काया कलंक न जाइ ।
जन रज्जब यूं आव लग, निरमल नांव कहाइ ॥२९॥

दुख करि दुनिया देखिये, दुख करि मिलै सुदीन ।
जन रज्जब सुख दुख परै, सु ताकि तपावसि कीन ॥३०॥

दुख करि माया पाइये, दुख करि ब्रह्म दयाल ।
तौ रज्जब दून्यूं दसा, दुख दीसै प्रतिपाल ॥३१॥

मेला माया ब्रह्म का, दुख देखैं निज दास ।
तौ रज्जब सुण सुख कौ, मनह न कीजै आस ॥३२॥

कंवला कंतर केतगी, कंटिग कंवल सुबास ।
आतम अलि आवै तहां, तजिब सीस की आस ॥३३॥

मकर सीप मैंमंत सिरि, मुसकिल मुकता लेत ।
त्यूं रज्जब माया ब्रह्म, दुखि दरसन सो देत ॥३४॥

अरिल : मुख सुख माहिं न मार अंग दिखलावहीं
चाकी उर गुर पैठि सु आप पिसावहीं ।
मैंदा मनहि छनाइ बिबिधि ह्वै व्यंजना
रज्जब राम सोई मुनि मन रंजना ॥३५॥

साखी : मिहर मार मंदिर रहै, सुख संबूह दुख द्वार ।
कृपा कसौटी कै परै, तामै फेर न सार ॥३६॥

संकट मधि संतोष है, बिपति बीच बेसास ।
दुख बिन सुख लहिये नहीं, समझि सनेही दास ॥३७॥

फीके सेब फरीद के, करसी कौन फकीर ।
रज्जब रजमा यूं लिया, जाहिर होइ जहीर ॥३८॥

प्रहलाद कसौटी यूं रिली, दैतहुं भानी भोल ।
रज्जब अडिग सु अगनि मैं, निकस्या नांव अडोल ॥३९॥

रज्जब अज्जब काम मैं, मौत लही मन सूर ।
यूं अल्लह आसिक हुआ, जाहिर जगत जहूर ॥४०॥

सरबस दे सरबस लिया, साधू सांई अंग ।
रज्जब अज्जब काम मैं, बंदौ बदल्या नंग ॥४१॥

रज्जब औसर काम सिरि, मरनै मुलिक बखान ।
ज्यूं नछत्र निसि टूटतौं, देखै सकल जहान ॥४२॥

औसर बिन की मीच गति, ज्यूं दिन टूटा तार ।
रज्जब उभै अलोप ह्वै, दीसै नहीं लगार ॥४३॥

सेवग सेवा संकटया, सुंदरि सुत जावंत ।
रज्जब पीड़ा परम सुख, भूति मामनि भावंत ॥४४॥

रज्जब मुकत्यूं मूल है, बंदि बंदगी माहिं ।
यूं सेवा संकटि सहै, साधू सरकहिं नाहिं ॥४५॥

कठिन कसौटी नीपज्या, चित्त भया चूनै भाइ ।
सो मत मंदिर छांड़ै नहीं, गुरू सिलावट लाइ ॥४६॥

सेवा संकटि सब सहै, सेवग अपनै सीस ।
सोभा ये भगवंत कौं, रज्जब बिसवा बीस ॥४७॥

दिब माहैं दिब होत है, भोलहुं भोला भाग ।
रज्जब रजमल ऊतरै, दिलहूं धुपि गये दाग ॥४८॥

तन मन इंद्री आल हैं, कूटच्यू रंगिये प्रान ।
बिन कूटच्यूं कोरे रहै, जन रज्जब जिव जान ॥४९॥

तन मन तापड़ कूटिये, कूटच्यूं कागद होइ ।
बिन कूटच्यूं कोरे रहै, जन रज्जब जगि जोइ ॥५०॥

तन मन लोहा कूटिये, ताये ह्वै तरवार ।
जन रज्जब ताये बिना, षडग न होइ बिचार ॥५१॥

तन मन माटी पीटि करि, कोइ एक घड़ै कुंभार ।
जन रज्जब टूटे बिना, कुंभ न होइ गंवार ॥५२॥

कूटच्यूं चित चावल भये, बिन कूटच्यूं सब सालि ।
रज्जब रज सबकी गई, इस कूटण की ख्यालि ॥५३॥

बाजीगर सूं क्यूं मिलै, मन मरकट बिन मार ।
जन रज्जब खेलै तबै, जब मारै बारूंबार ॥५४॥

मन मंगल मारै बिना, कहौ मरड़ि क्यूं जाइ ।
रज्जब मिलै महावतहिं, जबहिं मार बहु खाइ ॥५५॥

रज्जब सूता पाप पल, पीटे निद्रा नास ।
तौ मन सूता जुगनि का, सू क्यूं जागै बिन त्रास ॥५६॥

रज्जब रोग असाधि कौ, ओषदि कसणी देत ।
जैसे पिष्ट पवंग कै, केस कृष्न ह्वै सेत ॥५७॥

पंच रंग रोम पवंग करि, संकट सेत अनूप ।
रज्जब पलटै प्रान सूं, पीड़ा पारस रूप ॥५८॥

संकट सुलप सरीर लग, दुरमति दगधैं देह ।
मन उनमन ले राखिबा, कठिन कसौटी येह ॥५९॥

मिरतग का अंग

भौजलि बूड़ै जीवता, ममता मेर उठाइ ।
रज्जब मिरतगि मैं बिना, सु हलुका तिरता जाइ ॥१॥

मैं आया माया भई, मैं नाहीं तब नाहिं ।
रज्जब मुकता मैं बिना, बंधन मैंही माहिं ॥२॥

असु गयंद बोहित चढ़ै, मूरिख ले सिर भार ।
त्यूं रज्जब सब राम परि, मैं तलि मरै गंवार ॥३॥

मरजीवा मिलि माहिं जल, सिरि समुंद नहिं भार ।
जे रज्जब सिरि कुंभ ले, तौ दुख होइ अपार ॥४॥

जे आंखि न देखहिं आपको, तौ दीसै सब ठौर ।
त्यूं रज्जब आपा उठै, परम तत्व मैं त्यौर ॥५॥

जन रज्जब जिव कै परै, जगपति मिलसी आइ ।
कहणा था सो सब कह्या, अब कछु कह्या न जाइ ॥६॥

जब लग जिव मैं जीवणा, तब लग जिवै न कोइ ।
रज्जब मरणै मिलि गयूं, तब कछु होइ त होइ ॥७॥

जब लगि तुझमैं तू रहै, तब लग ते रस नांहि ।
रज्जब आपा आप दे, तौ आवै हरि मांहि ॥८॥

अपणा पड़दा आप ही, मूरिख समझै नांहि ।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलै, यहु अंतर इस मांहि ॥९॥

मरणै माहैं जीवणा, जीवण मैं मरि जाइ ।
रज्जब जीवण त्यागि करि, मरणै मैं मन लाइ ॥१०॥

मरणैं माहैं मिलि रही, जीवण मैं जिन जाइ ।
रज्जब जीवण त्याग करि, मरणै मैं मन लाइ ॥११॥

मरिबा मोहड़ै कहण कौ, जीवन मूरि निधान ।
रज्जब रहे सु मरि रहे, ऐसैं समझि सयान ॥१२॥

ज्यूं ज्यूं तन मन मारिये, त्यूं त्यूं जीवै जीव ।
इस कसणी कल्याण है, रज्जब रंजै पीव ॥१३॥

जो जीवत मिरतग भये, तिनहिं काल भै नांहिं ।
रज्जब रहै सु राम ह्वै, सदा सु जीवनि मांहि ॥१४॥

जे साधू मिरतग भये, तिनकै बल नहिं कोइ ।
जन रज्जब द्रष्टान्त कौ, जली जेवड़ी जोइ ॥१५॥

रज्जब दीसैं एक से, जीवत मिरतग दास ।
बिन दीपक दीपग जथा, हीरे का परगास ॥१६॥

जैसे मारैं सार सों, महा कटै तनि रोग ।
त्यूं रज्जब मिरतग मिल्यूं, लहै अमर जिव जोग ॥१७॥

मारे पारे परसता, तांबा कंचनि होइ ।
त्यूं रज्जब नर नीपजै, मिलि मिरतगि जगि जोइ ॥१८॥

मरजीवहिं मानै जगत, बसुधा मैं यहु बंद ।
तामैं फेर न सार कछु, देखौ दोइज चंद ॥१९॥

पाणि पीजि मुख मैं म्यसर, बपि बस्तर तेहि ताज ।
जन रज्जब चहुं चढ़ि चल्या, मिरतगि पाया राज ॥२०॥

चौपई : जिमी सु जड़ मत आपै नंग, तामस तेज बाइ बक अंग ।
रज्जब गगन ड्यंभ अभिमान, ए गुण मेटे ब्रह्म समान ॥२१॥

साखी : अवनि माहिं अंकूर बहु, आपै मधि उतपति ।
तेज सु तन ताखै भरचा, मारुत है मुर मति ॥२२॥

व्योम बड़ाई बादलहु, बरषा बीच सुबास ।
ब्रह्मंड प्यंड की एक गति, आनंद आतम नास ॥२३॥

सांच निरभै का अंग

सांचै कौ संकट नहीं, सब भागे दुख दंद ।
रज्जब जग जगदीस मैं, जहां तहां आनंद ॥१॥

सांचा दिब दाझैं नहीं, जल जोख्यूं नहिं होइ ।
जन रज्जब जगदीस लग, सांच सरखरू होइ ॥२॥

बहुत भांति के झूठ बहु, काम पड़चूं कल काच ।
रज्जब राखा सो रती, कंचन किरची साच ॥३॥

रज्जब सीझै सांच मैं, हिन्दू मूसलमान ।
दोऊ दिब दाझैं नहीं, यूं आया ईमान ॥४॥

सांई समसरि सांच है, देखौ जा दिल माहिं ।
बिघन न व्यापै तिन बपहु, जल ज्वाला डर नाहिं ॥५॥

कौल चूक जीवन भया, सतबादी संसार ।
कहि आया त्यूं करत है, तौ दोस न दे करतार ॥६॥

झूठ बधै बनखंड ज्यूं, दीसै बहु बिस्तार ।
रज्जब सांचा अगनि मैं, करै परस्पर छार ॥७॥

झूठ दिखावा बहुत ह्वै, ज्यूं जाड़े का कोट ।
रज्जब रती न रहि सकै, सांच सूर की चोट ॥८॥

सोरठा : रज्जब रहै न रोपि, झूठि चल्या सुणि सांच भै ।
ज्यूं उडगन गये गोपि, उदै होत आदित्य कै ॥९॥

रज्जब एकल सूर सति, झूठे नवलखि तार ।
पलक माहिं पैमाल ह्वै, दीसै नहीं लगार ॥१०॥

सांच सदा दे झूठ को, जुगि जुगि बारंबार ।
रज्जब रोस न कीजिये, तामै फेर न सार ॥११॥

परतषि एकै समि नहीं, सुनि सुपिनै की कोड़ि ।
रज्जब सत्य असत्य यों, देखि जीव मैं जोड़ि ॥१२॥

तारहुं तोरा तब लहै, जब लग रबि न प्रकास ।
रज्जब रती न रहि सकै, देखि दिवाकर त्रास ॥१३॥

सांच सूत सौं काणि कट, साधू जन सुत धार ।
रज्जब काढ़ौ बंक बल, तामै फेर न सार ॥१४॥

सांच आरसी देव गति, करै कौन की कानि ।
कहि दिखलावै होइ ज्यूं, आपा पर समि जानि ॥१५॥

साधू ससि हरि सूर कै, आपा पर समि भाइ ।
रज्जब रंग प्रगट करै, अरु अपगुन देहि देखाइ ॥१६॥

दीपक दोष जु तिमिर तलि, हीरै कैसौं नाहिं ।
रज्जब सत्ति असत्ति करि, उभै अंग ये माहिं ॥१७॥

सांच सबद खांडे घटा, जाकै द्वै दिसि धार ।
रज्जब बकते कै बहै, सुरता होइ सुमार ॥१८॥

साधू बकता बंस गति, सत्ति सबद बिचि आगि ।
जन रज्जब सुरता बन्यूं, करम जलैं तेहि लागि ॥१९॥

दार दरसणी पंथर पंडित, साध सार हरि हंस ।
चतुर ठौर बहनी बचन, कहि बिधि बरतैं बंस ॥२०॥

सांचा बोलै इंद्र ज्यूं, सब बाणी सिरताज ।
रज्जब छल बल सबद का, ता सिरि करै न राज ॥२१॥

सत्य सबद के सीस परि, झूठ न पावै ठौर ।
रज्जब ससि सोला कला, तापरि चढ़ै न और ॥२२॥

अधिक अठारा सौं नहीं, पासौं माहैं डाव ।
तैसे रज्जब सांच सिरि, झूठ न चढ़ै चबाव ॥२३॥

जन रज्जब नाणा खरा, मानै नौखंड माहिं ।
खोटे कौ डालैं खलक, यामैं निन्दा नाहिं ॥२४॥

नर नाणे पाड़ै भरे, मोल न पावहिं मूलि ।
ज्यूं रज्जब तुलि काणि की, सदा बहावै धूलि ॥२५॥

सांच चलैगा एक को, परि सत्य न बोल्या जाइ ।
रज्जब रसना घाट मैं, झूठ रह्या घर छाइ ॥२६॥

मुख झूठा भाखै नहीं, बोलण लागा सांच ।
आमदनी अबिगत्ति की, रज्जब पलठी बांच ॥२७॥

सांचहु सुण्यूं सुखी ह्वै सांचा, झूठै दिल दुख होइ ।
रज्जब सांचा सांच बखानै, फेर सार नहिं कोइ ॥२८॥

चोरी की तहं चोर है, नाहीं की तहं नाहिं ।
रज्जब पकड़ैं झूठ परि, दहै न दिब सो माहिं ॥२९॥

देही दखल न दिब का, जे एक सांच लघु होइ ।
तौ रज्जब क्यों भूत भै, जेहि सति सुमिरन दोइ ॥३०॥

भजन बिमुख घटि सांच ह्वै, ताहि न दिब दुख देत ।
तौ रज्जब तिनकौं न डर, जहं सुमिरण सांच सहेत ॥३१॥

परम सांच का अंग

माया रूपी सांच बहु, आतम ठगहिं अनेक ।
रज्जब सो न ठगावहीं, जिनके परम बमेक ॥१॥

एक सांच अंजन मई, नहीं निरंजन मेल ।
रज्जब रले सु झूठ मैं, ताथै सत्यहुं ठेल ॥२॥

सांच सांच मधि छांड़तौं, तत बित करि चढ़ि जाइ ।
रे रज्जब जन जौहरी, कहु क्यूं खोटा खाइ ॥३॥

सांच सरूपी झूठ ह्वै, पैठहि प्राणहु माहिं ।
आख्यूं अनत सु नीकसैं, नहीं त निकसै नाहिं ॥४॥

सांच सांच तै अगम है, बिरला बूझै कोइ ।
रज्जब परम बमेक बिन, घटि घटि समझि न होइ ॥५॥

सांचहि मिलै सु सांच ह्वै, झूठहि मिलै सु झूठ ।
जन रज्जब सांची कही, भावहिं रीझि भावै रूठ ॥६॥

दिब दाझै नहिं सांच है, मिलै न अबिगति नाथ ।
सीझ्या सीझ्या सब कहै, रज्जब देखि सु हाथ ॥७॥

कामधेनु सुर तरु सहित, पारस पोरस सांच ।
रज्जब रिधि सिधि निद्धि सब, भजन बिमुख कुलि कांच ॥८॥

करामाति क्रम कामना, बंदे बंदि सु नाहिं ।
रज्जब रज तज सोधतें, मैल सु जत मत माहिं ॥९॥

दस औतारु देबी देवा, देखि दुनी रंग रांचि ।
रज्जब रीझन तू इहां, इनतैं परै सु सांचि ॥१०॥

सांचा साहिब मरै न जामै, झूठा आवै जाइ ।
रज्जब सतगुर सत्ति सु लागै, साधु सु ले निरताइ ॥११॥

पंचौ करि परसै नहीं, परमेसुर बिन आन ।
रज्जब रोजा बरत सति, संकट औरस मान ॥१२॥

रज्जब दीजै दान सिर, सत जत सुमिरण पैठि ।
या समि तुल्लि न धरम पुनि, तौले तुला सु बैठि ॥१३॥

किरपन का अंग

सोरठा : जे सूरन ह्वै सूंठि, सपत धात गाड्यूं बढ़ै ।
तौ सुकृत ह्वै मूंठि, ज्यूं रज्जब रामहिं चढ़ै ॥१॥

साखी : रज्जब धन धर गाड़तौं, मन गाड़्या महि माहिं ।
जीवत पैठै गोर मैं, सु प्राणी निकसै नाहिं ॥२॥

कंवला कंवल सु गाड़तौं, सुकृत बास न होइ ।
सूम सखी अरु पहप परि, गुप्त प्रगट करि जोइ ॥३॥

मौनणि मधि माया रही, गुपचुप तिनहुं न जान ।
आतम रामहिं सौंपता, घटि घटि होइ बखान ॥४॥

पहु पहमी अंतक अगनि, बिघन चोर ठगि लेत ।
सूम भंडारी सपत का, धणियहु गिणि गिणि देत ॥५॥

सूम सनेही सपत का, खित खित भुज रज चोर ।
जल ज्वाला बेली बिघन, पग न पुन्नि की ओर ॥६॥

पहु पहमी जम चोर कौं, कृपन कमावै आथि ।
रज्जब धुकै न धरम दिसि, जो सम्बल ह्वै साथि ॥७॥

सूम सदा संजम रहै, इंद्रयूं परसै नाहिं ।
तन डिगतौं धन कौ धका, मत कौड़ै कछु जाहिं ॥८॥

सूम सगा नहिं जीव का, आपा पर न सनेह ।
रज्जब दुख दे देह कौं, सुकृत करै न गेह ॥९॥

सूम समाया सांकड़ै, सदा जतन सब वोड़ि ।
रज्जब रोका रिद्धि का, रह्या सु तन मन मोड़ि ॥१०॥

सूम समाई काधणी, बहु जरणा घट माहिं ।
जन रज्जब रिधि कै जतनि, लड़ै सु बोलै नाहिं ॥११॥

रज्जब सुकर सु सूम ह्वै, बैठा झारी माहिं ।
नरपति फोड़्या नैन गुर, पै पुनि छोड़्या नाहिं ॥१२॥

सुमिरण सुकृत दिसि चलत, बैरी बिघन अपार ।
आड़ी सलिता सोम गति, प्राण पुन्नि कोइ पार ॥१३॥

सुमिरण सुकृत बरजहीं, सो बैरी बट पार ।
सबद न सुणिये सूम का, रज्जब माथै मार ॥१४॥

सुकृत करै न करण देहि, यहु सूमहु का सूल ।
पै पैडा मारै पुन्नि का, परम पाप फा मूल ॥१५॥

पच्यासी का पूत है, सूम सु इह संसारि ।
गाड़ी छाड़ी मैं रह्या, निकसै कौन बिचारि ॥१६॥

सूम मते के सूत सौं, बांधे माया पंख ।
ब्रह्म व्योम क्यों जाहिं उड़ि, पंषी प्रान असंख ॥१७॥

सुरग धाम धरमिष्ट का, पापी नरक समाइ ।
जन रज्जब जत जोति दिसि, सूम सरप कहं जाइ ॥१८॥

सुरगि सदन सुकृति रहै, कुकृत नरक निवास ।
रज्जब सांसा सूम का, कहां करैगा बास ॥१९॥

जन रज्जब श्रम सूम करि, कृपन कमाई कोड़ि ।
स्वारथ परमारथ नहीं, गये माल मन वोड़ि ॥२०॥

आलम अंघ्रप मैं द्रसै, सूम सु सूकी डाल ।
परमारथ सोभा न तरु, सो जम चूल्है जाल ॥२१॥

माया के फल सूम कै, कदे न आवै हाथि ।
स्वारथ परमारथ नहीं, तीजै चलै न साथि ॥२२॥

सूमहि इहां न उहां कछु, बात बिनंठी मूलि ।
रज्जब धन धर गाड़तौं, तुरत किया तिन धूलि ॥२३॥

ज्यूं गत राड़ा पै पुन्नि बिन, त्यूं सूमहिं सुकृत नास ।
रज्जब रीते उभै दिसि, निहचै जाइ निरास ॥२४॥

देखहु किरपन कूप मधि, माया छाया होइ ।
जन रज्जब बेकाम वहु, व्योसावै नहिं कोइ ॥२५॥

रे रज्जब रिधि सूम की, बिभिचारी आधान ।
धणियहु काम न आवहीं, मन बच क्रम करि मान ॥२६॥

सकति सदन मैं बाढ़तौं, हरषे संचक हेर ।
ज्यूं जहाज जल सों भरै, तब बूड़त क्या बेर ॥२७॥

सकति सीत कै कोट कौं, संचिक देखि सिहाइ ।
रबि सुत किरन न सूझई, सुनहीं नहीं करि जाइ ॥२८॥

कोड़ि जोड़ि सुपनै पड़्या, जागि देखि कछु नाहिं ।
तैसे रज्जब सूम गति, यूं समझो मन माहिं ॥२९॥

गजमोतीर भुजंग मणि, तीजै सूम सु आथि ।
रज्जब मुर मारे बिना, माया चढ़ै न हाथि ॥३०॥

दुमई के द्रुम सारखी, किरपन की कोपीन ।
रज्जब रिधि चीरचूं कढ़ै, पुनि पानी सो हीन ॥३१॥

सूम सु चेरा लच्छ की, हस्त न सकई लाइ ।
पुन्नि पुरुष सिरमौर है, खरचै सदा सु खाइ ॥३२॥

किरपन कंचन धन धरया, हस्त न लावै हेर ।
तौ रज्जब सुणि सखी नै, संच्या सोवन मेर ॥३३॥

सोरठा : रज्जब आये काल, सुकृत सामै बिन चले ।
सूम सदा बेहाल, भूखे चौरासी डले ॥३४॥

साखी : रज्जब काढ़ै कूप जल, घटै न निरमल नीर ।
बिन काढ़या पाणी सड़ै, पिवै न कोई बीर ॥३५॥

सूम बिछोहै स्यो सकति, इहि दुखि को सहि दोइ ।
रज्जब सिद्धि सराप जेहि, सोब सरप किन होइ ॥३६॥

सांच चाणक का अंग

सबद सु उलझे बहुत हैं, तनि मनि सुलझ्या येक ।
रज्जब जीव जंजाल मैं, जिभ्या बहुत बमेक ॥१॥

मुख मुकते मन मैं बंधे, ऐसे कपटी कोड़ि ।
रज्जब बिकृत बक्त्र सों, रहै बिसै बप जोड़ि ॥२॥

ब्रह्मंड प्यंड माहैं बंधे, छाजन भोजन बंध ।
रज्जब मन मनसा जड़े, मुहड़ै कहै अबंध ॥३॥

बातहु मुकते गात बंध, मुहकम माया माहिं ।
सफरी सूवा जाल प्यंजरै, सिर निकस्यूं धड़ निकसै नाहिं ॥४॥

सरीर चलै संसार गति, सबद सु ग्याता रूप ।
रज्जब बातैं व्योम की, बसै बिचारा कूप ॥५॥

बित्त बारि वैली तरफ, बातौं परै प्रकास ।
सत्ति सूर का एक मत, सुणहुं बमेकी दास ॥६॥

सबद माहिं औरै कहै, सुरति मधि कछु और ।
रज्जब मैली आतमा, लहै न निरमल ठौर ॥७॥

तन तुपक जीवतौं बची, सबद सकल दिसि सोर ।
जन रज्जब बोली सुमन, गवन करहिं किहि ओर ॥८॥

मन भुअंग सिरि सबदि मणि, बिषै सु बिष नहिं जाहिं ।
रज्जब देखि उजास उहिं, मारि मारि जिव खाहिं ॥९॥

देही दरसण बंधि बप, ज्ञानी अकलि अगाध ।
रज्जब रस रीतहिं लिये, मुसकिल हूणा साध ॥१०॥

रज्जब नग नौखंड किय, धरि सु अष्ट बिधि ध्यान ।
मन मुकता गत मोल ह्वै, कहौ कौन यहु ज्ञान ॥११॥

मन अस्थिर करणा कठिन, रोकि दसौं दिसि मुख ।
अष्ट ध्यान धरि अष्ट मधि, इहै भंग इह रुख ॥१२॥

प्राणी पातुर लोह कै, काब सु कली चढ़ाइ ।
कसत घसत सो ऊपड़ै, गत बित दृग दरसाइ ॥१३॥

नांव सु पानौ मुख रंग्या, पै मन लाल न होइ ।
तब लग रत्त अरत्त है, समझ्या समझै कोइ ॥१४॥

बाणी रंगि बेचै बहुत, पै प्राण रंग्या नहिं जाइ ।
तब लग रहते रंग मैं, रज्जब कहां समाइ ॥१५॥

इक बकता है सुई समि, इक सुरता समि ताग ।
रज्जब बागा बंदगी, लागि रहै तहिं भाग ॥१६॥

बादल ज्यूं बाइक मिलै, गरजि सु मारे गाल ।
रज्जब चमकै बीज बल, बरिषा बित बिन काल ॥१७॥

अरिल : बिकत जोति ज्यूं रैनि अगनि सी देखिये
त्यूं करनी बिन काबि सु बीर बसेखिये ।
देख्या सुन्या सु नाहिं दूहूं घर सोधतैं
रज्जब उभै असत्ति सुण्या सत बोधतैं ॥१८॥

साखी : बिकृत जोग कृत हीन कबि, दृष्टि देखि सुणि झूठ ।
रज्जब उभै असत्ति हैं, रजू होइ भावै रूठ ॥१९॥

रज्जब कथिये ज्ञान गृह, सो सुणि मरै न कोइ ।
जैसे बादल बीजुली, चमकै बिघन न होइ ॥२०॥

गिरह उठावै गिरा करि, तन मन का नहिं जोर ।
तौ रज्जब कहु क्या सरै, सबद किये बहु सोर ॥२१॥

सबद संग्रहै काबि कथ, सब सुपिनै की आथि ।
करणी तत बिन जागतौं, रज्जब चलै जु साथि ॥२२॥

मत मंडल माहै मडे, मन मयंक नभि थान ।
खांडि कलंक न तिन मिटै, मन बच क्रम करि मान ॥२३॥

आतम आदित एक गति, बाणी पाणी माहिं ।
रज्जब अज्जब आगि है, बुझती दीसै नाहिं ॥२४॥

मुखि मीठे जल मुकर ज्यूं, पै ज्वाला मैं अंग ।
रज्जब कदे न कीजिये, तिन कपटयूं का संग ॥२५॥

मुखि साधू मन मैं असध, परिहरि कपटी मंत ।
रज्जब देखै द्रुपि दरस, द्वै मतहूं चौदंत ॥२६॥

कह्या सुण्या कड़वी न कछु, जे करणी कण नाहिं ।
रज्जब तब लग काल है, समझि देखि मन माहिं ॥२७॥

चौपई : करणी कण कूकस कथ कब, साधू संत कहैं सो सब ।
ज्यूं बातहि बात दाम के गेहूं, इहौ कथा क्यूं सुणी न केहूं ॥२८॥

साखी : कह्यू सुण्यूं कछु वै नहीं, जे कछु किया न जाइ ।
रज्जब करणी सत्ति है, नर देखौ निरताइ ॥२९॥

बक्त्रहुं बिद्या बक्त्र लग, सुरतिहुं श्रवनौ द्वार ।
ग्यान नगर पैठा नहीं, उरनि किया व्योहार ॥३०॥

सबद सलिल संबूह सौं, बप बादल भरि पूरि ।
बोध बारि परसे नहीं, मनसा दामनि दूरि ॥३१॥

रज्जब रहति सु घरि रही, पर घरि गई कहति ।
मूरिख मूल न जानई, समझ्या समझै सति ॥३२॥

महा कबेसुर पंडिता, बातैं जान प्रवीन ।
रज्जब नाहीं काम की, जे साधू अंग हीन ॥३३॥

अरथ किये बहु भांति के, पर अरथ न कीया बीर ।
रज्जब बातैं परै की, आपण वैली तीर ॥३४॥

पढ़ै पढ़ावै और कौं, पंडित प्राण अनेक ।
मन समझावै आपणा, सो रज्जब कोइ येक ॥३५॥

सत जति सुमिरण करण कौं, मन बच क्रम नहिं आस ।
जन रज्जब जगि आइ कनि, सो जिव गये निरास ॥३६॥

मन लागै नहिं नांव सों, बातैं ब्रह्म सु होइ ।
रज्जब मन की लगनि बिन, सीझ्या सुण्या न कोइ ॥३७॥

जन रज्जब चित चोरटे, बोलै साधू बैन ।
देह दसा उर और दसा, यहु ठग बिद्या ऐन ॥३८॥

पदहुं न पहुंचै परम पद, साखी भरहिं न साखि ।
इस लोकहुं इस लोक मैं, जे मन सक्या न राखि ॥३९॥

गुण गालन कौं एक को, गुण गाइण सु अनेक ।
रज्जब कही बिचारि करि, समझौ बीर बमेक ॥४०॥

कब कथ कागद नांव परि, पढ़ि गुणि बैठे जाणि ।
पै करणी कष्ट जहाज बिन, रिधि निधि तिरहि न प्राणि ॥४१॥

सत जत सुमिरण ना गह्या, बिद्या बेत्वा बीर ।
पाठौ पार न पाइये, रज्जब वैली तीर ॥४२॥

करणी कठिन सु बंदगी, कहणी सब आसान ।
जन रज्जब रहणी बिना, कहां मिलै रहिमान ॥४३॥

तन मन आतम राम सौं, यहु जोड़े नहिं जांहिं ।
तौ रज्जब क्या पाइये, सबदौं जोड़े मांहि ॥४४॥

करणी सौं काठै रह्या, कथणी कौं हुसियार ।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलै, सकल बक्या बिभिचार ॥४५॥

समझि न अपणे कहे की, बकै बिकल बुधि माहिं ।
रज्जब सूते के सबद, जागे की गति नांहि ॥४६॥

कथणी कथ्यूं न मन मरै, नवै न नौ की कोर ।
ज्यूं रज्जब बड़रात सुणि, बित्त न छांड़ै चोर ॥४७॥

सीत भरम गुणि गुदड़ी दाव्या, बोलै घर घट माहिं ।
रज्जब रोगी रारि न खोलै, चोर डरै यूं नांहि ॥४८॥

रज्जब कथ्यूं न मन मरै, अरि गुन डरपहिं नाहिं ।
जैसे स्यंघ पषाण कै, पंषि बसै मुख माहिं ॥४९॥

करणी बिन कथणी निबल, नहीं ज्ञान मन गंठि ।
जन रज्जब ज्यूं स्यंघ नख, बांध्या बालिक कंठि ॥५०॥

पुहुप पान गति ज्ञान है, सु ऊगै पहमि न प्राण ।
रज्जब ज्ञाता गहन कौं, तजै नहीं गत बाण ॥५१॥

पढ़ि पढ़ि हुये सेहु से, सूलौं भरचा सरीर ।
रज्जब मारै और कूं, आप न बेधै बीर ॥५२॥

उर अनरथ मुहड़ै अरथ, कह्यूं कहां सो होइ ।
जन रज्जब रीते रहे, काजी पंडित जोइ ॥५३॥

दस पथ साखी सीख करि, फिर फिर माडै सींग ।
रज्जब साधू सों अड़े, देखौ बिगड़े धींग ॥५४॥

ज्यूं नृतिकारी नाचतौं, काढ़ै रूप अनेक ।
त्यूं रज्जब सब कहण कौ, करिबे को नहिं येक ॥५५॥

बात माहिं जो देखिया, गात माहिं सो नाहिं ।
तौ रज्जब सो सबद सुणि, सुरता क्यूं ठहराहिं ॥५६॥

रज्जब विद्याधर बहुत, लिये अविद्या साथि ।
तम मैं चलैं चिराकची, रहैं चिराकहिं हाथि ॥५७॥

पुस्तक पढ़हीं सिर धरहिं, पंडित प्यादे जोइ ।
पाठ पंथ तन पेट लग, दरस देस अनि होइ ॥५८॥

साख्यूं सांसा न चुकै, पदौं न पद मैं जाइ ।
रज्जब कहि सुणि देखिया, नर देखौ निरताइ ॥५९॥

अकल अकलि सौं जाणिये, पै जीव सीव नहिं होइ ।
सत जत सुमिरण बाहिरा, सीझ्या सुण्या न कोइ ॥६०॥

रज्जब बरणै बैन बपि, जिव जीवन नहिं जान ।
मानहु ग्राहिज गहन गति, गहै न ससि हर भान ॥६१॥

ब्रह्मंड प्यंड कौं व्योरई, बातौं करि सु बसेखि ।
रज्जब बोले बोध बलि, बिरला कहसी देखि ॥६२॥

रज्जब आई बात मैं, हाथ माहिं निधि नाहि ।
सो रीता सुणि रिद्धि बिन, समझि देखि मन माहिं ॥६३॥

रज्जब पारस चित्र का, माड्या सोवन मेर ।
त्यूं कथणी करणी बिना, साथ चढ़ै क्या हेर ॥६४॥

पद पावक मैं लिख लिया, तौ घर तिमिर न जाइ ।
रज्जब दीपक राग कौ, जे न सुनावै गाइ ॥६५॥

भगवंत भजन बिन झूठ सब, प्यंड ब्रह्मंड बखाण ।
रज्जब दत बाजी चिहर, दे ले मिथ्या जाण ॥६६॥

पाठौं दरसै नांव सब, परि ठांव न पैसै प्रान ।
तब लग तत बित दूरि है, समझै संत सुजान ॥६७॥

चौपई : राग माल लिखि राग न आवै, भोगल लिखि लै राज न पावै ।
प्यंगुल लिखि नहिं प्यंगुल उपजै, यूं सबद सीखि कहिं साध न निपजै ॥६८॥

साखी : साल सहस मण कूटिये, ऊखल मूसल माहिं ।
रज्जब दून्यूं बरतिये, परि तात परज कछु नाहिं ॥६९॥

पकवान पकाये बहुत बिधि, कड़छ कड़ाही माहिं ।
रज्जब दुख दून्यूं सहै, स्वादर सीर कछु नाहिं ॥७०॥

लाख कोड़ि लेखणि लिखै, लहै न लच्छी लेस ।
कलम कमावै और कै, देखहु यहु उपदेस ॥७१॥

बैद बंदिये बप बिमल, बूटी बीच बिलाइ ।
एक दलाली यहु नफा, नर देखौ निरताइ ॥७२॥

मन गोली पहुंचै पहल, पीछैं सबद अवाज ।
यूं करणी सौं कथनी लगी, इनके सीझै काज ॥७३॥

ज्यूं कथणी मुख सौं कथै, त्यूं करणी ह्वै माहिं ।
तौ रज्जब सांची कथा, कहे भ्यन्न जो नाहिं ॥७४॥

एक कह्या साही मतै, कहै किया नहिं जाइ ।
तबलबाज नीकै कहैं, रज्जब कहि करि जाइ ॥७५॥

स्वान सबद सुनि स्वान का, बिण देखैं मुसि देइ ।
त्यूं रज्जब साखी सबद, जे देखि निरख नहिं लेइ ॥७६॥

परषिर बोल्या पाहरू, सो बोल्या परवाणि ।
रज्जब सुनहै सुणि सहस, भूके मिथ्या जाणि ॥७७॥

रज्जब बोले भेष बरि, जथा स्वान खंड खाइ ।
वहि आसंक्या ना उठै, वहि नहिं उदर भराइ ॥७८॥

टूटहुं की पहुंचा छड़ी, कोई गह्या न जाइ ।
त्यूं भाव भगत उपजै नहीं, अज्ञानी बक बाइ ॥७९॥

हीरे जींगण सर्प मणि, आगि नहीं रंग आगि ।
यूं ज्ञान बिना गति ज्ञान की, तिरगुण जलहिं न जागि ॥८०॥

मानहु मिरतग पूत जणि, क्या हरषै पित मात ।
त्यूं रज्जब कहु वै नहीं, ज्ञान हीन गत बात ॥८१॥

सीखे सबद कबीर के, दिल बांध्या कहि नाहिं ।
मनसा बाचा करमना, वहि निगुरा मन माहिं ॥८२॥

गुर बिन सीखी बहु गिरा, ज्यूं कारन बिन कंत ।
कलितहुं माहिं कलंक यहु, निकसै लेतहु अंत ॥८३॥

जन रज्जब गुर बिन गिरा, सीखै अनंत अपार ।
बहु पुरिषौं पुरिषे नहीं, गनिका का औतार ॥८४॥

सबद सकल के संग्रहै, गुर एकहु नहिं सीस ।
रज्जब यहु बेस्वा मता, मन बचि बिस्वा बीस ॥८५॥

बहु बापौं बापै नहीं, बेस्वा बालहिं जोइ ।
त्यूं निगुरे बैराग कै, ठिक ठाहर नहिं कोइ ॥८६॥

नीति नेव पतिबरत की, नर निगुरेऊ नास ।
रज्जब बेस्वा बाल बिधि, पिता पूत नहिं आस ॥८७॥

उभै अरथ जाणै नहीं, कहत सुनत भई सांझ ।
सो रज्जब निरफल गये, ज्यूं नर नारी बांझ ॥८८॥

चौपई : निगुरी बाणी खुदरू लौन, ताहि न मोल बिसाहै कौन ।
गुर मुखि सबद सरब रस स्वाद, मोल बिकावै मुलिक सु आदि ॥८९॥

साखी : नर नछत्र दीसहिं अनंत, उदित अमावस रैन ।
पहुंचै पून्यूं प्रगट तुछ, अभ्यासै नहिं सैन ॥९०॥

बैराग बघूलै ज्यूं उठै, अलप अधूरी आव ।
रज्जब रहै न उस मतै, मत मारुत नहिं पाव ॥९१॥

चारि खानि चौरासी भरम्या, रज्जब रह्या न माहिं ।
पै खानि पाचमी पग न ठाहरै, निगुरा निहचल नाहिं ॥९२॥

तन फेरे चहुं थानि फिरि, पंचम मैं गुरदेव ।
मूरिख मरम न जाणही, पड़ी फेरणी टेव ॥९३॥

कागर खेसुर पाख इक, भोला पूजै लोइ ।
भी रज्जब मारै सबै, करणी नाहीं कोइ ॥९४॥

दस राहै देखै दुनी, नील टांस कौं नैन ।
तौ कहा खलक ले बाहुड़ी, का खग पाया चैन ॥९५॥

चौपई : गढ़वी चारण राजा भांट, ढोली राणा उलटा ठाट ।
रज्जब स्वामी सुध नहिं सार, ज्यूं भिषित भ्रमत कहा दातार ॥९६॥

साखी : ज्यूं देखादेखी पंथ सिरि, पाथर कीजै ढेर ।
त्यूं रज्जब संसार सठ, रती न समझै भेर ॥९७॥

ज्यूं देखादेखी बिरछ कौं, चींपी बांधै लोग ।
त्यूं रज्जब समझै नहीं, झूठा जग का जोग ॥९८॥

हुये गूदड़ी जाट ज्यूं, जोग न आया हाथ ।
जन रज्जब फूलै फलै, जड़ जुवती धर साथ ॥९९॥

दसा औ दसा दूरि करि, दिल परि साहेब राखि ।
रज्जब रजमा नांव मैं, साध बेद की साखि ॥१००॥

जन रज्जब रीती रहति, नांव बिना क्या होइ ।
स्यंघल दीप जती घणे, सीझ्या सुण्या न कोइ ॥१०१॥

त्यागी कौ लागी घणी, माया मेलग मन ।
यहु भी हूनर देखिये, समुझै समुझौ जन ॥१०२॥

माया मृग उलटे चढ़ैं, विक्रत बधिक सुभाइ ।
बिभूत उड़ावहिं सनमुखी, जड़ चेतन ठगि खाइ ॥१०३॥

उदार अहेड़ी बधिक बिधि, साधू सुद्ध सो नाहिं ।
भूति बिभूति उड़ावहीं, मृग माया फंद माहिं ॥१०४॥

आतम ओढ़े लोग सब, ऊपरि नगिन सरीर ।
रज्जब रचना कपट की, संत न मानै बीर ॥१०५॥

रज्जब बसुधा व्योम बिचि, सूर दिगंबर रूप ।
सर सलिता ग्रासे सबै, सोखे बापी कूप ॥१०६॥

अंड अवस्था नगिन नर, नागहु नागे नाहिं ।
दृगहु दिगंबर देखिये, बहुत पंक पटमाहिं ॥१०७॥

रे रज्जब मन नांव सौं, लागै सुद्ध न होइ ।
तौ दिग अंबर पहिरि कर, सीझ्या सुण्या न कोइ ॥१०८॥

तन नागा बहुतैं करै, मन नागा नहिं होइ ।
रज्जब मन नागे बिना, कारज सरै न कोइ ॥१०९॥

सबल दिगंबर देखिये, चौरासी लख जीव ।
बागे गंठिबंधण नहीं, कहु क्यों न पाया पीव ॥११०॥

नागे पगि नाहर फिरहिं, पिसण पसू हति खाइ ।
मिहरि माहिं मोजे पहरि, मुगलौं छोड़ी गाइ ॥१११॥

मानहु कपड़े काचुली, तजि सुनि गिन नर नाग ।
रज्जब नख सख बिष भरे, ठाहर उभै अभाग ॥११२॥

रज्जब चुपड़े असन अति, बसन सु रूखे अंग ।
मन बच क्रम कपटी कला, केसौं कैसे अंग ॥११३॥

नांव बिमुख बिकृत बहुत, कोई सीझे नाहिं ।
चौरासी सब चीर बिन, कनक न गांठ्यू माहिं ॥११४॥

बप बागहुं बिरच्या सही, जिव सलिल उतारहि झाग ।
तौ रज्जब मन मच्छ तैं, सकति सलिल भै त्याग ॥११५॥

बागे त्यागे नरहु नै, ज्यूं तरवर पतझार ।
दिन दस नागे देखिये, पुनि ढाके व्योहार ॥११६॥

उघड्यू ढकिउं न ढुलि मिलै, प्राण पारषू साध ।
तिरसुद्धू तिरसुद्ध ह्वै, रज्जब बुद्धि अगाध ॥११७॥

निस नागे नरकन रहैं, दिन देखे त्यूं देव ।
भोजन समये गुर नगिन, ध्रिग सु दिगंबर सेव ॥११८॥

दाम भाम माहै रहति, आदम अदभू ठाट ।
रज्जब राम न पावहीं, भूले भजन सु बाट ॥११९॥

काया सौं कामणि तजी, मन भुगतै रणवास ।
रज्जब बप बनखंड मैं, चाहैं कनक अवास ॥१२०॥

बाहरि बंध बैराग कै, भीतरि गिरही लोग ।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलहिं, इहं पाखंडी जोग ॥१२१॥

काम कलणि माहैं कले, गाफिल गल ज्यूं गात ।
रज्जब बीधा व्याधि मैं, मुखि सु राम की बात ॥१२२॥

दीये दाम न कर चढ़ैं, बिना उपासि उपाधि ।
अनदीये सु अतीत ले, कपट कसौटी साधि ॥१२३॥

कपट कसौटी ठग बिद्या, आसण अधर कराइ ।
रज्जब लोभी लालची, सकल धरे के भाइ ॥१२४॥

परम न माया लेण कौ, बिबिध कौसौटा कीन ।
रज्जब जिव रीता रह्या, महा मुगद मति हीन ॥१२५॥

मन तन मरद्या मानि कौ, करी नीच लग नीच ।
रज्जब आतम राम का, तऊ न भागा बीच ॥१२६॥

रज्जब कौड़ी ना गहै, करि दासौं मैं बास ।
ज्यूं जल मीन न मुखि पिवै, बिन तोय तनु नास ॥१२७॥

मीन मुनीसुर होइ करि, रहे दास दह कोस ।
रज्जब पंषी प्रान कौ, जलनिधि लेत सु रोस ॥१२८॥

रज्जब दासौं माहै बास करि, स्वामी स्वान बसेख ।
अजाचिक गृह गहि रह्या, घुसै अतीतौं देख ॥१२९॥

आदम ईदम सारिखा, देखिर मुसै फकीर ।
चौरासी माहीं नहीं, दूजा वहि समि बीर ॥१३०॥

दास देस दिल मैं गहै, देह दिगंबर होइ ।
माड रिझाई भांड मत, मुझ मानै सब कोइ ॥१३१॥

औधें करि पानी घड़े, सूका कीन्हीं आस ।
त्याग दिखावै जगत कौं, करै ताल परि बास ॥१३२॥

गहै सगरथी गूदड़ी, तजै निगरथी नीर ।
रज्जब रचना कपट की, पाखंड मांड्या बीर ॥१३३॥

अमरबेलि समि औलिया, जिमी जगत निरमूल ।
रज्जब पलहि सु नर तरहु, छूटण की नहिं मूल ॥१३४॥

जल बिहूण जल मंडली, जीवै पाणी माहिं ।
त्यूं अतीत आसा रहित, परि आलम न्यारे नाहिं ॥१३५॥

तीन दाम की चूकणी, मुहरहि चूकण जाइ ।
त्यूं रज्जब साधहिं असद, सबद चुभोवे आइ ॥१३६॥

लोहा सोना छेदिये, लोहै कंचन तोल ।
पै रज्जब रज तज काढ़तौं, सरभरि लहै न मोल ॥१३७॥

साध असाधौं सौं सकै, मूलि न हूज्यो भेटि ।
कीड़ी सौं कुंजर डरै, सोवै सूंड़ि समेटि ॥१३८॥

गयंद सु डरपै माछुरौं, देखौ कदरज खाहिं ।
एक पूछि कै झाटकै, केते मारे जाहिं ॥१३९॥

सोधी बिन सिध देखिये, सांई पावै नाहिं ।
सुरति बंधी रिधि सिद्धि सौं, फिरि आघै कलि माहिं ॥१४०॥

माया माहिं मिल्यो मन खेलै, कहिबे कौं मुखि केवल राम ।
सांई मिलै नाहिं इन बातौं, रज्जब सरचा न एकौ काम ॥१४१॥

माहैं माया चाहिये, ऊपरि भये उदास ।
रज्जब रामहिं क्यूं मिलै, ध्यान धरे के पास ॥१४२॥

बाहरि सौं बिक्रत भये, भीतर भूख अनंत ।
जन रज्जब जग यूं ठगहिं, बहुड़ि कहावै संत ॥१४३॥

ब्रह्म मिल्या भी चाहिये, अरु माया सौं काम ।
जन रज्जब कहु क्यूं मिलै, अंतरजामी राम ॥१४४॥

रज्जब काया कूप मैं, करक कामना माहिं ।
जब लग सो निकसै नहीं, तौ जल काढ़े कछु नाहिं ॥१४५॥

सूतै सुपिना बिलसिये, जोगी ह्वै जोग्यंद्र ।
रज्जब सीझै कौन बिधि, मनवा मैलै मंद्र ॥१४६॥

घरि बनि पसु माणस रहै, उभै न लपटहिं अंग ।
यहु रज्जब भागा भरम, फिरहिं न नाड़े नंग ॥१४७॥

पसु प्राणी पलटहिं नहीं, घर बनि बासा झूठ ।
रज्जब रीते राम बिन, रजु होइ भावै रूठ ॥१४८॥

बिन जारे बिचरहिं सदा, बणिये बैठे हाट ।
रज्जब चंचल अचल गति, सुरति सकति की बाट ॥१४९॥

करहि कीरतन पेम सो, माया देखि मजूर ।
जन रज्जब ऐसी भगति, हरि सौं नहीं हजूर ॥१५०॥

रज्जब भाड़े की भगति, करहिं कलंकी जीव ।
भजन बेचि पेटहिं भरै, कदे न मानै पीव ॥१५१॥

हरि जस बेचै पेट कौ, वै मदभागी जाणि ।
जन रज्जब निरमोल का, मोल कराया आणि ॥१५२॥

रिधि सिधि तजि बैकुंठ लग, भगतिहि बांछै साध ।
जन रज्जब सो बेचिये, मोटा ह्वै अपराध ॥१५३॥

नांवै बेचत बिकत हैं, नांव लिहारी प्रान ।
अनबेचे सु गुलाम हैं, नांव धनी सर्व जान ॥१५४॥

नीर नेह नग नांव मैं, मोलतोल तिन नेत ।
देणहार भूखे सु देहिं, भाग सभागे लेत ॥१५५॥

व्याल बंदरौं तुलि ताइफ, बाजीगर सु महंत ।
रज्जब लोभी लालची, मिले सु माया संत ॥१५६॥

कलि रीझे कपि की कला, बित बाजीगर खाइ ।
रज्जब इस पाखंड की, महिमा कही न जाइ ॥१५७॥

जिव बाजीगर डाक मुख, आसण कला अपार ।
रज्जब आया भूख ले, मंगिण इह संसार ॥१५८॥

तनहि नचावहि जीव बहु, मनहु मुनेसुर प्रान ।
रज्जब मन की निरति बिन, मौज दरस नहिं दान ॥१५९॥

बाजै गाजै ऊपरै, मन मगनी ह्वै जाइ ।
रज्जब रीझै गाइ सुन, सबद भेद ही माहिं ॥१६०॥

रज्जब रागी राग कै, उरग मिरग मन माहिं ।
सुर सांटै सिर देत हैं, सीझे सुणे सु नांहि ॥१६१॥

खुड़ कै खांई मैं पड़ै, सठ सूवर मति हीन ।
त्यूं ही आवहि जाल मैं, डल डभकै सुनि मीन ॥१६२॥

यूं ही कलिजुग करनि बसि, करषि कुलाहल लीन ।
रज्जब सुन्यै सोर यूं, संसारी बस कीन ॥१६३॥

ज्यूं हांडी अदहण सु जल, त्यूं बाजे सब राग ।
नाज नांव बिन झूठि सब, भूखहु मरहिं अभाग ॥१६४॥

सूवा सारौ संग्रहै, सुणि सुणि मीठा बोल ।
रज्जब बाणी बसि परे, घरि घरि बेचे मोल ॥१६५॥

डूम न डरपै मांगता, संसारी अरु साध ।
रज्जब भाने चाहि चखि, भीतर भूख अगाध ॥१६६॥

रज्जब डरिये डूम सौं, अति गति हाटौ खूम ।
भिस्त छाणि दोजग चल्या, देखि सु धुकता धूम ॥१६७॥

मंगित मन ठाहर नहीं, नित तृष्णा मगि पग ।
सब दिसि चिगता देखिये, तौ कहिये जाचग ॥१६८॥

मंगित गति माहैं नहीं, मंगिण गिण्या न जाइ ।
रज्जब राखै कौन बिधि, नर देखौ निरताइ ॥१६९॥

चौपई : नांव भिखारी आरति आर, रसणि पुराणी रोप्या सार ।
रज्जब सती सु धोरी डरै, जांचत छेद उड़ै मति करै ॥१७०॥

साखी : लालच लच्छी कौं चलै, लाज पछमनी लेइ ।
मंग्यत चढचा हिंडोलनै, पग न धीर धर देइ ॥१७१॥

रज्जब दीन देह आधीन, बाइक भूत भीत परसेद ।
भागदतै ह्वै मीच समायो, भिन्न नाहिं नहिं भेद ॥१७२॥

एक बोलते अति भले, एक अनबोले कछु नाहिं ।
रज्जब नरनालेर ज्यूं, मौनी चिकठे माहिं ॥१७३॥

मौनी मुख मांगै नहीं, सैना चाहै सोइ ।
परि रज्जब परपंच कौं, साध न मानै कोइ ॥१७४॥

संख सबद फिरयादि हैं, सींगी नाद पुकार ।
रज्जब रोवहिं पेट कौं, मति कोइ करै संभार ॥१७५॥

केते मुरगे बांग देहि, रासिब पूरै संख ।
किन उनकौ पूरा दिया, रे मन मूढ़ मझंख ॥१७६॥

मद पीवत माया गमै, मतिवाले मति खोइ ।
काले पाणी चर गया, सकल पुकारै लोइ ॥१७७॥

दारू धक्का दैत का, पी परसै मनि नास ।
तौ रज्जब इह जुगल मिलि, जीणे की क्या आस ॥१७८॥

नांव भंग भंगै करै, पोसत पाई नेह ।
रज्जब राच्यूं बसि करै, बिरच्यूं पाड़ै देह ॥१७९॥

अमल अमल अपणा करै, मनसा मही मझार ।
रज्जब प्राणी परज परि, पीड़ा दुख अपार ॥१८०॥

अमली अमली कहत हैं, सो क्यूं मिलसी आइ ।
रज्जब भाषै भेद कौ, नर देखौ निरताइ ॥१८१॥

सोफी नांव बुलाइये, अमल न झूटै कोइ ।
रज्जब बिरद बिसारि कर, बैसै रतन सु खोइ ॥१८२॥

नांव परोहित हित परै, चूक बड़ी चित माहिं ।
रज्जब नांव प्रताप की, मिहमा जाणै नाहिं ॥१८३॥

नांव जोतगी सब कहैं, सूझै ठीक न ठांव ।
ज्यूं अंध संतोषै अंध मन, नीड़ा आया गांव ॥१८४॥

ये करतों धा जोतगी, देखौ दिसि आकास ।
धरती धन सूझै नहीं, रज्जब तत बिते पास ॥१८५॥

सोरठा: गुर गोव्यंद दरबार, गरद मरद लागी न अंग ।
सुरगज लेहिं अपार, अहि अवनी छांड़ै न संग ॥१८६॥

गुर गोव्यंद दरबार, रज रज्जब लागी न उर ।
सु छिन छिन लोटहिं बार, खित खालिक सिरजे सु खर ॥१८७॥

साखी: साधू पद रज परसतैं, बहुत लाभ सुनि बैठ ।
रज्जब एक अनेक ह्वै, धान धूलि मैं पैठ ॥१८८॥

मन माया की बैंदि मैं, बीती उमर अनेक ।
रज्जब गुर गोव्यंद कौ, जनम दिया नहिं येक ॥१८९॥

अनेक जनम यूं ही गये, दातहिं दिया न येक ।
तौ रज्जब जड़ जीव का, समझ्या सकल संकेत ॥१९०॥

बस्तु बिकी अरु बाठ रहै घरि, सो संपति कछु नाहीं ।
जन रज्जब एकौ बिन ऐसे, समझि देखि मन माहीं ॥१९१॥

रज्जब काया कीच की, सजल सरोवर येक ।
बारि गये सु बराइ बहु, डल ह्वै गये अनेक ॥१९२॥

सदगुर बूटा आल का, सिष जड़ तूटे मीच ।
पुनि ऐसे आये मिलै, तंतू बसुधा बीच ॥१९३॥

दुनिया सो करि दोस्ती, रज्जब बिसरचा पीव ।
सूक बिरष मैं फलत कै, अइया मूढ़ मति जीव ॥१९४॥

आतम रामहिं ना बणी, रिद्ध न मिलहिं अभाग ।
रज्जब दीसहिं प्राण पहि, महा बिपति बैराग ॥१९५॥

जीव सीव पर नाचहीं, सक्ति सु दीनी पीठि ।
रज्जब रह्या दलिद्र घरि, दह दिसि दीसै दीठि ॥१९६॥

रज्जब लक्षिण जीव के, बातौं ब्रह्म सु होइ ।
मनसा बाचा करमना, कारिज सरै न कोइ ॥१९७॥

जन रज्जब तन रंक गति, सब बातौं सु सकज्ज ।
मन बच राजी ह्वै रहै, वहि बोलै सु निलज्ज ॥१९८॥

कूरम ग्रीवा गति गिरा, प्रगट गुप्त ह्वै जंत ।
साध सबद निकसै सु यूं, ज्यूं रज्जब गज दंत ॥१९९॥

साध सबद सति सैल समि, सो सरकै नहिं कोइ ।
आनन उदै असंत कै, गिरा सु गति गत होइ ॥२००॥

मनसा के दति मित नहीं, कीजहि दान अनेक ।
रज्जब दुरलभ हाथ सौं, करिबे को नहिं येक ॥२०१॥

सठ सुरता हूये रहैं, देत न समझ्यूं ठौर ।
पै गत मत कैसे छिपै, आगै पीछै और ॥२०२॥

बांध्या बाधै कूं भजै, मुक्ति हूंण की आस ।
सो रज्जब कैसे खुलैं, इह झूठे बेसास ॥२०३॥

चेतनि कण सुणि सीख ले, सेवै जड़हि सु जाइ ।
सो रज्जब कैसे बणै, नर देखौ निरताइ ॥२०४॥

तन पाका ज्यूं तोरई, मन पाका ज्यूं बीज ।
रज्जब रस बाकस भया, अमृत बिषमैं चीज ॥२०५॥

सेवग सिरटा मक्कई, काचा सेकैं स्वादि ।
पाकि सूकि जड़ ज्वार गति, बाकस ह्वै गै बादि ॥२०६॥

तन तरु रज्जब बड़े ह्वै, तब फूलौं सौं जाहि ।
सो कूं सेवग साणि कै, क्यास बड़ाई माहि ॥२०७॥

रज्जब रावण मुख सभा, पै बड़ा बदन रासिब ।
नर आनन नीकै कहैं, वह बोलि बिगाड़ै सब ॥२०८॥

चौपई : घट घोड़ा आतम असवार, ऊजू किसहि करावै यार ।
पांच बार पैहणु के धोवै, यूं उज्ज्वल असवार न होवै ॥२०९॥

साखी : अस असफौं का संजम उजू, असवार सुपति तप लीत ।
तौ उज्वल क्यूं पाक ह्वै, चलि ऐसी रस रीत ॥२१०॥

चौपई : सदा प्यंड पाणी सो धोवै, ऐसे प्राण न ऊज्वल होवै ।
जलचर देखि रहै जल माहीं, रज्जब मैलि न उनके जाहीं ॥२११॥

साखी : बोक बक्त्र दाढ़ी बड़ी, ये तिसकी करै न लाज ।
रीछ रीस रूपी सु तन, कहौ सरचा क्या काज ॥२१२॥

सुपिनै सम्पति संचिये, सुपिनै गुर सिष रत ।
रज्जब दून्यूं झूठ हैं, जागे माल न मत ॥२१३॥

सुपिनै नर नारचूं मिलै, सुपिनै गुर सिष गत ।
रज्जब उभै असत्ति हैं, जागे सुत ना मत ॥२१४॥

क्या सिष सुपिनै सेवकी, क्या गुर बरंभू होइ ।
रज्जब सगपण झूठ है, जिनर पतीजै कोइ ॥२१५॥

रंक सगाई राज घर, जे सुपिनै मैं होइ ।
रज्जब नाता ना गिणहिं, जागे जगपति कोइ ॥२१६॥

मूये गुर माथैं धरे, निगुरहु नैं निरताइ ।
जीवत सो जोख्यूं घणी, सेवा करी न जाइ ॥२१७॥

गुण ज्ञान जीवतहु कन लिया, मुये किये गुर पीर ।
मन बच क्रम बिकृत घणी, संत न मानै बीर ॥२१८॥

तन तोये ले तेल नीपजै, घास चरै पसु घीव ।
तौ रज्जब रूखा क्यूं कहिये, अन्न अनिल सूं जीव ॥२१९॥

तिरि जाणे नहिं हरि बिमुख, सिर ले पाप पषाण ।
बिसुवा बीस सु बूड़ई, रज्जब कह्या बखाण ॥२२०॥

चौपई : सुनही सूरी मुरगी मीन, बहु जातग जणि कड़वा कीन ।
पै परमारथ उपज्या क्या माहिं, रज्जब रावण देखौ नाहिं ॥२२१॥

साखी : मत हीणा मन जब धावई, तब मारग चलै न जोइ ।
ज्यू मुखि सूतै आपणैं, बोक मस्त जब होइ ॥२२२॥

सारदूल तलफै पै मरै, सुनिब इंद्र की गाज ।
सो सुरपति समझै नहीं, यहु पचन होत बेकाज ॥२२३॥

बखत ब्योरे का अंग

नर उर हिमगिरि ज्यूं झरै, साधू सूरिज देख ।
जन रज्जव तप ताप मैं, बिगता बिगति बसेख ॥१॥

त्रिबिधि भांति का लोग हैं, त्रिबिधि भांति का जोग ।
जन रज्जब सेवा समझि, सबै लगावैं भोग ॥२॥

चौपई : दीप मसाल एक नहिं बाती, जैसा देव सु तैसी पाती ।
रज्जब रोस न कीजै बीर, भाग भ्यन्न काहू नहिं सीर ॥३॥

साखी : सबकूं समसरि ना किया, अन्न धन्न अर आव ।
रज्जब बखत बिचारिये, कीजै नहीं चबाव ॥४॥

त्रिबिधि भांति त्रिगुणी करी, सो संसरि क्यूं होइ ।
आव अलूफै अकलि मैं, मन बच क्रम करि जोइ ॥५॥

सिरज्या सिरजनहार का, मेटि न सकई कोइ ।
रज्जब दुरमति दोस धरि, बादि बके क्या होइ ॥६॥

रज्जब रिधि सिधि भाग की, पाई पूरब गति ।
ताहि देखि तपि तपि उठै, अइया मूरिख मति ॥७॥

दुख सुख सांई का दिया, जीवौं पाया सोइ ।
तौ देखि दलिद्री ईसुरहिं, त्यूं सरतंषा होइ ॥८॥

देखि पराये भाग कौं, रोवहिं सदा अभाग ।
रज्जब वे आनन्द मैं, उनकै दिलि दुख दाग ॥९॥

सठ सुनहा निस दिन घुसैं, आंख्यूं देखि अतीत ।
रज्जब रिजुक न घरि बंध्या, वै बकि बिकल बतीत ॥१०॥

भौकहिं गोरख दत्त कौ, कुत्तहुं की यहु बाणि ।
पै सिरज्या सरकै नहीं, हासिल होइ न हाणि ॥११॥

बिभूति बंदगी हरि हुकम, नरहु परापति होइ ।
जन रज्जब थोड़ी बहुत, दोस न दीजै कोइ ॥१२॥

रज्जब दुख सुख देखि करि, कीजै नहीं उचाट ।
एकहु कै पाइन पदम, एकहु नहीं लिलाट ॥१३॥

मारौं लाइक मार पावहीं, मौजौ लाइक मौजा ।
एकहु के पग कूकर काटहिं, एकहु गैल सु फौजा ॥१४॥

सत जत सौं दीसै बड़ी, रती जु मस्तग माहिं ।
रूप राग गुण सब थके, कोई पूजै नाहिं ॥१५॥

रती न पावै रती बिन, सती जती ह्वै जोइ ।
सपत दीप नौखंड फिरि, बिन रचना क्या होइ ॥१६॥

रचना बिन नाहीं रती, बखतौं घट न बिराट ।
रज्जब पावै पान सों, ठाकुर ठया जु ठाट ॥१७॥

भगवंत भाग माहीं लिख्या, सोई मिलसी आइ ।
ता ऊपरि बोझा अधिक, रज्जब लिया न जाइ ॥१८॥

रती सहित राजेन्द्र ह्वै, रती बिहूता रंक ।
रज्जब भाग अभाग बिच, येक रती का बंक ॥१९॥

रूठे तूठे किसे के, घटै बधै कछू नाहिं ।
राम रच्या सो होइगा, लिख्या सु मस्तग माहिं ॥२०॥

भावी भालि न ऊतरै, भूति न भावी भाग ।
रज्जब रचना क्यूं टलै, भावै सोइ भावै जाग ॥२१॥

भगवंत भाग मोटा दिया, तौ छोटा किसक न होइ ।
प्रभू पसाव सो क्यों घटै, काहै कलपै कोइ ॥२२॥

पैठहिं सैल समुद्र मधि, रिधि मुकता कै भाइ ।
भाग बिना खान्यूं दबै, वाहि मगरमछ खाइ ॥२३॥

बारि लोक बड़वानल लहिये, ये उग्रह सु अभाग ।
परबत परि पाणी मिलै, रज्जब अज्जब भाग ॥२४॥

सारंग चाहै स्वाति कौं, दामनि दग्ध्या गात ।
रज्जब कहिये कौन कौ, इन बखतौं की बात ॥२५॥

आभा तलि बोड़े अहर, सारंग स्वातिह जानि ।
असणि अभागौं कनै बोसरै, तहं सुन्नत की हानि ॥२६॥

हाडी तौ भाड़ी भई, छौकत लागी आगि ।
जीवण करतौं जलि मुये, अइया भूंड़े भागि ॥२७॥

अइया अभागी ऊंदरा, करंड काटणे जाइ ।
कै बखत बली बाती गहै, जासों लागै लाइ ॥२८॥

गोला छूटा और दिसि, पंषी आया बीच ।
रज्जब कहिये कौन सों, भागौं ह्वै गई मीच ॥२९॥

अनल पंष आदित जरी, बड़वानल सौं मीन ।
जीवनि ठौर सु जम भई, काहि कहै मसकीन ॥३०॥

नर तर तारे समि नहीं, जे सिरजे करतार ।
रज्जब घटि बधि बीच कै, बाबै हाथि बिचार ॥३१॥

चतुर खानि के जीव जगि, नाहीं एक समान ।
त्यूं रज्जब सुनि हेत रज, एभी यूं ही जान ॥३२॥
अठार भार अरु अष्ट कुलि, उडग सु एक न होइ ।
रज्जब लघु दीरघ रचे, आदम अंगुरी जोइ ॥३३॥
प्रभु पारस मंहगा किया, सौंवे असम सु आन ।
रज्जब लघु दीरघ हुकमि, समझौं संत सुजान ॥३४॥
रज्जब राजा किन किये, कौने किये सु रंक ।
ये आषिर अबिगत लिखे, निरखि लिलाटहु अंक ॥३५॥
बड़ पीपर अरु लांप तिण, उदै अंकूर सुभाइ ।
लघु दीरघ सु दयाल दत, दोस न दीया जाइ ॥३६॥
कीड़ी कुंजर किन किये, लघु दीरघ दी देह ।
रज्जब दोस न दीजिये, देख तमासा येह ॥३७॥
सांई समसरि ना किये, पंच खानि के प्रान ।
लघु दीरघ घटि बधि पटा, रज्जब रचे दिवान ॥३८॥
रज्जब दुबिधा दूर लग, सरग नरग ह्वै बास ।
येकौं कूं देवल फिरै, येक जिव जाइ निरास ॥३९॥
किन फरास निरफल किये, किन किये अंब सुफल्ल ।
येकै करता उभै का, कौन करै हलचल्ल ॥४०॥
रज्जब निरफल जाइ जगि, सुफल सु दाडचूं दाख ।
दून्यूं कौ दत दई का, लोग कहौ कोइ लाख ॥४१॥
देखहु सिर धरि पगहु, अंतरि अंतर जोइ ।
जन रज्जब सब ठौर की, बागहुं बिगति सु होइ ॥४२॥
भागि भलोई ऊपजैं, भागि बुराई भंग ।
उभै अंग आतम लहैं, जे हरि देंहिं उमंग ॥४३॥
भागि भले गुर ज्ञान पाइये, भागि भले सतसंगा ।
भागि भले सौ भगति ऊपजै, भेटै अबिगति अंगा ॥४४॥
बखत बिभूति सु पाइये, भागि मिलै भगवंत ।
उभै अभागिन आवहीं, सोधि कह्या सब मंत ॥४५॥
रज्जब सुखी सु भागिये, दुखि दीरघ सु अभाग ।
कहीं ठौर जाइगा कहीं, सुख दुख दून्यूं दाग ॥४६॥

आकास मद्धि आभे अनन्त, जगत धोम तहं जाहिं ।
रज्जब पूरे पूरियहि, नर निरखौ क्यूं नाहिं ॥४७॥

नदी नाथ आवहिं नदी, बहु बरिषा तहं बारि ।
जन रज्जब भरिये भरे, नर निरखौ सु निहारि ॥४८॥

भाग राज घरि औतरै, भागि गुरू गृह दास ।
धरचा अधर भागे मिलै, भाग्य भरै उर आस ॥४९॥

बखतौं ही बीती पड़ै, परधन अपना होइ ।
रज्जब भागी भोलि सब, भागौं सवा न कोइ ॥५०॥

इक कौड़ी कौड़ी कौ फिरैं, इक बैठे कौड़ी ना लेहिं ।
रज्जब भूतहु भाग भिन्न, कहौ पटतर क्यूं देहिं ॥५१॥

लोह कनक पारस परस, छत्रपति छाह हमाइ ।
हणवंत हांक गुर गिरा सुणि, रज्जब बखत कमाइ ॥५२॥

रज्जब बाजी बखत की, मागे मिलहि सु डाव ।
रंक राव ह्वै पलक मैं, सब सिधि प्रभू पसाव ॥५३॥

चौपई : भाग भले भगवंतहि गावै, बखत बड़े जे ब्रह्म सुहावै ।
रती सु उत्तिम हरि रत होइ, ता सम तुल्य और नहिं कोइ ॥५४॥

साखी : सतगुरु साधू घट घटा, सिष सारंग पुकार ।
बैन बूंद बरिषा बिपुल, पै भागि परै मुखि धार ॥५५॥

स्वान सुषासन चढ़ि चलै, सही सुसीरा खाहिं ।
रज्जब वोढ़ैं सावटू, लिख्या सु भागहु माहिं ॥५६॥

तलिकहार कसतक चलैं, स्वान सुषासन थान ।
रज्जब कीया रोस क्या, भावी भिन्न सु जान ॥५७॥

रज्जब कंगहिं पावड़्यूं, काष्ट लागा येक ।
भाग भिन्न ठाहर मिलै, व्योरा किया बमेक ॥५८॥

रज्जब महंत मयंक कै, सभा सु मंडल होइ ।
आतम उडग अनेक हैं, तहां सुधा घट होइ ॥५९॥

रज्जब भावी भाग मैं, सभा सु तिनकै पास ।
रबि ससि बिन मंडल नहीं, औलोकहु आकास ॥६०॥

सोरठा : दाता दिल दरियाव, भाव भला सब त्याग का ।
पै मंगित करि आव, जेतक भंजन भाग का ॥६१॥

साखी : उदार अधिक नदिनाथ से, जिन माहैं बहु बस्त ।
पै रज्जब बासण बषत का, तेता आवै हस्त ॥६२॥

बाव सरै सोतन सुखी, सूंघणहारहु दुख ।
तथा संपदा देखि करि, आपद मोड़ै मुख ॥६३॥

न्यंदा का अंग

निज तीरथ न्यंदक सही, न्यंदा नीर सु माहिं ।
रज्जब रजमल ऊतरै, घट गंभीर सु नाहिं ॥१॥

न्यंदक नांव समान है, जिनसौं प्रान पवित्र ।
मन बच क्रम रज्जब कहै, ऐसै और न म्यंत्र ॥२॥

न्यन्दक निज जन सारिखौं, मन मल मंजणहार ।
सदा सनेही संगि है, कदे न छोड़ै लार ॥३॥

न्यंदक ओषदि अन्न गति, म्यंत्रमई गुरदेव ।
येकहि ठाहर येक है, पुनि सोधे भिन भेव ॥४॥

नांव नाज उर धर बहै, बाहै प्राण किसान ।
रज्जब रिधि दीये बिना, न्यंदक करै निदान ॥५॥

निन्दक हूनर निस्तरै, कुमति सुमतिहूं यादि ।
कहीं भांति जाणै न जड़, जनम जाति जो बादि ॥६॥

न्यन्दक निन्दा निस्तरै, दिलि सु दूरि ह्वै दोष ।
महापुरिष पारसमई, लोह लगौ रस रोस ॥७॥

न्यन्द्या व्यन्द्या नरक मघ, घटि बधि कहितौं व्याधि ।
रज्जब राम न मानई, लागा रोग असाधि ॥८॥

न्यन्दक कै अगतौ नहीं, षलमल धोवहि न्यन्त ।
रज्जब गिनै न रैन क्यूं, ऊजल करै सु म्यन्त ॥९॥

न्यन्दक कै नित नेम यहु, अहि निसि करै अनीति ।
रज्जब सांच न सूघई, सब झूठी रस रीति ॥१०॥

नारायण सुर नर सहित, निन्दक नीदै माड़ ।
रज्जब रुचै न राम कौं, जगति न भावै भाड़ ॥११॥

सुरपुर नरपुर नागपुर, न्यन्दक का नहिं ठौर ।
रज्जब राम न राखई, कहै और की और ॥१२॥

न्यंदक दुख दोषौ भरचा, कहै अजुगती बात ।
रज्जब रोग अपार मनि, घेरि रही घट घात ॥१३॥

सारंग सरोवर सुपिन मुख, वीजै न्यंदक बैन ।
जन रज्जब मिथ्या सुमुर, कहु किन पाया चैन ॥१४॥

न्यंदक नरक समानि है, बाणी बिबिधि कुबास ।
रज्जब सुणि सूघै नहीं, कुमति कानि की नास ॥१५॥

रज्जब दिल दोषहुं भरचा, आतम औगुण पूरि ।
सेझा अंगि अज्ञान का, करै कौन बिधि दूरि ॥१६॥

तूटे तूटा रूप दिखावहिं, नर नछित्र निरताइ ।
रज्जब बहणी बक्त्र बपि, जुगल सु जलता जाइ ॥१७॥

लोहा बैरी कनक का, मुकतहिं पिसण पषाण ।
यूं असाध साध कौ न्यंदई, तुल्य न बखत बखाण ॥१८॥

मुख रसना प्रभु जी दिये, अपनै सुमिरण काज ।
सुर नर न्यंदा मैं खरचि, रज्जब खोई लाज ॥१९॥

दोष दोषकन आवई, काया नगरी माहिं ।
सहर सहर दुरमति कढ़ै, औगुण आवै नाहिं ॥२०॥

यादि न आवै तौ भली, बुरी बसत मन माहिं ।
परकी बरी बिचारतौं, आप बुरे ह्वै जाहिं ॥२१॥

कृतघ्नी निगुणा का अंग

जन रज्जब गुण चोर का, कबहूं भला न होइ ।
सतगुर का कृत हंति करि, सीझ्या सुण्या न कोइ ॥१॥

साधौं के गुर चौंर कौं, कहौ कहां है ठौर ।
माया मै भी मारिये, रज्जब चोरी चौर ॥२॥

जैसे अंध उलूक गति, रबि गुण मानै नाहिं ।
रज्जब रजनी ह्वै गई, विद्यमान दिब माहिं ॥३॥

बिद्या लेइ बिहंग की, बक्त्र सु बरछी झेल ।
रज्जब नटतौं नांव नट, अरि उर बैठा सेल ॥४॥

भसमाकर भसमै हुआ, महादेव गुण मेटि ।
तौ रज्जब गुण चोर का, भला न होई नेटि ॥५॥

रज्जब सांई सूर समि, सतगुर सलिल सु अंग ।
सिष सफरी जन जल जुदे, दादौं पूते भंग ॥६॥

देखौ मुकर मसन्द मुनि, मुख सुख पावक पीठ ।
रज्जब रबि रमिता रची, दया दुष्ट बिधि दीठ ॥७॥

देये बिना सु देत हैं, लीये बिना सु लीन ।
यों गुर सिष सनमुख बिमुख, ज्यूं आंख्यूं आदित कीन ॥८॥

अबिगति आदित की सता, आतम आंख्यूं माहिं ।
पै कृतघ्नी सारी उमरि, इष्टौ देखै नाहिं ॥९॥

मूस पलटि मंजार किय, पुनः स्वान स्यंघ सारि ।
तौं कहा सेबड़ै सुख लह्या, गत गुण चोर निवारि ॥१०॥

रज्जब खोटे जीव सो, कुछ गुण किया न जाइ ।
केसरि काढचो कूपतैं, काटणहारहि खाइ ॥११॥

जन रज्जब जगि जीव जो, दे सतगुर कौं पीठ ।
सौ सकति सेन सांई सहित, धरहिं दुष्टता दीठ ॥१२॥

रज्जब रजनीपति की, सदा सुधा मैं दीठि ।
जगत सुखी जंगम दुखी, जाकै चांदी पीठि ॥१३॥

रज्जब जंगम मिरत जबासै, चंद इंद सौं होइ ।
उभै उभै मैं ऐब कहि, बूझै बिरला कोइ ॥१४॥

हरि सों हुई हरामखोरि, होली हठराडी ।
बरसाबरस सु बोलिये, रज्जब जग भाडी ॥१५॥

गुर गोविन्द सनमुख निमख, नर निरखै नहिं नीक ।
ज्यूं आदित आकास दिसि, देखत आवै छीक ॥१६॥

सांई सूरिज की सता, नर नैनहु कौं होइ ।
रज्जब बरतैं और दिसि, उनकौं सकै न जोइ ॥१७॥

प्यंड प्रान जगदीस का, ताकी छांड़ी सेव ।
जन रज्जब गुण चोरटे, पूजहिं देबी देव ॥१८॥

सुत बीरज ले और कूं, सोभा दे सिरि हींज ।
तौ रज्जब गुण चोर की, साखि भरै नहिं धींज ॥१९॥

राज बीज कौं ले गई, कोइ एक कामिन और ।
रज्जब सुत पावै नहीं, सो टीके की ठौर ॥२०॥

साखि सबद ले और का, गुर करि थापै और ।
रज्जब निगुरा मन मुखी, जागै ठीक न ठौर ॥२१॥

चेतनि कन सुणि सीख ले, सेवै जड़हिं सु जाइ ।
सो रज्जब कैसै बड़ै, नर देखौ निरताइ ॥२२॥

पुत्र जणाया आन मिल, कहै पुरिष पुनि आन ।
रज्जब सो बिभिचारिणी, पतिबरता नहिं जान ॥२३॥

रज्जब पीवै और गुर, बंधै और गुर माहिं ।
ज्यूं पीपल परि खैजड़ा, डाल पान सो नाहिं ॥२४॥

जैसे अंडा मोर का, मुरगी काढ़ै सेइ ।
रज्जब गुण मानै नहीं, अंति उहै गुण लेइ ॥२५॥

दिल दरपन गुर सूर समि, सनमुख इष्ट प्रकास ।
सबद सता सब दिसि सुभग, फुरहिं न ते गुण नास ॥२६॥

बिष बिघन बेटी गई, सो न सगारथ होइ ।
त्यूं रज्जब गुर बिन गिरा, सीझ्या सुण्या न कोइ ॥२७॥

रिण न उतारचा राम का, मनिष देह जिन दीन ।
रज्जब तिनहिं उधार दे, मन बच करम सु छीन ॥२८॥

गुर बाहै मनिषा मही, सबकी पूरन आस ।
किरतघनी उठि का तरे, बैरी करै बिनास ॥२९॥

जीव सु खेती ज्वार की, गुर बाहै मन माल ।
गुण चोर उठे गंडार ह्वै, किया सु काल दुकाल ॥३०॥

कलिजुगी का अंग

झूठ सांच को मारई, पैठि जोर परपंच ।
यहु रज्जब कलिजुग कला, कपट करम की अंच ॥१॥

जन रज्जब कलिजुग तहां, जहां कपट का साज ।
मुखि औरै माहै अवर, सो कुसंग तजि भाज ॥२॥

रज्जब गज्जब सो डरै, मति अजगैबी होइ ।
कलि केवल कपटी कला, आइ पड़ै मति कोइ ॥३॥

अपणा औगुण आवरै, पर कै ऐब प्रकास ।
जन रज्जब जिव कलिजुगी, कपटी कंध बिणास ॥४॥

कुसंगति का अंग

सकल बुरे का मूल है, एक कुसंगति माहिं ।
ज्यूं रज्जब समदहि मिल्यूं, तीरथ दीसै नाहिं ॥१॥

रज्जब गंगा ज्ञान की, देही दरिया मेल ।
स्वाद समुंद सरीर संगि, ह्वै गया औरै खेल ॥२॥

सांई सुनि गुर आभ गिर, रसन रसातल गंग ।
रज्जब पैठै उर उदधि, खारू खैं गुन भंग ॥३॥

रज्जब समझि कुसंगतै, कदे न होई वोत ।
राहु केत की छात तैं, ससि सूरिज क्या कोत ॥४॥

रज्जब बड़े बमेक बिन, तिनहिं त्यागि मन सठ ।
कोहनूर जाहिर डल्या, मूसे के मन हठ ॥५॥

बेली बरण चुरावई, मारी जे घड़ियाल ।
तौ रज्जब सुनि देखतौं, तजौ कुसंगत चाल ॥६॥

लंकापति सीता हरै, बांधी जे सु उदिध ।
तौ कुसंग किन त्यागिये, सुणि महिमा परसिध ॥७॥

गंगोदिक मद मैं मिल्यूं, सकल महातम जाइ ।
यूं तन उत्तिम मन नीच गति, रज्जब नरकि समाइ ॥८॥

रज्जब रहै कुसंग मैं, कुमति उदै ह्वै आइ ।
ज्यूं सुरापान के कुंभ मैं, खीर ख्वार ह्वै जाइ ॥९॥

चूल्हे के घर मैं रहै, सु चिड़िया काली होइ ।
जन रज्जब यहु देखि करि, कुसंग करो मति कोइ ॥१०॥

येकै बूंटै बांस कै, डरै अठारह भार ।
जन रज्जब जल जालसी, पापी कौ परिवार ॥११॥

एकै सर करगस परै, सब तरकस कौ खोड़ि ।
तौ रज्जब तिस तीर कौ, काढ़ि न डारहु टोरि ॥१२॥

रज्जब नाणा गांठ का, खोटा चलै न हाठि ।
तासों मोह न कीजिये, डार देहु किन काठि ॥१३॥

रज्जब अहि अंगुरी लगे, तंत मंत करि काट ।
तनक तजै तन ऊबरै, तौब बंधाई बाट ॥१४॥

रज्जब काल कुसंग है, काचे कूंत बसेख ।
जीया चाहै परहरी, मरण मतै करि देख ॥१५॥

पांवर परसे पांव दे, बाइल मिलतौं बाव ।
रज्जब देखौ दृष्टि ये, कुसंगति सु सुभाव ॥१६॥

बिष मिसरी सानी सहत, खाये होइ सु मीठ ।
त्यूं तन उत्तिम करणी कुचिल, रज्जब परिहरि नीच ॥१७॥

सोरठा : ज्ञानहीन गत गात, ज्यूं कड़बी नीरस समै ।
लगी लोभलू बात, प्राण पसू चरतौं मरै ॥१८॥

साखी : कालहिं बाहि करंड मैं, धारै कामल कंध ।
रज्जब त्यूंब कुसंग संग, कर अज्ञानी अंध ॥१९॥

परदारा रत पारधी, जूंवारी अर चोर ।
मद्य मांस बेस्वा गमन, सातौ नरक अघोर ॥२०॥

कुसंग सुसंग का अंग

बिमल बारि बादल सौं बरसै, परै नगर परि आइ ।
सहर बिकार परस जल मैला, पाणी पिया न जाइ ॥१॥

पुनि वे सलिल जाइ सलिता मैं, निरमल नांव कहाइ ।
त्यूं रज्जब बप बाइप मेला, अस्थल संगि बिकाइ ॥२॥

पुरिषौं उपजै सील ब्रत, स्यंघल दीप सुथान ।
त्यूं मथुरा जागै मदन, मन बच क्रम करि मान ॥३॥

अगिलौं की पिछलौं लई, तन मन सोई ताक ।
कृष्ण कथा सुणि मरद ह्वै, हींज सु हणवंत हाक ॥४॥

रज्जब कुसंग सुसंग का, केवल गहण बिचार ।
आतम उर अरभक उपजि, पेखि पलट व्योहार ॥५॥

देखौ नारी जीव नर, गहण हमाइ अतीत ।
नागि सु भोजन सिसु मनिष, छांह छानि परतीत ॥६॥

उपकंठ उदधि उत्तिम जनहु, सुख सीकण सु लहंत ।
रज्जब मद्धिम नापिगा, घर नर तट सु बहंत ॥७॥

एक मिलाप सु अमी मैं, एक हलाहल ऐन ।
रज्जब संगति कीजिये, देखि सु चैन अचैन ॥८॥

इक ओषद रूपी आतिमा, इक पीड़ा मैं प्रान ।
रज्जब संगति कीजिये, सुख दुख सोधि सुजान ॥९॥

सज्जन ससि संदल सही, संगति सुखी सरीर ।
दुरजन कँवच कष्ट बिष, परसत प्यंडहु पीर ॥१०॥

सज्जन सुधा सु संपती, सकल सुखौ की रासि ।
दुरजन दुख दारन दुसह, पीड़ा प्राणहु पासि ॥११॥

साध सजीवन सबद हैं, संसारी बिष बात ।
रज्जब सुणिये समझि सौं, को ओषदि को घात ॥१२॥

संसारी सावन घटा, साधू स्वाति नछित्र ।
बैन बूंद बहु अंतरा, नेपै निरखौ म्यंत्र ॥१३॥

साधू घट अमृतमई, संसारी बिष बेलि ।
जन रज्जब गुन समझि करि, पीछै मुख मैं मेलि ॥१४॥

सुसंगति सूर उजास मैं, कुसंगति तम ऐन ।
रज्जब कही बिचारि करि, सो निरखौ नर नैन ॥१५॥

लघु दीरघ सु दिखावई, चसमैं चित सब ईठ ।
दरपन रूपी दुष्ट दिल, तहां दीरघ लघु दीठ ॥१६॥

दरपन मैं दिब छोटा दीसै, मोटा फटग पषाण ।
ऐसे निरगुनि सरगुन सौं मिलतौं, लघु दीरघ सु बषाण ॥१७॥

गंधी हाथ बिसालवा, सींगी हाथि हजाम ।
वहि सुगंध संगति सदा, वहि सोणित सब ठाम ॥१८॥

श्रवण सोत ह्वै सबद जल, काया कूप मैं आइ ।
कपट कामना करक पड़ि, रज्जब पिया न जाइ ॥१९॥

इक निवान नीर खीर मैं, एक अंभ खित खार ।
इक पियूष पाणी पहम, परहरि पियो बिचार ॥२०॥

आतम अंधूप खोड़ि खित, तहां चढ़ै बल बारि ।
तर धर मिलि समि जोर जल, रज्जब समझि विचारि ॥२१॥

रज्जब काचे काठ कौं, देखौ कीड़े खाहिं ।
पाके मैं पैठै नहीं, बकर सु बेधै नाहिं ॥२२॥

भला न आदम सारिखा, बुरा न ऐसा और ।
रज्जब देख्या गुर दृष्टि, सुकृत कुकृत ठौर ॥२३॥

रज्जब अज्जब आदमी, जौहरि सेती होइ ।
परमेसुर सौं पीठ दे, तौ या समि बुरा न कोइ ॥२४॥

अपलच्छिन अपराध का अंग

हरिन हेराना आस सों, सुण्या बधिक का नाद ।
रज्जब तन मन यूं गम्या, का सिरि देहिं अपराध ॥१॥

जथा मीन मिलि स्वाद कौं, स्वारथ कालहिं खाइ ।
तैसै रज्जब हम भये, दोस किसहि देइ जाइ ॥२॥

ज्यूं भौंरा मिलि बास कौ, कंवलि बधाणा आनि ।
त्यूं रज्जब हम होइ करि, हमहि हमारी हानि ॥३॥

ज्यूं दीपक कौं देखि करि, पड़ि पतंग जरि जाइ ।
तैसे रज्जब हम भये, जे देख्या निरताइ ॥४॥

ज्यूं गज कामी काम बसि, पड्या बिघन बिचि आइ ।
त्यूं रज्जब हम होइ करि, बैठे बप बंधाइ ॥५॥

ज्यूं मरकट मूठी भरी, बैठि स्वाद की नोक ।
यौं रज्जब घरि घरि फिरे, का सिरि देहिं अलोक ॥६॥

ज्यूं पटछल कै प्यंजरै, स्वारथ स्यंघ समान ।
त्यूं रज्जब हम होइ करि, आपै आप बंधान ॥७॥

यहु मनु बगुला बिगति बिन, माया का नालेर ।
रज्जब चिहुटैं चूषतां, छूटण का नहिं फेर ॥८॥

बइयर बाती नालियर, बनसी जिन जिन लीन ।
जन रज्जब तेते मुये, नर मूसा बग मीन ॥९॥

ज्यूं जिव काटै जीभ कौं, स्वारथ मुखहिं चलाइ ।
त्यूं रज्जब हममैं भई, का सिरि देहिं बलाइ ॥१०॥

जाणि बूझि जे जहर कौं, जथा जीव जो खाइ ।
रज्जब कहिये कौन सौं, अपलच्छिन मरि जाइ ॥११॥

प्रानी परलै मनमुखी, स्वाद लागि जिव जाइ ।
रज्जब दीनदयाल कौ, उलटा दोस न लाइ ॥१२॥

मकड़ी की गति माहिं मिलि, माड्या माया जाल ।
रज्जब रूंधै सकल दिसि, माहिं मरै इस ख्याल ॥१३॥

ज्यूं सूवा सठ ज्ञान बिन, नलनी लटकै आप ।
त्यूं रज्जब हम लटक करि, देहिं कौन सिरि पाप ॥१४॥

मरकट मानी आगि करि, चिरम देखि चुट लाल ।
त्यूं रज्जब माया मनहि, भूलि पड्या भ्रम ख्याल ॥१५॥

ज्यूं गज मूवा ज्ञान बिन, देखि फटक मैं आप ।
त्यूं रज्जब हम मरत हैं, देहिं कौन सिरि पाप ॥१६॥

यहु मन पसू पवंग परि, पिसण न पेखै नीच ।
परसै पावक पंच मुखि, रज्जब राता मीच ॥१७॥

जथा कांच के महल मैं, कूकर की ह्वै मीच ।
त्यूं रज्जब हममैं भई, भ्रमि भूला मन नीच ॥१८॥

कुमति कांच के महल मैं, यहु मन स्वान समान ।
रज्जब एक अनेक ह्वै, निकस्यो एकै जान ॥१९॥

बिना भार भारी भये, बिनही दुख दुख पूरि ।
जन रज्जब त्यूं नींद मैं, लिया अथारै चूरि ॥२०॥

सब दिल दरपन सारिखे, आतम ब्रह्म बसेख ।
रज्जब सनमुख बिमुख त्यूं, प्रतीव्यंब परि देख ॥२१॥

अपना आप बुरा करै, ता ऊपर क्या रोस ।
घर कै दीवै घर जल्या, देहि कौन का दोस ॥२२॥

सान का अंग

गुरमुखि सांची ना गहैं, मनमुखि बैठी आनि ।
जन रज्जब सुलझै सु क्यूं, हिये हलाहल सानि ॥१॥

रज्जब सानि सरीर मैं, कहै और की और ।
पड्या पुकारै धाम मैं, ले चालौ गृह ठौर ॥२॥

रज्जब डाली बैठि करि, मूरिख काटै मूल ।
सो सठ गहि लाग्या न बिन, भीतरि भारी भूल ॥३॥

रज्जब साधू सेस गति, दोष धरै बहु भूल ।
जथा सानिया डाल चढ़ि, मूरिख काटै मूल ॥४॥

ज्यूं बालिक भौंरी लई, सहज खेल कौं ख्याल ।
रज्जब त्योरी त्यूं फिरी, जु सब देखै चक चाल ॥५॥

मूढ़ करमी असाध रोग का अंग

सूता सबद जगाइये, जागति सुणि स्यो जाइ ।
रज्जब मनि ऐसी गही, तासो कछु न बसाइ ॥१॥

सतगुर की समझै नहीं, अपणे उपजै नाहिं ।
तौ रज्जब क्या कीजिये, बुरी बिथा मन माहिं ॥२॥

सतगुर सबद न मानई, चलै मनमुखी भाइ ।
ओषदि गई अहार पड़ि, बिथा बीच मरि जाइ ॥३॥

मीच बिसारी नीच नै, ताहि कौन उपदेस ।
रज्जब रोग असाधि कौं, लगै न ओषदि लेस ॥४॥

असाध रोग मनि ऊपजै, सो गुर सबद न जाइ ।
जन रज्जब ज्यूं संख परि, रंग न चढ़ै चढ़ाइ ॥५॥

यहु मन पिंडा गारि का, भ्रमता चक्र सुथान ।
रज्जब छेदै कौन बिधि, लगै न बाइक बान ॥६॥

नख सख पाखर पहरि करि, भया बज्र व्योहार ।
रज्जब मारै कौन बिधि, कहा करै हथियार ॥७॥

रज्जब यहु मन काछिबा, काठा अती कठोर ।
बाहर सिरि काढ़ै नहीं, तौ मारै केहि ओर ॥८॥

यहु मन काठा कुलिस गति, बहुत खेचरी ठाणि ।
रज्जब गैंडा ह्वै रह्या, मरै न बाइक बाणि ॥९॥

संगति मैं सीझे सबै, खेचर सीझै नाहिं ।
जन रज्जब ज्यूं करड़ कूं, गल्या न हांड़ी माहिं ॥१०॥

श्रेष्ठ जु समुझै आप सौं, सुध बुध सबद सुणाइ ।
जन रज्जब खेचर बिमुखि, सु क्यूं ही गह्या न जाइ ॥११॥

जैसे गोली गुमट परि, गहि डाल्यूं गिरि जाइ ।
त्यूं रज्जब बहरी सुरति, सबद कहां ठहराइ ॥१२॥

जे सुई सुरति के छिद्र ह्वै, तौ तागा सबद समाइ ।
जन रज्जब नाकै बिना, कहां पिरोवै जाइ ॥१३॥

ज्ञानी गाफिल ह्वै चलै, पग मग बाहरि देइ ।
तौ रज्जब जानत जड़हिं, कहिधौ कहि क्या लेइ ॥१४॥

ऊसरि बैरि असंखि मण, कण निपजैं कछु नांहि ।
त्यूं रज्जब सठ सिष सौं, हाणि हुई गुर मांहि ॥१५॥

सांभरि केसर सारिखा, सठ सुरता का भाग ।
रज्जब तहां न नीपजै, भाव भगति का बाग ॥१६॥

हिमगिरि परि तरु तरुल ह्वै, बंध्या न सुणिये कोइ ।
तौ रज्जब जड़ जीव मैं, कहु सुकृत क्यूं होइ ॥१७॥

हिमगिरि परि पाखंड का, कीट हुआ नहिं होइ ।
यूं आज्ञा भंग अचेत उर, क्यूं करै ज्ञान गढ़ कोइ ॥१८॥

सिल दिल परि जामैं नहीं, भाव भगति का बीज ।
रज्जब फल क्यूं पाइये, जे अंतरि गति हीज ॥१९॥

आतम अबला बांझड़ी, सुकृत सुत नहिं बास ।
रज्जब ऊजड़ वोदरहुं, गुरदाई कृत नास ॥२०॥

रज्जब गुर बर बहु मिलैं, बेस्वा बिधि भई सांझ ।
सांई सुत उपजै नहीं, जे बुधि बामा बांझ ॥२१॥

मीन माग जल मैं करै, सलिलहि रहै न संधि ।
त्यूं रज्जब सठ सबद सुणि, पीछै रहै न बंधि ॥२२॥

रज्जब पावन कथा सुणि, पामर बेधै नांहि ।
सोधें संधि न पाइये, ज्यूं रूप गया थल मांहि ॥२३॥

नीबहिं सींचै दूध सौं, नागहिं दैवै पान ।
रज्जब ब्रिसियर बिस भरचा, नीबहिं कड़ुवा जान ॥२४॥

क्वैला काजल दूध सौं, धोये सेत न होइ ।
त्यूं रज्जब जो प्राण है, तापरि रंग न खोइ ॥२५॥

सेत ऊन सरधा सहित, रंग्यो रंगी सो जाइ ।
रज्जब काली क्यूं रंगै, बहु बिधि करौ उपाइ ॥२६॥

रज्जब कूमति कुंज का अंड है, मोमन बिसवा बीस ।
हो हैं हिमगिरि ज्ञान तलि, गलै नहीं जगदीस ॥२७॥

ब्रह्म अगिन मन ना बलै, तौ समंद कीट सौं बाधि ।
बैद बैदकी क्या करै, रज्जब रोग असाधि ॥२८॥

सबद सींदरी क्यूं बंधै, काया कुंभ नहिं कान ।
रे रज्जब रारचू बिना, कहा दिखावै भान ॥२९॥

बावन बास न बेधिया, मिसरी मिल्या न बंस ।
यूं न्यारा निरमंत मैं, मूढ़ा बरष सहंस ॥३०॥

रज्जब पुरिष पवंग कौं, कीजै सुद्ध उपाइ ।
इक तिरियार तुरंगनी, इनकी चिकटि न जाइ ॥३१॥

हणवंत हाक नर हींज ह्वै, परि नारि न ह्वै निहकाम ।
रज्जब पुरिष प्रमोधिये, परि बोध न बीधैं बाम ॥३२॥

हणवंत हाक सुणि ना भया, जत जुवतनि कै डील ।
जन रज्जब धनि साध सौं, जो उनहि उपावै सील ॥३३॥

हीरा मिसरी मोती बाइक, फटग बंस तग धूत ।
रज्जब रंग रस मुक्त मन, जड़ पोला तुच पूत ॥३४॥

मनिष मीन जगदीस जल, मुख पीवहिं नहिं माहिं ।
सो रज्जब जाणै सु क्यूं, सुकृत सोणित नाहिं ॥३५॥

जप तप कस यूं माहै कोरा, थाके बिबिध बमेक ।
रज्जब रहे बेद बदि बाइक, मनिमानी नहिं येक ॥३६॥

मीच बिसारी मुगध मनि, भूला आतम राम ।
रज्जब मूढ़ करम यहु, सरै कौन बिध काम ॥३७॥

ब्रह्म बिछोह बियोग न उपजै, चौरासी आवै नहिं चीत ।
तौ रज्जब तासों क्या कहिये, महा मूढ़ मदभागी मीत ॥३८॥

ऊसरि खित बपि बांझ कै, बीज न ले परगास ।
त्यूं रज्जब सिषि सठौं मैं, सबद सुद्ध का नास ॥३९॥

सुद्ध सबद सत खंड हुवा, सठ सुरतौं मैं आइ ।
रज्जब मदभंजन परसि, खीर ख्वार ह्वै जाइ ॥४०॥

गरक ज्ञान गहरै सु जलि, आवष्या भरि न्हाहिं ।
पै रज्जब मन मीन की, दुरमति बास न जाहिं ॥४१॥

आतम उर अज्ञान रत, सुनै न सतगुर बात ।
पारस पोरिस क्या करै, धरती खाई धात ॥४२॥

हरि सा हितू बिसारि करि, मुगद सु भूला नीच ।
रज्जब रोग असाधि अति, त्यूं नीका ह्वै मीच ॥४३॥

रज्जब रोग असाधि है, राग दोस जिव माहिं ।
निकसै गुर गोव्यंद सौं, नहीं त निकसै नाहिं ॥४४॥

मुखि मानै मन मैं अमन, त्यूंब फलै मत जित्त ।
बालक बंझ न ऊपजै, बिषै बिमूचै नित्त ॥४५॥
दिनकर दई न दीसई, तौ घूघू बाबुलि बिसु ।
रज्जब ज्यूं की त्यूं कही, कोई करौ न रिसु ॥४६॥
अबगति बरषैं इंद्र ज्यूं, अकलि अंब जलि आइ ।
रज्जब बंदे बन बंधै, जगत जवासा जाइ ॥४७॥

सिष सुत प्रस्ताव का अंग

तात गुरू काष्ठ करि, सिष सुत उपजै आग ।
तौ रज्जब तिहि ठौर कौ, भाग भले नहिं माग ॥१॥
आंखि आरसी ऊपजैं, सुत फूला अरु दाग ।
रज्जब तथा कपूत सिष, ठाहर उभै अभाग ॥२॥
मेद गूंमड़ी नारुवा, बालिक बिपति सुजाण ।
रज्जब जाये जक्र नहीं, सो सिष सुत दई न आण ॥३॥
रज्जब सिष सुत पहेल के, भये कपूत अयान ।
तौ तिनकौ क्या कीजिये, मूली मूलग षान ॥४॥
मणि भुजंग माखी सुमुख, कीट पटबणी सूत ।
रज्जब रज सों सकल नग, कहां बाप कहं पूत ॥५॥
सीसैं सुत रूपा जण्या, खीर समंद सुत संख ।
रज्जब बेटे बाप का, मनहुं न कीजै मंख ॥६॥
दीप जोति कज्जर जनम, स्याम घटा मधि बीज ।
रज्जब ऊजल मैल ह्वै, मैले उजल कीज ॥७॥

स्वांग का अंग

रज्जब स्वांग न सेस कै, सुखदेव स्वांग न कीन ।
वह वोदर वह अवनि मैं, उभै चये लयलीन ॥१॥
दत मति ले चौबीस का, चल्यो ब्रह्म की बाट ।
रज्जब देखौ गुर सिषौं, कौन भेष ठिक ठाट ॥२॥
गोरख कै मुद्रा नहीं, कौन भेष हणवंत ।
जन रज्जब जगि ऊधरै, भजन किया भगवंत ॥३॥

सुर असुरन कै गुरहु कन, भेष न भ्यासैं कोइ ।
रज्जब देखौ ब्रहस्पति, पुनि सूकर दिसि जोइ ।।४।।

षट दरसन दरसन बिना, देखौ अवनि अकास ।
चंद सूर पानी पवन, कौन भेष उन पास ।।५।।

एक ब्रहस्पति बारुना, सुक्र सेस सुखदेव ।
रज्जब ते तन ऊधरे, बिन बानै रट सेव ।।६।।

दत गोरख दरसन बिना, स्वांग न सुखदेव सेस ।
रज्जब उधरे राम कहि, बारुन बरन न तेस ।।७।।

रज्जब रसना स्वांग बिन, जिनि जाया गुरदेव ।
तहां श्रवन सिष सबन के, लहै सु अबिगति भेव ।।८।।

तिलक रहित दे तिलक तन, देखौ कर सु कपार ।
रज्जब साषित भगत कौं, बेत्वा करौ बिचार ।।९।।

टीका इत सारे नवै, बिण टीके कौ जाइ ।
रज्जब यहु पतसाह दिस, नर देखौ निरताइ ।।१०।।

नर नाणे जो घट रचै, दरस अंक दे छाप ।
रज्जब सब सिक्के बिना, जो नग निमध्ये आप ।।११।।

छै दरसन की छाप का, बिकरा बसुधा माहिं ।
आगै लीजै सांच कौ, भेषहुं भूलै नाहिं ।।१२।।

दरसन दे देवै किया, लालहिं दरसन नाहिं ।
पै तिमिर हरै जे तुंगनी, सु मोलि मंहगै जाहिं ।।१३।।

सपत धात नाणे सुघट, दरस अंक दे थाप ।
नांव नीर नग दास मैं, सो धण मोल बिण छाप ।।१४।।

नख सख दरसन देह का, करि दीया करतार ।
रज्जब ऊपरि और करि, बिढंबै कहां गंवार ।।१५।।

बानै पर बाना करै, बिचि नाहीं बेसास ।
रज्जब रचना राम की, रचै न मूरख दास ।।१६।।

पीव जीव बानै दिये, देही दरसन देख ।
रज्जब भीडी किये के, राहै किसकी रेख ।।१७।।

पट्टा पाया प्राण तब, जब बप बाना नाहिं ।
अब टिटंब कापरि करै, समझि रह्या मन माहिं ।।१८।।

सरप स्वांगि सूक को गया, बिन पंखौ परगास ।
त्यूं रज्जब राम न रटे बिन, बानै के बेसास ॥१९॥

रज्जब जिव जल बुंद समि, षट दरसन रंग सान ।
ब्रह्म व्योम पहुंचै नहीं, बिना भजन बिन भान ॥२०॥

रज्जब देखै देखते, दृग दोइज हरिचंद ।
भेष भरम भ्यासै नहीं, जे नैना मधि मंद ॥२१॥

मन मयंक की गहन गति, जुगति जोतिगहुं जान ।
देह दसा देखै नहीं, छांड़हु खैचातान ॥२२॥

आंखिहुं अंध अज्ञान गति, काजल तिलक बनाइ ।
रज्जब रामति राम का, दरसन किया न जाइ ॥२३॥

भगवंत भजन बिन कुछ नहीं, भेष भरम दे नाखि ।
रज्जब लखै न गहन गति, अंजन कै बलि आंखि ॥२४॥

बुधि बिद्या कै बलि बली, निरखहु नटनी साध ।
रज्जब सकति न स्वांग की, खेलहिं खेल अगाध ॥२५॥

षट दरसन मैं हंस कन, भेष न भ्यासै कोइ ।
खीर नीर न्यारा करै, सो न्यारी गति जोइ ॥२६॥

हूनर होइ न हंस का, बहुत जीव जल गोटि ।
खीर नीर न्यारा किया, कौन गूदड़ी वोटि ॥२७॥

मन पै निज बप बारि सो, काढ़ै साधू हंस ।
बानै बलि छानै नहिं कोइ, सब खग बायस बंस ॥२८॥

कै दुहाग कै सेज परि, कै न्हावत पति मार ।
जन रज्जब जुवती तजै, चारचूं समय सिंगार ॥२९॥

ज्यूं सुन्दरि सरि न्हावता, अभरण धरै उतारि ।
त्यूं रज्जब रमि राम जलि, स्वांग सरीरहिं झारि ॥३०॥

सदा सुहाग सुलषिणौ, कुलषणि दुःख दुहाग ।
रज्जब नौसत क्या करै, न्यारे भाग अभाग ॥३१॥

रज्जब साधू स्वांग का, समझ्या संग बिचार ।
जो जल नलनी पत्र परि, सोई सीप मंझार ॥३२॥

तागै छाप न पलटई, तन मन तांबा लोह ।
प्रभु पारस जु परापरी, जब लग मिलै न वोह ॥३३॥

साधू पारस लोह मन, परसे कंचन होइ ।
रज्जब स्वांग सुमेर मिलि, मन नहिं पलटै कोइ ॥३४॥

सोरठा : देखे सुन्दर स्वांग, सुई सुरति सरकै नहीं ।
चिदानंद कन माग, रज्जब चंबक चेतना ॥३५॥

बानै पलटै नाहिं, रज्जब बप बनराइ बिधि ।
समझि देखि मन माहिं, चंदन चित चंदन किये ॥३६॥

तन मन तांबा लोह, षट दरसन षट छापही ।
रज्जब फिरै न वोह, बिना प्रान पारस मिलै ॥३७॥

रज्जब सीझै सांच, स्वांग न कोइ सीझै कहीं ।
कहं कंचन कहं कांच, दिब दरसन देखै नहीं ॥३८॥

साखी : सुरति सुई ज्यूंसी फिरी, काया कंठ ता भेख ।
आंबलबेत अगाध बिन, रज्जब गलै न देख ॥३९॥

मन क्रम भवंर न भेष धरि, सबद डंक भव भृङ्ग ।
रज्जब पहुंचै हरि कंवलि, पीवै परमल अङ्ग ॥४०॥

जन रज्जब भिड़ि भाजणै, भेष सु भीड़ी नाहिं ।
लक्षण सौं लक्षण लड़ैं, समझि देखि मन माहिं ॥४१॥

रज्जब काइर सूर की, स्वांग न करै सहाइ ।
भावै लौटौ भावै लड़ि मरौ, नर देखौ निरताइ ॥४२॥

सदा हंस सादा रहै, नहीं स्वांग कोइ संग ।
जन रज्जब जगपति किया, तैसा ही है अंग ॥४३॥

माला तिलक न हंस कै, बंसहिं दोषहु जोइ ।
ए अब तब सादे सदा, बादि बके क्या होइ ॥४४॥

स्वांगी राखै स्वांग की, परि सादा राखै नाहिं ।
तौ बधिक हंस की क्यूं बणी, समझि देखि मन माहिं ॥४५॥

स्याम घटा स्वांगी सबै, साध सेत सुध धार ।
रज्जब रीते रूप रंग, सादे बरिषणहार ॥४६॥

षट दरसन मुख ऊपरै, कोइ न पीवै धोइ ।
रज्जब सादे सुपंथ पग, तहं चरनोदिक होइ ॥४७॥

जे जल रहै त कुंभ बलि, चित्र चंप्या कछु नाहिं ।
त्यूं रज्जब हरि सांच मैं, स्यंभ न स्वांगहु माहिं ॥४८॥

मंदिर थंभ कटाव करि, भाग्या स्वांग सिंगार ।
रज्जब रती न ले सकै, चित्र थंभ का भार ॥४९॥

नकस नराजी परि घणे, भावै बोई नाहिं ।
रज्जब बहसी बित्त निज, चकहु न चित्रहुं माहिं ॥५०॥

चित्री साठी तीर की, बग तरि पड़ै न बेह ।
रज्जब भलकै भाव बिन, झूठा स्वांग सनेह ॥५१॥

बाणहि बानन पंख रंग, गोली गौलै नाहिं ।
चाल चोट मैं चूक क्या, समझि देखि मन माहिं ॥५२॥

मलमंडे मैंगल मडे, स्यंगारे सु सरीर ।
जन रज्जब जुध जीति है, जो बलिवंत ह्वै बीर ॥५३॥

है गै बिरख मीढ़ा मरद, माडे सकल सरीर ।
रज्जब बिरियां काम की, अंति बधै बलबीर ॥५४॥

मातंग मोर नर नालियर, केस अकेसौं येक ।
जन रज्जब बित लीजिये, सोभा भिन्न बमेक ॥५५॥

चिणगी चकमक चित्त की, बुझै न चौड़े चीर ।
रज्जब बूटी बुद्धि बिन, अगनि उभै उर सीर ॥५६॥

जथा मोर की छाप कौं, ले पीतलि पर देइ ।
तौ रज्जब क्या स्वांग कौ, सोवन सर भरि लेइ ॥५७॥

स्वांग स्यंघ का कीजिये, व्यंड प्राण परि आणि ।
रज्जब सकति न स्यंघ की, गाडर गति परवाणि ॥५८॥

कागहिं केसरि का तिलक, कंठि पहुप की माल ।
सकल गाति पंझर किया, रज्जक चुकी न चाल ॥५९॥

तन मन काला भौर ज्यूं, किया काठ मैं धाम ।
केसरि चरचा स्वांग सिरि, नज्जब सरचा न काम ॥६०॥

काग कपट का भेष धरि, कबहूं हंस न होइ ।
जन रज्जब स्वांगी सबै, जिनिर पतीजै कोइ ॥६१॥

बप सारे बनराय बिधि, भद्र भये पत्र डार ।
जन रज्जब सु सुभाव कणि, तामैं भेर न सार ॥६२॥

सिर मूंडचा अस्थूल का, काम जडचा मन माहिं ।
रज्जब मन मूंड़े बिना, सिर मूंड़े कछु नाहिं ॥६३॥

काया धौली कुष्ट करि, मन काला ता माहिं ।
त्यूं रज्जब ऊजल दरस, प्राण पतीजै नाहिं ॥६४॥

तन ऊजल मन मैल मैं, कपटी कासा जोइ ।
जन रज्जब चित चीर ज्यूं, कुसंग सु काला होइ ॥६५॥

बाना देखि न बहसिये, ऊपरि ऊजल जोइ ।
रज्जब खूभी का गुवा, अंतर काला होइ ॥६६॥

ऊजल राता तेजसी, तौभी धीज न कोइ ।
रज्जब दीपक जोति मैं, कारा काजर होइ ॥६७॥

रज्जब माडे मोर प्रभु, तन परि चित्र अपार ।
मुख बाणी मीठी मधुर, भोजन भिष्ट सु ख्वार ॥६८॥

कली कपट कौं चाहिये, कंचन कली न होइ ।
रज्जब स्वांगी साध का, इहै पटंतर जोइ ॥६९॥

जन रज्जब सुध गाइ कै, कंठि न बांधै काट ।
डीगरि तिसकै मेलये, जु ताकै बारहबाट ॥७०॥

बहुत स्वांग गनिका करै, जाकै पुरष अनेक ।
पतिबरता सादी भली, रज्जब समझ बमेक ॥७१॥

जन रज्जब देही दरस, मनौबृत्ति नहिं जाइ ।
देखि दिवाली चित्र ये, अति गति गोधे गाइ ॥७२॥

बानै बानी सो रंगे, काचे काया कुंभ ।
रज्जब रती न ठाहरै, परसत अबला अंभ ॥७३॥

मंझै भावौ नाहिं किय, उतै तन जरिपोस ।
रज्जब रचि मतिन्ह के, गुझी गाल्हि क्षुणि पोस ॥७४॥

चाम दाम सम स्वांग सब, तामैं फेर न सार ।
रज्जब तजे सु जौहरयू, लेसे मुगद गंवार ॥७५॥

दरसन दिल बैठै नहीं, पाखंड पड़ै न प्रान ।
रज्जब राता राम सौं, समझ्या संत सुजान ॥७६॥

बानै कौ बींदै नहीं, सब संतन की साखि ।
रज्जब राखै कौन बिधि, पूजि पुकारै नाखि ॥७७॥

मन मयंक सम नीकसे, अबला आदित छाहिं ।
जन रज्जब बंदै सु क्यूं, बानै बादल माहिं ॥७८॥

रज्जब रहै न स्वांग मैं, बानै बंदहि नाहिं ।
आतम राम न सूझई, भेष भोकसी माहिं ॥७९॥

षट दरसन कै दृग नहीं, भेषौ भाने नैन ।
आतम राम न सूझई, रज्जब परै न चैन ॥८०॥

ज्यूं सांभरि केसर परचूं, पसू पचन ह्वै जाइ ।
तैसे रज्जब स्वांग मैं, आतम तत्त बिलाइ ॥८१॥

दरसण चाहै दरसणी, पाखंडी पाखंड ।
रज्जब चाहै राम कौं, सु लिपै न परपंच मंड ॥८२॥

स्वांग सनेही दरसणी, सांच सनेही साध ।
रज्जब खोटहुं खरहुं का, अरथ अगोचर लाध ॥८३॥

चौपई : मनहिं जानदे मन से फेरै, यहु उर बात न आवै मेरै ।
छापे देइर रासि लुटावै, सो रज्जब कैसे करि भावै ॥८४॥

साखी : संगि चलै सो सांचि है, इहां रहैं सो झूठ ।
तौ क्या प्रण स्वांग सरीर का, रजू होइ भाव रूठ ॥८५॥

स्वांग सगाती देह लग, सो देही भी नास ।
तौ रज्जब तिस झूठ की, कहु क्या कीजै आस ॥८६॥

प्राणी आया प्यंड ले, भेष दिया भरमाइ ।
रज्जब बपि बानै रहै, हंस अकेला जाइ ॥८७॥

बानै बंध्या रासिबा, बिन बानै भै काल ।
पांडौ परिहरि करैंगे, तौ जिव के कौन हवाल ॥८८॥

षट दरसन अरु खलक सब, पोले परि चित्राम ।
रज्जब रबि सुत परसतैं, घट पट भागे घाम ॥८९॥

परम स्वांग ले सांच का, आदि अंत जो होइ ।
जन रज्जब क्या कीजिये, जो दीसै दिन दोइ ॥९०॥

बिन ससिहरि ससिहर किया, जैनहु नै जग माहिं ।
तैसें ससिहरि स्वांग का, सु रज्जब मानै नाहिं ॥९१॥

सांचा ससिहरि सांच का, सकल लोक परगास ।
रज्जब ससिहरि स्वांग का, द्वादस कोस उजास ॥९२॥

मिरतग घोड़ी स्वांग की, तिहि चढ़ि गरबे जीव ।
पवंग पलाड्या काठ का, क्यूं पहुंचैंगे पीव ॥९३॥

बाना बगतर पहिर करि, लड़ै सकल संसार ।
जन रज्जब सो सूरिवा, जो जूझै निरधार ॥९४॥

सिंगार सहत होली जली, रह्या प्रीत प्रह्लाद ।
सो रज्जब जाणै जगत, कहा स्वांग परि बाद ॥९५॥

हरि बिन होली थंभ जिव, माला मेलि हजार ।
रज्जब रहै न इस मतै, जलि बलि होसी छार ॥९६॥

काया छापी काठ करि, माल मेलि दस बीस ।
झाड़ बिलाई होइ करि, किन पाया जगदीस ॥९७॥

स्वांगी सब घुड़ सारिखे, पैठे काठहु माहिं ।
जन रज्जब जल से सबै, इह घरि छूटै नाहिं ॥९८॥

ज्यूं कुंदै मै देखिये, रज्जब चोरहि लेइ ।
त्यूं स्वांगी संकट परै, कंट काठ मैं देइ ॥९९॥

बंदि पड्या संसार सब, षट दरसन बसि होइ ।
रज्जब मुकता स्वांग सौं, सो जन बिरला कोइ ॥१००॥

षट दरसन मन रंजना, दुख भंजन गोव्यंद ।
जन रज्जब रामहि भजौ, स्वांग सबै जग फंद ॥१०१॥

माया बेड़ी तोड़ करि, कोइ कोइ निकसै प्राण ।
रज्जब जड़िये स्वांग सौं, आगै लहै न जाण ॥१०२॥

बांधै सांकल स्वांग सौं, बिनही ज्ञान बिचार ।
ज्यूं रज्जब पसु बंद मैं, बहुतै राज दुवार ॥१०३॥

भोला पहरै भेष कौं, पीछै पण पड़ि जाइ ।
जन रज्जब जग यूं बंधै, कौन छुड़ावै आइ ॥१०४॥

जो जिव जहि जाइग जड्या, तहां जड़ै ले और ।
त्यूं रज्जब भेषा मिरग, मुकतहि राखै ठौर ॥१०५॥

ऊंटरेते रासिब राखै, पुनि गरंद गयंदै ।
पाणै को कछु नाहिं, दरसणी दरसण बंदै ॥१०६॥

सील सांच सुमिरण बिना, ज्ञान खड्ग कर नाहिं ।
सीझि मुये रबि रोस गलि, बानै बगतर माहिं ॥१०७॥

गिरही वोढ़ै गूदड़ी, तौ उतरै तन ताप ।
रज्जब जुर जतियहि चढ़ै, गुदड़ी कै परताप ॥१०८॥

जाजुर उतरै जगत की, जती चढ़ै नहिं ताप ।
रज्जब ऐसी गूदड़ी, वोढ़त मरिये बाप ॥१०९॥

आरौही समदी सती, तजि कठोर मत काम ।
आठों चढ़ि त्यागी गहैं, मित्थ्या कहैं सु राम ॥११०॥

रजब छंटहु छीते भये, हेरहु होली लोइ ।
तौ रज्जब बहु बरन करि, क्यूं न बावला होइ ॥१११॥

नांव लिये नर निस्तरहिं, ताथै लीजै नाम ।
जन रज्जब जाणै नहीं, स्वांग सरै क्या काम ॥११२॥

सांई लहिये सांच मैं, तामैं फेर न सार ।
तौ रज्जब क्या धारिये, इन भेषौं का भार ॥११३॥

जे तत परापति तिलक मैं, माला पहरचूं मेल ।
तौ रज्जब परसै पीव सब, सहज भया यहु खेल ॥११४॥

जे भेष धरै ममै पार ह्वै, दरसण दे दीदार ।
यूं रज्जब सांई मिलै, तौ सब पहुंचै पार ॥११५॥

सिर मुड़ाइ साधू भये, माला मेलिर संत ।
रज्जब स्वांगी स्वांग धरि, माटी लाइ महंत ॥११६॥

पछणे का परताप सिरि, माथैं माटी माडि ।
रज्जब राम न पाइये, नाना बिधि तन भाडि ॥११७॥

भेषौं भीड न भागई, स्वांग न सीझै काम ।
जन रज्जब पाखंड तजि, जब लग भजै न राम ॥११८॥

भेषौं भला न जीव का, स्वांगहु स्वाति न होइ ।
जन रज्जब पाखंड परि, जिनिर पतीजै कोइ ॥११९॥

स्वांग सरोवर मिरग जल, दरस एक उनमानै ।
रज्जब त्रिष्टा त्रिपति ह्वै, सो ठाहर परवानै ॥१२०॥

भेष भाडली देख करि, मिरग माल मन जाइ ।
रज्जब रीते स्वांग सर, नांव नीर तहं नांहि ॥१२१॥

चौपई : अंब चित्र ज्यूं अंब कहावै, तरु फरु बिना कौन सचुपावै ।
रज्जब दरस दसा यूं जान, निरफल बिना मिलै भगवान ॥१२२॥

साखी : स्वांग सिघाड़ी निरफल हैं, जे जप जड़ सु न लाग ।
अफल सफल से देखिये, रज्जब बड़े अभाग ॥१२३॥

भेष भरोसै बूझिये, जे नांव नांव कन नांहि ।
रज्जब कही सु मान स्यो, पैठै भौजल मांहि ॥१२४॥

बदन सदन चित्रे चितबि, डरैं न यंद्री चोर ।
रज्जब सूते स्वांग बलि, सक्ति न संपति भोर ॥१२५॥

भजन भरोसै छूटिये, भेष भरोसै झूठ ।
रज्जब ज्यूं की त्यूं कही, रजू होय भावै रूठ ॥१२६॥

आसा बहु आसण करै, भूख बणावै भेष ।
रज्जब सादे सांच बिन, कबहुं न मिलै अलेष ॥१२७॥

रज्जब भूष भेष बहुतै करै, तामैं फेर न सार ।
बप बदल्या बावन बली, बलि मंगण की बार ॥१२८॥

भांड भूत बहुतै करैं, भूषे भेष अपार ।
रज्जब छलणौं का मता, तामैं फेर न सार ॥१२९॥

भेषौं भगति न ऊपजै, बानै बसि नहिं पंच ।
जन रज्जब इस स्वांग मैं, खैबेही की लंच ॥१३०॥

स्वांगौ स्वारथ खान का, भेषौं भगति अनंत ।
रज्जब यूं बानै बधे, कदे न छोड़ैं जंत ॥१३१॥

पड़े पठंगै भेष कै, पामर पालै पेट ।
जन रज्जब इस बित्त परि, नहीं राम सौं भेट ॥१३२॥

स्वांग दिखावा जगत का, कीया उदर उपाव ।
जन रज्जब जग कौं ठगै, करि करि भेष बनाव ॥१३३॥

ज्यूं घुण काष्ट में खुसी, गज बाहैं सिरि धूरि ।
त्यूं रज्जब माला तिलक, पसू करै नहिं दूरि ॥१३४॥

माणस माडे मूर से, दीसै दुनी अनेक ।
रज्जब रत रंकार सौं, सो कोइ बिरला येक ॥१३५॥

स्वांग स्वांग सारे कहैं, जथा कजलिये राति ।
रज्जब काढ़ैं रूप बहु, आप डूम की जाति ॥१३६॥

स्वांग स्वांग सारे कहैं, नहीं नांव के चीति ।
जन रज्जब भूला जगत, यहु देखौ बिपरीति ॥१३७॥

मुखि मुखि उकटैं छार से, सहर सियाला देखि ।
सहंत मही ऊसर भरे, बानौं करै बसेखि ॥१३८॥

देही दरसन फेरिये, दिन देखत सौ बार ।
रज्जब मन फेरन कठिन, जो जुगि जाहिं अपार ॥१३९॥

स्वांग किया सहिनाण कौं, ज्यूं जीवहिं पावै जीव ।
जन रज्जब इस मामलै, कहु किन पाया पीव ॥१४०॥

षट दरसन सहिनाणि कर, गुर खेचर गहि लेहिं ।
जन रज्जब ज्यूं स्वान सिसु, बधिक बाधणैं देहिं ॥१४१॥

तन मन पतिब्रत चाहिये, रहती सहित सिंगार ।
कंत न छाड़ै कामनी, रज्जब बिन बिभचार ॥१४२॥

सिंगार सहित अथवा रहित, पति परसे सुत होइ ।
रज्जब भामिन भेष बलि, फल पावै नहिं कोइ ॥१४३॥

जंत्र ठाट सब चाहिये, नालहिं रंग न रंग ।
रज्जब दोषि न रंग कै, नहीं राग मैं भंग ॥१४४॥

जंत्रग बौ रागै बजै, सोई राग सरबेनि ।
तौ रज्जब सार स्यंगार का, कंधि भार अधकेनि ॥१४५॥

सारि न रची रबाब कै, गवैं तंदूरैं धारि ।
रज्जब राग सु एक से, बधि बंदौ बेगारि ॥१४६॥

गऊ दंत दरसन दसा, दूजी दिसि सो नाहिं ।
यूं स्वांगी सादे सदा, उभै मांड मुख माहिं ॥१४७॥

बिन सूनति ह्वै तुरकनी, बाभनि तागै नास ।
ऐसै माला तिलक बिन, रज्जब भगत सु दास ॥१४८॥

स्वांग सांच निरनै का अंग

दत्त दसाली यूं फिरै, देखि दिगंबर कोड़ि ।
परि सो सकलाई कौन मैं, अवलोकौ इहि वोड़ि ॥१॥

ज्यूं गोरख गोदावरी, मनिष किये पाषाण ।
त्यूं रज्जब औरौ करैं, सरभरि सोई सान ॥२॥

भरम भेष धरि भर परी, सूली हरी न होइ ।
तौ रज्जब मानै सु क्यूं, त्यूं पतियावै कोइ ॥३॥

मंदिर फिरै न मूरति पीवै, गौधन जीवै ज्ञानि ।
तौ नामदेव समि होइ क्यूं, पद साखी सु बखानि ॥४॥

करनी करि सरभरि नहीं, कथा कबीर कहाइ ।
रज्जब मानै कौन बिधि, बालदि उतरी आइ ॥५॥

इक सांभरि अरुसाह पुर, दादू देखै दोइ ।
दरस दसा सरभरि घणी, परि कला कौन पै होइ ॥६॥

जहाज कढचा चीरी फिरी, गज सुरहे मुंह मोड़ि ।
दादू दीनदयाल के, रज्जब परचे कोड़ि ॥७॥

बांछे अणबांछे करी, सांई संत सहाइ ।
रज्जब देख्या बखत बल, मित्थ्या कही न जाइ ॥८॥

दसा औदसा बहण बिय, सदा जीव के साथि ।
जन रज्जब इन सौं परै, सो बित बेत्वा हाथि ॥९॥

दुख दोजक सुख सुरग है, दून्यूं मांड मझार ।
जन रज्जब इन सौं परै, सो जन उतरै पार ॥१०॥

प्रतिबिंब पाणी ना गहै, किरण अकरषै नीर ।
स्वांग सांच निरनै भया, नहंग चढ़ै कहि सीर ॥११॥

करणी किरण सु ले चढ़ै, जिव जल कौं सु अकास ।
स्वांग सबद प्रतिव्यंब परि, यहु कृत होइ न तास ॥१२॥

तीरथ तस्कार का अंग

अज्ञान रूप अठि सठ फिरहिं, धोखै धोवै देह ।
रज्जब मैलै नांव बिन, यहु सांची सुणि लेह ॥१॥

तन धोया फिर तीरथौं, मैल रह्या मन माहिं ।
रज्जब पातग प्रान मैं, क्यूं उरके अघ जाहिं ॥२॥

जल अचवैं आठौ पहर, अठ सठ तीरथ न्हाहिं ।
रज्जब रज नहिं ऊतरै, मैली मनसा माहिं ॥३॥

अठ सठ न्हाइ तुम्बिका, मीठी भई न माहिं ।
जन रज्जब सो साखि सुनि, कहु कहि तीरथ न्हाहिं ॥४॥

रज्जब एक अकास का, अम्ब सु अठ सठ माहिं ।
सकल निवाणौं नीर सों, कहि जल पातक जाहिं ॥५॥

अठ सठि के जल बूड़िये, ऊंडै देखहु जाइ ।
रज्जब यूं तीरथ तजे, माहि मगरमछ खाइ ॥६॥

नांव बिना निरमल नहीं, बहु बिधि करै उपाइ ।
रज्जब रज किसकी गई, दह दिसि तीरथ न्हाइ ।।७।।

सूती सुत उर लाइ करि, सुपिनै भरनी मात ।
यूं रज्जब पिव जीव कन, भूले दह दिसि जात ।।८।।

दह दिसि दौड़ै दूरि कौ, भ्रमि भ्रमि तीरथ न्हाहिं ।
रज्जब राम न सूझई, जो इस काया माहिं ।।९।।

पंडित कहै सु पावनी, गंगा गोब्यंद भांति ।
तामैं न्हाये नीच कुल, तौ क्यूं न करै द्विज पांति ।।१०।।

टेढ़ा डूमी ना चुकी, अठ सठ तीरथ न्हाइ ।
तौ रज्जब सुनि सांच यहु, नांव निरंजन गाइ ।।११।।

मनिष मीन सम ह्वै रहे, अठ सठ तीरथ न्हाइ ।
पै रज्जब रज नहिं ऊतरै, दुरमति बास न जाइ ।।१२।।

जन रज्जब तन तूंबड़ी, नर देखौ निरताइ ।
कुचिल न कड़वापण गया, अठि सठि तीरथ न्हाइ ।।१३।।

जाहर नई न जानई, पुरष तज्या परबीन ।
रज्जब राम न आदरी, यूं सौंपि समंदरि दीन ।।१४।।

गंगा गोबिन्द चरन तज, खार समंद को जाइ ।
रज्जब उधली कै उदिक, अघ उतरै क्यौं न्हाइ ।।१५।।

हरि सौं हुई हरामखोरि, हाड़ डलाये माहिं ।
रज्जब ज्यूं जानै नहीं, गाफिल गंगा जाहिं ।।१६।।

धारा तीरथ धार तलि, त्यूं सति जति सुमिरण राम ।
रज्जब कारिज सीस परि, खित खेतहु नहिं काम ।।१७।।

तन कौ तीरथ बहुत हैं, मन कौ तीरथ तीन ।
सत जत सुमिरण सलिल सुध, रज्जब काढ़े बीन ।।१८।।

भरम बिधंस का अंग

हाथि घड़े कौ पूजिये, मोलि लिये की मानि ।
रज्जब अघड़ अमोल की, खलक खबरि नहिं जानि ।।१।।

मूये बच्छ समि प्रतिमा, पसु प्राणी सब भोल ।
रज्जब ब्रह्म न बैल का, भूलि न पावै मोल ।।२।।

क्वांरी कन्या सब रमहिं, गूदड़ गुड़ी अज्ञान ।
त्यूं रज्जब भोले भगत, भूले जल पाषान ॥३॥

पाणी पाहन पूजतै, कौण पहूंच्या पार ।
रज्जब बूड़े धार मैं, इहि खोटी व्योहार ॥४॥

पाहण सौ घड़ि पूतला, सबै समाने सेव ।
रज्जब संभू सबनि मैं, ताका लखै न भेव ॥५॥

रज्जब सेवा सैल सुत, ज्यूं सुपिनै की आथि ।
सोवत सब कछु देखिये, जागति कछू न हाथि ॥६॥

जड़ सेवा जड़ का करै, सठ हठि समुझै नाहिं ।
रज्जब कूटै रोस चढ़ि, कण नाहीं तु समाहिं ॥७॥

करहिं पूतला मनिष का, सो मनि षौरी साइ ।
तौ अमूरत मूरत किये, कैसे खुसी खुदाइ ॥८॥

रज्जब चेतन जड़ गड्या, सुधि बिन लालै सेव ।
येती अकलि न ऊपजै, असम भया क्यूं देव ॥९॥

जड़ लागै जड़ ठौर सौं, चेतनि चेतनि ठाइ ।
स्वान भभोड़ै सैल सुत, स्यंघ सिंघणी जाइ ॥१०॥

अमर आतमा अमर की, ताकी कीजै आस ।
मिरतगि तनि मिरतग घड़ी, तापरि का बेसास ॥११॥

चौपई : माता पिता पूत अरु पोता, इन उपरंति सगा नहिं होता ।
तेऊ मुवा सु दीजै डारी, तौ मिरतगि मूरति ह्वै क्यूं प्यारी ॥१२॥

साखी : रज्जब निपजै धात धर, गिर तरवर बनराइ ।
ठग बिद्या के ठाकुरहुं, चाकर चित्त न पत्याइ ॥१३॥

केस मास अस्थि गूद धर, तिनतै प्रतिमा तन ।
रजपूतौं की रज्जबा, सेवा करै न मन ॥१४॥

अवनि अस्थि सौं देव घड़ि, जीवै मांडी सेव ।
रज्जब वह कछु और है, अबगति अलख अभेव ॥१५॥

सपत धात सागर सपत, सक्ति सु सलिल अपार ।
तहां सैल सुत नांव चढ़ि, सुरति न पहुंचै पार ॥१६॥

अतिर जीव आश्रम अतिर, पारंगत क्यूं होइ ।
गिर सुत ग्रीवा बांधि करि, तिरता सुण्या न कोइ ॥१७॥

पानि पानि परसोत्तमा, तोड़े जीव असाध ।
रज्जब पूजि पषाण कौं, सदा करैं अपराध ॥१८॥

पान फूल फल दीप सौं, प्रतिमा पूजैं लोग ।
रज्जब राम न मानई, प्राण सिधारण जोग ॥१९॥

जे हिरदै हरि सेइयै, मनसा निरमल होइ ।
तौ रज्जब इस बंदगी, जीव मरै नहिं कोइ ॥२०॥

हरि घर माहैं छांड़ि करि, परदे सौं जाइ प्राण ।
जन रज्जब सोधी बिना, पूजै जल पाषाण ॥२१॥

एकहि बाधैं कंठ सों, दूजै पूजण जाहिं ।
जन रज्जब बेसास बिन, सोधी नाहीं माहिं ॥२२॥

सालिगराम सकल संतहु कन, जन जावै जगन्नाथ ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, गुर ज्ञाताति न साथ ॥२३॥

भूष भाकसी मैंदिये, गलिगिज हिये पषाण ।
रज्जब गुर सिष यूं डंड़े, कहिये कहा बषाण ॥२४॥

खांडे संगि फेरे लिये, खुसी खसम संगि होइ ।
त्यूं प्राण पाणि प्रतिमा लगी, हेत और सब कोइ ॥२५॥

व्याहे खांडे तीर समि, त्यूं प्रतिमा व्योहार ।
सब समझै संदेह बिन, आगे है भरतार ॥२६॥

गोहूं उपरि गुमट रच्या, सदा रहै सो नाहिं ।
त्यूं मूरति परि मन महल, सुरति अमूरति माहिं ॥२७॥

कालबूत करि काटणा, पहलैं ही यहु भाव ।
रज्जब तब लग राखिये, जब लग होइ लदाव ॥२८॥

मूरति एक पषाण की, मात पिता कै नाइं ।
रज्जब रसना उन दई, दूध पिया उस ठाइं ॥२९॥

कहो कौन कूं पीठ दे, कहौ कौने दिसि जाहिं ।
निकट सुन्यारा सबन सों, सो सोधे हम माहिं ॥३०॥

प्रतिमा के परताप सों, प्रान न पलटै कोइ ।
तौ पारस पत्थर भला, लोहा कंचन होइ ॥३१॥

चंबक चलैर पारस पलटै, त्यूं भी प्रतिमा नाहिं ।
रज्जब सेवा सवित परि, समझि देखि मन माहिं ॥३२॥

हमाइ छांह कै छत्रपति, चंदन पलटै काठ ।
प्रतिमा इतौ न पाइये, गहण दिखावै पाठ ॥३३॥

प्यंड प्राण पलटै नहीं, प्रतिमा पूजै लोइ ।
दास देव देखै दुनी, रज्जब रुजू न होइ ॥३४॥

सुमेर सहित दंगर सबै, तिन परि बरसै मेह ।
रज्जब रुचि इस बात की, तौ सब चरनोदिक लेह ॥३५॥

सावण मैं सब जीव का, जल चरनोदिक होइ ।
तौ रज्जब पीवै सबै, सीझ्या सुण्या न कोइ ॥३६॥

माला तिलक न मानई, तीरथ मूरति त्याग ।
सो दिल दादू पंथ मैं, परमपुरिष सौं लाग ॥३७॥

जूठणि का अंग

रज्जब रिधि जूठी सबै, सत्र जग देख्या जोइ ।
इल न अभोगित पाइये, कहु सेवा क्यूं होइ ॥१॥

जीव जुठाली लच्छमी, लच्छी औठचा जीव ।
इहां अभोगित कछु नहीं, कहा समरपै पीव ॥२॥

आचार उथेल का अंग

चाकी चूल्हैं लीपता, दीपक पाणी पात ।
जन रज्जब जीवैं मरैं, एकट करम षट धात ॥१॥

एक करम सौं भाजिये, ये दीसैं षट करम ।
रज्जब करै सु कौन बिधि, लह्या धरम का मरम ॥२॥

चींटी दस चौकै मरै, घुण दस हांडी मांहिं ।
जन रज्जब इस सूचि मैं, बरकति दीसै नांहिं ॥३॥

करै आचार बिचार बिन, सिल दिल बैठी आइ ।
रज्जब उपजै कर्म षट, करम करम घर जाइ ॥४॥

चर्म दृष्टी चौकै चढ़ै, छोटि सु खित गज दोइ ।
रज्जब सो समझै नहीं, जिन सावणि भेई गोइ ॥५॥

रज्जब चौकै चकहुं कै, जीवहिं चारयूं खानि ।
सुलकि बिना लीपत फिरै, तुछ ते षीद्यौ आनि ॥६॥

भांति भांति भोजन भरे, भ्वै भाणै भगवन्त ।
रज्जब एकहि थाल मैं, जीवहि जीव अनन्त ॥७॥

अजरी आये उठि गया, इल ऊपरि आचार ।
रज्जब सूच्या ना रही, बेत्वा करौ बिचार ॥८॥

अजरी बजरी परसि करि, पाक पूर परि जाइ ।
कहौ अचार कहां रह्या, जे पंडित सो खाइ ॥९॥

जीवत गाड़ै जोगि येहिं, त्यूं पूजा षट करम ।
रज्जब आये पाप सिरि, धोखै कहिये धरम ॥१०॥

रज्जब उपजै पाप पुन्नि, एक पुन्नि ह्वै पाप ।
असम भेद जग करत ज्यूं, है हो मेरे बाप ॥११॥

अरिल : कहैं गिरह का धरम, पाप का मूल है
मरै उभै पचि प्राण, कहौ क्या सूल है ।
मारै पंच पुनीत, धरम कौ ठौर दे
रज्जब पापर पुन्नि, ज्ञान करि व्योर रे ॥१२॥

साखी : रसोई रस सब पड़े, एकसि रूप अहार ।
रज्जबरू ते खाइ करि, योहीं पाक अधार ॥१३॥

पाक पूर परि हर रह्या, पाकी सुद्ध न सार ।
रज्जब सो सुपिनै नहीं, फूलै फिरै गंवार ॥१४॥

पाक अधारी एक कौं, जाकै पाक अधार ।
रज्जब नर नापाक सब, नांव बिना संसार ॥१५॥

रिद्धि रकत ज्यूं काढ़िये, ब्रह्मंड प्यंड को पाछि ।
सो अहार सीरे कहै, कहां पूछिये आछि ॥१६॥

पै प्राणी पसुतैं लिया, घृतकूं पै सु अहार ।
ताथै छागल जल पिया, रज्जब करि सु बिचार ॥१७॥

ऊंधा थाल न कूटिये, सूधा करि संत पोषि ।
टीडी नहीं उडावणी, कपट न लहिये मोषि ॥१८॥

चौपई : ताल पखावज झालरि संख, ढोल दमामा भेरि असंख ।
बाहरि सोर सरै क्या काम, माहै मौनी कहै न राम ॥१९॥

बेद बेकार का अंग

रज्जब चहुं दिसि चूक है, छहूं ठौर छल छेद ।
नौन राज लीये खड़े, अष्टादस अरि भेद ॥१॥

रज्जब च्यंत चौबीस दिसि, बेद बोध की साखि ।
बसत एक मत माग बहु, कहा करै सो राखि ॥२॥

एकै नवहिं उगौण दिसि, एक नवै आथौण ।
रज्जब बातैं बेद की, सुणि भूले मुर भौण ॥३॥

बेद बतावै अठ सठ्यूं, पूजौ जल पाषाण ।
रज्जब रंजहिं न संत जन, जिनहू निरंजन जाण ॥४॥

बिष अमृत सब बेद मधि, निरनै करै सु नाहिं ।
जन रज्जब जगि जुगल रस, पी प्राणी मरि जाहिं ॥५॥

रज्जब बेदहुं सौ रह्या, परचा भेद मैं जाइ ।
दूरि न दौरै दह दिसा, निकटि लिया निरताइ ॥६॥

बेद बतावै सबनि कों, प्रीता गोपी कान्ह ।
रज्जब नर नारयूं रचे, गति मगि गही सु नान्ह ॥७॥

भागौत कही भारत की, लड़ि मुये दाना देव ।
रज्जब रुचिं उपजै नहीं, काकी कीजै सेव ॥८॥

नीतिग का अंग

रज्जब देखौ दिव्य दृष्टि, दिब सु माहै दीप ।
सांच झूठ निरनौ भया, पावक परस समीप ॥१॥

रज्जब निरखहु नीर निधि, अति गति नीतिग अंग ।
सांचा राख्या संचि उर, नहिं झूठे सो संग ॥२॥

मही मद्धि माणस मरै, जीवै जलंध्री नाथ ।
पहम पु पीड़ा ना करी, देखौ दिसि प्रहलाद ॥३॥

प्रहलाद प्रतिज्ञा पूरिये, हरनाकुस हित डार ।
रज्जब रोस न रीस यहु, निरमल नीत बिचार ॥४॥

प्रहलाद बच्या होली जलीं, रही उभै रस रीति ।
रज्जब पेखि प्राचीनता, अगनि न करी अनीति ॥५॥

रामचंद्र रामन सु रिप, बभीषन सो भाइ ।
सत्र मित्र सोधी करी, हुये नये कहि धाइ ॥६॥

रज्जब दुबिधा दूरि लग, सरग नरग ह्वै बास ।
एका कौ देवल फिरै, एक जिव जाइ निरास ॥७॥

अठार भार आदम धरहुं, ग्रासह अगनि अतीति ।
कगरि कुमाणस टलि चलै, यहु आदू रस रीति ॥८॥

जड़ तरोवर तोये गहै, रंगहु रस रुचि नाहिं ।
तौ अणपाणी बिण आदमी, और गहै त्यूं माहिं ॥९॥

करता करै कि करम गति, बुरा बुरै का होइ ।
नर नराधपति नीति बिन, सुखी न देख्या कोइ ॥१०॥

बागे देर निवाजिये, बागौ करि निस्तान ।
रज्जब बागहुं बिगति बहु, बागौं सुख दुख सान ॥११॥

बप बागे अमृत बिष स्वान पर, साध असाध पहराये ।
सनमुख चले निवाजे दीसैं, बिमुखे जीव मराये ॥१२॥

सत्रहुं सोधिर मारही, करहि मित्र प्रतिपाल ।
जन रज्जब यहि नीति मघ, सतपुरषौं की चाल ॥१३॥

दुष्टौ सेती दुष्टता, मिलतौ सेती मेल ।
रज्जब दून्यूं काम की, खबरिडार का खेल ॥१४॥

बडी बंधि नहिं मारिये, नेकी परि न निवाज ।
तौ रज्जब न्याव नीति कहु, धुन्धमार का राज ॥१५॥

रज्जब रोस अनीति परि, नीति माहिं रस रंग ।
आदि अंति मधि किस्मतैं, सतपुरषौं का अंग ॥१६॥

अंतक सदा अनीति के, नीति मीत प्रतिपाल ।
रज्जब महंत महीप त्यौं, चारिहु जुग यहु चाल ॥१७॥

रज्जब जीवहिं जीव दे, सो सब छोटा साज ।
जिसहिं निवाजै साइयां, सो सबही सिरताज ॥१८॥

पांचौ थापी रोटियां, सो तौ पांचौं खाहिं ।
पै पंचौ थापी थापड़ी, सो चूल्हे मैं जाहिं ॥१९॥

सबद सरीरहु ऊपजहिं, सो बंदहि सब लोइ ।
बाई बिष्टा पेट की, मनिष न मानै कोइ ॥२०॥

बंदरहू बाहर चढ़ै, रज्जब नीति बिचारि ।
उन जत तज्या अनीति मैं, रावन सा सिरि मारि ॥२१॥

सलिता मिलहि समंद कौं, चोट चिन्ह कछु नाहिं ।
रज्जब सूझहिं बूंद निधि, उदै बुदबुदा माहिं ॥२२॥

सत पथरी ससत्रौं सहित, करी न तोबा त्राहि ।
कुसम चोट कसिके तेऊ, आणन उचरी आहि ॥२३॥

अव्यापौं कौ व्यापई, करतौं देखि अनीति ।
रज्जब सांई साध घरि, आदि अदलि रस रीति ॥२४॥

सौ गासौं संसा नहीं, बाट चलै बप माहिं ।
एकै कण ऊबट चलैं, जन रज्जब जक नाहिं ॥२५॥

पीड़ी पाटा घाव परि, गुल गद सोधि पहार ।
जन रज्जब बैदंग यहु, करै न श्रब सिंगार ॥२६॥

दिब न दुखावै दोष बिन, न्याय नीति निरताइ ।
तौ आदम अपराध बिन, कहु क्यूं मारचा जाइ ॥२७॥

धरम अस्थानक बंदिये, करम अस्थानक डंड ।
जन रज्जब यहु जग जुगति, नीति माग नौखंड ॥२८॥

करम अस्थानक कर लगै, धरम अस्थानक धोक ।
जन रज्जब रस रीति यहु, हरषि हसेबी थोक ॥२९॥

येक ठौर है डंड का, येक ठौर डंडौत ।
माइ मिहरि दोऊ नीति मैं, नर दुनियां तण नौत ॥३०॥

रज्जब रचना राम की, चौरासी लख जोइ ।
एक एक ने ना करी, अब सु एक क्यूं होइ ॥३१॥

खंडि खंडि खित भुज घणे, घटि घटि घाट अनेक ।
रज्जब बसुधा बहु मती, सु अबिगति करी न येक ॥३२॥

देस राज राजा करहिं, दिलहु राज गुर पीर ।
रज्जब रीझा सकति मैं, परि मतै न मेला बीर ॥३३॥

गुर अनन्त ज्ञानहु घणे, बहु गोव्यन्द घण सेव ।
रज्जब मांड न एक मत, घरि घरि देई देव ॥३४॥

साधु सुलषिण सेइये, लच्छी लालच नरपति ।
सो धन धामहु ना मिलै, तौ भाजैं भल भृति ॥३५॥

रज्जब रमिता राम का, बहुत भांति मंडान ।
मिलहि न आदम एक मत, जीव जीव जुवा जान ॥३६॥

रज्जब एक न किये एक नै, प्राणर पांचौ तत ।
तौ द्वै घट क्यूं एक ह्वै, भानी अबिगति मत ॥३७॥

साधू इंद्री नासिका, चारच्यूं इंद्री चोर ।
रज्जब कटै कुसंग मिलि, नहीं न्याव की ठौर ॥३८॥

जेती उपजै आप में, तेती अपनै सीस ।
जन रज्जब ह्वै गैब की, सो सिरजी जगदीस ॥३९॥

भाव भूष भै करि भषै, भोजन मुर मरजाद ।
पै दून्यूं मैं तीन्यूं नहीं, क्यूं करि ह्वै परसाद ॥४०॥

दिलवर दिल सौदे सौदा का अंग

दिल दीये दिल पाइये, दिलही सौं दिल लेइ ।
ज्यूंब जिमी जड़ मेलई, त्यूं धर तर रस देइ ॥१॥

बनराइ बीज पैठै विभू, गात गरद मैं देहिं ।
तौ रज्जब तर नीपजै, रस सुरसातल लेहिं ॥२॥

हरि हित बित खरच्यूं बधै, बप दे बसुधा सब ।
आतम अरपि मिलै पर आतम, नीति राहिहै अब ॥३॥

त्रिबिधि भांति जिव भेंट दे, त्यूं प्रभु करै पसाव ।
जूवै का सा खेल है, लाया पावै डाव ॥४॥

बांकौं सौं बांका धणी, सूधौं सेती सूधि ।
जन रज्जव सांची कही, जो जाणै सो रूधि ॥५॥

हरि दासौं का दास है, बंदौ बंदा सोइ ।
सेवग घरि सेवग सुण्या, सौदे सौदा होइ ॥६॥

गुर गति मति सति का अंग

गुर पीव जीवते सीप समि, सिष मुकता सु सुरीद ।
ज्यूंदहु ने मुरदे जने, रज्जब चशम बदीद ॥१॥

ससि खंडित मंडल अखंड, मात अंध सुत नैन ।
त्यूं रज्जब गुर गति बिना, पै सिष निपजै सति बैन ॥२॥

नर गुर नाग समानि हैं, सबद सुमणि मुख भौन ।
सो रज्जब किन लीजिये, जो दारू दुख दौन ॥३॥

अजरी आदम गात गत, सहत सबित्ता बोल ।
रज्जब अज्जब ओषदी, नर निपजै निरमोल ॥४॥

देखहु दीपक ज्ञान का, साध असध कर होइ ।
तिमर हरै उर धाम मै, जन रज्जब करि जोइ ॥५॥

गुरू खोखरा खेजड़ा, सिष साखौं नहिं दोष ।
रज्जब मत जल पावहीं, पत्र फूल फल पोष ॥६॥

परम मता पीपल सुफल, कुगुरू काग उर लीन ।
परहि सु चेले चकहुं परि, सो निपजै कुल भीन ॥७॥

रज्जब मां बिभिचारिणी, बेटी पतिव्रत होइ ।
त्यूं गुर गिरही सिष जती, नाहीं अचरज कोइ ॥८॥

सपत धात धरती उदै, निध नग हीरे लाल ।
रज्जब आतम काम के, असन बसन इल बाल ॥९॥

दारू दुष्ट दयाल दे, रज्जब हरिये रोग ।
उधरनहारा ऊधरै, मिले अजुगता जोग ॥१०॥

सोधि सार उपदेस दे, गुर गति रहति न नेम ।
पारस साध असाध करि, करत लोह तैं हेम ॥११॥

रज्जब काबि किराड कै, किरिया ऊरा ठाट ।
तौ भी तिनका लीजिये, बाइक पूरा बाट ॥१२॥

अबला बली जु बंधही, मन समुंद से अंग ।
रज्जब कूंषि अबंधिये, निपजै सबद सु नंग ॥१३॥

दर बिहीन दिठि पारषू, नर नग करहिं सु मोल ।
घण मोले घनपति गहैं, रज्जब तिनके बोल ॥१४॥

गुर सबिता सारंग सिष, समझे समझौ साध ।
रे रज्जब कहु क्या गया, अकलि अंब जहं लाध ॥१५॥

रज्जब महंत मयंक का, बंक कलंक न जोइ ।
श्रवणि सुधा रस पीजियें, नैन उज्याला होइ ॥१६॥

सारग्राही का अंग

हंस हंस ले षीर का, नीरहि निमसहि नाहिं ।
जन रज्जब यूं ज्ञान गहि, लै अमृत बिष माहिं ॥१॥

ज्यूं सबिता तोयं तिमर, सीत सहित ले ताणि ।
तैसे रज्जब त्रिगुण तै, तत्त लीजिये छाणि ॥२॥

ज्यूं माखी मधु काढ़ि ले, सोधि अठारह भार ।
त्यूं रज्जब तत्तहिं गहौ, तीन्यूं लोक मझार ॥३॥

जैसे चंबक रेत मैं, चुणि लै कंचन सार ।
त्यूं रज्जब कण काढ़ि ले, केवल हंस बिचार ॥४॥

सोरठा : चेतनि चंबक रूप, गहै सुगुण कण सार के ।
रज्जब जुगति अनूप, छाणहिं औगुण छार के ॥५॥

साखी : जे कांटा तौ रूष मैं, छांह माहिं कछु नाहिं ।
रज्जब मिलिये सबहुं सौ, गहि निरगुण गुण माहिं ॥६॥

रज्जब साधू गुण गहै, औगुण दसा न जाइ ।
त्यूं अलि तिल तिजि पहप कौ, परमल लेइ उठाइ ॥७॥

परहरि कंटिक केवड़ौ, कुसमहि ले अलि आइ ।
त्यूं रज्जब गुण कौ गहौ, औगुण मैं निरताइ ॥८॥

ज्यूं बछ गऊ कौ चूषतौ, मन मैं बंछ न गाइ ।
त्यूं रज्जब रस पीजिये, आपा परि बिसराइ ॥९॥

बैन बूंद बहु बरषहीं, जलचर होहिं निहाल ।
पै सीपि स्वाति जल कौ गहै, उपजै मुकत सु माल ॥१०॥

दुपि दुनिया मिरतग मैं लहिये, मुकता सुत द्रबि दंत ।
रज्जब लेहि सो दोइ जन, एक महीपति पुनि महंत ॥११॥

माया पाणी दूध हरि, साधू हंस समानि ।
पै पानी पीवौ जु रुचि, जन रज्जब मुखि छानि ॥१२॥

चंच नीर मैं गाड़ि करि, छीरहिं पीवै हंस ।
त्यूं रज्जब रिधि मधि सुजन, लेइ राम का अंस ॥१३॥

रज्जब तरधर महि सु देखिये, नीर लेहिं निरबालि ।
त्यूं साधू सब सकति मधि, स्यो रस पीवहिं टालि ॥१४॥

साधू सीप सरोज गति, सकति सलिल मैं बास ।
प्यंड पुष्टि ह्वै और दिसि, प्राण और दिसि आस ॥१५॥

चौपई : साध असध सुकृत अपराध, चतुर भांति माया फल लाध ।
ज्यूं मसि आषिर गोव्यंद गालि, रज्जब लेहिं एकही टालि ॥१६॥

साखी : रज्जब मधुरिष मानवी, तरु नरु देइ न पीठ ।
सबही ठाहर सोधि करि, लीया मधु मत मीठ ॥१७॥

अठार भार बिधि आदमी, सहित सु सांई हेत ।
रज्जब मधुरिष मुनि मही, प्राण पियूष सु लेत ॥१८॥

रज्जब रिधि रुधिरहिं भरी, मनसा मात सुजान ।
असुध दूध ह्वै दया मुख, साधू सुत ले पान ॥१९॥

दया देह मैं आवतैं, असुध दूध ह्वै जाइ ।
अग्राहिज ग्राहिज भया, रज्जब पलटै भाइ ॥२०॥

सुकल सु सोणित सीर पुनि, त्रिबिधि भांति तन येक ।
भुगताहूं मुर मत मिलै, रज्जब बड़ा बमेक ॥२१॥

ससि कलंक जुगि जुगि जड़े, सुधा सदा निकलंक ।
त्यूं सत्ति सबद रस लीजिये, परिहरि करि बप बंक ॥२२॥

रज्जब महंत मयंक तैं, लेब पियूष प्रकास ।
करम कलंक घटि बधि जुदे, गुणग्राही निज दास ॥२३॥

रज्जब सबद सुगंध लै सौरभ, पहुप प्यंड चाखिये सु नाहिं ।
परम बमेक बित्त कौ ग्राहक, गुण सु काढ़ि ले औगुण माहिं ॥२४॥

सबद सहत ज्यूं लीजिये, उतपति दसा न देखि ।
रज्जब रस का माहकौं, बिरचै नहीं बसेखि ॥२५॥

बपि बिष पहप पियूष मधु, गाति बाति यहु बोध ।
तहं रज्जब रस लीजिये, योहीं निज परमोध ॥२६॥

षड् दरसन मैं खोजि ले, सांचा सबद बिचारि ।
ज्यूं रज्जब तुरि त्याग करि, अंबर लेहि उतारि ॥२७॥

पारा कंचनि काढ़ि ले, राख रहित रलि राखि ।
त्यूं रज्जब अज्जब मतै, सोधि गहै सति साखि ॥२८॥

सब काहू का लीजिये, सांचे सबद न दोष ।
त्यूं रज्जब बहु धेनु कै, पै पीयें ह्वै पोष ॥२९॥

मिठाई की मूरतैं, सूरति भांति अनेक ।
त्यूं रज्जब जो सबद है, सो रस रूपी येक ॥३०॥

नभि नीझर नीवान घट, साखी सबद सु नीर ।
रज्जब उभै अंकूर हैं, कोई सींचहु बीर ॥३१॥

सकल कुलहुं की आतमा, सीझी हरि मैं जाहिं ।
तौ रज्जब सांचा सबद, कहु क्यूं लीजैं नाहिं ॥३२॥

अवनि माहिं अन नीपजै, सो आदम उर धारि ।
त्यूं साधू संसार तैं, रज्जब लेहु बिचारि ॥३३॥

ज्यूं उभै षलावरि कै पवनि, अगनि उदै सुध सार ।
त्यूं बैन विमल दुहुं ओर कूं, रज्जब कटै बिकार ॥३४॥

तन मन सकति समुंद मधि, काढचा भाव रतन्न ।
सारगराही औतरै, सो धण साधू धन्न ॥३५॥

द्वै सरवर बिचि पाल ह्वै, तापरि तरवर होइ ।
जन रज्जब ता पोष मैं, टोटा नाहीं कोइ ॥३६॥

द्वै सरवर बिचि पालि परि, तरवर तोयं लेइ ।
रज्जब तजी सु दुष्टता, जीवहुं दोष न देइ ॥३७॥

बहुत भांति के घीव हैं, बहुत भांति के तेल ।
जन रज्जब पावक प्रबल, होइ हुतासन मेल ॥३८॥

चंदन सबही काम का, सबै सुगंधा होइ ।
त्यूं रज्जब निज दास हैं, क्या छांड़ेगा कोइ ॥३९॥

असारग्राही का अंग

रज्जब साध समंद गति, मोती मानिक साथि ।
तहां संख साखी गहैं, चतुराई करि हाथि ॥१॥

रज्जब साधू गंज गति, माहि रतन पतिराइ ।
मुदभागी मूठी भरै, तौ कंकर चढ़ि जाइ ॥२॥

रज्जब साधू आरसी, मैल मोरचा नाहिं ।
मूढ़ जीव मुख दोस कौ, देखै दरपन माहिं ॥३॥

अप अपराध उत्तंग अष्ट कुल, नैन मूंदि नहिं हेर ।
अनि औगुण रज नैन समि, सोई किया सुमेर ॥४॥

जथा बिथा कौ ढूंढ़ ले, बूटी बप सु मझारि ।
रज्जब यूं अज्ञान गति, औगुण गहै बिचारि ॥५॥

ज्यूं चीचड़ तजि दूध कौ, लागिर लोहू पीन ।
त्यूं रज्जब गुण छांड़ि कर, आधहुं औगुण लीन ॥६॥

रज्जब सकल सुगंध तजि, मैलहि चाहै मीन ।
त्यूं गुण तजि औगुण गहै, सठ सुरता मति हीन ॥७॥

गुण छांड़ै औगुण गहै, जन रज्जब तेलंड ।
बाजीगर के धाम मैं, मानौ मुस्या करंड ॥८॥

संत सभा मैं सबद सुद्ध रस, पिवै पिलावै साध ।
तहां बाद बैरी करै, अमृत बिष मेले अपराध ॥९॥

रज्जब उर औगुण भरे, नहीं ज्ञान गुण माहिं ।
दाहै मारी बौल ज्यूं, संगि सूल रहि जांहि ॥१०॥

रज्जब निन्दक औगुणी, सब श्रवनौ दुख पूरि ।
भैभीत भांड मुख देखिये, ज्यूं भलकहुं भरिपूरि ॥११॥

सबद उदै अस्त का अंग

संजोग घड़ी बाइक अथिर, हूता सेती होइ ।
रज्जब मेल न मिरतगा, तब सुणै न देखै कोइ ॥१॥

रज्जब सबद सरीर बिन, कानहु सुण्या न कोइ ।
जथा बूंद बादल बिना, दृष्टि न दीसै जोइ ॥२॥

ज्यूं सुपिना नाहीं नींद बिन, त्यूं सबद न बाज सरीर ।
रज्जब समझ्या ज्ञान मैं, ज्ञानी समुझौ बीर ॥३॥

रज्जब पाले प्यण्ड झरि, बूंद बैन परकास ।
पै दोइ न दीसैं दोइ दिन, देख्या सुण्या न दास ॥४॥

सबद का अंग

सकल पसारा सबद का, सबद सकल घट माहिं ।
रज्जब रचना राम की, सबद सु न्यारी नांहि ॥१॥

सबदै बंध्या सबद गहि, सबदै सबद खेलाण ।
जन रज्जब इस पेच कौं, समझै संत सुजाण ॥२॥

आज्ञा वो ओंकार परि, पंच तत्त आकार ।
उदै अस्त सब सबद मधि, तामैं फेर न सार ॥३॥

सबदै ही सुलझै सबै, सबद सरै सब काम ।
रज्जब सतगुर सबद मैं, सबद गहे निज ठाम ॥४॥

गुर बाइक मैं सीझिये, बाहर सीझै नाहिं ।
रज्जब सीझै संत सब, जु बैठे बाइक माहिं ॥५॥

जो सतगुर के सबद मैं, सो सीझै संसार ।
सबद बिना सीझै नहीं, रज्जब कही बिचार ॥६॥

मत मारग परलोक के, सबद मुनारे ठाट ।
जन रज्जब जगि जीवड़े, भूलि पड़ै मति बाट ॥७॥

रज्जब रज तलि नीर निधि, गुरू गगन जल सोइ ।
बैन बूंद बरिषा बिना, नांव नाज नहिं होइ ॥८॥

करी मिमाई मत्त की, ब्रह्म अगन सु पकाइ ।
सबद पुरी सब ठौर की, घाव असंक्या लाइ ॥९॥

असंक असंक्या बहुत हैं, त्यूं औषदि सबद असार ।
रज्जब सो तहं लाइये, तौ रोब न लहै लगार ॥१०॥

बिबिध भांति बूटी बिथा, बैद सु जाणै भेव ।
यूं आसंक्या अनन्त बिधि, समझावै गुरदेव ॥११॥

सबद माहिं करि पाइये, तन मन जिव का भेद ।
रज्जब माया ब्रह्म का, बाइक बीच न खेद ॥१२॥

रज्जब रसना राह मैं, बैन बटाऊ जानि ।
तन मन आतम राम की, देइ खबरि सो आनि ॥१३॥

साध सबद सो तुंबिका, कटि जटि राखै प्रान ।
सो रज्जब बूड़ै नहीं, भौजलि संत सुजान ॥१४॥

साधू सबद सु तुंबिका, तिरै तिरावै प्रान ।
रज्जब राखै जीव कौं, बाइक बंधू जान ॥१५॥

सोरठा : सबद तुंबिका भार, भौजलि काढ़ै भार धर ।
रज्जब सुन्नि सहार, जैसे पंखी पंख पर ॥१६॥

साखी : प्रान सु पंखी पाट पर, जुरै गवण गैणाग ।
राहु केत ससि सूर तर, लहै फहम फल बाग ॥१७॥

बोहित बैनौ पर चढ्यूं, बिषम बारि सिरि गौन ।
रज्जब पहुंचै पारि पद, भलौ भला सौं भौन ॥१८॥

अहि आदम जब पावहीं, पंख प्रबीन सबद ।
सो बावन ब्रह्मैं मिलहिं, देखौ कारिज हद ॥१९॥

जथा माह कै कुंभ मैं, सीतल होइ सु नीर ।
तथा सबद सु महूरती, सुनत होत गुन बीर ॥२०॥

सिरजनिहारे सबद के, सदा सु सबदौ माहिं ।
रज्जब गुर गोव्यंद जिव, बचनौ बाहरि नाहिं ॥२१॥

षड् दरसन खालिक खलक, सत्त सबद के माहिं ।
जन रज्जब श्रीपति सहित, बाहर दीसै नाहिं ॥२२॥

सबद सिद्ध सु सदा रहै, सदन सप्त सुर जाहिं ।
रज्जब कही बिचारि करि, देख दृष्टि दिल माहिं ॥२३॥

सबद सिद्धि घट ऊपजी, परकाया परबेस ।
रज्जब एक अनेक ह्वै, रबि रारच्यूं दिसि देस ॥२४॥

सबद अमरफल नीपजै, अकलि अंबृपा माहिं ।
अरथ सुधा रस पावहीं, तनि सम प्रीतम नाहिं ॥२५॥

काचे तनि सांचा सबद, ज्यूं बीरछि बीच सुभाइ ।
गात गतहुं सति देखिये, एक रहै इक जाइ ॥२६॥

बैण जाण हड़वंत गति, उदधि असंक्या पार ।
रज्जब सो साबति सही, और कूद कब वार ॥२७॥

येक सबद संदेह कट, ज्यूं बावन की बीख ।
कोटि साखि सुणि सोच उर, रज्जब चली सुलीख ॥२८॥

रज्जब चेतनि चक्कबै, चरचा चक्र समान ।
देखि असंक्या अरि हने, बानी बल परवान ॥२९॥

साध सबद भंडार हैं, अरथ दरब ता माहिं ।
रज्जब कूची दृष्टि बिन, ताला खोलै नाहिं ॥३०॥

साध सबद डूंगर भये, भाव गुपत बिचि धात ।
रज्जब टांकी ज्ञान बिन, कोई तहां न जात ॥३१॥

सबद सैल माहैं धरचा, सब संतहुं का माल ।
सो बिधि बेत्वा काढ़ि करि, करहिं दुकाल सुकाल ॥३२॥

काया खानि तनमैं सही, तहां बिधाता धात ।
सबद दीप बिन को लहै, रज्जब समझौ बात ॥३३॥

भौजलि बूड़े भार सौं, सबद तुंबिका हाथि ।
रज्जब पेदै व्यंड सौं, तुंबी रहै न साथि ॥३४॥

साध सबद सीखे सुणे, उर अंतरि लै राखि ।
रज्जब बिगते बीच ही, काठ हुतासन साखि ॥३५॥

बाइक बादल अरथ जल, सरवै कोइ सुकाल ।
पै रज्जब बरिषा बिना, आतम अवनि दुकाल ॥३६॥

सबद सूर सामंत मिलि, बणी फैम की फौज ।
जन रज्जब रंग अंग अनन्त, ज्यूं मखमल में मौज ॥३७॥

कान रान मैवास परि, चटहिं फहम की फौज ।
उतरैं सु अज्ञान अष्ट कुल, सबद सु पावै मौज ॥३८॥

तन तरकसि सींगणि सुमति, बैण बाण करि जाणि ।
काहू का बैठा भरमि, जन रज्जब परवाणि ॥३९॥

बाइ अकेली बन हलै, देखहु बिसवा बीस ।
सो समीर संगि सबद कै, तौ क्यूं न डुलावै सीस ॥४०॥

सुई सबद पसु प्राणच्यूं थापै, दिन दिन होत बितारे ।
देखौ चरते पीवते, रज्जब रोगि सु मारे ॥४१॥

रज्जब बनसी बैन की, मीन मनिष जो खाहिं ।
देखौ बारि बिभूति मैं, सो ठहरावै नाहिं ॥४२॥

बाणी बिचार का अंग

पराकिरत ओंकार है, पराकिरत रति राम ।
पराकिरत टीका भया, संसकीरति सिरि ठाम ॥१॥

आदि पराकृत मूल है, अंति पराकृत पान ।
रज्जब बिचि बृछ संस्कृत, फल रथ कौने थान ॥२॥

पराकिरति मधि ऊपजै, संसकिरति सब बेद ।
अब समझावै कौन करि, पाया भाषा भेद ॥३॥

पराकिरत परथी पवन, संसकिरति घटि सास ।
येक सजीवन येक मिलि, येक येक बिन नास ॥४॥

प्रगट पराक्रत सूर समि, निगम नैन उनहार ।
जन रज्जब जगि येक बिन, चहुं वौ घोरंधार ॥५॥

प्यंड प्रान बिन कछु नहीं, सबद न स्याबति होइ ।
तैसे रज्जब संस्कृत, बिना पराकृत जोइ ॥६॥

पराकिरति के पेट मैं, संसकीरत सुत कोड़ि ।
ज्यूं बिचि बारी बाग बहु, पै चकहुं बड़ी चहुं वोड़ि ॥७॥

बीज रूप कछु और था, बिरिछ रूप भया और ।
त्यूं पराकिरत तै संस्कृत, रज्जब समझ्या व्योर ॥८॥

प्राकृत पूंजी प्रान पहि, संस्कृत सौदे लेत ।
रज्जब बादी बीबियहिं, फिरि मुड़िहाई देत ॥९॥

बेद सु बाणी कूप जल, दुख सु परापति होइ ।
पद साखी सरवर सलिल, सुखि पीवै सब कोइ ॥१०॥

बिद्या बसि बेत्वा बहुत, बाणी बंदि अनेक ।
रज्जब सारद सिरि चढ़ै, बावन बर कोइ येक ॥११॥

बाणी बिबिध बिहार करि, सांच बाच सों काम ।
रज्जब रांचै ताहिं गुणि, जामै जूना राम ॥१२॥

रज्जब बाणी सत्ति सो, जा माहै निज नाम ।
कहा पराकृत संस्कृत, राम बिना बेकाम ॥१३॥

ऊजल मैले भाव द्वै, बहु बाणी चित्राम ।
रज्जब सनमुख सबद लै, बिमुख बात बेकाम ॥१४॥

त्रिय जोजन बोली पलट, बहु बसुधा बहु बाणि ।
रज्जब लीजै सबद सति, राम नाम निज छाणि ॥१५॥

राम बिमुख बाणी बुरी, कहैं साध सब बेद ।
जन रज्जब तिनकौं तजै, पाया भाषा भेद ॥१६॥

बप बाणी बिधि एक हैं, जीव जगत गुर नांव ।
सदा सुजीवन लीजिये, तजिये मिरतग ठांव ॥१७॥

बैदंग जोतिग जैन मत, मंत्र सु माला नांव ।
व्याकरणौ अरु संस्कृत, ताथैं मै न पत्यांव ॥१८॥

सह संस्कृत साईं बिमुख, भाषत भगवंत भाइ ।
सोने के जलि सौं लिखी, गाली बिबिध बनाइ ॥१९॥

सरगुण निरगुण ठौर की, बाणी बीच दलाल ।
रज्जब गाहक जीव के, खैंचै ह्वै दिसि चाल ॥२०॥

बिद्या महातम का अंग

बिद्या कर माया मिलै, बिद्या ब्रह्म बिनान ।
रज्जब बिद्या बसत है, सोधत बिद्या थान ॥१॥

बिद्या मोहै बिदु जनहु, बिद्या बसि सुलतान ।
रज्जब बिद्या परम धन, सीखहु चतुर सुजान ॥२॥

चौदह बिद्या मैं चलै, आदम की औलादि ।
जन रज्जब बिद्या बिना, पसू जनम सो बादि ॥३॥

बुधि बिद्या बलवंत जगि, पूजा ताकी मानि ।
रज्जब गरजै गोइ गुन, सब इल आदर जानि ॥४॥

गुणि गणेस कौ मानिये, गुणि पूजन गुर पीर ।
रज्जब बिद्याधर बड़े, बिद्या बावन बीर ॥५॥

बिद्या सारद बंदिये, गुनि लुकमान हकीम ।
रज्जब पावै मान महि, बिद्या मै जु फहीम ॥६॥

बिद्या संगी जीव की, सदा रहै सो साथि ।
जन रज्जब परधान परि, लिये खजाना हाथि ॥७॥

बिद्या मैं हूनर सबै, बिद्या मैं मंत्राधि ।
बिद्या बसि परवरति है, बिद्या हरि आराधि ॥८॥

बिद्या बंधू जीव की, अबिद्या कूं काल ।
धर अधरन बिच देखिये, प्रानहु की प्रतिपाल ॥९॥

बिद्या लघु दीरघ सबै, बिद्या पावै ठौर ।
रज्जब बिद्या जीव कौ, करै और तै और ॥१०॥

नर निगलै निरमोल नग, त्यूं ले बिद्या माहिं ।
रज्जब आनन्द उगलतौं, दुख दालिद सब जाहिं ॥११॥

बिद्या करि बेत्वा भये, बिद्या करि परबीन ।
बिद्या करि नागर निपुनि, रज्जब बिद्या लीन ॥१२॥

बिद्या जीवै जीव लगि, मुवौ मरे सौ नाहिं ।
रज्जब रहती देखिये, गुरमति गति सिष माहिं ॥१३॥

बिद्यौ परि बिद्या भजन, काज करै परलोक ।
और जगति के काम की, रज्जब पावै धोक ॥१४॥

बिद्या चौदह रतन है, बप सु बारि निधि माहिं ।
कोइ एक काढ़ै कमठ ह्वै, नहीं त निकसै नाहिं ॥१५॥

कहै सुणै बूझै बचन, बिद्या दे बरदान ।
रज्जब तीन्यूं तन नहीं, तौ क्यूं परसै गुर ज्ञान ॥१६॥

सरब ठौर सावधान का अंग

मोटे छोटे जीव सब, प्रगट गुपति कलि माहिं ।
जन रज्जब जगदीस सौं, कोई छाना नाहिं ॥१॥

परा पसंती प्रगट बिन, गोबिन्द गोपि सु नाहिं ।
यहु जाणै जाणै नहीं, वहि सौं छाना नाहिं ॥२॥

ब्रह्मंड प्यंड के जीव जे, सुन्निरु साहिब माहिं ।
नमो निरति परि रज्जबा, कबहूं भूलै नाहिं ॥३॥

सब ठाहर चेतन्नि है, रज्जब रमिता राम ।
इस समझे का फल इहै, बुरा न कीजै काम ॥४॥

अकलि चेतनि का अंग

अकलि अखंडित माल है, बहु बिद्या हित माहिं ।
सदा सु धन आतम कनै, कबहूं बिछुड़ै नाहिं ॥१॥

रज्जब गैबी माल कौं, ज्ञान खानि समि जानि ।
बहुतै खरचौ खाइ बहु, कदे न होई हानि ॥२॥

अकलि कहै गुर पीर है, अकलि अलह पहिचानि ।
रज्जब अकलि अभंग उर, अकलि अमोलिक जानि ॥३॥

अकलि इनायत अकलि की, जासौं होइ गुर पीर ।
बप बैरागर खानि तैं, खणि काढ़ै हरि हीर ॥४॥

अकलि इनायत अकलि की, आतम कन आवै ।
सु काया माया मांड मैं, दिल दुख न पावै ॥५॥

धरे अधर बिचि अजब है, अकलि अमोलिक अंग ।
रज्जब लहिये रहम सौं, अबिगति देइ उमंग ॥६॥

रज्जब इस आकार मैं, अकलि अगम आधार ।
जहि त्रिलंब बेत्वा चढ़ै, सिरि सारै संसार ॥७॥

आदम माहै अकलि का, अजब अनूपम ठाट ।
गहण सहत चौदह बिद्या, लहै सबन की बाट ॥८॥

सब अंगहु आगे खड़ी, अकलि अकल पहिचाणि ।
रज्जब खबरि अगम्म की, आतम को दें आणि ॥९॥

अकलि बिहूना अकलि कौ, इहां पिछाणैं कौन ।
रज्जब बुद्धि बिचार बिन, रीते आतम भौन ॥१०॥

रज्जब आतम राम बिच, दीसै अकलि दलाल ।
ऊंची कुमति कपाट की, खोलै ताला साल ॥११॥

अक़ल अकलि माहै धरचा, सब बिद्या अरु बेद ।
परा परी परब्रह्म का, भूत सु पावै भेद ॥१२॥

अकलि सु अगनि अनन्त सुख, सब दिसि करहिं प्रकास ।
रज्जब अज्जब तत्त ये, चरहिं असंक्या घास ॥१३॥

एक अकलि कै उदर मैं, अकल सकल सब साज ।
रज्जब तामैं पाइये, सिरी सहित सिरताज ॥१४॥

रज्जब वोदरि अकलि के, अरभक ओंकार ।
चतुर बेद बालिक सु लघु, ता पीछै संसार ॥१५॥

सहस नांव सुत अकलि कै, सो सुमिरै संसार ।
जन रज्जब हैरान है, मति मधि उदर अपार ॥१६॥

प्राण पुरिष अबला अकलि, मिलि सुत जाया नांव ।
लघु लरिका माता बड़ी, परि टीका ह्वै किस ठांव ॥१७॥

राग रूप अरु सबद सुख, पावै कोई येक ।
रज्जब बुद्धि बिलास का, घटि घटि नहीं बमेक ॥१८॥

चेतनि चूरै सकल गुण, तन मन राखै हाथि ।
रज्जब काम उभै करै, तजि पिरथी पति साथि ॥१९॥

सूषिम फूल न सूझई, आतम अंध अज्ञान ।
ज्ञान नयन देखै सबै, जगपति सहित जहान ॥२०॥

पून्यूं पूरे पावही, प्राण पियूष प्रकास ।
त्यूं रज्जब रस दृष्टि के, दान दरस निज दास ॥२१॥

अकलि उकति अनभै उपज, मति बुधि ज्ञान बिचार ।
समझि बूझि सुरति जाणिबा, रज्जब राखणहार ॥२२॥

अज्ञान अचेतन का अंग

अचेत न जानै आपकौ, परहिं पिछाणै नाहिं ।
रज्जब रचै न राम कौ, जीवत मूवौ माहिं ॥१॥

सोधी बिन सूते सबै, मेलि सु निरनै नैन ।
रज्जब राम न सूझई, जीवत मूये ऐन ॥२॥

अचेत आतमा अंध गति, तन मन तम भरपूर ।
रज्जब राम न सूझई, बाहरि भीतरि सूर ॥३॥

रज्जब अंड अचेत गति, कहू आरंभ क्या होइ ।
भजन भोग दुन्यूं नहीं, देखौ दृष्टि सु जोइ ॥४॥

रज्जब अंध अचेत मन, मूड़ा मुगद गंवार ।
सठ सूता समझै नहीं, कहै न सिरजनहार ॥५॥

उर घर चारयूं बरन के, रज्जब रजनी माहिं ।
ज्ञान दीप बिन तिमर मैं, सदनौ सूझै नाहिं ॥६॥

काया खानि षट दरस परि, अचेत अंध्यारा माहिं ।
रज्जब लै दीपक बिना, उभै उदीपै नाहिं ॥७॥

रज्जब सूते रैन के, प्राण उठहिं परभात ।
नर निद्रा हरि सौं बिमुख, सु जागै दिवस न रात ॥८॥

झूठ सांच से देखिये, ज्ञान नैन जब जाहिं ।
ज्यूंब न दीसै बिघन गति, रज्जब रजनी माहिं ॥९॥

रज्जब भोलि भयान की, तन त्रिभुवन तम पूरि ।
छल बल पकड़ै सो तहां, बहु बिधि बिघन हजूरि ॥१०॥

रज्जब रैन अचेत मत, बिषै बीज बिस्तार ।
पाया सोवत सुपिन मैं, अकलि असंक्या पार ॥११॥

नर नारी हिरदै रहै, नारी नरहु मझार ।
पैठि कामना कामरू, मुगद मैन मंत्रधार ॥१२॥

रज्जब रैनि अचेत मैं, उडगन इंद्री तेज ।
तिमिर नींद करि पुष्टि ह्वै, हूं हैरान इह हेज ॥१३॥

सोरठा : इंद्री घूघू नेत, अचेत रैन करि पोषिये ।
सही उभै अंग प्रेत, रज्जब रजनी मोषिये ॥१४॥

साखी : चोर जार बटपार बिधु, बन बैरी त्रिय हाथ ।
रज्जब रजनी ग्यान बिन, बलिवंत इंद्री नाथ ॥१५॥

अरिल : अस्थूल असुद्ध अचेत, प्रेत परिवार तन
अरि इंद्री अघ ठौर, भ्रमित मतिहीन मन ।
भोलि भूलि चक चूक, बिघन बिस्तार रे
रज्जब रैनि अचेत, पगै पग मार रे ॥१६॥

साखी : सूने भुवन अचेत उर, भूत बसै कै सानि ।
जन रज्जब तहिं जीव कौ, जीवन जुगति न जानि ॥१७॥

रज्जब काया कावरू, आया जीव अचेत ।
मनसा नारी मंत्र मैं, प्राण पसू करि लेन ॥१८॥

तन ठग मन ठग स्वाद ठग, ठग पंचौ परसिद्धि ।
रज्जब भोली आतमा, कण राखै केहि बिद्धि ॥१९॥

प्यंड सु पिसणौं सौं भरया, बैरयूं सौं ब्रह्मंड ।
रज्जब रजमा क्यूं रहै, खल छाये नौखंड ॥२०॥

देउ गुरू सब दिन कहैं, मन माया सौं तोड़ि ।
रज्जब निद्रा निमक मैं, सहजि गई सो जोड़ि ॥२१॥

जोगी भोगी होत हैं, नर निद्रा मैं सोइ ।
नीच मीच दीरघ खड़ी, तेहि धक्कै क्या होइ ॥२२॥

रज्जब एक अचेत अंग, हरि अनन्त उनमान ।
चेतनि सज्जन सेनि जिव, केतक कहूं बखान ॥२३॥

आतम उरहुं अचेत अंधारा, चेतनि मनहु चिराग ।
रज्जब उसमैं कछू न सूझै, वहि सब सूझण लाग ॥२४॥

दलिद्रता का अंग

अबला बली सु आलकस, सब बैरिन सिरताज ।
रज्जब तन मन सकल कै, करै न च्यंता राज ॥१॥

सबद सरीर जीव मधि, आलस है सुल्तान ।
रज्जब रोकै मुर भवन, बाइक बपि अर प्रान ॥२॥

रज्जब चरे दलिद्र के, किया न जाई काम ।
अलजूदी अति आलसूं, कहै कौन बिधि राम ॥३॥

दलिद्र माहिं डून्यूं गई, माया ब्रह्म सचेत ।
स्वारथ परमारथ नहीं, खोया काया खेत ॥४॥

गुर गोविन्द ग्रह द्वार कै, आलस खोये सुख ।
रज्जब देखे प्राण ये, तत दलिद्र का मुख ॥५॥

रज्जब परभू पंथ मैं, नहिं दलिद्र का खोज ।
सेवा सुमिरण देखतौं, बैठिर माडहिं रोज ॥६॥

काम सु मरदहु मरद का, काहिल तन क्यूं होइ ।
देखि दलिद्री आलसू, रज्जब रहै सु रोइ ॥७॥

पांचौ तत्त मयंक सौं, अन्नहि काज मजूर ।
रज्जब सौ दालिद्र मैं, आवै क्यूं सु हजूर ॥८॥

उदर विना आरंभ करै, देखौ अवनि अकास ।
तौ रज्जब सूता सु क्यूं, पेट लिये रे पास ॥९॥

मन का अंग

मन हस्ती मैला भया, आप बाहि सिर धूरि ।
रज्जब रज क्यूं ऊतरै, हरि सागर जल दूरि ॥१॥

मन माया त्यागै गहै, निपट टूटि नहिं जाइ ।
जन रज्जब पसु की बिरति, उगलि उगलि अरु खाइ ॥२॥

मन मरकट मूकै नहीं, माया मूठी माहिं ।
रज्जब केते उठि गये, इन यहु त्यागी नाहिं ॥३॥

जे मन कौ माया मिलै, तौ मन चढ़ै अकास ।
रज्जब काया चल गई, तब दुरबल ह्वै दास ॥४॥

जब मन कौ माया मिलै, तब मन आधा होइ ।
रज्जब माया चलि गई, सब कछु देखै सोइ ॥५॥

जन मन कौ माया मिलै, तब मन काछै रंग ।
रज्जब माया चलि गई, सहजि भये रंग भंग ॥६॥

जन मन कौ माया मिलै, तब बहुत नचावै नाच ।
रज्जब माया चलि गई, तब निहचल बैठै पांच ॥७॥

जब मन कौ माया मिलै, तब जिव चाहै भोग ।
रज्जब माया चलि गई, तब जीव उपज्या जोग ॥८॥

चढ़तौ मन ससि चांदिना, उतरत उभै अंध्यार ।
आदि अंति औलोकि कर, रज्जब किया विचार ॥९॥

मन मोत्या घर घर फिरै, अस्थिर बैठै नाहिं ।
रज्जब रामहिं क्यों मिलै, कूकर की मति माहिं ॥१०॥

गादह चंदन चरचिये, ख्याल खौलि सो नाहिं ।
रज्जब छूटचूं छार मैं, यहु सुभाव मन माहिं ॥११॥

कूकर काग करंक परि, पाक पूरि तजि जाइ ।
त्यूं रज्जब मन की बिरति, तजि अमृत बिष खाइ ॥१२॥

रज्जब परिहर राम रस, मन भुगतै निज काम ।
सूंवर सूंखहि क्या करै, बिष्टा मैं बिश्राम ॥१३॥

मन अमली इस माड का, उनमन कने न जाइ ।
रज्जब तजि जीवन जुगति, मरणौ रह्या समाइ ॥१४॥

रज्जब गृह बैराग मधि, मन मैं खरा न खोट ।
मुगल चलै ज्यूं और दिसि, करै और दिसि चोट ॥१५॥

रज्जब मनवा भूत है, सदा सु उलटे बाव ।
देखा गृह बैराग मैं, खेलै अपणा दाव ॥१६॥

मन न होइ भगवंत का, परमोधत गइ आव ।
रज्जब रामति रमण कै, ले ले आवै भाव ॥१७॥

मन बैरागी सिर धरचा, नांव निरंजन बोझ ।
सो रज्जब डारचूं खुसी, इसा जंगली रोझ ॥१८॥

मन कच्छिप्प तन कूप गति, जब तब करै बिनास ।
रज्जब एकहि थाहि करि, दूजे में परिगास ॥१९॥

सकल बिकारूं मैं खुसी, यहु मन की रस रीति ।
जन रज्जब कहि कहि मुवा, हरि सौं करै न प्रीति ॥२०॥

बहुत ज्ञान गुन सीखि ले, जिव जानै मन साध ।
रज्जब रहै न उस मतै, बहुरि करै अपराध ॥२१॥

यहु मन चंचल चोरटा, ठिक ठाहर कोइ नाहिं ।
रज्जब बात भली कहै, बहुत बुराई माहिं ॥२२॥

मां बेटी मन कै नहीं, बाई बहण न कोइ ।
जन रज्जब पसु की बिरति, सब करि देखै जोइ ॥२३॥

आंख्यूं ऐन अनंग मधि, मुहड़ै बाई मात ।
माहै मिहरी करि गया, रज्जब मन की घात ॥२४॥

काया कामी कुटिल मति, अंगि अंगि ऐन अनंग ।
रज्जब बात खरी कहै, मन मैं खोटा नंग ॥२५॥

यहु मन ऐसा धूत है, मुहड़ै कह्या न जाइ ।
रज्जब मारै जीव कौ, बहु बिधि घात बणाइ ॥२६॥

रज्जब मन के पेच कौ, लखै न मुनियर प्राण ।
तौ क्या जाणै जीव जड़, सदा अचेत अपाण ॥२७॥

जोड़ अकोड़ देइ मन छूटै, सुमिरण करै न संकटि आइ ।
महंत मतै को भूलि न मानै, कबि कथण्यूं जीवहिं ठगि जाइ ॥२८॥

मन सैतान सूता भल्या, जाग्यूं जग मैं जाइ ।
रज्जब बींधै व्याधि मैं, सुमिरण करै न आइ ॥२९॥

दुखदाई सूता भला, सूतै सौ भली मीच ।
जो जाग्या जौहर करै, दईन जगाई नीच ॥३०॥

ब्रह्म बिछोह न व्यापई, भूला भूंदू मीच ।
रज्जब राता झूठ सौं, कहत सुनत मन नीच ॥३१॥

यहु मन बूटा बास का, माया मेघ समान ।
लघु दीरघ द्वै गरज सुण, जन रज्जब हैरान ॥३२॥

यहु मन मिरतग देखि करि, धीजि न कीजै नेह ।
रज्जब जीवै पलक मैं, ज्यूं मींडक जल मेह ॥३३॥

मुर मरि जीवत बेर क्या, दामिन मनसा मन्न ।
धर धीरज मैं राखिये, जन रज्जब सो धन्न ॥३४॥

खंड खंड कर काटिये, मन केसौ डर नाहिं ।
जन रज्जब जड़ जीव की, अमर न डरपै माहिं ॥३५॥

रज्जब राखै कौन बिधि, मन मैं मौज अपार ।
एक मौज जे मारिये, तौ उर उठै हजार ॥३६॥

जल तरंग तट पौन थिर, रुति गति आभै अंत ।
रज्जब इनके वोर ये, मन मैं मौज अनंत ॥३७॥

यहु मन रावन मंडली, मन क्रम बिस्वा बीस ।
रज्जब काटै एक सिर, तौ निपजै दस सीस ॥३८॥

मन केसरि के पंच मुख, गहि बंध्या मुख येक ।
चारयूं मुख चहुं दिसि भषै, रज्जब समझि बमेक ॥३९॥

भूखि मार मारहिं मनहि, बिरह अगिन दे दाद ।
जाल्यूं पीछै जीवता, भूत होइ जिव जाग ॥४०॥

मनवा नर नग माया मादी, मुकत किये मिलि जाहिं ।
जीव जुदे किहि बिधि करैं, रज्जब संसा माहिं ॥४१॥

तन मैं मन चंचल सदा, ज्यूं मोती मधि खाल ।
जन रज्जब क्यूं राखिये, यहु अंतरगत साल ॥४२॥

जन रज्जब मन बीजली, चमकै दह दिसि जाइ ।
यहु चंचल कैसे रहै, त्यूं ही गह्या न जाइ ॥४३॥

मन धन की चंचल बिरति, गाड्या रहै न ठौर ।
जन रज्जब हैरान है, देखि दसौ दिसि दौर ॥४४॥

मांड मथानी काढ़ ली, मन समुंद मैं जोइ ।
जन रज्जब चंचल अजौ, पेच पड़्या है कोइ ॥४५॥

मन मनसा जोड़ा चपल, राख्या रहै न ठौर ।
बांधे बंधै सु ब्रह्म के, आन उपाव न और ॥४६॥

काष्ठ करि पावक प्रगट, सो जल जुगति बुझान ।
रज्जब जल मैं जिलि उठै, मनवा बीज समान ॥४७॥

नागदवन मृग स्यंग मन, इनके बंक न जाहिं ।
रज्जब सांई साल सुध, सो क्यूं माहिं समाहिं ॥४८॥

जन रज्जब मन सुन्नि के, कठिन काटणे गाभ ।
या मैं इन्द्री अति बिषम, वा माहैं तैं आभ ॥४९॥

क्रोध लहर मिलि क्रोध मन, काम लहर मिलि काम ।
जन रज्जब मन लहरि मैं, राम लहरि मिलि राम ॥५०॥

यहु मन भांड भंडार मैं, राखै रंग अनेक ।
रज्जब काढ़ै समै सिर, ये जुदी जुदी रंग रेक ॥५१॥

रज्जब भल के भांड मुखि, ज्यूं अंग अनन्त मन माहिं ।
यहु बिद्या वोदर निमति, आतम कारिज नाहिं ॥५२॥

मन माहै मंडाण सब, भावहि परगट होइ ।
रज्जब सुन्नि समान कौ, बूझै बिरला कोइ ॥५३॥

प्यंड ब्रह्म आसंखि मन, सुन्नि भई भंडार ।
स्यो सकती भासै तहां, मन मधि उदर अपार ॥५४॥

चौपई : चेंहरबाजी चित्राम चौरासी, मन बाजीगर माहिं अभ्यासी ।
सुपिना निसा दिखावै खेल, जागे दियै सु धरै सकेल ॥५५॥

साखी : रज्जब रहै न एक रंग, मन मैं मोटी आट ।
पल पल मैं पलटै मतै, जैसी बिधि कर कांट ॥५६॥

जन रज्जब मन जींगणा, चमकै अरु छिपि जाइ ।
पल मैं ग्याता पल गतै, जे देख्या निरताइ ॥५७॥

मन मयंक की एक गति, बधै घटै छिपि जाइ ।
जन रज्जब हैरान है, सदा सु यहु मति माहिं ॥५८॥

मन मयंक की एक गति, सदा कलंकी दोइ ।
ऐब उठै इष्टौं उठ्यूं, और उपाव न कोइ ॥५९॥

सपत धात के सकल मन, गाड़े गोबिन्द गोइ ।
कुमति काट खाये सु षट, सोनै सपत न सोइ ॥६०॥

रज्जब काचा चपल मन, बिचरै बारह बाट ।
पाका पग रोपे रहै, भागे सकल उचाट ॥६१॥

यहु मन पेड़ बबूल का, काचा कांटहु पूरि ।
रज्जब पाका जाणिये, कुल कांटे जब दूरि ॥६२॥

यहु मन बांका जब लगै, तब लग ज्ञान न होइ ।
रज्जब पोसत हूं पहम, बिगसत सूधा होइ ॥६३॥

मन मुकता काचे गलैं, संसार समंद जल दोष ।
निपज्यूं निरभै सो तहां, सतगुर सीष सु पोष ॥६४॥

चौरासी चौपड़ि फिरैं, सूरति सारि सु बेष ।
रज्जब रती न सरकहीं, उभै सु पाके पेष ॥६५॥

थकति होत पाका सुमन, ज्यूं कण हांडी माहिं ।
काचा कूदै ऊछलै, निहचल बैठै नाहिं ॥६६॥

पाका प्यंड सु पोरसा, काची काया कीच ।
रज्जब कही बिचारि करि, यहु अंतर यहु बीच ॥६७॥

चौपई : काचा तुरस पुषत है मीठा । आतम बोध अंब गति दीठा ॥६८॥

साखी : मन पनंग तन तोइ गति, तापरि करहिं जु मघ ।
रज्जब अस असवार वै, इल ऊपरि सु अनघ ॥६९॥

जन रज्जब मन कै तले, चौरासी लख जीव ।
इल ऊपरि असवार ह्वै, सो कोइ पावै पीव ॥७०॥

जिन प्राणी मन बस किया, ताकै बसि सब मांड ।
जन रज्जब मन बस बिना, देखि दुनी ह्वै भांड ॥७१॥

रज्जब राकस मन्न का, चारा चारचूं खानि ।
हंस बचै कोइ हेत रज, हुआ अमर सो जानि ॥७२॥

मन बनता चौगान का, जाकौ दस दिसि चोट ।
जन रज्जब जोख्यूं टलै, हू हू भये हरि ओट ॥७३॥

जन रज्जब रज रोझ मन, गहि लाह्या गृह भार ।
सो लूटै सो पुरष बिचि, तो ताकै मंगलचार ॥७४॥

मन फूटे तन फूटई, मन सारे तन सार ।
मनसा बाचा करमना, तामै फेर न सार ॥७५॥

सूषिम का अंग

रज्जब मन मैं मौज उठि, मन की काया होइ ।
यूं सरीर पल पल धरै, बूझै बिरला कोइ ॥१॥

काया मैं काया धरै, मन सूषिम अस्थूल ।
रज्जब यहु जामण मरण, चौरासी का मूल ॥२॥

प्राण अगिनि तन काठ मिलि, प्रगटै धूंवा मन ।
जन रज्जब इस जनम कौं, जाणै कोई एक जन ॥३॥

मन मनसा अरु कलपना, कया कंवल की बास ।
रज्जब परसै दसौं दिसि, देही गुण परगास ॥४॥

स्वाद बाद अरु बिषय रस, चौथे निद्रा नेह ।
चौरासी के रमण कौ, जन रज्जब पग येह ॥५॥

चौरासी जामण मरण, मन सु मनोरथ होइ ।
बीज बिना ऊगै नहीं, जानत हैं सब कोइ ॥६॥

काया काष्ट अगनि आतमा, परसत धूंवा मन ।
रज्जब इस उतपत्ति कौ, समझै साधू जन ॥७॥

बिषय का अंग

गुण गण ग्रह गरजे सबै, जब गृह आई नारि ।
जन रज्जब हारयू जनम, हरि मेल्हौ सिरमारि ॥१॥

सलिता संसै सोच की, गृह सागर में पूरि ।
जन रज्जब बूड़ा तहां, कहां होइ दुख दूरि ॥२॥

सुख भागे दुख दूरि ह्वै, भाव भगति की हाणि ।
जन रज्जब इस जगत मैं, दारा दोजख जाणि ॥३॥

सुन्दरि सिल तलि हाथ नर, क्यूं करि निकसै दस्त ।
गोरी गिर कर कंत पर, तौ कहिये गिरहस्त ॥४॥

जनमभूमि छांड़ै नहीं, तब लग आवै जाइ ।
रज्जब बिषिया वारि मैं, फिरि फिरि गोते खाइ ॥५॥

ब्रह्म प्यंड गति एक है, काम लहरि तप होइ ।
रज्जब नख सख बलि उठै, बरसण लागै सोइ ॥६॥

रज्जब बिषै बिलोकतैं, बप बहनी परगास ।
काया कुंभ चीकट चूवहिं, सेज हेज तप त्रास ॥७॥

संगि सुहागा सुन्दरी, नर कंचन गलि जाइ ।
रज्जब रती न ऊबरै, पावक प्रीति समाइ ॥८॥

प्राण पुरिष की सुरति जड़, काया की जड़ काम ।
रज्जब करवत कामनी, बिहरै दून्यूं ठाम ॥९॥

सुन्दरि संग संकट सदा, दिन दिन दीरघ दुख ।
जन रज्जब नारी निकट, कहि किन पाया सुख ॥१०॥

चाकी चरखा घसि गये, भ्रमि भ्रमि भामनि हाथ ।
तौ रज्जब क्यूं होइगें, नर निहचल तिन साथ ॥११॥

कुल काया कागद मई, बिषै रूप सब बारि ।
प्यंड पुस्तक क्यूं बोरिये, रज्जब नैन निहारि ॥१२॥

पुरिष पचन नारी भुगति, सुन्दरि सुतहिं पिलाइ ।
रज्जब जिव जाणै नहीं, काल तिहूं को खाइ ॥१३॥

मोड़े लागे मन कौ, बहै सु बीरज आंव ।
षोड़ि खाट ज्यूं काट दी, रमा ठीकरा ठांव ॥१४॥

सोरठा : इंद्री अरिये धाइ, सूजै दारा दुख करि ।
रज्जब रुधिर रंधाइ, निकसै बीरज पीव झरि ॥१५॥

साखी : मीच मार सूजै सड़ै, तीजै दिन बेहाल ।
रज्जब रामा दरस तैं, सो गति ह्वै ततकाल ॥१६॥

अरिल : नर नारी चढ़ि चीत, बहुत दुख पावहीं
सूजै सुद्ध सरीर, तपति तन तावहीं ।
चोट बिना इह चोट, सु भीतरि पाकई
रज्जब राधि झराहिं, बहुत कौ राखई ॥१७॥

सोरठा : सपत धात धंधाइ, धामनि धमगर रूप धरि ।
तत्त गहै करि गाह, काया छांड़ै कीट करि ॥१८॥

साखी : अबला सूके असत सन, मन सठ सुनहा सुख ।
रज्जब रसना रुधिर रुचि, फोड़ि आपना मुख ॥१९॥

बिष का अमृत नांव धरि, पीवहिं हित चित लाइ ।
इह रस रसिया रसत ही, रसिक रसातल जाइ ॥२०॥

येक बिषै मैं सब बिषै, पड़ै जीव मैं आइ ।
रज्जब इह रस का रस्या, चौरासी मैं जाइ ॥२१॥

सुन्दरि सब सूली चढ़ी, पुरिष पड़े सब कूप ।
जन रज्जब जगि जुगल दुख, एकल आनन्द रूप ॥२२॥

सुन्दरि तरु सै बरसही, नौ सत पहुप सरीर ।
रज्जब फल बरिकत रहति, तहं फूले मन कीर ॥२३॥

जन रज्जब जुवती जहर, पागी सकल स्यंगार ।
आरोगहि अज्ञान नर, सूझै मीच न मार ॥२४॥

जन रज्जब जुवती जहर, बिसुवामा औतार ।
मूरिख मिनषै बाहिले, तिनहि मरत क्या बार ॥२५॥

दारा द्रै दूके सही, ज्ञानहीन नर जाहिं ।
रज्जब त्यूं बूड़ै तहां, सु क्यूं ही निकसै नाहिं ॥२६॥

सुत बित काटण कौ बड़े, सुन्दरि सैल सुखानि ।
रज्जब ते तिन तलि दबे, बहुड़े निकसे आनि ॥२७॥

रज्जब च्यंता राम बिन, साध कहैं सो नीद ।
सकल च्यंत सुन्दरि लगी, सुनि बइयर के बीद ॥२८॥

पैठि कामना कामरू, च्यंता डाइणि लेइ ।
रज्जब प्राणी पसू ह्वै, रिण रैणी भरि देइ ॥२९॥

मन मधुकर मेहरी कंवल, बंधे बांस कै ख्याल ।
रज्जब तामैं बल इता, जु फोड़ै मांड मयाल ॥३०॥

कलित केतगी माहि मिलि, मन मधुकर ह्वै नास ।
रज्जब रस बिस है सही, मरै बिषै लग बास ॥३१॥

ज्यूं छाया नर नीब की, भोजन बिष ह्वै जाइ ।
त्यूं रज्जब नारी निकट, बिन परसै कड़वाइ ॥३२॥

नारी निगलै नैन मधि, बैयर बचनौ खाइ ।
रज्जब पीवण सर्प ज्यूं, बिन परसे पी जाइ ॥३३॥

नर सु नीब नारी की छाया, भोजन भाव न राखि ।
मीठा कड़वा होइगा, सब संतनि की साखि ॥३४॥

बिषै रहित परि बंदि मैं, नर मादा नग अंग ।
तौ मुकते नर नारि क्यूं, सुकल सगाई संग ॥३५॥

निराकार ह्वै नीकसै, पुनि सो होइ अकार ।
नर मादा नग निरखतैं, बिरला टूटणहार ॥३६॥

मनुवा नर नग माया मादी, मुक्ति किये मिलि जाहिं ।
जीव जुदे केहि बिधि करै, रज्जब संसा माहिं ॥३७॥

अमरबेलि मनसा मरद, अंघ्रप अबला अंग ।
जन रज्जब जड़ बिन हीरी, डरी सु इहि परसंग ॥३८॥

निरतग नग लोहा मई, नारी चंबक माइ ।
रज्जब डरिये निकट घट, मूये लेइ जिलाइ ॥३९॥

सूता मूवौ माहिं है, पै सुपिनै सुन्दरि खाइ ।
तौ रज्जब जागत जीवता, तिन आगे क्यूं जाइ ॥४०॥

मद पीवत माचै मनिष, सुन्दरि सुणि मतिवालि ।
यूं रज्जब माता जगत, हरि दिसि सकै न चालि ॥४१॥

हेम हुतासन हसत हल, बारि बीज बिष झाल ।
गिरि करवत मरिबो भला, तजि कामणि का ख्याल ॥४२॥

संग्राम स्यंघ सूली सहित, चढ़ि गिरडी झप लेह ।
भेष भाकसी पैठि नर, रज्जब करी न गेह ॥४३॥

नारी गिरवर नीर कै, तहां न नाद बजाइ ।
जोगी राखै जीव कौं, तौ मुख मुनि समझाइ ॥४४॥

जिन कसणी काया पड़ै, सो सब थोड़ी जाणि ।
रज्जब रामा मिलि मुवौ, उभै सुरति की हाणि ॥४५॥

संकटि सुलप सरीर लग, दुखी नहीं इह दंदि ।
रज्जब नर नारी मिले, सदा सुरति बिष बंदि ॥४६॥

माता सब बाबौ बधी, बाबा मातहु माहिं ।
जन रज्जब जग यूं जडचा, कोई छूटै नाहिं ॥४७॥

रज्जब जगि जोड़े जड़े, चौरासी लख जंत ।
एकाएकी एक सूं, सो कोई बिरला संत ॥४८॥

बिषै वारि कस अति सु दृढ़, बांधी चारचूं खानि ।
रज्जब इह ठाहर मुकत, कोइ बिरला गुर ज्ञानि ॥४९॥

बिषै बिगूचण तीनि हैं, नर देखौ निरताइ ।
तन छीजै तत्तहिं तजै, मन सुमिरण सौं जाइ ॥५०॥

दुरमति दारू घर भरे, अबला पैठी आगि ।
जन रज्जब जग यूं जल्या, तू दोऊ दे त्यागि ॥५१॥

बिषै बंध बसुधा सु दृढ़, जीव जडचा ता माहिं ।
बलि बंधन छूटै नहीं, जे प्रभु छोड़हिं नाहिं ॥५२॥

रज्जब जिव जोड़ै बंधे, गांठि दई गुर घोलि ।
सुर नर पेच न पावहीं, सु क्यूं निकसै जिव खोलि ॥५३॥

नाद व्यंद की गांठ को, दई सु खोलणहार ।
बांध्यू बांध्या ना खुलै, मिल्यूं सु कोटि हजार ॥५४॥

मन जंगम तन धाम मैं, चांदी चाहि सहेत ।
तहं सकती ससि सुधा संगि, छानि छिद्र ह्वै देत ॥५५॥

नौ घाटचूं महि मारियेहि, नर नारी निरताइ ।
जीया चाहै जीव जो, सो इनकै निकट न जाइ ॥५६॥

अणखायूं खाई गई, खायूं खाये जाइ ।
रज्जब रामा अरुचि रुचि, फल देखौ निरताइ ॥५७॥

माया सकल बिष रूप है, आंख्यूं खाये जाहि ।
जन रज्जब जाणै न जिव, मिले मीच कौ माहि ॥५८॥

मनि यहु माया खाहिं हम, माया हमकौ खाइ ।
रज्जब रिधि उलटी कला, सिद्धौ लखी न जाइ ॥५९॥

बाम बिचारै बिषै हित, सील सीस गिरि जाइ ।
जथा चक्कवै चूक धर, चक्र सु लागै आइ ॥६०॥
चाखी चितहि न बीसरै, अणचाखी की चाह ।
जन रज्जब दून्यूं असह, दिलि दिलि नारी नाह ॥६१॥

रज्जब भागे भाग तजि, जोग जुगति मैं आइ ।
परि बिलस्या मनहु न बीसरै, तब लग नरक समाइ ॥६२॥

तन त्यागी लागी मनहि, तब लगि मेहरी माहिं ।
रज्जब रोये संगि इहि, छोड़ी छुटै नाहिं ॥६३॥

तन तै बिषिया त्यागिये, परि मन त्यागै नहिं नीत ।
तौलौं कछु छूटै नहीं, जौलौं ब्रिष सुख चीत ॥६४॥

छूटी धनपति ध्यान न छूटा, है मिहरी मन माहिं ।
रहतौ रहति न दीसै रज्जब, निरखौ जत मत नाहिं ॥६५॥

बिषै बंदि सब आतमा, नर नारी सहकाम ।
रज्जब मुकता ठौर इह, मुक्ति किये सो राम ॥६६॥

मनसा नारी नित निकटि, मन नर कू सो खाइ ।
रज्जब छूटै एक कौ, सूषिम बिषै बिलाइ ॥६७॥

बीरज तैं बालिक उदै, करम धरम तिन होइ ।
तिन साझै साझा सबल, नहीं त नाहीं कोइ ॥६८॥

कूकर कागौं काछि दृढ़, धनि रासिब रस रीति ।
रज्जब ध्रिग ध्रिग मानवी, बहुत बिषै बिपरीति ॥६९॥

चौपई : स्त्रान स्यंच रासिब है काग, पसु उपदेस मनिष नहिं लाग ।
बरस बिषै दीसै रुति दाना, यहु नर नीच रहै ब्रिष साना ॥७०॥

काग रिषी सुर रासिब देव, स्वान जती तीन्यूं इक टेव ।
रुति कै दानि निसाचर निरजर, रज्जब रहति पूजि पिरथी पर ॥७१॥

साखी : कूकर कच्छा कौन है, मनिषा मूरिख हेरि ।
बरस दिवसु ऊपरि बिषै, तहां रह्या मुंह फेरि ॥७२॥

मास मसूड़ माहिला, नाहर चिड़ा सु खाइ ।
मासाहस कहता मुगद, क्यूं सुख माहै जाइ ॥७३॥

अबला आदि उपाधि है, भूलै भाग सु होइ ।
जन रज्जब जत की जुगति, बूझै बिरला कोइ ॥७४॥

काम का अंग

कामहि देखत ही भये, ज्ञान ध्यान मति भंग ।
जन रज्जब जोगै गयो, जागे अपत अनंग ॥१॥

मदन बदन देखै नहीं, सुर नर संक सु माहिं ।
जन रज्जब रिप रयंद है, मोटा बैरी माहिं ॥२॥

सिध साधिक हारे सबै, सुर नर किये निमाम ।
जन रज्जब जोधार गुण, कह्या न मानै काम ॥३॥

काम काल गरजै सदा, काया नगरी माहिं ।
जन रज्जब हारया जगत, सुर नर छूटै नाहिं ॥४॥

रज्जब रंचक राम रस, करै राम रस भंग ।
यहु बैरी बैराग मधि, सो साथी है संग ॥५॥

अनंग दिसा औलोकतैं, आगि उठत उर माहिं ।
बप बासण ताये बिना, चोपड़ निकसै नाहिं ॥६॥

एकहिं कुन्दै काम कै, जड्या जगति जगदीस ।
रज्जब देई देव सब, उमा सहित सो ईस ॥७॥

महादेव मधि ना रह्या, मदन महा बलिवंत ।
रज्जब राखै कौन बिधि, कीट कला जुगि जंत ॥८॥

पारा सोखै कनक कामनी, देख्या राखिर कूवै ।
जन रज्जब क्यूं रहै जीवता, ये लक्षिण जेहि मूवै ॥९॥

बैजनाथ सौं बिरचि करि, करै अनीति अनंग ।
रज्जब भावै कूप तैं, पारा नारी संग ॥१०॥

काम राम रावण डसे, इन्द्र आदि ते ईस ।
और कचर कीचक किये, रज्जब बिसवा बीस ॥११॥

अबला बली अनंग अरि, मारन कौ सुर भौन ।
रज्जब दलिये देव दल, आतम उबरै कौन ॥१२॥

अबला बली अनंग अति, गो गंजन औतार ।
रज्जब रज बल ना रह्या, हारे हत जूझार ॥१३॥

ब्रह्मा बिष्णु महेस तैं, मिहरच्यूं सेती मेल ।
तौ रज्जब तैतीस मैं, कौन तजै यहु खेल ॥१४॥

भामा मिलि भूले सबै, सुर नर नाग सु भौन ।
रज्जब अनंग असाध कौ, कहौ सु साधै कौन ॥१५॥

रज्जब मदन महंत है, मथुरा मक्के माहिं ।
ठाहर उभै अनंग बल, जत ठहरावै नाहिं ॥१६॥

कीचक रावन इन्द्र से, भस्मासुर सु बिचारि ।
जन रज्जब बीती बुरी, तकत पराई नारि ॥१७॥

रज्जब मदन भुअंग गति, जितवनि चंपे खाइ ।
मनसा बाचा करमना, नर देखौ निरताइ ॥१८॥

श्रवन नैन मुख नासिका, इन्द्री बहै अनंग ।
रज्जब जाइ सु जतन मैं, बिन बामा परसंग ॥१९॥

मदन मेर मधि नहिं रह्या, व्योम बीज जलधार ।
रज्जब अजब अनंग कौ, कौन सु जारनहार ॥२०॥

केसि केसि मघ काम कौ, सो निकसै सब संधि ।
रज्जब लहिये लहरि मैं, बप ह्वै जाइ बिगंधि ॥२१॥

मैन माग तन मैं इतै, व्योरे समझि बमेक ।
अहुठि कोड़ि इकई उभै, जन रज्जब पुनि पेक ॥२२॥

सोरठा : उड़हि जु बातहिं बात, इक आतम अरु अवनि अंस ।
फिरि आवहिं धर धात, रज्जब ल्यावहि बारि बंस ॥२३॥

साखी : रज्जब करडा काल सौं, काम सु काया माहिं ।
वह मारैगा एक दिन, यहु अहनिस छोड़ै नाहिं ॥२४॥

अरडा सबल अनंग का, ऐन अतीती माहिं ।
जन रज्जब बप बिघन बहु, या समि कोई नाहिं ॥२५॥

काम कसाई काल है, पसु प्राणी सब प्यंड ।
जन रज्जब छल की छुरी, बैरी करै बिहंड ॥२६॥

काम कसाई करम करि, बीधै तन मन प्रान ।
रज्जब मारे सुर भवन, रोपे चतुर सुजान ॥२७॥

मदन महावत देह दुपि, गृह सागर ले जाइ ।
तहां ग्राह गेहणि ग्रहै, कौन छुड़ावै आइ ॥२८॥

काम दंड नौखंड परि, प्यंड विहंडणहार ।
जन रज्जब जोख्यूं घणी, सदा कुसंगी लार ॥२९॥

काम काल किल कौं कलै, हाथि सिसम समसेर ।
रज्जब मारै मुवौं कौ, छूटण का नहि फेर ॥३०॥

काम कबंध कांटे कंवलि, करै कामना चोट ।
रज्जब उवरै कौन बिधि, जो नहि लेहै वोट ॥३१॥

तन थाके मन ना थकै, बहै बिषै की बाट ।
रज्जब भ्यासी भूत गति, देख्या दैत निराट ॥३२॥

रज्जब काया कपिथ फल, खाये कुंजर कामि ।
निकस्यूं सारी देखिये, भीतरि रीती ठामि ॥३३॥

काया कण रिप काम घुण, उभै सु उपजै माहिं ।
रज्जब रीता करि गये, उर मैं आठा नाहिं ॥३४॥

रज्जब पिसतै व्यंद तै, नाद निपट घटि जाइ ।
अंग अंग बल भंग ह्वै, नर देखौ निरताइ ॥३५॥

मदन मेर कौ खिसत ही, बप बसुधा चक चाल ।
ज्यूं रज्जब राजा पड्या, परजा कौन हवाल ॥३६॥

सकल मेदनी मदन बसि, रोके घटि पटि प्रान ।
जन रज्जब आड़ा अनंग, आगै लहै न जान ॥३७॥

सकल मेदनी मदन बस, दह दिसि काम कपाट ।
बंदीखाने व्यंद कै, रज्जब लहै न बाट ॥३८॥

रज्जब मारे काम के, बिसरे आतम राम ।
कौन प्रानपति कौ मिलै, रोकि रही बिच बाम ॥३९॥

एकै सांकुल सुकल की, चौरासी का बंध ।
मनषा कौ माया मदन, पड्या दुबागा फंध ॥४०॥

काम कामना कै बसि कलजुग, नर देखौ निरताइ ।
रज्जब उभै सु आथऊ, आतम ब्रह्म समाइ ॥४१॥

काम कामना कामरू, प्राण पलटणै ठौर ।
रज्जब अज्जब जाइगह, करै और ते और ॥४२॥

सकति सरूपी सरपणी, जग जातिग जणि खाइ ।
इन आगैं उबरै सोइ, जो अगम अगोचर जाइ ॥४३॥

आठ पहेर आडा रहै, काम राम बिचि आइ ।
जन रज्जब कोइ कोढ़ मैं, सुकल स्यंघ चिढ़ि जाइ ॥४४॥

सुकल स्यंघ तन कूप मैं, काटे कुलिस न होइ ।
रज्जब मरहि सु धरम धर, पुन्नि न कीजै सोइ ॥४५॥

राम काम मेले भर्जाहि, इंद्रादिक सु अनेक ।
रज्जब कंद्रिप दर्प दलि, हरि सुमिरै सो येक ॥४६॥

रज्जब अनंग अतीत अड़, जति जूवती जगि जंग ।
और लड़ाई लघु सबै, यहु दीरघ रण रंग ॥४७॥

मैन मदन सा जुद्ध नित, जोगेसुर का काम ।
रज्जब इस मारे बिना, कह्या न जाई राम ॥४८॥

त्रियाचरित चित ना चलै, लगन न पंचौ बान ।
रज्जब रहता सिद्ध सों, जति जोगेसुर जान ॥४९॥

और लड़ाई लघु सबै, यहु दीरघ जुध काम ।
रज्जब मारै मदन कौ, सो बलवंत बरियाम ॥५०॥

काम लहरि जब ऊपजै, तब देही दौ देइ ।
कोइ बुझावै जापि जल, नांव नीर सौ मेइ ॥५१॥

आकरषण अरु बसिकरण, उदिमादिक द्रव सोष ।
रज्जब लागै मदन सर, सो नर नारी मोष ॥५२॥

रज्जब मारै मदन सर, नागे नारी नाह ।
ओट चोट लागै नहीं, जहिं तनि सील सनाह ॥५३॥

मदनि भुवंगमि सब डसै, नारी अरु भरतार ।
रज्जब रहसी एक कौ, जो राख्या करतार ॥५४॥

रज्जब सांकल सुकल के, बांध्या सब संसार ।
मनसा बाचा करमना, बिरला छूटणहार ॥५५॥

रज्जब सांकल सुकल की, बांध्या जंगम जंत ।
थावरि थिर धरती जड़े, नमो निरंजन मंत ॥५६॥

दीरज बिधु बप व्योम बसि, प्यंड ब्रह्म उजास ।
रज्जब सुंदरि सूर तलि, तन त्रिभुवन तम बास ॥५७॥

रज्जब सलिता सुकलि की, मीन बहे मन जाहिं ।
उदधिर अंतक खार मैं, मिलत मरै ता माहिं ॥५८॥

सुकल दूध थोहरि सही, देही दहूं सु डारि ।
जन रज्जब मन मीन मैं, काल कीर पुलि मारि ॥५९॥

सोरठा : मदन मीन सम जान, रज्जब उदिध अज्ञान मधि ।
जत जहाज जहि भान, कैसे होइ सु काज सिधि ॥६०॥

साखी : काम लहरि बहु ऊपजै, तब राम लहरि का नास ।
नहीं बूंद बालिक उदै, तहि भलपण क्या आस ॥६१॥

इंद्री का अंग

श्रवनौ सदा कुरंग मत, नैनौ नितै पतंग ।
रसना रस कौ मीन मन, सघन स्वाद कै संग ॥१॥

भंवर भाव मिलि नासिका, आठौ पहर अभंग
इंद्री अहनिसि गज मतै, जामै काम अनंग
जन रज्जब जिव क्यूं रहै, इन पंचनि परसंग ॥२॥

खोटे संगी पंच हैं, सदा जीव के पास ।
जन रज्जब जोख्यूं घणी, बहु बिधि करै बिनास ॥३॥

पंच पसाड़ै पड़ि गये, काक कामनी माहिं ।
रज्जब बींधे व्याधि मैं, क्योंही निकसै नाहिं ॥४॥

जब पंचौ पावन मतै, तब ऊजल उर आब ।
रज्जब पंचै पंच दिस, तबहीं काम खराब ॥५॥

गुण गयंद गजराज घड़ि, पड़े भाव दह आइ ।
जन रज्जब गुण ऊढ़ि करि, जल मैला ह्वै जाइ ॥६॥

जब लग गरजै देह गुण, तब लग भगति न होइ ।
रज्जब राम न पाइये, कोटि करै जे कोइ ॥७॥

रज्जब मन पंचौ पिसण, लूटै देही देस ।
इन बलिवंतौ पास छुड़ावै, बलिवंत प्राण नरेस ॥८॥

पंच पचीसौ त्रिगुण मन, अजाजील से माहिं ।
सैतानौ के देस मैं, साधू निपजै नाहिं ॥९॥

मन संभूत सैतान अजाजिल, द्वै दूंदर बैठे दिल माहिं ।
रज्जब बाहि रही यूं रीती, सुमिरन सुकृत उपजै नाहिं ॥१०॥

दैत दिसावर देह निज, जीव जमपुरी बास ।
रज्जब रहिये कौन बिधि, जीवण झूठी आस ॥११॥

राह केत छेदे छिके, पै बेला हाजिर होत ।
त्यूं रज्जब डरता रही, इंद्री दैत सु गोत ॥१२॥

पंचौ के घर प्राणिया, पडचा ठगौ मैं आइ ।
रज्जब रासिब कर लिया, सु निज घर जीवन जाइ ॥१३॥

गुड़ धरती महुवा गगन, बेर जड़ी बिचि बाइ ।
जन रज्जब द्वै तेज मिलि, मद रूपी ह्वै जाइ ॥१४॥

पंच तत्त बिगते बिमल, मिलते मद सनमान ।
जन रज्जब रस पान करि, घटि घटि माते प्रान ॥१५॥

इंद्री परसन जीव रस, नास बास चखि रंग ।
रज्जब श्रवनौ सबद सुन, ब्रिषै पंच बप भंग ॥१६॥

चहुं इंद्री के चार गुन, जिभ्या दोइ सुभाव ।
रज्जब खैबे कौं खुसी, अर बकिबे का चाव ॥१७॥

रज्जब इंद्री दोइ गुण, रसना लक्षिण बीस
गंध द्रुगंध सु नासिका, पचरंग नैनौ दीस
सपत सुरहु श्रवना सुनहिं, ये पूरे छत्तीस ॥१८॥

सांच सबद रसना कहै, स्वाद बाद बसि नाहिं ।
तौ रज्जब सुणि चतुर गुण, क्यूं चालै मति माहिं ॥१९॥

जल ज्वाला जिभ्या रहै, सुख दुख सबद सु माहिं ।
रज्जब रस बिष रसन मधि, बक्त्र सु बाहर नाहिं ॥२०॥

बिष अमृत अरु असत सति, रज्जब रसना माहिं ।
नरग सरग जिभ्या जड़ी, बाहरि दीसै नाहिं ॥२१॥

श्रवन नैन मुख नासिका, साटि बणावनहार ।
रज्जब पीछै पंचमा, प्राण प्यंड ब्योहार ॥२२॥

रज्जब चहुं मौन्यूं आगै खड़ी, बकती बक्त्र मझार ।
दूती दस दरबार की, तापरि कहा करार ॥२३॥

रज्जब रसना साटणी, करै पंच की साटि ।
पर बेचत आपण बिकी, बैठि स्वाद की पाटि ॥२४॥

रज्जब रसना रीति यहु, स्वाद बाद मैं पाव ।
तहि समये अंतक असध, करै आतमा घाव ॥२५॥

जन रज्जब जम जीव बिचि, जिभ्या दूती जाणि ।
स्वाद बाद मैं पैठि करि, मीच बणावै आणि ॥२६॥

रज्जब रसना तूतरू, पंच झाड़ का मूल ।
या सीच्यूं सारे सिचै, जुदे जुदे फल फूल ॥२७॥

रज्जब बालक बंस लग, बसि घसि पाड़ैहि आगि ।
पान पेंड बनराइ सब, जलहि सु ज्वाला लागि ॥२८॥

इंद्रिउ करि आतम बलै, पंच प्रपंच न भूल ।
रज्जब बंस बिलोकिये, डालौं जाल्या मूल ॥२९॥

सील समुंद न ठाहरै, इंद्री पंच अगस्त ।
रज्जब रीता स्यंध सो, जहां परै दस हस्त ॥३०॥

रज्जब लहुडे बहु बुरे, देखि बड़हु घर घाल ।
लघु टीडयू दीरघ डस्या, किया सुकाल दुकाल ॥३१॥

रज्जब घड़ जीतै सदा, लघु दीरघ न बसेख ।
पेखौ पनिग पपीलकौ, परतषि खाया देख ॥३२॥

देखौ जिव जगदीस समि, सो गुण इंद्री खाहिं ।
रज्जब हारया देखतौं, येक अनेकौ माहिं ॥३३॥

सीह गोस सिसनहु हत्या, स्यंध आतमा येक ।
चणा चुकावै कौन बिधि, ताते रवे अनेक ॥३४॥

दीवक ग्रासै दार कौं, घुण काष्ट कौ खाहिं ।
यो इंद्रयू आतम गिली, समझि देखि मन माहिं ॥३५॥

एक अनेकहु सो डरहिं, मन बच क्रम सु बिचारि ।
कोमल क्वैलहुं नै किया, बज्र सार बिधि बारि ॥३६॥

तन मन पंचौ पिसण परि, प्राण एकये ज्ञात ।
रज्जब क्यूं करि मारिये, क्यूं रस आवै बात ॥३७॥

इंद्रियू बसि आतम भई, मिट्या महातम आघ ।
नाहर त्योड़ा निरखिये, बकर्यूं बांध्या बाघ ॥३८॥

रज्जब राम रिसाइ करि, दिया पेट तलि प्रान ।
वोदरि बणि आतम भई, लहै न बाहरि जान ॥३९॥

रज्जब भागै कौन दिसि, करै कहां कौ सैल ।
जहां जाइ तहं संग ही, पेट पड्या है गैल ॥४०॥

प्राणी परलै पेट तलि, अहनिसि जाकी चीति ।
जन रज्जब जिव यूं बिमुखि, हरि सौं करै न प्रीति ॥४१॥

असु आतम ऊपर चढ़या, अरि वोदर असवार ।
नचावै त्यूं नाचिये, रज्जब फेर न सार ॥४२॥

रज्जब पिसण न पेट समि, मन बच क्रम कहि सांच ।
अषजषाइ अनकी करै, बहुत नचावै नांच ॥४३॥

प्यंड धरै सो पेट तलि, सुर नर पिरथी प्राण ।
रज्जब कीये कैद सब, फिरी उदर की आण ॥४४॥

पिसण न कोई पेट समि, अरि न उदर सौ और ।
चौरासी चेरे भये, चाहि चूण की ठौर ॥४५॥

अरि नहिं ऊदर सारिखा, पिसण न पेट समान ।
जाकारणि अनरथ करै, घटि घटि आतम जान ॥४६॥

काया तरबर जीभ जड़, पोष्यूं बधै कुरूष ।
जन रज्जब सोष्यूं सुखी, ज्यूं त्यूं मारै भूष ॥४७॥

जे जिभ्या की बंध दे, तौ सब गुण बंधे माहिं ।
जन रज्जब जिभ्या खुल्यूं, सारे गुण खुलि जाहिं ॥४८॥

रज्जब बिरचै चहुनतैं, दे दस द्वार निपीठि ।
रसना लागी राम रस, तौ आतम की ईठि ॥४९॥

पाचौ इंद्री पंडवे, देह द्रौपदी जानि ।
ये रज्जब तौ ऊधरै, जे गलै हिमालय ज्ञानि ॥५०॥

इंद्री मारै इंद्र से, देव तीन तैतीस ।
जो साधू साधै इसहिं, सो सबही कै सीस ॥५१॥

रज्जब पावक पंच की, प्यंड प्रान कौ दोष ।
अदग सु काया कुंभनी, आतम अनक न पोष ॥५२॥

पंचौ के घर मैं रहै, चलै पंच कै ज्ञान ।
सो रज्जब क्यूं परहरै, पंच्यूं थाप्या थान ॥५३॥

प्रथमि पंचतन के तये, मन की मानै नाहिं ।
रज्जब थापी पंच की, सोउ थपै जग माहिं ।।५४।।

अरि अनंत आतम कनै, जोध बड़े जिव माहिं ।
सो रज्जब छूटै नहीं, तौ घर छोड़े कछु नाहिं ।।५५।।

सकल कुसंगी काख मैं, क्या छोड़ै घर बारि ।
रज्जब जीव जीवै नहीं, माहैं मारन हारि ।।५६।।

रज्जब बंटा भाव का, गुण औगुण सु खिलार ।
ये कहि जीत्यूं सुरग ह्वै, एकहु नरक बिहार ।।५७।।

मन पंचौ दस द्वार छै, नौ सत बीती बात ।
मुध पड़े ते हारिये, सनमुख जीते जात ।।५८।।

पंच तत्त समि मित्र न बैरी, प्रीतम पिसण न और ।
रज्जब ये सनमुखि मुख, देखै दून्यूं ठौर ।।५९।।

रहति का अंग

रहता गुर गोव्यंद है, बहता सिष संसारि ।
रज्जब बोलै आदियूं, तामैं फेर सारि ।।१।।

रज्जब रहता संत जन, अति गति महंगा होइ ।
ईष पान द्रष्टान्त को, चंदन की दिसि जोइ ।।२।।

रज्जब रहती धात को, बहती पूजै आइ ।
आदि अंत मधि मांड मैं, नर देखौ निरताइ ।।३।।

मोर पंख मस्तगि धरचा, जु अधिकारी सुर भौन ।
तौ रज्जब जग जगत मैं, कहसि न बंदै कौन ।।४।।

ब्रह्मा बिष्नु महेस मिलि, जतियहिं बंदै बीर ।
रज्जब रहता जगत गुर, घनि घनि सिद्ध सरीर ।।५।।

रज्जब बपि बैरी बहुत, तामैं मदन महंत ।
मारै सेन सेनाधिपति, सो आतम अरि हंत ।।६।।

रहत बड़ी संसार मैं, जे रहि देखै कोइ ।
रहतैं रहतैं रज्जबा, रहतै सरिषा होइ ।।७।।

रज्जब रहते पुरिष का, सेवग सब संसार ।
जहां जाइ तहं जगत गुर, मिहमा अनन्त अपार ।।८।।

मन बच टीका रहति कौं, सब बहते नर देहिं ।
रज्जब रंध्र जती जुगल, जग मस्तग परि लेहिं ॥९॥

निरखि निसाचर सिर धरैं, सुक्र जती कौ जाहिं ।
रज्जब रहता पुरिष दिसि, पग प्रगटत कलि काहिं ॥१०॥

रज्जब जिव आया जगत मैं, इंद्री सौदे काज ।
सो संघारि सुमिरण करै, महां संत सिरताज ॥११॥

रज्जब पूजा रहत की, तीन लोक तेतीस ।
मनसा बाचा करमना, जती जगत कै सीस ॥१२॥

रहता गुर गोव्यंद समि, जे देख्या निरताइ ।
रज्जब सुरही सील मैं, कहै कन्ह सो गाइ ॥१३॥

कामधेनु कामै रहित, और सबै पसु पन्ह ।
पै एकै गुण गोव्यंद तहिं, नांव धराया कन्ह ॥१४॥

फल फूल बिवरजित बावना, रहति रही तन छाइ ।
रज्जब जत परमल परस, बेधि गई बनराइ ॥१५॥

तन तांबा कंचन भया, पाबै पारै मेल ।
रज्जब अजब रसाइणी, देखौ अदभुत खेल ॥१६॥

पारा मारहिं प्यंड महिं, सोई बेत्वा बैद ।
रज्जब हद्द हकीम ह्वै, काम करै जे कैद ॥१७॥

ईसफ कौ औलोकिये, इंद्रचू पसरचा नाहिं ।
तौ महलौ मैं मारग हुआ, जे धरम रह्या दिल माहिं ॥१८॥

गन्दी गये सु गन्दा हूजै, गंदी गहे सु देव ।
जन रज्जब जल बूंद का, बिरला जाणै भेव ॥१९॥

पाणी राखि रहै ज्यूं पाणी, आबहु उतरियूं उतरै आब ।
जन रज्जब जत जोव जुगत यहु, उभै ठौर का लह्या जु आब ॥२०॥

साधू मंहगे साध जलि, नाही तौ कछु नाहिं ।
जन रज्जब ज्यूं सकल नग, महगे पाणी माहिं ॥२१॥

रहते बहते फेर बहु, बिरला बूझै कोइ ।
ज्यूं रज्जब पाछे अपछ, ये येकै मेलि न होइ ॥२२॥

रज्जब रहता पूजिये, जत में जोति अस्थान ।
बहते कौ बंदै न कोइ, अवलोकौ जगनान ॥२३॥

सक्ति सुन्दरी सिरि रह्या, जती जवाहिर नीर ।
रज्जब रामा चूसि ले, दाड्यू दाणौ बीर ॥२४॥

रहता दीपक रतन का, नारी नाग न मंद ।
बिषै बाइ जो ना बुझै, कलि अजरावर कंध ॥२५॥

कुलिस कमठ गैंडे कठिन, सावर सील सुमंत ।
बामा बान न लागई, सो रज्जब जत रंत ॥२६॥

रज्जब रहति अचाहि के, सेव सबिती सु गुलाम ।
मनसा बाचा करमना, सुन्दरि करै सलाम ॥२७॥

अहि अबला देखत बुझै, अगनि दीप आदम ।
तहं हीरा हरिजन अबुझ, नैनौ देखैं हम ॥२८॥

जुवती ज्वाला मैं पड़े, जती जवाहिर आइ ।
रज्जब राख सु ह्वै गये, मानि मोल उठि जाइ ॥२९॥

रहता कामै देव है, बहता कामै भूत ।
रज्जब उभै अनंग अग, कहैं अकल औधूत ॥३०॥

मदन भुअंग अंगार है, मौर चकोर अहार ।
अनपंखी सुन आदर, देखौ कोटि हजार ॥३१॥

तेतीस कोटि तिरियहुं बंधै, और सबै जिव जंत ।
येतहुं मैं मुकता तजी, नमो नमो निज मंत ॥३२॥

सकल कलौं ऊपरि कला, जो जिव जीतै काम ।
बाई बांधै बाम परि, सो बरियामो बरियाम ॥३३॥

जन रज्जब बहते बहुत, रहता कोई येक ।
तरणि नदी बिरले तिरहिं, बूड़नहार अनेक ॥३४॥

गुण यंद्री पर किरति तन, बैतरणी व्योहार ।
रज्जब बूड़ै जीव सब, बिरला पहुंचै पार ॥३५॥

बैतरणी सु तरंगनी, बिषै बार ता माहिं ।
रज्जब तारू त्रिभुवन, जु इहि जलि बूड़ै नाहिं ॥३६॥

रज्जब बिरचै बिषै सौं, महा बली बरियाम ।
सोई सूरा सों सुभट, जो कलियेह नहिं काम ॥३७॥

बामा बप बाई दई, सोई बाई बंधि ।
रज्जब रहता जगत गुर, कलि अजरावर कंधि ॥३८॥

सकल मेदनी मारना, मदन महा बलिवंत ।
रज्जब साधै साध सौं, बलिवंतौ बलिवंत ॥३९॥

अबलाबली नवाइ सब, जोध किये बस जोइ ।
कंत कलित कलियहिं नहीं, अकल कहावै सोइ ॥४०॥

पंच तत्त मन सौं रहित, प्रकति न परसै प्रान ।
रज्जब रहता पुरष सौ, साधू संत सुजान ॥४१॥

देखौ अनल अतीत के, अंडे अर अभिलाष ।
सो धर घामनि ना परै, रज्जब जत मत भाष ॥४२॥

अगसत आतम ग्रास ही, सलिता सहित समुंद ।
रज्जब रहति बसेख है, उगलि न डालै बुंद ॥४३॥

बहुत राज रिधि छांड़ि करि, जीव गये जत बोड़ि ।
तौ रज्जब रहते बड़ी, निरखि निनाणबै कोड़ि ॥४४॥

सब सुकृत कै सकति सौं, जत मत चाहै जीव ।
यूं जतियहिं पूजै सती, रहति पियारी पीव ॥४५॥

रज्जब रंचक रहत की, बात न बरनी जाइ ।
इहां खलक खिजमति करै, आगै खुसी खुदाइ ॥४६॥

जोग माहिं जत जीव है, सब अंग और सरीर ।
जन रज्जब सब जग कहै, रहतै कौ गुर पीर ॥४७॥

तन ताजा मन मुक्ति गति, कह्या सबद सति आथि ।
जन रज्जब जग जती कै, रहति रूष पल हाथि ॥४८॥

जति जुवती ज्वाला ठलैं, जति जामण मृत नास ।
जत मैं जीवन जोर नित, जति निरदंद निवास ॥४९॥

रज्जब रहतौं काछ दृढ़, बाचा सांची होइ ।
सो बाइक बहु गुण भरचा, सुणि मानै सब कोइ ॥५०॥

कहणहार सब कहि गये, रहति बड़ी जग माहिं ।
रज्जब प्राण पसू परै, जौ जिव मानै नाहिं ॥५१॥

चंद्र सूर पाणी पवन, धरती अरु आकास ।
ये रज्जब बहते सबै, पै रहते हरि के दास ॥५२॥

रतन न रहे समुन्द मैं, मरजीवौ लिये काढ़ि ।
यूं नर नारी ना ठगे, सो साध समंद सौ बाढ़ि ॥५३॥

तनि सारे त्रिभुवन कितक, मन सारे कोइ येक ।
रज्जब राखण बप बली, धनि मन राखण येक ॥५४॥

रज्जब कोई कोटि मैं, धनि तन राखणहार ।
पै मन मारै बिषै सौं, ते बिरला संसार ॥५५॥

तारौं सुकर गरुड़ खगि, चकहु चतुर नर और ।
कत्र स्याम गोरख हणूं, जति लषमण षट ठौर ॥५६॥

सुक्र जोति पति रथ गरुड़, कत्र स्याम सुध सेत ।
गुर गोरख जति हणूं हद, लषमण खरा सु खेत ॥५७॥

सुति सूर मन भवन बिधि, तन लंकापति भूप ।
रज्जब मारै रहति सर, पान लक्षमन रूप ॥५८॥

इंद्री आभौ मैं रहै, नीर नराजी रूप ।
जन रज्जब मारे तौ, सुख सुकाल अरि भूप ॥५९॥

मेन सेन सब संग्रही, फिरी दुंग दिल आन ।
रज्जब गरज्या रहति मन, सील चढया सुलतान ॥६०॥

साधू रहै सु ज्ञान गढ़, सूरातन सारदूल ।
काम कटक लागै नहीं, इहै रहति का मूल ॥६१॥

लिया अहार अच्यंत मैं, पाछै पड़ि गई च्यंत ।
रज्जब नीद नहंग मणि, उभै न उपजै स्यंत ॥६२॥

अरिल : सारदूल अरु संत जती जग जोरि हैं,
जारैं अजर अहार अनंग अरि मोरि हैं ।
और परेव प्रान सु दारा दास रे,
रज्जब रज न पखाहिं बिषै बसि बास रे ।
गै ग्रासै त्रासै मदन सारदूलि बलिवंत,
त्यूं रज्जब सु अहार ले सु कल संघारै संत ॥६३॥

साखी : जन रज्जब रबि ससि पले, डांडी लग नभ नास ।
जिभ्या जोती बाट व्यंद, और नांव निज दास ॥६४॥

ज्यों नैनौ आंधा नीर बिन, त्यूं उर अंध तजि काम ।
रज्जब घोर अंधार मैं, कदे न सूझै राम ॥६५॥

काया सौं काया मिलै, सुकल सगाई सीर ।
रज्जब मेला ब्रह्म जिव, बीज बिबरजित बीर ॥६६॥

रज्जब रहति बिषै महैं, आसंघि सकै न जंत ।
रचना मेटै राम की, तब उपजै जत मंत ॥६७॥

भावी भानी भूत नै, जब जिव त्याग्यो भोग ।
तौ रज्जब सुणि रमा सौं, जो राउर जति जोग ॥६८॥

काची आज्ञा मेटि करि, पाकी सो लै लीन ।
रज्जब स्याणा साधू सो, पाका प्राण प्रबीन ॥६९॥

आज्ञाकारी बंधि येहि, आज्ञा भंगी मुकत ।
रज्जब रज तजि छाणतौं, समझ्या सांई मत ॥७०॥

प्यंड प्राण नारी पुरिष, जगपति राखे जोड़ि ।
सोइ हुकम हति हरि मिले, निरखि निनाणौ कोड़ि ॥७१॥

जतन का अंग

जन रज्जब राखे बिना, नांव न राख्या जाइ ।
जैसे दीपक जतन बिन, बिसवा बीस बुझाइ ॥१॥

रज्जब भोडल भौन मध, दीप नांव ठहराइ ।
जतन बिना जोख्यूं घणी, जोति जाप बुझि जाइ ॥२॥

जतन बिना जोख्यूं घणी, बोहित बिघन अनंत ।
ज्यूं रज्जब राखे बिना, उदधि न उतरै संत ॥३॥

ज्यूं चाकी चौड़ै धरच्यूं, सब पीस्या उड़ि जाइ ।
त्यूं रज्जब सुणि जतन बिन, कहौ सुकृत को खाइ ॥४॥

करनी करि काठे हुआ, रहणी रहता होइ ।
जन रज्जब सुणि जतन बिन, बहुत गये धन खोइ ॥५॥

रज्जब रतनहु काज तन, करै जौहरी प्राण ।
बारूंबार न कर चढ़ैं, मनि बच क्रम करि मान ॥६॥

कनक कटोरैं बाहिरा, रहै न बाघणि षीर ।
त्यूं रज्जब साधू सबद, राखै घटि गंभीर ॥७॥

साधू सबद कपूर है, जुगति जतन ठहराहिं ।
रे रज्जब राखे बिना, उभै अंग उड़ि जाहिं ॥८॥

स्वादि बूंद राखै सुकृत, साध सबद यूं राखि ।
रज्जब निपजहिं मुक्ति मन, सब समझूं की साखि ॥९॥

देही अरु दरियाव का, पाणी परसै नाहिं ।
तौ मन मोती नीपजै, सुरति सीप कै माहिं ॥१०॥

रे रज्जब आधान कै, अबला चलै जतन ।
तौ सुत स्यावति नीपजै, आदम अजब रतन ॥११॥

रंचक रंचक रिद्धि करि, राजा भरहिं भंडार ।
रज्जब बूंदहिं बूंद मिलि, होत समंद अपार ॥१२॥

अरिल : रज्जब जोड़्या पवन जुड़ै खजानौ, नीर रहै तुछ तेणि नड़ौ ।
सबदहिं सबद साध वड़ कहिये, ज्यूं बूंदहिं बूंद समंद बड़ौ ॥१३॥

सहकाम निहकाम काम का अंग

सहकामी सौंधै सदा, निहकामी निरमूल ।
जन रज्जब पाये परखि, समझे साधू बोल ॥१॥

सहकामी संकट सदा, निहकामी निरबंध ।
रज्जब आसा नास ह्वै, अमर अनासा कंध ॥२॥

आसा उलझी आसिरै, निरआसा निरधार ।
रज्जब वह रामति रली, वह रमिता की लार ॥३॥

सहकामी संसार बसि, गुड़ी रूप उनहार ।
जन रज्जब निहकाम कै, आभे का औतार ॥४॥

सहकामी दीपक दसा, पाये ते लघु जास ।
रज्जब हीरा संत जन, सहज सदा परगास ॥५॥

सहकामी फल ले फिरैं, मिलै न सांई माहिं ।
रज्जब रीझै राम बिन, सो सेवग कहुं नाहिं ॥६॥

चौरासी लख जीव की, चरण सरण तलि चाहि ।
रज्जब अधर अकाम रुख, ऊंची अगम अचाहि ॥७॥

तब लग चेरा लछि का, चाहि तलै ह्वै चित ।
रज्जब रही गुलाम गति, होत अचाही नित ॥८॥

चौपई : संतोष सु साहिब लौंडा लोभ, जैसे थे तैसी कहि सोभ ।
सांच कहत मानहु मति रोस, दुवा देव भावै दिन दिन कोस ॥९॥

तमै कनीज कचेरी चाहिं, उभै नांव लौंडी है आहिं ।
सबै जीव बांदी के बांदा, रज्जब कहत न राख्या छांदा ॥१०॥

साखी : आसा बंदन आतमा, मुकति निरासा नित ।
रज्जब कही बिचारि करि, सोधिर साधू मत ॥११॥

सहकामी कंचन किया, तिनकौं जब तब फेर ।
निहकामी पलटै नहीं, साखी सोवन मेर ॥१२॥

कामी क्वैलौं की कला, बुझ्यूं बुझी सो नाहिं ।
रज्जब अबला आगि मिलि, एकमेक हो जाहिं ॥१३॥

दुरमति दारू से भरे, बप सु बान बिधि माहिं ।
रज्जब त्रिगुनी जरे बिन, निहचल उभै सु नाहिं ॥१४॥

चौपई : मुक्ति निरासा बंधन आस, घर बन माहिं कहीं करि बास ।
एक ज्ञान घरि एक अज्ञान, रज्जब समझे सुख दुख थान ॥१५॥

साखी : रज्जब खुलै न व्योम बंधि, मही न मुकता होइ ।
पाताल सुपासी ना कटै, आसा बसि सब कोइ ॥१६॥

सकल प्रान स्वारथ बसि, उलझे आसा फंद ।
रज्जब रट जट काटि क्रम, मुक्ता सोई छ्छंद ॥१७॥

काम कंद पसरै नहीं, सुरति सुंदरी भूल ।
जन रज्जब रंकार रत, सो आतमा अमूल ॥१८॥

एकम नारत एक सौं, काटि कामना कंद ।
उर अंजन उलझै नहीं, वह आतमा अबंध ॥१९॥

उर औरै आसा नहीं, मिलै न माया मन ।
रज्जब मुकता मांड मैं, सुलझा साधू जन ॥२०॥

ब्रह्म भजै माया तजे, मन माहै निहकाम ।
जन रज्जब ता संत सौं, परतषि रीझै राम ॥२१॥

निहकामी सेवा करै, ज्यूं धरती आकास ।
चंद सूर पाणी पवन, त्यूं रज्जब निज दास ॥२२॥

नारायन जांचै नहीं, सुरपति मांगै कब ।
रज्जब राते इस मतै, निरिहाई सो सब ॥२३॥

रज्जब रिद्धि सिद्धि ना रुचै, जा जिव मैं जगदीस ।
निरिहाई निहकाम सौं, मन बचि बिसवा बीस ॥२४॥

चौपई : ह्वै फकीर अरु मांगै नाहिं, गृह रहित रहै गृह माहिं ।
तिन समानि नाहीं संसारा, मन बच करम सु कीन बिचारा ॥२५॥

साखी : रज्जब कांटा चाहि का, बिस रूपी सु बिसैल ।
सौझ चुभ्या चित चरनि मैं, रही सु गोव्यंद गैल ॥२६॥

बंदा गंदा होत है, जब मांगै कछु और ।
चरन छुडाया चाहिनै, किया आपना चोर ॥२७॥

परवरति निरवरति का अंग

रज्जब बसुधा व्योम बिचि, बीज बृच्छ बिस्तार ।
त्यूं परवरति निरवरति मधि, आतम वौ ओंकार ॥१॥

कौन दसा फूलै फलै, कौन दसा निरधार ।
रज्जब जन कन गाह हूं, कहि दिस करै बिचार ॥२॥

एक बृच्छ ऊपर फलै, एक फूल धर माहिं ।
एक दहूं दिसि सुफल हैं, एक उभै दिसि नाहिं ॥३॥

सत जत सोधी साध मत, चतुर दसा चहुं आंखि ।
रज्जब सुफल सु लीजिये, निरफल निखर सु नाखि ॥४॥

सुकृत फल परवरति मधि, निरवरति नांव निरधार ।
सत जत कौ यहु आसिरा, रज्जब समझि बिचार ॥५॥

सुकृत फल परवरति मैं, निरवरति नांव निराट ।
नर नारायन मुखि चढ़े, आये एकहि बाट ॥६॥

सिव तरवर छाया सकति, जुगल महातम जान ।
रज्जब जानी पंखि जनि, फल पावैं किस थान ॥७॥

धरणि धरे सौं बित्त ले, तरु नरु धरहिं अकास ।
सो परमारथ में पड़ै, जन रज्जब सुणि दास ॥८॥

परवरति धोरा रेत का, निरवरति है गज गीर ।
मन जल कहि मग मेलिये, ब्रह्म बिड़ै जाइ नीर ॥९॥

निरवरति परवरति द्वै कथा, औ ओंकार सबद ।
निरगुणी निरगुण आदरी, सरगुण करी सु रद ॥१०॥

चौपई : बटक बोलतौं द्वै द्वै चाल, स्वारथ जड़ परमारथ डाल ।
इहि दिसि निरफल वहि फल फूल, नीचे ऊंचे एकै मूल ॥११॥

साखी : सांच झूठ द्वै चरन हैं, जीव चलै इन मग ।
इकटंग्यूं की और है, जहां न दूजा पग ॥१२॥

पाप पुन्नि निरनै का अंग

पाप पुन्नि का मूल है, तामै फेर न सार ।
धरम करम करि ऊपजै, रज्जब समझि बिचार ॥१॥

जे जड़ पैठै जमी मै, अंकुर जाइ आकास ।
त्यूं पाप पुन्नि का मूल है, सुनहु बमेकी दास ॥२॥

प्रथमि पाप के पेड़ परि, स्वारथ सुकृत डाल ।
रज्जब साषा तौ रहैं, किये पेड़ प्रतिपाल ॥३॥

जड़ सींची तरुवर बधैं, पुन्नि पुष्टि त्यूं पापि ।
रज्जब कही बिचारि करि, बिकट बणाई बापि ॥४॥

कुकृत करि सुकृत सबै, आदि अंति मधि होइ ।
जन रज्जब जगि देखिये, जे करि जाणै कोइ ॥५॥

प्राण हते सेवा सकति, पंव हते सिव सेव ।
पूजे जाइ न पाप बिन, रज्जब देई देव ॥६॥

एक पाप पर लै गये, एक पाप पर सिद्धि ।
रज्जब समझिर कीजिये, पाप पुन्नि की बिधि ॥७॥

एक करमि करम ऊपजै, एक करमिहि करम जाइ ।
रज्जब करमहि करम कौ, नर देखौ निरताइ ॥८॥

रज्जब आरंभि अघ चढ़ै, आरंभि ही अघि जाहिं ।
तौ आरंभि का फेर है, समझि देखि मन माहिं ॥९॥

सुकृत बोड़ी लौह की, सुकृत छीणी तासि ।
एक कृति करम उदै ह्वै, एक कृति क्रम नासि ॥१०॥

आरंभ सबही निरदई, तिन करि सुकृत होइ ।
यूं चलतौं सीझे सबै, काज न बिनस्या कोइ ॥११॥

खच्चर बीछण केलि ग्रभ, पाप पुन्नि परगास ।
रज्जब निपजै चतुर फल, मूल महातम नास ॥१२॥

पाप करत पातिग चढ़ै, पुनि प्रगटति घटि जाहिं ।
रज्जब मैले कूप फणि, तहि निरमल जल न्हाहिं ॥१३॥

चौरी की तब चौर है, धरम करम ह्वै साध ।
भम्व फिरत भावी फिरी, तिनौ मुकत फल लाध ॥१४॥

कुकृत करि सुकृत करै, तौ कुकृत लागै नाहिं ।
चौरौ छूटै पुन्नि बलि, समझि देखि मन माहिं ॥१५॥

गुन गोबिन्दर देवरिष, सेवा सबै दयाल ।
पूजा करि पापी तिरे, सबौ करी प्रतिपाल ॥१६॥

सुकृत सेवा चोर ठग, पापी तिरहि अपार ।
ज्यूं बूड़चूं बूड़े नहीं, नांव काठ कै भार ॥१७॥

रज्जब पाप पषाण समि, पुन्नि काठ की नाव ।
जग जल तिरिये बैठि कहि, तिहि प्राणी चढ़ि जाव ॥१८॥

करहि जीव कृत पेट कौ, लावहि पर उपगार ।
तौ रज्जब सीझै सही, तामै फेर न सार ॥१९॥

मात पिता मैले मिले, सुत्त निपज्या बिधि साध ।
कुकृत मैं कीरति भई, रज्जब खेल अगाध ॥२०॥

यंद्र अवनि अपराध बिन, प्यंड पड़े ह्वै पाप ।
परि उनकी बिषै सु बंदगी, जग जीवन जड़ जाप ॥२१॥

झूठ सांच निरनै का अंग

झूठि भोमि है षारछा, सत्य कण ऊगै नाहिं ।
उभै ठौर निरफल सदा, समझि देखि मन माहिं ॥१॥

सांच झूठ जोड़ा सदा, ज्यूं तरवर संगि छांह ।
एक सुफल एक अफल है, समझे समंझौ मांह ॥२॥

बप बाइक मनसे सदा, झूठ रहै तिहुं ठौर ।
तिनका बासा नरक मैं, अस्थल नाहीं और ॥३॥

झूठ रहै यौ सांच कन, ज्यूं तिमर दीप तलि आइ ।
रज्जब बुझतौ जोति कौ, अंधियारा भरि जाइ ॥४॥

झूठ मरै सुणि सांच मैं, सांच मरै सुणि झूठ ।
रज्जब ज्यूं थी त्यूं कही, रजू होइ भावै रूठि ॥५॥

जब लग प्राणी प्यंड मैं, कण कूकस मधि होइ ।
झूठ सांच दो मिलि चलै, तहां न दीसै दोइ ॥६॥

झूठौ सांच समानि है, समये सम सरि होइ ।
जन रज्जब इस पेच कौ, बूझै बिरला कोइ ॥७॥

तन मन आतम झूठ थे, लगे सांच कौ जाइ ।
सो रज्जब सांचे भये, नर देखौ निरताइ ॥८॥

सांच आतम झूठ तन, लागिर झूठी होइ ।
रज्जब कही बिचार करि, देखत है सब कोइ ॥९॥

झूठ बोलिये धरम हित, सो मिलै सांच क्यूं जाइ ।
यहु रज्जब अज्जब कही, नर देखौ निरताइ ॥१०॥

झूठ पाप का मूल है, समये मित्थ्या सांच ।
मारु महम्मद की सरणि, क्या बोलै सो बांच ॥११॥

रज्जब राख्या मारतहुं, झूठ बोलि करि प्राण ।
सो मित्थ्या मानी सबौ, सांई सहित सुजाण ॥१२॥

करणी बिना ज्ञान का अंग

दीपक ज्ञान बताइ दे, जोत सुकृत तन माहिं ।
रज्जब पकड़ै प्राण उठि, दीवा पकड़ै माहिं ॥१॥

दीपक दून्यूं एकसा, चोर साह चित नाहिं ।
तैसे रज्जब ज्ञान गति, मन प्राणी कै माहिं ॥२॥

हीरा हरसी तिमर कौ, पर सीत हर्‌या नहिं जाइ ।
त्यूं रज्जब दीपक ज्ञान का, जे देख्या निरताइ ॥३॥

रज्जब दीपक ज्ञान का, तिमर हरै दे नेत ।
पर भजन बिना भाजै नहीं, इंद्री अरि दिल खेत ॥४॥

जे आतम उर अंध गति, ज्ञान दीप कर धारि ।
रज्जब पड़सी कूप मैं, दीप न सकई टारि ॥५॥

रजनी माया मोह की, इंद्री आभे माहिं ।
रज्जब रती न सूझई, ज्ञान दृष्टि कछु नाहिं ॥६॥

ज्ञान दीप नहिं दूरि ह्वै, तिमर प्यंड ब्रह्मंड ।
जब जग मिलहि न राम रबि, जिनकी जोति प्रचंड ॥७॥

रज्जब प्राण पपीलका, ज्ञान पंख परगास ।
वह न मिलै अबिगति कौं, वह न जाइ आकास ॥८॥

रज्जब जोबन भादवा, इंद्री आभे माहिं ।
विषै बारि बरिषा बिपुल, ज्ञान भान दुरि जाहिं ॥९॥

रज्जब रैनि अचेत मत, बन मन जरि नहिं जाइ ।
भान ज्ञान ऊगत दहै, उलू इंद्रिय बाइ ॥१०॥

यों इंद्री आभे ऊन बन, ज्ञान उन्हालै होइ ।
तौ रामा रोली चढ़ै, रज्जब साख न कोइ ॥११॥

चौपई : आभे इंद्री रैनि अचेत, सूझै नाहिं सबनि कै नेत ।
भान ज्ञान आभे न अधार, आंखि मूंदि कीया अंधियार ॥१२॥

ज्ञान बिना करणी का अंग

करणी करै बिचार बिन, तबै बंधै ता माहिं ।
रज्जब उलझि अज्ञान मैं, कबहूं सुलझै नाहिं ॥१॥

भगति भेद बिन कछु नहीं, ज्यूं सुपिनै बरडाइ ।
रज्जब रस नहिं पाइये, पढ़्या रैनि दिन गाइ ॥२॥

नांवहिं भजै बिचार बिन, जथा अकलि बिन राज ।
रज्जब रहै न एक पल, तबहीं होइ अकाज ॥३॥

गज गुमान बहुतै करै, जोरि न जाया जाइ ।
रज्जब बुद्धि बिचार बिन, बेड़ी खुलै न पाइ ॥४॥

करणी आंधी जोर बर, ज्ञान पांगुले नैन ।
जन रज्जब दून्यूं जुरहिं, जुदे न पावैं चैन ॥५॥

करणी कण चावल सही, ज्ञान छूति के माहिं ।
रज्जब ऊगै एकठे, जुदे जुदे सो नाहिं ॥६॥

राम बिना रीती रहति, रहति बिना त्यूं राम ।
पछ वोषदि संजोग सुख, बिजोगि बेऊ बेकाम ॥७॥

नांव बमेक का अंग

नांवहिं भजे बिचार सौं, सो भूलहि नहिं संत ।
रज्जब नांव न रूप रटि, पहुंचे प्रान अनंत ॥१॥

राम नांव निज नांव गति, खेवट ज्ञान बिचार ।
जन रज्जब दून्यूं मिलै, तबै पहूंचै पार ॥२॥

वोषदि हरि का नांव ले, पछ पंछू बसि राखि ।
रज्जब जीव निरोग ह्वै, सतगुर साधू साखि ॥३॥

वोषदि अबिगति नांव ले, पछ पंचो बसि जोग ।
रज्जब रहितौं अहि जुगति, आतम होइ निरोग ॥४॥

सब सुकृत लै ज्ञान सौं, करहु नांव सौं सीर ।
ज्यूं घृत सक्कर कणि कसौ, लाडू बांधहिं बीर ॥५॥

सकल गवें सोध्यूं बंधै, जथा अकलि मैं राग ।
त्यूं रज्जब सुकृत सबै, बिध बिचार लै लाग ॥६॥

गहरे ज्ञान समुंद मैं, चलै नांव की नाव ।
रज्जब रज लागै नहीं, मिटे तपति के ताव ॥७॥

उपजणि का अंग

रज्जब अज्जब ऊपजी, सबको करै बखाण ।
ब्रह्म भजै माया तजै, सो प्राणी परवाण ॥१॥

भाव भगति की ऊपजी, भली कहै सब कोइ ।
जन रज्जब जगपति खुसी, जनम सुफलि यूं होइ ॥२॥

उपजी आतम राम की, सो छानी क्यूं होइ ।
रज्जब दीसै सकल सिरि, प्राणी परगट जोइ ॥३॥

रज्जब उपजी आप सौं, सब ते न्यारा होइ ।
अंतरि परचै एक सौं, क्या समझावै कोइ ॥४॥

सूरहि क्या भरमाइये, सती न मानै सीख ।
रज्जब उपजणि आप सौं, भरैं बिघन दिसि दीख ॥५॥

मनिषा देही पाइ करि, लही ज्ञान गति माहिं ।
जन रज्जब जिव जाप की, तिहि दिसि यापरि नाहिं ॥६॥

जन रज्जब आतम उपजि, सिसु सक्ति तिरै नीर ।
ज्यूं बतक बच्चा मुर दिवसि, पाणी पैरै बीर ॥७॥

रज्जब देखौ मीन सुत, तिरन सिखावै कौन ।
ऐसै उपजण आप सौं, गहै ज्ञान मघ गौन ॥८॥

रज्जब अरभक आड़ि का, ताहि तिरावै कौन ।
जनमत ही जलनिधि तिरै, करै नीर परि गौन ॥९॥

ज्यूं बतक को मीन सुत, अरभख आड़ि तरंत ।
कौन सिखावै कौन कौ, जब उपजै यहु मंद ॥१०॥

अनल अंड जब उग्रहै, तब अरभख ऊंचा जाइ ।
त्यूं रज्जब उपजणि जुगत, आतम ब्रह्म समाइ ॥११॥

जा जिव मैं यहु ऊपजी, साहिब कीजै यादि ।
रज्जब रोक्या क्यूं रहै, बसुधा बकै सु बादि ॥१२॥

राम उपाई काम की, अबिहड़ अबनासी ।
जन रज्जब जिव की उपज, सब तिसकी दासी ॥१३॥

येक उपजनि इंद्र मैं, सकल उपज आधार ।
रज्जब उभै पिछाणिये, एक एक की लार ॥१४॥

एक धरे की उपजण, लीये प्रान्न अनेक ।
रज्जब उलटा एक सो, इहि उपजण कोइ येक ॥१५॥

बुरी ऊपज्यं बूड़िहै, भली ऊपजी भाग ।
रज्जब एक अनन्द मैं, दूजी दिल दुख दाग ॥१६॥

एक उपजि ऊजल करै, एक उपजि मल मूल ।
जन रज्जब उपजी उभै, उपजी देखि न भूल ॥१७॥

उपजी सूं निपजी सही, कृषि करणी दतमाल ।
उपजी आसा बंधि है, निपज्यूं सकल सुकाल ॥१८॥

अनभै मेंहदी बेत खित, उपजत बिषम उपाइ ।
पै रज्जब उपज्यूं पिछै, बेगाबेगि न जाइ ॥१९॥

गोपि पाप का अंग

मन मैं बिषिया बिलसिये, पाणी मैं पेसाब ।
रज्जब जाणै जगत गुर, जगत न बूझै ज्वाब ॥१॥

मनि चोरी च्यंता सजा, गाति गुनह तन्नि मार ।
रज्जब रचना राम की, नर सिरि नीति बिचार ॥२॥

गोपि पाप गोपिह सजा, मार होइ मनि माहिं ।
रज्जब समझै समझणां, सो सठ समझै नाहिं ॥३॥

लोक लज्जा का अंग

निगुरा नाकी कूं मरै, मति नाकी घटि जाइ ।
रज्जब नर कुंजर किये, नाक बंधी लग जाइ ॥१॥

करम अस्थानिक सब निलज, धरम अस्थानक लाज ।
जन रज्जब यहु जीव गति, क्यूं कर सीझै काज ॥२॥

लोक लाज लोई लिये, संक्या सांकल घालि ।
रज्जब तोडै प्राण पग, हरि दिसि सकै न चालि ॥३॥

सुख सौं काणै काणि कुल, उघड़े उघड़ी ठौड़ ।
जन रज्जब सब जगति का, लज्जा कीया जौड़ ॥४॥

रीते राखै लोक लज, बहती बूझै नाहिं ।
सरबस सौंपै सगहुं कौ, अरु उनकी आज्ञा माहिं ॥५॥

पति राखै परिवार की, परमेसुर पति खोइ ।
रज्जब सठ संकटि पड़े, मुकति कहां तै होइ ॥६॥

लोक लाज सूरा सती, लोक लाज दत सीस ।
जन रज्जब रोटी न देहिं, नर सुनि मति जगदीस ॥७॥

भरम धरम करि जो भले, साधू श्रवनि न धार ।
रज्जब उज्जल रैनि के, सु द्वैस न दीसै तार ॥८॥

कुल पीहर कुल सासुरौ, गुरू कीया कुलवंत ।
रज्जब अकुल न उर बस्या, अकुल न सोध्या संत ॥९॥

मनमुखी का अंग

अपणी अपणी खुसी मैं, चलै सबै कोइ चालि ।
जन रज्जब जो हरि खुसी, त्यूं कोई सकै न झालि ॥१॥

मनि मानै सौदा करै, मनि नाहीं तौ नाहिं ।
रज्जब मानै राम जी, सो कुछ नाहीं माहिं ॥२॥

षट दरसन अपणी खुसी, खेलै सब संसार ।
जन रज्जब रुचि राम की, बिरला खेलणहार ॥३॥

मन की भावडि सब चलै, चौरासी लख जीव ।
तौ रज्जब इस चाल मैं, कहु किन पाया पीव ॥४॥

मैंवासी का अंग

मैंवासा भागै नहीं, सेवा भंति सहंस ।
जन रज्जब जिव जब लगै, सौंपै नहीं श्रबंस ॥१॥

दुरमति दुंगि न ऊतरैं, तजै न बैंग्रट बन ।
मैंवासा मेटै नहीं, मरण कबूलै मन ।।२।।

चौंपई : मन मैंवासी देही दास, सेवग स्वामी गत बेसास ।
बाहरि रूपा भीतरि लोह, नर नाणै बंधै नहिं मोह ।।३।।

जरनै का अंग

सज्जन समै समानि है, आवत करैं निहाल ।
दुरजन दुर दुसकाल मैं, जत्र दीसै तब काल
मुख परि मीठा बोलणा, पसगीबति परपिष्टि ।
रज्जब दुरजन दोज की, दई न दिखाई दृष्टि ।।२।।
सरप स्यंघ अजरी कमंध, जीवत मूवौ मार ।
फंट केसरि जीमण सु जुधि, दुरजन देत विचार ।।३।।
रज्जब करगस रूप है, दुरजन की औलादि ।
पंषौ पूतौ रह गई, आदित बड़हुं सु आदि ।।४।।
सज्जन समै समानि है, आवत करैं निहाल ।
दुरजन दुर दुसकाल मैं, जत्र दीसै तब काल ।।५।।

खेचर का अंग

उस्न तेल अरु आरसी, तीनौं खरका मांस ।
रज्जब सुधरैं राख सौं, त्यूं खेचर का गांस ।।१।।
रज्जब आपै ऊंटनै, तोड़ी नीति नकेल ।
तेऊ नोक नुकतै रहै, कैब कसौटी बेल ।।२।।
सुध बुध सीले डरपि तू, ठग ठंडे सौं भागि ।
ज्यूं चूने का कांकरा, रज्जब जल मिलि आगि ।।३।।
डरपे खोटी षिमा सो, पर घर घालणहार ।
रज्जब जाहिर जुद्ध मैं, कीया सरप संघार ।।४।।
मुख मीठे जल मुकर जिम, पै ज्वाला मैं अंग ।
रज्जब कदे न कीजिये, तिन कपटच्यूं का संग ।।५।।
रज्जब दीसै सो नहीं, अणदेखी भरपूरि ।
मुकर सु सरभरि मानवी, तिनते रहिये दूरि ।।६।।

ज्यूं आरस के आम का, सब को करै बखाण ।
जन रज्जब सो अगनि है, बिरलौ बहनी जाण ॥७॥

मुख साधू मनमैं असध, परहरि कपटी मंत ।
रज्जब देखे दुपि दरस, दोइ मतहु चौदंत ॥८॥

दुरजन दिल दरपन सही, मुखि पाणी मधि आग ।
तिनका संघ न कीजिये, भोला भोंदू भाग ॥९॥

मुखि मीठे कड़वे कंवलि, दुरस दिनाई ऐन ।
रज्जब मिलि मुख मेलतौं, कहु क्या पावै चैन ॥१०॥

ऊपरि अमृत बीचि बिष, देहु दिनाई डारि ।
सो खाये खैमान ह्वै, बिरचौ बीर बिचारि ॥११॥

दुष्ट दिनाई दान है, मुखि मिसरी मैं पागि ।
यहु बिष बिष अमृत देखिये, भागि बली तौ भागि ॥१२॥

जिव मैं राइण बीज समि, जिभ्या छूत समान ।
तिनके उपर लीजिये, तजिये उर अस्थान ॥१३॥

अमित अज्ञान उर गनी, जो जातिग जणि खाय ।
रज्जब छूटै एक कौ, जो मोह मरद तजि जाय ॥१४॥

क्रोध का अंग

क्रोध काल कहिये सदा, अंतक है अहंकार ।
जन रज्जब जोरैं जुलम, पाया भेद बिचार ॥१॥

रज्जब अंतरि आतमा, अंतक है अहंकार ।
प्राणी परलय पिसणता, होत न लागै बार ॥२॥

क्रौध न डरै कलंक तैं, मारै माता बाप ।
बहण बिहरि बंधू बधै, पिसण न पेखै पाप ॥३॥

गुर सिष राजा चाकरहुं, तामस तनि तिन काल ।
रज्जब रीति न रोस मैं, कहिये क्रोध चंडाल ॥४॥

क्रोध न मानै बोध कौं, जैसे बीज सु बारि ।
रज्जब देखौ षट घटा, उभै सु एक बिचारि ॥५॥

बड़वानल सो बारिनिध, सजल घटा मधि बीज ।
त्यूं रज्जब जति जोरि है, नकरि धका धकि धीज ॥६॥

धात स्थानिक सो जल निकसै, सो उन्हा अंभ आवै ।
त्यूं रज्जब बल बीज रहति मैं, गाति वाति सु लखावै ॥७॥

जीवत मिरतग मसाण बिधि, मुवौ मानसी रोस ।
रज्जब क्रोध न बोध कोइ, भूत देव करैं दोस ॥८॥

धनवन्तरि रूप धुनि धारि है, अहि इंद्री व्योहार ।
ताखै तामस सौं डरी, बैद बिधन्सणहार ॥९॥

सोरठा : साध सबद सृक काठ, सो सीतल तापहिं हरै ।
परि घसै उभै अंग पाठ, जन रज्जब ते ऊजरै ॥१०॥

साखी : मानि महंतनि मैं रहै, क्रोध कलंकी नेम ।
ज्यूं पारस पावक बसै, जा लगि लोहा हेम ॥११॥

रज्जब साधू सेस गति, मणि मुख नांव उचार ।
सबद न महणा रंभ करि, बुधि बिधि हेत न बार ॥१२॥

गोष्ठी गोरखदत्त की, जन रज्जब जगि जोइ ।
तिनहुं चमकि चक्कर चले, तौ षिमा करैगा कोइ ॥१३॥

औतारहुं अहंकार की, हुई सबन बिच बात ।
रज्जब देखौ दसौ दिस, तौ किन छोड़ी खात ॥१४॥

रावण मारचा लषिमणि, लंक दही हणवंत ।
रज्जब उभै अनंग जिति, कहिये साधू संत ॥१५॥

जानत ज्वाला मैं रह्या, मुये मसाणहु आगि ।
जन रज्जब अति क्रौध फल, रावण तरवर लागि ॥१६॥

रज्जब पावक क्रोध की, महिमा सुणौ सु कान ।
मिल तामस ताखा हुआ, अगिनि अखंडित ठान ॥१७॥

रज्जब रागर दोस का, सकल सुरहु मधि खोटि ।
इंद्र धनुष धोखे बिना, सुरभखि दुरभखि चोटि ॥१८॥

बाइ कुडाला जल हरी, सुकाल दुकालहि चोट ।
राग दोष रबि ससि भरे, नहिं पड़दा नहिं वोट ॥१९॥

बेत्वा बावनि कै निकटि, भोला भूत बबूल ।
सोहबलि सौंधा होत है, पै गात बात गत सूल ॥२०॥

सूखे तरु सोख्यंत नर, अगनि उदै अहंकार ।
रज्जब मुखि रागछि तजि बहती बैनि निवार ॥२१॥

काया काठ सूखे उठै, गोष्टी मथतै आग ।
रज्जब सरसे ज्ञान जलि, जलै नहीं सो जाग ॥२२॥

हिंसा दोष का अंग

तेज तेज को नाखवैं, त्रिगुणी मैं जु बसेख ।
उड्ग अभ्यासैं तुंगनी, दिन दीसै नहिं देख ॥१॥

मंछ गलागल मेदनी, सबला निबलहिं खाइ ।
रज्जब यहु मंडाण मत, नर देखौ निरताइ ॥२॥

सोरठा : द्वै मुख उपजै दोष, लागे एकहिं प्यंड सौ ।
तिनहु न सुख संतोष, तौ द्वै घट क्यूं मिल चलहिं ॥३॥

साखी : उभै बक्र बिचि बैरता, काया एक कुरंड ।
तौ रज्जब क्यूं मिलि चलैं, जे दीसैं द्वै प्यंड ॥४॥

एक प्यंड माहैं रहै, पंचे पंचू बाट ।
तौ रज्जब क्यूं होइगा, द्वै घट का इक ठाट ॥५॥

पय पाणी की प्रीति कौ, बदनि न बरनी जाइ ।
पै हेरि हंस हंस्या भरे, म्यंत बिछोहे आइ ॥६॥

सातिग तामस निदान का अंग

मन मोती ज्यूं नीपजै, स्वाति सबद के पोष ।
रज्जब उदिध उपाधि मैं, मन मोती कौ दोष ॥१॥

दीन दसा दिनकर उदै, चकवे चित्त मिलाहिं ।
रज्जब रजनी रोस की, आप आपकौ जाहिं ॥२॥

बाइ बैन एकै दसा, बहि बोलत द्वै अंग ।
एकहि मिले सु घटा घटि, एकहि होइ सु भंग ॥३॥

सातिग रूपी साध है, तहां राजसी दास ।
त्यूं रज्जब रबि ऊकरै, सदा सु ससिहर बास ॥४॥

तामस रूप मिल्या मन फाटै, सातिग फाटा ही मिलि जाइ ।
काजी छाछ दूध कौ जैसे, जन रज्जब देखौ निरताइ ॥५॥

दुख मैं दोइ न ठाहरै, घर सुख सीतल माहिं ।
रज्जब रहै न ताप तप, मन पारा उड़ि जाहिं ॥६॥

दुष्ट बचन अरु दोणिद तप, मन तन त्यूं जरि जाहिं ।
रज्जब सबद सु सरद ससि, सब ठाहर सु सिराहिं ॥७॥

रज्जब कुवचन काल है, सुसबदहु सुसबहुं सुकाल ।
वहै अंत कहै आतमहु, वहै प्राण प्रतिपाल ॥८॥

मुखि ठाहर आवै सबै, रज्जब समझौ बीर ।
पारा उतरै ठंढि परि, त्यूंही ताकि सरीर ॥९॥

सूरिज सोखै सिष्टि कौं, जे माथे ह्वै न मयंक ।
ज्यूं ईस सीस ससि राखतौं, तब समटी बिष धंक ॥१०॥

जरणा का अंग

रज्जब साध अगाध सौं, सबद जरै यूं माहिं ।
ज्यूं पावक झल सुन्नि मैं, पैठी निकसै नाहिं ॥१॥

ताते सीले सबद सब, मिले सुन्नि के माहिं ।
जन रज्जब गंभीर गति, सुखी दुखी सौं नाहिं ॥२॥

साधू श्रवण सु समंद गति, सबद सु सरिता जाहिं ।
जन रज्जब गंभीर गति, सोभरि फूटै नाहिं ॥३॥

रज्जब चलै न क्रोध बल, रहै षिमा जहं साधि ।
ज्यूं दामणि दरियाव परि, करसी कौन उपाधि ॥४॥

रोस रंक का क्या चलै, क्रोधौ तहां कंगाल ।
जन रज्जब जब जीव ने, जरणा जोध संभाल ॥५॥

रज्जब सबलौ सबल हैं, आकल अबल अतीति ।
अपणा बैरी मारि करि, बैठा त्रिभुवन जीति ॥६॥

बुद्धि बारि बहु उरि उदधि, तहां बैन हनि टेम ।
रज्जब रज उकटै नहीं, मनसा बाचा नेम ॥७॥

पाणी पाथर मारिये, वोछै उपजै कीच ।
गहरे गारि न ऊकटै, सैल समुंदवौं बीच ॥८॥

रोसहि रोस रसायण उपजै, कालहि काढ़ि कल्यान ।
परणा जड़ी चाखि जगि जीवनि, रज्जब जान सुजान ॥९॥

जरणा जारै जगत कौं, षिमा खलक कौ खाइ ।
सातिग सुख दे संगतै, नर देखौ निरताइ ॥१०॥

बामा बिप्र सु व्याधि सौं, षिमा करी खल जानि ।
जरणा अति महंगी करी, औतारहु उर आनि ॥११॥

सुकृत सलिता सब जरैं, कोई साध समुंद ।
जन रज्जब गंभीर गति, उझेलि न डाली बुंद ॥१२॥

गुण इंद्री जारै अजर, जारै जगपति दान ।
सो रज्जब गंभीर घट, आतम राम समान ॥१३॥

अजरी जारै एक कौं, माया माखी खाइ ।
जन रज्जब जोधार जन, महिमा कही न जाइ ॥१४॥

रज्जब उतरै मंत्र बिष, सीत अगनि सौं जाइ ।
त्यूं पूरहु पातिग कटहिं, थिरि लागहिं कहि आइ ॥१५॥

मोर चकोर खात बिष बह्नी, पेट पचत पुनि पुष्ट ।
तैसै साध असध गुन ग्रासै, दीन दलत हैं दुष्ट ॥१६॥

परम जरणा दुष्ट दातार का अंग

सहन सील सुकृत लिये, सैल सीप हृद हेत ।
रज्जब अरि उर बिहरहीं, माया मुक्ता देत ॥१॥

असम घालि उर उदिध कैं, कठिन कसौटी कीन ।
रज्जब औगुण गुण गया, रतन चौदहा दीन ॥२॥

घन सौं पारस फोड़ितौं, लोहा कंचन होत ।
बैरी परि बरंभू भये, नमो बड़हुं का गोत ॥३॥

रज्जब रई सु काठ की, दीन्ही दधि मति आणि ।
मारे परि माखण दिया, देखि भलौ की बाणि ॥४॥

पूरै प्राणी पोरिसा, परमारथ सब हेत ।
रज्जब काटे परि कृपा, बुधि बित बधि बधि देत ॥५॥

कुठार करौती सीस सिल, संदल किये सुगंध ।
बास लगाई बिधन परि, देखि बड़हु का बंध ॥६॥

माता मिह्ददी पीसतौं, करहर लावहि काल ।
ऐसे परि कैसी करी, पिसण पाणि पग लाल ॥७॥

पापी मारै पाथरहु, धरमी तरु फरु दान ।
रज्जब दुष्ट दयाल का, कहिये कहा बखान ॥८॥

उत्तिम उर अवनी सु समि, गुन किसान नहिं लेत ।
रज्जब बैरी बीज कौं, सहस गुना करि देत ॥९॥

सोरठा : पूरौ पिरथी रूप, ऊरौ दुख दे वोढ़ क्यूं ।
रज्जब खनै सु कूप, नेह नीर अधिकौ बढ़ै ॥१०॥

साखी : रज्जब कमद कपास कौं, कठिन कसौटी कोड़ि ।
दुखदातहु परि सुख श्रवहिं, रहै नहीं मुख मोड़ि ॥११॥

दुष्ट सु दत्त समाति है, रसना रूपी साध ।
औगुण ऊपरि गुण करहि, रज्जब अकलि अगाध ॥१२॥

दुखदाता दूंदर दुष्ट, साधू सुख संजोग ।
ओषदि आप उठाइ करि, रोगहि करै निरोग ॥१३॥

सब दुखदायूं सुख दिया, नहीं अन्न सम आन ।
रज्जब रीझ्या देखि करि, कहिये कहा बखान ॥१४॥

बक्त्र सु बीथी तन सहर, बाणी बक्त्र सु नीर ।
ज्ञान गंग को मिलत ही, उभै अमल ह्वै बीर ॥१५॥

बैरागर की खानि समि, बिमल प्राण बुधिवंत ।
कुदाल कसौटी खोदिये, नग अंग देहि अनन्त ॥१६॥

पारस पिसण परसत तन परसै, लगे लोह के राछ ।
रज्जब जम गुन जन भये, बदले का बरबाछ ॥१७॥

औगुण ऊपरि गुण करहि, इहै बड़ौं की रीति ।
रज्जब डारहि बीस बिसु, गये जगत सो जीति ॥१८॥

करै भलाई बुरे परि, ता समि और न कोइ ।
रज्जब रीझै राम जी, घटि घटि सुजस सु होइ ॥१९॥

परमारथ पीड़ा सहै, भले बुरहु की मीत ।
रज्जब परदुख काटही, भये बिक्रमाजीत ॥२०॥

अति उदार परदुख दवन, साहस सील अपार ।
चतुर अंग रज्जब रचे, यहु बिक्रम व्योहार ॥२१॥

बुरे बुराई ना तजै, भले भलाई माहिं ।
प्राणहु काया नै पड़ी, सु रज्जब छोड़हिं नाहिं ॥२२॥

अमृत माहै बिष नहीं, बिष मैं अमृत नाहिं ।
रज्जब कसिये कोटि बिधि, निकसै सो जो माहिं ॥२३॥

सहन सील सुकृत लिये, सांई साधू दोइ ।
रज्जब आतम औगुणी, तौ पारंगति क्यूं होइ ॥२४॥

सर्व गुन अरथी का अंग

दीन ऊरमी काम की, उपजै अरथ बमेक ।
ज्यूं नीचे ऊंचे कर चलत, डोरी मैं बल येक ॥१॥

रज्जब दुष्ट दीनता काम की, जे हरि मारग होइ ।
त्यूं बरिषा बादल मिलै, आम्हे साम्हैं जोइ ॥२॥

रज्जब प्रान पखावजी, प्यंड पखावज साज ।
द्वै दिसि नौसत मारिये, सो सेवा सुर काज ॥३॥

जिव जंत्री तन तंत्र है, पंच मोरनै लाग ।
उलटे सूधै फेरिये, हरि मेलन कौ राग ॥४॥

रज्जब त्रिगुण चलावै गीद ज्यूं, निज जन नट कै हाथ ।
भामा भौमि परै नहीं, तौ रीझै नर नाथ ॥५॥

चौपई : रोस रहेम आवहिं सु काम, जे गुनहुं गालि सुमिरै सु राम ।
ज्यूं कर द्वै दिसि खैंचै कमान, बल एकट ह्वै मधि छूट बान ॥६॥

साखी : राजस उपजै बंदगी, सातिग सेवा पोष ।
तामस तन मन मारिये, आतम पावहिं मोष ॥७॥

लागी आषिर कै अरथि, लम मात्रा सु अभंग ।
तौ रज्जब सब काम के, जे गुण निरगुण संग ॥८॥

अठार भार अमृत सबै, मधुरिष ल्यावहिं सोधि ।
तैसे सिसनि सुधामई, रज्जब पैठहिं बोधि ॥९॥

रज्जब ज्ञाता गारड़ी, इंद्री अहि बसि जास ।
देखौ जग जीवन जड़ी, दुष्ट दसन ह्वै नास ॥१०॥

अहि इंद्री निरबिष करै, दुष्ट दसन करि भंग ।
बेत्वा बादी बालकहु, बिघन न ब्यालहु संग ॥११॥

सांख्य जोग मत का अंग

जन रज्जब यहु साखि मत, जीव सीव न विभाग ।
जैसे माला सूत की, सोइ मणिया सोइ ताग ॥१॥

सांख्य जोग तौहीद मैं, एकै जाणचा जाइ ।
त्यूं रज्जब इकटंग अंग, दूजा नहीं पाइ ॥२॥

बिभिचार बरदाई का अंग

गोपी कुबरी सुकति बिभीषण, देखौ द्रौपदी चीर ।
बिभिचारी इनकी बनि आई, त्यूं आतमा सरीर ॥१॥

सरीर सौंज संसार मिलन की, बाबै दई बनाइ ।
जन रज्जब यूं आज्ञा मेटै, जीव ब्रह्म होइ जाइ ॥२॥

पट्टा डाल्या पंच नै, बिरचे स्वारथ चाह ।
सो चाकर क्यूं राखिये, पति साहों पति साह ॥३॥

घर बर छांड्या घण दिहा, कुमही मीत संभालि ।
हूं बलिहारी सापुरस, अब अपणै घरि घालि ॥४॥

बिमुख भये संसार तैं, सांचा सांई जाणि ।
चरणि लगावौ बाप जी, कीजै दोइ न हाणि ॥५॥

रज्जब स्त्री आतमा, प्यंड पुरिष भरतार ।
उधरी माधौ म्यंत्र मिलि, जब कीया व्यभिचार ॥६॥

बिषै बंदि बसुधा सबै, नर नारी घट दोइ ।
रज्जब रजा रजानि करि, कोइ इक मुकता होइ ॥७॥

गोली गात न खाई भाई, बागा बप पहिरचा पुनि नांहि ।
रज्जब रजा रजानी प्रभु की, पंच रात जीये जप मांहि ॥८॥

प्रस्तावी का अंग

रज्जब समये बिष अमी, कुसमय अमृत बिष ।
जथा माधुरै मक्षिका, मिसरी मरता पिष ॥१॥

रज्जब सोभै समै सब, षिमा क्रोध कहु मौन ।
औसरि हांसी रोवणा, औसरि बैठक गौन ॥२॥

दरजी कबि बागा बिरद, बपि बणता सु बनाव ।
रज्जब घटि बधि ना करहि, चुहुरा ह्वै न बचाव ॥३॥

तरु नरु छाया मिहरि निज, ये ह्वै सहजि सुभाइ ।
पै रज्जब फल दल बसन, सो लहिये रुति पाइ ॥४॥

समै समंदर रतन दिये, समये इंद्र उदार ।
समै सुकति मुक्तहु फलै, समये भार अठार ॥५॥

नारायन निरजर सहित, गुर नराधपति जोइ ।
मुकतै रीझै रज्जबा, भूत कृत परिदत होइ ॥६॥

पारबती पूछ्या नहीं, महादेव मुख मौन ।
आरति बिन उघड़या नहीं, आदम अहर सु भौन ॥७॥

रज्जब हसणा रोवणा, चुप बोलणा बिचारि ।
चारचूं नग समये भले, बिन औसर सु निवारि ॥८॥

समये मीठा बोलणा, समये मीठी चुप ।
उन्हालै छाया भली, जो बसियालै धुप ॥९॥

तरवर सम त्यागी नहीं, त्रिबिधि भांति सो होइ ।
कबहूं छाया कबहुं फल, कबहूं पतझर होइ ॥१०॥

खेल का अंग

रज्जब रवाह्यूं रमणि रुचि, जोइ जुगलि जगि मेल ।
प्राण प्यंड ब्रह्मंड मधि, खलक सु खालिक खेल ॥१॥

खेलहि मेला खलक सो, खेलहि खालिक मेल ।
रज्जब रीझ्या देखि कर, बिबिधि भांति का खेल ॥२॥

गुर परसंगी का अंग

रज्जब द्वै दूंदर मिलत, उपजै बिघनर बाद ।
नर नारी संजोग सुख, बकतामुरते स्वाद ॥१॥

रज्जब राजहुं रिद्धि बल, सिधहूं के बल सिद्ध ।
साधू के बल साइयां, येई तेज त्रिब्रिद्ध ॥२॥

रज्जब जत मैं जोग सब, धरम दया अस्थान ।
नांव ठांव निरगुन रहै, मन बच क्रम करि मान ॥३॥

चतुर जबाबी का अंग

धरम सास्तर दिल दया, बैदंग अलप अहार ।
कोकसास्त्र कामणि कथा, लेखा यहु सुलझार ॥१॥

दरद बिना दरवेस क्या, पीर बिना क्या पीर ।
धरम बिना धरमी नहीं, अपढ़ न बावन बीर ॥२॥

गुर गोव्यंद साधू सबद, गुन गंजन गुन येक ।
जन रज्जब देखै सुनै, पातिग कटे अनेक ॥३॥

रज्जब नीति नराधपति, जतिहीं जत मत जाप ।
पुनि सुकृत परजा करै, सो सुख पावहिं आप ॥४॥

काया करि सुकृत करै, सबद सकल सुरझार ।
रज्जब आतम सों उभै, ब्रह्म सु तिहुं आधार ॥५॥

चौरासी आदम बड़ा, अदभू बड़ा सु अन्न ।
धन्न बड़ा धरमहि लग्या, उनमनि लागा मन्न ॥६॥

उत्तिम आदिम देह है, उत्तिम संगत साध ।
उत्तिम संगत दीजिये, उत्तिम हरि आराध ॥७॥

चारि दाग चहुं जुगनि मैं, चारि बेद की साखि ।
जारि गाड़ि परिवाह जलि, भावै छाया राखि ॥८॥

सीता कुन्ती द्रौपदी, चौथौ गौतम नारि ।
तारा सुलोचना मदोदरी, सती सु ये संसारि ॥९॥

जती भ्रष्ट जल के गये, सती सु सुकृत नास ।
रज्जब राजा नीतगत, तीन्यूं जाइ निरास ॥१०॥

तन औषदि आकार की, मन औषदि सु सबद ।
आतम औषदि नांव निज, सीखी साखी पद ॥११॥

ओंकार अबिगत नग, बप बीरज बप होइ ।
गुरू सबद निज ज्ञान है, सत जत निपजहिं दोइ ॥१२॥

प्यंड प्राण पालिक द्रसै, नीर नाज निज नांव ।
ज्ञान गुरू कौ गढ़न कौ, चतुर बस्त बलि जांव ॥१३॥

निन्दा अस्तुति का अंग

सखी न सांई सारिखा, सूम न ऐसा और ।
रज्जब देख्या निरत करि, समै सु दुरमुखि ठौर ॥१॥

रब मैं रावण मारिये, अंडौ के प्रतिपाल ।
रज्जब नाहीं राम सा, दूजा दुष्ट दयाल ॥२॥

अमर अपराध का अंग

तन तुछ जाता देखिये, रहता मन अपराध ।
रज्जब नाहीं काल बस, अघ अरि अमर अगाध ॥१॥

भोले भाव का अंग

चौपई : भोले भाव मिले भगवंत, थापि न उथपै साधू संत ।
असमहि सेवैं अबगति हेत, टोटी कहे सु रोटी देत ॥१॥

साखी : सत्र मित्र का सीर है, भोला भाव सु माहिं ।
रज्जब रंचक भेद परि, तीनि मिलै त्यूं नाहिं ॥२॥

भोले कूं भोजन मिलै, जे मुख मेलहिं रेत ।
डाहे कौं डगलौं गिलत, रज्जब राखा देत ॥३॥

भगवंत भोला भाव ले, सेव सुफल सुजाण ।
रज्जब बिचके बादि सब, खेचर खोटे प्राण ॥४॥

चोर पबारहुं नै लिये, बक बंधन सो खोलि ।
मूवा आया मुलिक फिरि, रज्जब लहणी भोलि ॥५॥

रतन माला का अंग

सतजुग साणि समानि है, ब्रह्म अगिन ले छाणि ।
रज्जब निपजै मिसरि मन, होहिं सोलहे जाणि ॥१॥

पवनहु माहे पवन सति, सुमिरण भरया समीर ।
तहि चढ़िआवहिं सबद सति, फुर मावै गुर पीर ॥२॥

लांबि का अंग

भगवंत भगति माहै सदा, सोई सदगति साध ।
रज्जब आतम राम लगि, सुमिरै अंग अगाध ॥१॥

रज्जब आतम राम सौं, सदा सु सेवक भाइ ।
मिल्या अमिल मिलता रही, यहु मत मन ठहराइ ॥२॥

दई सु देता ना थकै, लेता थकै न दास ।
रज्जब रस रसिया अमित, जुगि जुगि पूरै प्यास ॥३॥

रज्जब राम रुचै सदा, अंतरि ह्वै न अहूख ।
भगवंत भोजन भावता, मेरे भीतरि भूख ॥४॥

बेहद मंजि बेहद मतै, हद का हेत उठाइ ।
रज्जब रमिये राम सौं, अति गति लावै भाइ ॥५॥

आतम इल आरति अगिनि, मिहरि मेव घिव धार ।
जन रज्जब दोऊ अथक, जुगि जुगि जग्य अपार ॥६॥

रज्जब उदिध अगाध मैं, सलिता आतम जाहिं ।
एकमेक चलती रहै, डेरै डेरा नाहिं ॥७॥

सेवक सितिया जोति जल, मिलि गिलि एक सो होइ ।
रज्जब अज्जब रूप मैं, सेवा स्वाद सु दोइ ॥८॥

सरबंगी सांई सहित, रस रूपी रस येक ।
रज्जब सोधै पाइये, सकतिर स्वाद अनेक ॥९॥

ज्यूं दृष्टा मैं दृष्टि बहु, बुधि विद्या अरु बेद ।
त्यूं रज्जब जिव जोति मैं, एकमेक भिन भेद ॥१०॥

चौपई : बादल बिजुली सलिल समीर, निरगुण सरगुण धरै सरीर ।
सुन्नि मई सेवा कौं दूजै, यहि बिधि साधू सांई पूजै ॥११॥

साखी : हीरे हीरा बेधिये, कै प्यंड कै परकास ।
यूंही मन उनमैं मिलै, रज्जब किया बिमास ॥१२॥

नांव नाज सुमिरै बर्वाहिं, थोड़ा बहुत सु होइ ।
रज्जब साधु किसाण कै, भाव न दूजा कोइ ॥१३॥

मन माया धापै नहीं, खुदध्या बधती जाइ ।
यूंही रज्जब राम कौ, भजिये लावै भाइ ॥१४॥

सलितौं समुन्द न धापई, इंद्री त्रिपति न काम ।
तैसै भूख न भागई, रज्जब रटतौ राम ॥१५॥

अगनि न काष्ठ सौ त्रिपति, लोचन त्रिपति न रूप ।
तैसें रज्जब राम सौ, रुचि है तत्त अनूप ॥१६॥

मारू कै थलि जल परै, पै पानी प्रगट न प्यास ।
तैसें रज्जब साध कौ, राम भजन की प्यास ॥१७॥

धीरज सहज स्वाति का अंग

श्लोक : सने कंथा सने पंथा, सने सने गिर पर्वता ।
सने गुरू सने चेला, सने ज्ञान परापता ॥१॥

साखी : दादू निबहै त्यूं चलै, धीरै धीरज माहिं ।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाकै नाहिं ॥२॥

दादू सहजै सहज होइगा, जे कुछ रचिया राम ।
काहे कौ कलपै मरै, दुखी होत बेकाम ॥३॥

बेगाबेगि न पाइये, बेत्वा करौ बिमास ।
सावणहू मैं आवई, स्वाति सु चौथे मास ॥४॥

तीनि मास बरिषा बिपुल, वाणी बन परगास ।
पै मन मुक्ता जहिं नीपजैं, स्वाति सो चौथे मास ॥५॥

ब्रह्मंड प्यंड बरिषा बिपुल, पै स्वाति नौरतौ पिष्टि ।
मुक्ता मन फल समहुं के, द्रुभिष नै दीसै दृष्टि ॥६॥

नीर निरमल नभ निरमल, तिण कण सुधा सु आस ।
सिसिहूं सरबै सरद रुति, उलपति चौथे मास ॥७॥

धीरै धरम सु ऊपजै, धीरै ज्ञान बिचार ।
धीरै बंदन सब खुलै, धीरै हरि दीदार ॥८॥

निर्वारिज निपूंसिक का अंग

ब्रह्म व्योम माहै रहै, तत बेत्वा तनि तार ।
रज्जब गिरचूं न गोइ परि, कोइ न पावनहार ॥१॥

रहै न कंवला केलि मधि, सबद सुमिरि चौ माहिं ।
मन कपूर कौ दोइ घर, बिछटचूं लहिये नाहिं ॥२॥

उतरै उड्ग अकास तैं, करतैं जाइ कपूर ।
त्यूं मन तूटा ह्वै दसा, लहिये निकट न दूर ॥३॥

अंबलबेत सू आतमा, सुई सुरत तहं जाहि ।
जन रज्जब सो यूं गलहि, जो सोधे लहिये नाहिं ॥४॥

आतम टूटै राम सो, जैसे उड्ग अकास ।
तौ तिनकी आवस कहां, केतक बेर उजास ॥५॥

खालसे का अंग

देवल गुम्मट देह सब, लिखी लिखाई साखि ।
तहां पढ़े पढ़ि सीख ली, गुर क्यूं रखै सु राखि ॥१॥

अचेत आतमा अवनि गति, पड़्या बचन बित लाध ।
रज्जब पाया पारषू, किसका करै अराध ॥२॥

अपणे अपणे रंग मैं, राते माते प्राण ।
रज्जब तो मूरिख नहीं, समझे सबै सयाण ॥३॥

करि कटाछि मस्तगि धरहिं, सोई होइ अनूप ।
बारू बार सुबेन परि, तौ क्यूं न होइ रस रूप ॥४॥

चौपई : दादू दरिया रामानन्दी, दह दिसि आइ मिलैबहिं बंदी ।
गाजैं घोरै जब लगि दूरि, मिलत सुमुखि बोलैं नहिं मूरि ॥५॥

साखी : मथुरा मैं माला खुली, तिलक ऊतरे मंथ ।
रज्जब छूटै राम जन, पड़ि दादू के पंथ ॥६॥

बप बिगंध जो जीवतहुं, सो मूवहु क्यूं न गंधाइ ।
रज्जब देखौ दीप दिसि, बुझत न सूंवा जाइ ॥७॥

कुम्हार कुम्हारी मात पित, षाना मई सु षोड़ि ।
रज्जब बालक बाल बप, बस्त सके नहिं जोड़ि ॥८॥

सृक चंदन सरपहु जट्या, मनिष तहां नहिं जाइ ।
अहि सु आदमियुं ना बनै, पास गये सो खाइ ॥९॥

भगतबछल सुरही प्रभु, सुमिरियूं करै सम्भाल ।
गोधा ज्ञान सनेह गत, काटहु केसरि काल ॥१०॥

काया कुंभनी नीकसहि, नारू नाग सु और ।
येक सु चरि जुगि बाहुरहि, येकहु की नहिं ठौर ॥११॥

नींद न आवै ठौर तिहुं, बिषै बंदगी बैर ।
ज्ञानी देखौ ज्ञान करि, रज्जब कही न गैर ॥१२॥

चौपई : गुर नरेंद तैं गत नर जाहीं, तिनका सोच न उपजै माहीं ।
तरवर पत्र सीस तैं केसा, तुच तूंटू का कौन अंदेसा ॥१३॥

साखी : भार सहित भार धर हलुका, भार ऊतरचूं भारी ।
बिकट कला बिकट गति बप मैं, बेत्वा लेहु बिचारी ॥१४॥

येक जाणपण अरु चपलता, मेटी मत की लीक ।
भूख न भ्यासै भर्तृहरि, पाणि लगाई पीक ॥१५॥

बालै बूटै एक गति, परतषि देखै जोइ ।
दोइज अमावस निकट, ससि सिसु रूपी होइ ॥१६॥

चौपई : दृष्टि मुखीमन बुधि ह्वै माँहि, तौ लिखत मैं संचर नाँहि ।
चतुर बस्तु मैं बिछुरै कोइ, रज्जब पाठ सुद्ध नहिं होइ ॥१७॥

पाहुनै कीन परी पहुनाई, घर के भगत भूलि गये भाई ।
तब मेहमान करै मेहमानी, उलटी कला न जाइ बखानी ॥१८॥

साखी : अठार भार छह रुति लिये, उदै अस्त ब्योहार ।
उन्हालू स्यालू दोइ दिपै, तामै फेर न सार ॥१९॥

काया कुंभ जल सों भरे, ज्ञान तेल भर पूरि ।
मारुत बाती सबद उज्याला, अचेत तिमिर ह्वै दूरि ॥२०॥

अगनि जीवतौं जीवते, अगनि मुवौ मरि जाइ ।
दून्यूं दीपहि दुणिद सिरि, नर देखौ निरताइ ॥२१॥

देखी समै दुकाल मैं, साहिब का ह्वै दीठ ।
रज्जब सनमुख कौन सौं, कहौ काहि दे पीठ ॥२२॥

पुस्तग नामा

सन्देह सत्र सति सास्तर, आसंक्या अबिनास ।
जगतगुरू जगि जोग मत, परम तत्त परगास ॥१॥

खानि पंचमी अमर फल, आतम ब्रह्म दलाल ।
अंतक इंद्री अवनि के, प्रानहु के प्रतिपाल ॥२॥

तलब तसल्लिह तालिबा, चे गुफ्तम् औसाफ ।
रज्जब सैर समुंद है, मिसलसि खुरंद मुंसाफ ॥३॥

इति श्री रज्जब जी की साखी सम्पूर्ण समाप्त ।

रज्जब जी द्वारा रचित—

पद भाग

* राग रामगिरि *

सतगुर सौं जो चाहि बिन कीया ।
यो परि दोष न दीजिये मिलि अमृत पीया ।।टेक।।
ज्यूं ससि कै सरधा नहीं कोई कंवल बिगासै ।
मुदित कमोदनि आप सौं बांधी उस आसै ।।
ज्यूं दीपक कै दिल नहीं को पड़ै पतंगा ।
तन मन ही मैं आप सौं मोड़ै नहिं अंगा ।।
ज्यूं कंवल कोस आपै खुलै मनि मधुकर नाहीं ।
भंवर भुलाना आपु सौं बींधा यूं माहीं ।।
ज्यूं चन्दन चाहै नहीं कोई बिषधर आवै ।
जन रज्जब अहि आप सौं सो सोधिर पावै ।।१।।

प्रीति गुर गोबिन्द सौं ऐसी बिधि कीजै ।
आदि अंति मधि एक रस जुगि जुगि सुख लीजै ।।टेक।।
प्यंड प्रान न्यारे भये सो नेह न नासै ।
बेलि कली ज्यूं जाइ की टूटचूं परगासै ।।
ज्यूं हणवंत हित जत सौं जड़चा सदा सो सांचा ।
हांक सुनत नर हींज ह्वै अजहूं फुर बांचा ।।
ज्यूं दृढ़ डोरी गुण आतमा जीवत मृत पासा ।
गुरु गोबिन्द सौं सूत्र यूं सुणि रज्जब दासा ।।२।।

संतौ बाट बटाऊ माहीं, सो आपण समझै नाहीं ।
बिरला गुरमुखि पावै, सो फिरि बहुरि न आवै ।।टेक।।
मति मारग मैं गवना, तहं नाहीं तीन्यूं भवना ।
ओं ओंकार अकेला, सो आपु आपु मैं खेला ।

सेरी समझि सयाना, यहु आतम अगम पयाना ।
यूं चलि चौथे आवै, सो परमपुरिष को पावै ।
तहां पंथ पथिक पति येकै, यहि रमिबै रंग बमेकै ।
जन रज्जब रह पाई, सो आतण करै न भाई ॥३॥

संतौ बसुधा बिरिछ समाई ।
अदभुत बात कही को मानै, कौन पतीजै भाई ॥टेक॥
मूल डाल सौं अधिर अंघ्रपा, बेलि कहां बिलंबावै ।
तरुवर हुआ बीज नहिं दीख्या, बिहंग न बैठन पावै ॥
रहता रूख फूल फल नाहीं, त्रिभुवन गूंद प्रकासै ।
दीरघ द्रुम दीखैगा कोई, छाया तिमिर न भासै ॥
अकलि बिरछ कंटिक क्रम नाहीं, पारजात पद पूरा ।
जन रज्जब सौं जुगि जुगि निहचल, सबकी जीवनि मूरा ॥४॥

संतौ अदभुत खेल अगाधा ।
सो खेलै कोई येक साधा ॥टेक॥
जो गगन गालि को सोधै, सो पंचनि को परमोधै ।
जो बाइ बैल गहि लादै, सो बित बापि न दादै ।
जो तेज माहिं तृण राखै, सो महिमा कौन सु भाखै ।
जो पाणी मैं घृत काढै, सो मति सबतैं बाढै ।
धर पृथ्वी पुणि दूजै, सी रज्जब रामति बूझै ॥५॥

अब मोहिं नाचत राखहु नाथ ।
चारि पहर चार्‍यू जुग नाच्यो, पर परबसि पर हाथ ॥टेक॥
तृष्णा ताल पखावज पाखंड, स्वर स्वारथ सब बाजे ।
क्यूं नर कुमति उपंगई राखा, रागर दोष निवाजे ॥
नाना नेग पहरि पग नूपुर, चंचल चरण चलाये ।
चौरासी घट भेष रेख सोई, सब संगीत खिलाये ॥
फोरी फिर्‍यो मान मन मानी, हुरमी हेत सु डारी ।
सरग भूमि पाताल परे पग, भीख न लही भिखारी ॥
रज्जब रम्यो रजा की करम गति, कौल न कुंजन पावै लाल ।
रीझै राम दरस दत दीजै, पूरौ तौ दीजै प्रतिपाल ॥६॥

बुधि बेली लो, बेली लो, निपजै भाग सु भेली लो ।
बाइक बीज भाव भ्वै बाह्या, अंकुर आदि उदैली लो ।।टेक।।
जल सोइ जुगति माहिला माली, निरति किया निन्दणैली लो ।
पान प्रकास ताक तत्त तोरू, रूख रटण बिलबैली लो ।।
अहि निसि बेलि बधै बिधि लागी, बाइ न बिषै बहैली लो ।
फ़हम फूल फूली फल कारन, मन मधुकर मिलि आवहिं लो ।।
बाड़ी बिरह बिघन कछु नाहीं, मृग माहै नहिं आवहिं लो ।
बागवान पुनि रहै बधिक बिधि, बैरी बेलि न भावहिं लो ।।
फल हरि दरस लता तहिं लागै, रखवारे व्योसावहिं लो ।
जन रज्जब जुगि जुगि सों जीवै, ऐन अमरफल खावहिं लो ।।७।।

सूषिम सेव सरीर मैं कोई गुरमुखि जाणै ।
मन मिरतग तन पैठि करि, पति पूजा ठाणै ।।टेक।।
पच्छिम पाट कहु को रचै, सति सेवा साजै ।
बिबिध भांति बहु बंदगी, बिचि ब्रह्म बिराजै ।।
सांच सील जल सापड़ै, सुचि संजम सांचा ।
ब्रत उनमनि अहि निसा, मन मनसा बांचा ।।
पाती पंच चढ़ाइ लै, सत सुकृत सुगंधा ।
धूप ध्यान ग्यानै दिया, यहु आरंभ धंधा ।।
घंटा घट रट राम की, ताली तत ताला ।
बाणी बेण मृदंग मत, सब सबद रसाला ।।
सरबस ले आगे धरै, भजि भोग सो लागै ।
जुगि जुगि जगपति आरती, जिव जूठणि मांगै ।।
दीन लीन सांचै मतै, डर के डंडौता ।
भयभीत भयानक भगत सों, निरगुण न्यौता ।।
सारी सेव सरीर मैं, सब करै बखाना ।
रज्जब राम रजाइ यूं, जन जोति समाना ।।८।।

संतौ मनमोहन मिलि नावै ।
ज्यूं बिलै बघूला आंधी माहीं, निकसि न भरमण पावै ।।टेक।।
ज्यूं बृछ बीज परसि बपु बहनी, बसुधा माहिं समावै ।
उदै अंकूर कौन बिधि ताको, कैसे अंग दिखावै ।।

स्वाति बूंद जो सीप समानी, सो फिरि गगन न आवै ।
अलि चलि कंवल केतगी बींधै, आन पहुप नहिं भावै ॥
अम्मलबेत सुई जो पैठी, सो बागे न सिवावै ।
रज्जब रहैं राम मैं मन यूं, समरथ ठौर सुभावै ॥९॥

यूं मन मिरतग ह्वै रहै तौ मारै नाहीं ।
माया मैं न्यारा रहै, जिव जगपति माहीं ॥टेक॥
ज्यूं मुरदा अरथी पड्या, बरतणि बहु बाणी ।
औरौं की भांवरि भई, उन कछू न जाणी ॥
निहकामी न्यारा रहै, प्रतिमा परि खेलै ।
बरतणि बरतै बिगति सों, उर आप न मेलै ॥
बाजीगर की पूतली, बाजीगर हाथैं ।
रज्जब राखै त्यूं रहै, नहीं औगुण साथैं ॥१०॥

बधिक बमेकी प्रान है, सति साध सिकारी ।
ग्यान बान करि कंवल मैं, धुनि धनुहीं धारी ॥टेक॥
आखेट बृत्ति आतम लई, दिलि दया सु लोपी ।
बन बसुधा नौखंड परि, बुधि बावरि रोपी ॥
बैठे मूल सु मारनै, पारधि परि प्राना ।
पंच पचीसौ मृगला, लाये लुकि बाना ॥
अंगि अहेड़ी आकरे, उर अवनि चढ़ाई ।
मारे स्यावज सोधि सब, कुलि करम कसाई ॥
ऐसे दुष्ट सु ऊधरैं, तन मन गुन द्रोही ।
जन रज्जब कहे राम जी सों पावै मोही ॥११॥

रे प्राणी यहु खेलि सिकार रे ।
बन बप ढूंढ़ि स्यावजहु मार रे ॥टेक॥
मन मृग मारि तीस तहिं लार रे, चेतनि चीता त्याहिं परि डार रे ।
गुण गण हंसती अनल अहार रे, तृष्णा तीतर बाज बिचार रे ॥
केसरि काम अधिक अधिकार रे, सारदूल सुमिरन मुखि जार रे ।
या आयुध सुणि समझि खिलार रे, जन रज्जब सुनि हो उठि पार रे ॥१२॥

मो मन फटक हरी जस हीरा, सनमुख सोई रंगा ।
जन रज्जब पड़दै सो पलकै, काढ़ै कपटी अंगा ॥२०॥

राम राइ अइया मन अपराधी ।
जोइ जोइ बात जीव छिटकावै, सोई उलटि उणि नाधी ॥टेक॥
जासों कहौं पलक मति परसै, सोइ फेरि इन खाधी ।
निस दिन निकट रहत नित निरखत, मन की घात न लाधी ॥
येऊ मन जोध जीव परि बैठा, पंचबाण सर साधी ।
भावै नांहि सबद सुणि तेरा, काटि रह्या यूं कांधी ॥
छल बल बहुत ग्यान गुन उर मै, और महा मन स्वादी ।
रज्जब कहै राम सुणि चुगणी, कृपा करै मन बांधी ॥२१॥

राम राइ महा कठिन यहु माया ।
जिनि मोहिं सकल जग खाया ॥टेक॥
इन माया ब्रह्मा से मोहे, संकर सा अटकाया ।
महा बली सिध साधिक मारे, तिनका मान गिराया ॥
इन माया षट दरसनि खाये, बातनि जग बौराया ।
छल बल सहित चतुर जन चकित, तिनका कछु न बसाया ॥
मारे बहुत नांव सूं न्यारे, जिनि यासों मन लाया ।
रज्जब मुकति भये माया सों, जोगहिं राम छुड़ाया ॥२२॥

राम राइ राखि लेउ जन तेरा, कोई नांहिं बुधि बल मेरा ।
मन मैमंत फिरै माया संगि, घरि आवै नहिं घेरा ॥टेक॥
पंच प्रपंच प्राण महिं पैठे, घर ही मैं घर घेरा ।
निस दिन निमष होत नहिं न्यारे, देइ रहे दिल डेरा ॥
नाहरि बिघन बहुत बिधि बैठे, परकीरति बिच पेरा ।
सुनहु पुकार सुरति कर सांई, दुख दीरघ बहुतेरा ॥
ये सब मार मिहरि सौं भाजै, तब जाइ होइ निबेरा ।
आन उपाय वोत नहिं जिव कौ, जन रज्जब सब हेरा ॥२३॥

भगति भावै राम भगति भावै, होहु कृपाल तौ प्रान पावै ।
स्वर्ग पाताल मधि लोक मांगौं नहीं, और दत दान नहिं अंग आवै ॥टेक॥
भक्ति भौ हरन भगवान बसि भगति कै, सिद्धि नव निधि रिधि भक्ति माहीं ।
सो देउ दातार करतार करुनामई, दास कै आस उर और नाहीं ॥

भक्ति मैं मुक्ति पदारथ सब सहित, भगति भगवन्त नहिं भेद भीना ।
परम उदार पसाव सो कीजिये, दान दीरघ पावै सु दीना ।।
भक्ति भंडार भीतरि भरी सकल निधि, तुझ बिना कौन यहु मौज होई ।
रज्जब रंक कौं रहम करि दीजिये, और ऐसा न दातार कोई ।।२४।।

संतौ स्वांग मारिये लेखै ।
झूठा रोस करै मति कोई, काम उजड़ता देखै ।।टेक।।
दाढ़ी मूंछ कसे करि कोने, कामिणि रूप बनावै ।
नारी ह्वै नारी कौं भुगतै, यूं अपराध कमावै ।।
काया रासि राखिबे कारण, गुर सहनांदे छाये ।
सो देखत दस बार लुटाई, सकल सजाइ समाये ।।
काठौं चढ़ि माटी के लीये, कहु किन बिषै कमाई ।
मिरतग स्वांग मांडि इन भगतौं, रज्जब भगति समाई ।।२५।।

संतौ स्वांग सरै का काम ।
सौंज सुफल सांचै मधि चलता निस्तारै निज नाम ।।टेक।।
सील रहै संजमि कै प्राणी, भगति किये यौं पारा ।
ग्यान गहे तन मन कौं मोरे, बानै क्या उपमारा ।।
दीन हुये द्वन्दरमति नासै, सेवा सब सुखदाई ।
प्रेम प्रीति परमेस्वर मानै, भेषौं में क्या भाई ।।
छाजन भोजन सिरज्या लहिये, बिन रचना कछु नाहीं ।
तौ ये बरन करै किस ऊपरि, क्या है दरसन माहीं ।।
नांवै तिरै तिरगुणी माया, नाइ निरंजन पावै ।
जन रज्जब जिव नांव बिहूना, झूठा झूठ बनावै ।।२६।।

संतौ स्वांग करै क्या जाणि ।
नांव बिना नाहीं निस्तारा, और सकल बिधि हाणि ।।टेक।।
स्यो बिरंचि मुनि नांव दिढ़ावै, नांवैं नारद सेषा ।
उनकी समझ नाइ मन लागा, कौन करै भरम भेषा ।।
बेद कुरान दिढ़ावैं नांवैं, नांवैं साध सयाना ।
सोई नांव निरताय लिया निज, कहां करै कहु बाना ।।
नांवै लिये सरै सब कारिज, नाइ निरंजन रीझै ।
जन रज्जब जिव नांव बिहूना, कोटि स्वांग नहीं सीझै ।।२७।।

रे मन सूर संत क्यूं भाजै ।
मुहमिल भयूं मरण जे डरपै, तौ दुहूं पांवड़ा लाजै ॥टेक॥
उलटयूं उजह कहौ क्यूं पावै, जब लग दलहिं न भाजै ।
मरतौं मानि जीवतौं जाहिर, जनम मरण अघ मांजै ॥
जे सेवग संकट सों डरपै, तवै स्वांग कहां छाजै ।
देइ उठाय फौज मैं आपै, तब सब बीर बिराजै ॥
अरि दल जीति सकल सिर ऊपरि, सूर ससि तारे गाजै ।
रज्जब रोपि रह्यू रण माहैं, नांव नगारा बाजै ॥१३॥

रे मन सूर संक क्यूं मानै ।
मरणे माहि एक पग ऊभा, जीवन जुगति न जानै ॥टेक॥
तन मन जाका ताको सौंपै, सोच पोच नहिं आनै ।
छिन छिन होइ जाइ हरि आगे, तौ भी फेरि न बानै ॥
जैसे सती मरै पति पीछे, जलतौं जीवन जानै ।
तिल में त्यागि देइ जग सारा, पुरिष नेह पहिचानै ॥
नख सख सकल सौंज सिर सहता, हरि कारिज परिवानै ।
जन रज्जब जगपति सोइ पावै, उर अंतरि यूं ठानै ॥१४॥

रे मन सूर समै क्यूं भागै ।
ताथे मरण मांडि हरि आगै ॥टेक॥
सूरा सिर परि खेले, तब राव रंक करि पेले ।
जब दूजा दिलि नाहीं, तब डाकि पड़्या दल माहीं ।
चिरकालहु कोई जीवे, तब सार सुधा रस पीवे ।
ते चाकर चित माहीं, जे चोट मुंहैं मुंहिं खाहीं ।
जब उतरि उतारै जूझे, तब व्यापक सबहीं बूझे ।
जब सूरा सिर डारै, तब रज्जब राम सुधारै ॥१५॥

रे मन ऐसे राम कहीजै ।
मरण डरै, मरि प्राण पतीजै ॥टेक॥
जैसे सती सकल तजि बोलै, निहचल राम कहै नहिं डोलै ।
जो पहलैं सिर त्यागै, सो रण संग्राम न भागै ।
मरजीवा मरि समुंद समाई, सो रज्जब नग निरखै जाई ॥१६॥

संतौ मरनै मंगल मीठा ।
सो गुरमुख बिरलै दीठा ।।टेक।।
जो प्रथम मांड ते मूये, सो राम कहण कूं हूंये ।
दूजै देह जु त्यागी, सो आतम रामहिं लागी ।
तीजे आतम भूलै, तिनि सुरति सुपाया मूलै ।
चौथे च्यंत न कोई, तहां रज्जब येक न दोई ।।१७।।

पहले दुख पीछे सुख होई ।
ताको सहज कहै जन कोई ।।टेक।।
ज्यूं जीभहिं पैठावै पाठ, अहनिसि दुख अंतरगति गाठ ।
पढ़े पाठ पीछे सुख जाणि, सहजै पड़ै जीभ कौं बाणि ।
ज्यूं कुरंग कसणी मैं आणि, दगध्यूं तजै बाहिली बाणि ।
संकट पड़ि मृग मनिषा मेल, पीछे भया सहज का खेल ।
जैसी बिपति बाज सिर होइ, तिलि तिलि त्रास रहै मिलि सोइ ।
पहलै कठिन कसौटी खाइ, पीछे मुकता आवै जाइ ।
मन इंद्री ऐसी बिधि साधि, सबसौं तोरि नांव बिच बांधि ।
रज्जब संत असहज समाइ, पीछे मिलै सहजै कौं जाइ ।।१८।।

जीव जुदा जगदीस मैं, सो जनि जाना ।
अंतरि ही अंतर रह्या, माया मनमाना ।।टेक।।
ज्यूं आषिर परचै आंखि द्वै, पै अरथ न आवै ।
त्यूं प्राणी प्यंडहि रचे, पति परख न पावै ।।
सुन्नि सरूपी राम हैं, ओंकार सु आभा ।
चित चातृग अटके तहां, बित बूंद सु लाभा ।।
प्रान प्यंड रस पोखिया, पिया पंचू भाया ।
रज्जब कीड़ै कड़व कै, कण स्वाद न पाया ।।१९।।

संतौ मन न्यारा मत माहीं ।
साखी सबद सीख सतगुर को, पापी परसै नाहीं ।।टेक।।
साधू ग्यान महा मिश्री मत, दंस खाय खट कीने ।
मीठे संगि सु मोल बिकाणे, अंति काटि सो दीने ।।
बैठा बिसन्भर मोती माणिक, मन कै सूत पिरोये ।
अरस परस अर बेगर दीसैं, प्राण प्रवीण सु रोये ।।

संतौ भेष भरम कछु नाहीं ।
छह दरसन छचाणबे पाखंड, भूले परपंच माहीं ।।टेक।।
स्वांग सलिल सम्पूरन दीसै, मृगत्रिसना मन धावै ।
नांव नीर तामैं कछु नाहीं, दौड़ि दौड़ि दुख पावै ।।
सीत कोट माहै छिपि बैठे, कहौ वोत क्या होई ।
तैसे बिधि दरसन मैं बैठे, काल न छाड़्या कोई ।।
सकल चित्र चिरमी की पावक, मन मरकट सब सेवै ।
जन रज्जब जाड़ा नहिं उतरै, उर आंधे जिव देवै ।।२८।।

दरसन सांच जु सांई दीया, आदू आप उदर मैं कीया ।
पिछला सब पाखंड पसारा, ऐसे सतगुर कहै हमारा ।।टेक।।
सुन्नति झूठ जु बाहरि काटी, कपट जनेऊ हाथैं बांटी ।
मनमुखि मुद्रा मित्थ्या सींगी, भरम भगौहा धींगाधींगी ।
कपट कला जैनहु जगि ठाटी, फाड़ि कान फोकट मुखि माटी ।
परपंच माला तिलक जुबानैं, इहां ही आइ देही परि ठानैं ।
षट दरसन खोटे कलि कीने, अलिभल आइ इलापरि लीने ।
जन रज्जब सो मानै नाहीं, पैली छाप नांहि इन माहीं ।।२९।।

संतौ आवै जाइ सु माया ।
आदि न अंति मरै नहिं जीवै, सो किनहूं नहिं जाया ।।टेक।।
लोक असंख्य भये जा माहीं, सो कहि गरभ समाया ।
बाजीगरि की बाजी ऊपरि, येउ सब जगत भुलाया ।।
सुन्नि सरूप अकल अबिनासी, पंच तत्त नहीं काया ।
औतार अपार भये आभू ज्यूं, देखत दृष्टि बिलाया ।।
ज्यूं मुख एक देखि द्वै दरपन, भोलौं दस करि गाया ।
जन रज्जब ऐसी बिधि जानै, ज्यूं था त्यूं ठहराया ।।३०।।

अवधू कपट कला एक भारी, यूं सतगुर साखि विचारी ।
षट दरसन दीरघ ठग बैठे, काल रूप व्यापारी ।।टेक।।
स्वांगी सबै स्वांग दे लीने, वै बिचि नेजा धारी ।
ऐसी सांटि भई सब ऊपरि, सौंज सिरोमणि हारी ।।
बांधि किये बस बैल बिचारे, तप तीरथ क्वेलारी ।
ऐसे धरचा काल है बैठा, लांबी पासि पसारी ।।

कुलि बांधे कृत्तिम सौं कसि कसि, मन बच करम बिचारी ।
सरग नरक अरु मोष मही परि, यूं ठगि करी ठगारी ॥
सुर नर नाथि दिये गूंठचूं तलि, पीठचूं छई सहारी ।
जन रज्जब जो इनसौ मुकते, तिन ऊपरि बलिहारी ॥३१॥

संतौ ऐसा यहु आचारा ।
पाप अनेक करै पूजा मैं, हिरदै नहीं बिचारा ॥टेक॥
चीटी दस चौके मैं मारै, घुण दस हांडी माहीं ।
चाकी चूल्है जीव मरैं जो, सो समझै कछु नाहीं ॥
पाती फूल सदा ही तोड़ै, पूजण कौ पाषाणा ।
पचन पतंगे हूंहि आरती, हिरदे नहीं विनाणा ॥
सारे जनमि जीव संघारै, यहि खोटे षट कर्मा ।
पाप परचंड चढ़ै सिर ऊपरि, नांव कहावै धर्मा ॥
आप दुखी औरौं दुख दायिक, अंतरि चाम न जान्या ।
जन रज्जब दुख करै दृष्टि बिन, बाहर पाखंड ठान्या ॥३२॥

संतौ प्रान पषान न मानै ।
परमपुरिष बिन पाखंड सारा, तहां न आसति जानै ॥टेक॥
सलिता सैल सगे सुत बंधू, सीपै मुकति न धावै ।
सो स्वामी संपुट मैं बांधै, घरि घरि मोल बिकावै ।
जाका इष्ट अवनि नहिं छांड़ै, सेवग सुरगि न जाई ।
यामैं फेर सार कछु नाहीं, भरम न भूलौ भाई ॥
कांधै कंठि हमारै चालै, जोख्यूं पावक पाणी ।
रज्जब घड़े सुनार सिलावट, सो सकलाई जाणी ॥३३॥

संतौ कहै सुणै कछु नाहीं ।
जब लगि जीव जंजाल न छूटै, बिकल बिषै सुख माहीं ॥टेक॥
करै अनीति मगन माया मैं, कहै अगम की बाणी ।
सो बिपरीति संत नहिं मानै, झूंठि माहिली जाणी ॥
बातैं सीखि ब्रह्म ह्वै बैठा, निरभय बिषै कमावै ।
पूछ्यूं सौं परपंची प्राणी, साखि अगम की ल्यावै ॥
पद साखिन सिध साधिक दीसै, इंद्रिन है अपराधी ।
तेहि धरि नांव नहीं निज निरमल, देह दसा नहिं साधी ॥

जो कछु करै अजान अग्यानी, सोई समझि सयाना ।
जन रज्जब वासों का कहिये, देखत झोस भुलाना ॥३४॥

हेरि हेरि हरै हरी हिरदै की हरै ।
राखण की राखै प्रभु फेरण की फेरै ॥टेक॥
ताकि ताकि ताकै मनहु त्रिगुणी मैं न्यारा ।
उरझे सेती अहित भाइ सुरझे सौं प्यारा ॥
देखि देखि देखै दिल दूजे नहिं धीजै ।
मन बच करम त्रिसुध कै सोई सुणि लीजै ॥
परखि परखि परखै तहां पति पारिख पूरा ।
रज्जब रज तज काटई हरि हेरि हजूरा ॥३५॥

सुणि संसारी सीख कौं मति भूलै भाई ।
जेहि पंथ प्रीतम पाइये, तहि मारगि जाई ॥टेक॥
बिषिया सौं विगता रही, मति करै सगाई ।
मूसा मिन कौं मिल्यूं, मेल्है गटकाई ॥
सुरही स्यंघहि क्यूं बनै, सो सोधिर खाई ।
अइया मूढ़ अग्यान मन, घरि बैठा जाई ॥
जो जंजाल जीव सौं कटचा, सो फेरि न लाई ।
जन रज्जब गत ऊपरे, बित भूल न जाई ॥३६॥

करि न कुसंगति आत्मा, गुर ज्ञान बिचारी ।
सकल बुरे का मूल है, सुणि सीख सु सारी ॥टेक॥
चोर जार बटमार ह्वै, बहु करै बुराई ।
संगति करि संकट सबै, नीकै निरताई ॥
काया संगति कपट मैं, गन मनसा मैली ।
प्राण पाप पूरण करै, पंचनि की सैली ॥
माया मिलि मैले सबै, सब लोक मंझारा ।
जन रज्जब रज ऊतरे, रटि राम पियारा ॥३७॥

हिंदू तुरक सुणौ रे भाई,काहूं से मति होहु दुखदाई ।
बीजा होइ उधारा देणा, किया न काढ़ैं जाई ॥टेक॥
मारहि जीव सोच बिन सौदा, मनमुखि मास गरासै ।
लेखा लियूं लखौगे प्राणी, यहु न टलैगी हांसै ॥

पग की पीड़ असम करि उन्हा, दुख उपरि सुलगाया ।
संत पुकार सुणी सांई ने, हजरत दांत तुड़ाया ।।
जौ की रोटी भाजी सेती, मुहमद उमर गुजारी ।
आगै ज्वाब जबह का मांगै, यूं करि फिर धनधारी ।।
रिखि रहते जंगलि जाइ बैठे, कड़े कड़े फल खाये ।
जटा अगनि जुगती सौं टाली, जीवन जगति सताये ।।
हुये हमालि औलिया साधू, बेअजार सुखदाई ।
जन रज्जब उनकी छाया मैं, मिहरि दया तिनि आई ।।२८।।

म्हारौ मंदिर सूनौ राम बिन, बिरहनि नींद न आवै रे ।
परउपगारी ना मिलै कोई, गोबिन्द आनि मिलावै रे ।।टेक।।
चेती बिरह निच्यंत न भागै, अबिनासी नहिं पावै रे ।
इहि बियोग जागै निस वासर, बिरहा बहुत सतावै रे ।।
बिरह बिजोग बिरहिनी बेधी, घर बन कछु न सुहावै रे ।
दह दिसि देखि भयो चित चक्रित, कौण दसा दरसावै रे ।।
ऐसा सोच पड़्या मन माहीं, समझि समझि धूधावै रे ।
बिरह बाण घट अंतरि लागे, घाइल ज्यूं घूमावै रे ।।
बिरह लाइ तन पंजर छीना, पीव को कौन सुनावै रे ।
जन रज्जब जगदीस मिले बिन, पल पल बज्र बिहावै रे ।।२९।।

औधू सुरही सकति संभाली ।
दह दिस बिघन बाघ बसुधा मैं, मीच मया करि टाली ।।टेक।।
नौखंड माहिं फिरै चरनोही, सात समुंद जलयाना ।
तब लग गाय गरज नहिं सारै, समझी ग्वाल सयाना ।।
स्वारथ सांझ समागम होता, आधीन उदरि अस्थाना ।
व्यापे बच्छ सु पांच पचीसौ, राग दोष सब ठाना ।।
लोह की लाठी हेत हांथि लै, चेतनि पगि रखवारी ।
ऐसे लंबा त्रासि आसि करि, कारिज सारै भारी ।।
अगम उछेरी उलटि अकासहिं, नांव नाज सु चराई ।
बाइक बच्छ छांह सुनि सीतल, संतोष सरोवर पाई ।।
कामधेनु ह्वै काम न व्यापै, दूध दरस निज थाना ।
जन रज्जब है धन्य धेनु सो, पीवे अमृत पाना ।।३०।।

काल करम बसि को नहीं, कहु काहि बताऊं ।
जे आये ते सब गये, खुर खोज न पाऊं ॥टेक॥
ब्रह्मा विष्न महेस सेस सब, मीच मझारा ।
केई चलि केई चालसी, यहु एक बिचारा ॥
चन्द सूर पाणी पवन, धरती आकासा ।
षट दरसन अरु खलक सौं, सब सुनिये बासा ॥
अंतक मुखि आकार सब, येऊ भोला नाहीं ।
जन रज्जब जगदीस भजि, जग जाते माहीं ॥४१॥

आई आंधी अकल की, अभिअंतर देसा ।
बरणि बाड़ि सब उड़ि गई, लहिये नहीं लेसा ॥टेक॥
बृच्छ बड़ाई के पड़े, रज राजस उड़ी ।
परकीरति पंखी मुये, खैमान सु खड़ी ॥
कर्मक जोड़ा उड़ि गयो, बुधि बावरि आये ।
छानि मानि सारी चली, भाये अनभाये ॥
सुमति सरीर समूह तैं, पट पड़दे मांगे ।
बादलि बिरह बिगासिये, नैनौं झर लागे ॥
अनल अनलि सू ऊलटे, उर अवनि सु धाई ।
रज्जब नेपै नांव की, आत्मा अघाई ॥४२॥

संतौ बोध बिमल बरदाई ।
जाति पांति जिव की नहिं जानै, परसत होत सहाई ॥टेक॥
दृग अनंत जिमि देखि दिवाकर, तम तारौ खुलि जाई ।
ऐसे ज्ञान अज्ञान उठावत, उर आंखिन रुसनाई ॥
इंद्र अकलि धरि ऊपरि बरषत, घटि बधि करत न घाई ।
नीर न्यान कै गति मति येकै, बरु तरु तन निरताई ॥
दिव दृष्टी नाहीं तहां दुबिधा, पंच तत्त परि पाई ।
रज्जब रही तहां लघु दीरघ, समता सुरति समाई ॥४३॥

सुनि बातैं बेद की, चखि चौंधि समानै ।
दह दिसि दौड़ें दूरि क्यूं, उर अठ सठि ठानै ॥टेक॥
भागौत कहै भगवंत दस, भोले सुधि भूले ।
सुरग नरक मधि लोक मैं, मत मानस डूले ॥

श्रगुण नृगुण यक येक है, नित निगम बतावै ।
यूं आतम उरझी उरै, सो सुलझि न आवै ॥
संसा सबल न भागई, ब्याकरण बिचारा ।
जन रज्जब सतगुर बिना, जिव होय न पारा ॥४४॥

* राग माली गौड़ा *

जालिम दिवान तेरा, कोइ नाहिं बदी नेरा ।
सब रोज गुनहगार बंदा, क्या हवाल मेरा ॥टेक॥
चंदी जाहिर गुनाह, नेकी नहीं नेरा ।
नांव नेस दिगरपेस, पुर दरोग देरा ॥
तालिब खुद ख्वाब करद, गाफिल बहुतेरा ।
बदी बिसियार फैल, होइ क्यूं निवेरा ॥
तरसम पुरसीस दोस, जाहिर जब घेरा ।
रज्जब बिचार कर पुकार, और रह न सेरा ॥१॥

सतगुर घर जारा हो, सतगुर घर जारा ।
प्राण पोख धाम दोष, अगनि के अहारा ॥टेक॥
ज्वाला जल माहिं डारि, सब समुद्र चारा ।
मीन मगन अगन मद्धि, अचिरज ब्योहारा ॥
दौ प्रसंग दगध होत, धरनि नीर सारा ।
है है हैरान है, हरी अठार भारा ॥
रज्जब यहु कहैं काहि, कौन सुननहारा ।
देखै कोई कोटि मधि, अगनि का पसारा ॥२॥

रामहि नाम मन लीनौ ।
गुर परसाद परम रस पूरण, प्राण पियूष सु पीनौ ॥टेक॥
सहज समाधि सुरति दरसावत, भाव भगति करि भीनौ ।
अंतरि गगन मगन मन मातौ, यहु आरंभ उर कीनौ ॥
आदि अंकूर गुरमुखी गरज्यो, कठिन करम कित छीनौ ।
रज्जब राम रटैं निसि बासर, आप उचित दत दीनौ ॥३॥

* राग गौड़ी *

गुर परसाद अगम गति पावै ।
पलटै जीव ब्रह्म कै आवै ।।टेक।।

हरि भृङ्गी गुर डंक समान, मारत तन मैं भये जु प्रान ।
चंदन राम गुरू गति बास, भेदै भेद नहीं बन दास ।
ब्रह्म सूर गुण किरणि प्रकास, रज्जब जिव जल परस अकास ।।१।।

गुरमुखि सिख गोव्यंद मैं जाई ।
ऐसे धरचा अधर ह्वै भाई ।।टेक।।

सूरिज सता बढ़ै नभि नीर, त्यू सबद समाइ सुन्नि मैं सीर ।
दीप जोति मिल तेल अकास, त्यूं बचन प्रसंग निरंतरि बास ।
धोम गगन मति मारुत माग, त्यूं जिव सिव ह्वै उनमनि लाग ।
सबद सुरति संग आतम थान, त्यूं प्रान ज्ञान गलि पद निर्वान ।
यूं अंजन पलटि निरंजन होइ, रज्जब बास बाइ संग जोइ ।।२।।

इह परदे, परदे सब जाहिं ।
गुर परसाद परम पद माहिं ।।टेक।।

चाहु चषिन चसमा गुर दीजै, तब दयाल का दरसन कीजै ।
सबद सलिल मा नैन निहारै, इहि लषिण रावन मन मारै ।
अधिक अहार अजीरण होई, बूटी बैन जरै पुनि सोई ।
रज्जब जलणि जले की जाइ, ज्ञान अगनि जैसे कैं आइ ।।३।।

ऐसा सतगुर सोधिर कीजै ।
जाकी संगति जुगि जुगि जीजै ।।टेक।।

करम धरम धोखा धुर तोड़ै, तीरथ बरत रहति ल्यो जोड़ै ।
निहकामी नौखंड नियारा, सुमिरण बरत निबाहनहारा ।
निरपष रहै राम गुण गावै, भरम भेष पष प्रीति न लावै ।
दस अवतार देखि दिल ताखै, अबिनासी उर अंतरि राखै ।
नख सख नांव निरंजन राता, प्रेम मगन पीवै रस माता ।
बेसासी बसि पंच पराना, सब बिधि समरथ साधु सुजाना ।
जन रज्जब ता गुर का सरना, जीव का मेटै जामण मरना ।।४।।

आज्ञाकारी बोलैं साध ।
आदि अंकूर गुरमुखी गरजैं, सुनि सुनि सबद करैं अपराध ।।टेक।।
साही संत चढ़े गिर गोव्यंद, पिरथी हेत पुकारै ।
साजि भजौ भैभंजन, सांई त्यूं जमदूत न मारै ।।
बाणी बंब बजावै बंधू, जागणहार जगाये ।
जो सुणि चलै सो पार पहूंचै, रहतौं बित्त लुटाये ।।
परमपुरिष परब्रह्म बुलाये, नर निस्तारनहारा ।
जन रज्जब जड़ सुणि करि सूतै, चेत्या चेतनिहारा ।।५।।

राम रस पीजिये रे, पीये सब सुख होइ ।
पीवत ही पातिग कटै, सब संतन दिसि जोइ ।।टेक।।
निस दिन सुमिरण कीजिये, तन मन प्राण समोइ ।
जनम सुफल सांई मिलै, जिव जपि साधौ दोइ ।।
सकल पतित पावन किये, जे लागे लै लोइ ।
अति ऊजल अघ उतरै, कलिबिष राले धोइ ।।
इहि रस रसिया सब सुखो, दुखी न सुनिये कोइ ।
जन ज्रजब रस पीजिये, संतउ पीया सोइ ।।६।।

संतौ मगन भया मन मेरा ।
अह निस सदा एक रस लागा, दिया दरीबै डेरा ।।टेक।।
कुल मरजाद भैंड सब भागी, बैठा भाठी नेरा ।
जाति पांति कछु समझै नाहीं, किसकूं करै परेरा ।।
रस की प्यास आस नहिं औरे, इहि मति किया बसेरा ।
ल्याब ल्याब याही ल्यो लागी, पीवैं फूल घणेरा ।।
सोरस मांग्या मिलै न काहू, सिर साटै वहु तेरा ।
जन रज्जब तन मन दे लीया, होइ धणी का चेरा ।।७।।

नांव लिवाय निरंजन स्वामी ।
अंतर मेटौ अंतरजामी ।।टेक।।
तुम सबही के हौ प्रतिपाला, तौ सुमिरण दै दीनदयाला ।
तुम कहियो मनसा के दाता, तौ मन मांगै नांव बिधाता ।
रज्जब जाचक हरि दातारा, भजन पसाव करौ करतारा ।।८।।

बिरद बिराजै वोपम लाइक ।
सेवक की सुणिये सुखदाइक ।।टेक।।
अधम उधार पतित के पावन, ऐसी सुणि लागे गुण गावन ।
करम कटा अघ मोचन स्वामी, अंतर मेटौ अंतरजामी ।
तुम ग्रब गंजन होह कि नाहीं, ये दूंदर गरजै धर माहीं ।
असरन सरन अनाथहु नाथा, तौ निरधारहु दीजै हाथा ।
दीनदयाल गरीब निवाजै, सदा सुयस की सुणिये बाजै ।
विरद तुम्हारा तुम्ह सिरि भारा, जन रज्जब की सुनहु पुकारा ।।९।।

प्रानपति आये न होइ, बिरहिन अति बेहाल ।
बिन देखे जिव जात है अब बिलम्ब न कीजै लाल ।।टेक।।
बिरहिनि व्याकुल केसवा निस दिन दुखी बिहाइ ।
जैंसे चंद कमोदनी, बिन देखे कुम्हिलाइ ।।
अति गति दुखिया दगधि ये, बिरह व्यथा तनि पीर ।
घरी पलक मैं बिनसि है, ज्यूं मछली बिन नीर ।।
पीव पीव टेरौं पिक भई, स्वाति सरूपी आव ।
सागर सरिता सब भरे, परि चात्रिग कै नहिं चाव ।।
दीन दुखी दीदार बिन, रज्जब धनि बेहाल ।
दरस दया कर दीजिये, तौ निकसै सब साल ।।१०।।

भाई रे संत जुदा जगि ऐसे ।
जैसे कंवल नीर तैं न्यारा, राम सनेही तैसे ।।टेक।।
ज्यूं दधि बिलोय माखण मधि काढ़ै, उलटि मिलै तक्र कैसे ।
तैसे साध सकल गुन न्यारा, वहु रस बनि बिचि वैसे ।।
ज्यूं पाषाण पानि नहिं परसे, कलपि गये जलि पैसे ।
त्यूं रज्जब जन माहिं निरन्तर, मणि भुजंग मुखि जैसे ।।११।।

यूं निरपषि निज दास कहावै ।
निरपषि नांव निरंजन गावै ।।टेक।।
भाव भगति षट दरसन न्यारी, निरपखि ज्ञान ध्यान धुनिधारी ।
सत जत सुमिरण जुदे जहांनै, प्रेम प्रीति काकै पखिपानै ।
दया धरम काकी दिसि कहिये, रज्जब खिमा गरीबी गहिये ।।१२।।

राखै राम रहै जन सोई ।
बल बैरचूं का चलै न कोई ।।टेक।।
जैसे जतनि जननि नैं कीया, सूंकरि निज तनि जीव सु जीया ।
संकट सकल माहि सों खेले, जिन सौं हरि किरपा करि बोले ।
बिबिध प्रकार बिघन सब टाले, जे सांई करि सुरति संभाले ।
प्यंड ब्रह्मंड पिसणि पचि हारे, जन रज्जब जगपति रखवारे ।।१३।।

साधू प्राण पुष्टि यूं भाई ।
भज भगवंत काल कूं खाई ।।टेक।।
मोर मस्त अहि बीछू ग्रासि, आतम उदै भषै गुण रासि ।
अगनि अहार ज्यूं चैन चकोर, त्यूं जिव जौरा जीत्या जोर ।
यूं मन इंद्री भुगतै प्राण, सोई बीर वहै संत सुजाण ।
अजरहिं जारै मेटै दोय, रज्जब सदा सजीवन होय ।।१४।।

सोई सूरा सो बलिवंत ।
इंद्री अरि दल जीतै संत ।।टेक।।
जीतै काम क्रोध अहंकार, आसा तृष्ना गरदनि मार ।
गुण गयंद काया कौ मारि, परकीरति पैदल करै जारि ।
पंचौ जोधा जीतै सूर, आपा आगी काढ़ै दूरि ।
मन मैवासी मारै जाइ, रज्जब सूर सोइ सति भाइ ।।१५।।

सिरजनहार करै सूं होइ ।
जीव बिचारे बल नहिं कोइ ।।टेक।।
इक राना इक रंकउ पाये, भले बुरे ज्यूं भगवंत भाये ।
एकौ पाये छत्र स्यंघासन, एकउ हाथि न फूटा बासन ।
एकौ पीछे पलै हजार, एकउ पांइ नहीं पैजार ।
इक ईसुर बिलसै सुखरासी, एक दलिद्री दुख की पासी ।
आज्ञा अंक समझि सुख पावै, जन रज्जब सबके मन भावै ।।१६।।

संतौ बिषै बिगूचनि होई ।
पंचौ तत्त पोखि माया रस, सीझ्या सुण्यां न कोई ।।टेक।।
एकै प्रान सुरति जड़ एकै, एक मोमि अनरागै ।
सतगुर संत कहैं सब साधू, द्वै द्वै बौड़ न लागै ।।

यहु मन दूध दही क्यूं जामै, कामिणि कांजी बाहै ।
बात बणाइ कहौं को कामी, जीवन धीजै माहै ।।
बिषै बिलास सदा दुखदाता, देखौ भुगतनहारे ।
जन रज्जब जुगि जुगि जग माहीं, साधिक सिद्ध बिगारे ।।१७।।

मन की प्यास प्रचंड न जाई ।
माया बहुत बहुत बिधि बिलसै, त्रिपति नहीं निरताई ।।टेक।।
ज्यूं जलधार असंखि अवनि थल, परतन सों ठहराई ।
तैसे यहु मन भरचा भूख सौं, देखि परखि सुधि पाई ।।
असन बसन बहु होम अगनि मुख, नहिं संतोष सिलाई ।
ऐसी बिधि मन की है षुध्या, बुझती नांहि बुझाई ।।
भूख पियासि संगि लै सूता, सो सुपिनै न अघाई ।
इहै सुभाव रहै मन माहै, तृष्ना तरु न बधाई ।।
मन माया सौं कदे न धोये, सतगुर साखि सुनाई ।
जन रज्जब याकी यहु औषधि, राम भजन करि भाई ।।१८।।

अकलि बिना आपा अति होई ।
बुधि बिन बल सु करै सब कोई ।।टेक।।
ज्ञान बिना गरवै मन भारी, गोव्यंद कहिये गर्व प्रहारी ।
मति बिन मलिति माहि मन भीने, दीनदयाल मिलै मन दीने ।
जुगति न जानै जीय जोरा, आयौ नहीं प्रतीत निवोरा ।
ऊरा उरमिणि काढ़ो काणि, रज्जब गुर गोबिन्दहि जाणि ।।१९।।

हूंतौ हठिरा तोरै मानत नांहि, गुर उर बाइक ।
भांति भांति मन कौ समझावत, समझत नांहि मांहि मन मूरख ।
सुतौ सुधि हीन बिषै रस खाइक ।।टेक।।
च्यार पहर पसू गति बीते, सांची सुनत नांहि दुखदाइक ।
माया मगन फिरत निसि बासर, काम करत दोजिक की लाइक ।
सठ हठ चाल चलत दसहूं दिसि, राख्यो रहत नांहि घन घाइक ।
जन रज्जब जंजाल जड़्यो मन, छांड़्यो सकल सृष्टि कौ नाइक ।।२०।।

नांव बिना नाहीं निस्तारा और सबै पाखंड पसारा ।।टेक।।
भरम भेष तीरथ ब्रत आसा, दान पुन्न सबै गल की पासा ।
जप तप साधन संकट मूना, लै बिन लागत सबै अलूना ।

पान फूल दूधाधारी मन मनसा बिगरे सब ख्वारी ।
कासी करवत गिरतै गिरना, हेम उसासन मूरख भरना ।
नाना बिधि धारै परम धर्मा, हरि सुमिरन बिन करत न कर्मा ।
जन रज्जब रत मत अंकारा, प्रान प्रवीन सु उतरत पारा ॥२१॥

निरगुण राम न आवै जाई ।
श्रगुण फिरि फिरि करम कमाई ॥टेक॥
नृगुण राम न जामै भरई, सरगुण संकर जो तन धरई ।
नृगुन राम औतारै नाहीं, सरगुन जीव फिरै जग माहीं ।
निरगुन स्वामी सरगुन दासा, साधू संत कहैं गुन तासा ।
सरगुन रूप बिलोकौ जाई, जन रज्जब निरगुन दिसि धाई ॥२२॥

जाति जुगति गुर देखै नाहीं ।
मिलहिं प्रानपति प्रीति ही माहीं ॥टेक॥
नाम कबीर दादू जन तारे, नांव नेह नौखंड उजियारे ।
सधना से नरकीता थोरी, हरि हित सीझे हैं कुल कोरी ।
आदि जैदेव अंति रैदासा, भाव भगति काटे करम पासा ।
जन रज्जब करुनामय केसौ, पेम नेम भजि मानि अंदेसौ ॥२३॥

सतगुर बिन समिता नहिं आवै ।
नीच ऊंच निगुरा सु दिखावै ॥टेक॥
एकै पवन एक ही पानी, बुधि बिन बीच बैरता ठानी ।
एकै आतम एक सरीरा, समझि बिना वहु अंतर बीरा ।
सौंज सबै त्रिधि एक बनाई, दुबिधा दुरमति हेरै भाई ।
सबकै नख सख रोक बिचारा, एकै सबका सिरजनहारा ।
गुर के ज्ञान माहिं सब येकै, रज्जब अंध अज्ञान अनेकै ॥२४॥

* राग आसावरी *

गुरु का कह्या करावहु साईं ।
ये बातैं मेरे मनि गाईं ॥टेक॥
गुर की आज्ञा मैं मन राखौ, दीनदयाल दुरमती नाखौ ।
गुर की सीख सनमुखा कीजै, समरथ साहिब यहु दत दीजै ॥

गुर का ज्ञान चलावहु मोसौं, यहु अरदास करौं प्रभु तोसौं ।
गुर की गति अति माहै भारी, रज्जब मांगै भीख भिखारी ॥१॥

संतौ देख्या अदभुत खेला ।
मच्छी मध्य समंद समाणा, अजा स्यंघ सौं मेला ॥टेक॥
आदित माँहि अकासहु दीप्या, सीप समानी मोती ।
ऐसी हुई कही को समझै, दीसै सो अण होती ॥
आभू बूंद असम सो बरसै, तीर कमाण चलावै ।
चीटी माँहि चकहु सौं पैठी, ढूंढ्यो हाथि न आवै ॥
परवत उड़ी पंखि थिर बैठी, राहु केत सिंघ खाये ।
जन रज्जब जगपति कै मारग, पंगुल परि चढ़ि धाये ॥२॥

संतौ मीन गगन में गरज्यो ।
निरमल ठौर निसाण बजायो, सौ जलनिधि सौ भाज्यो ॥टेक॥
चकवा चकवी रैनि मिले हैं, चात्रिग चिता समाना ।
माखी सौ मकड़ी मिलि बैठी, पीवै अमृत पाना ॥
परवत ऊपरि पहुप प्रकासौ, बोला अब निज माया ।
आंभौं ऊसणि तिणुका ऊग्या, गुरुमुखि सो नरताया ॥
दादुर षियो दामिनी सूती, सुणि सतगुर की बाणी ।
जन रज्जब यहु उलटी रचना, बिरलै पुरषौ जाणी ॥३॥

संतौ यहु गति उलटी जाणी ।
मूरति माहि देहुरा आया, सुणि सतगुर की बाणी ॥टेक॥
बीरज माहै बृच्छ समाणा, हांडी कण मैं पाकी ।
कूवां भरै कुंभ में पाणी, कहत न आवै ताकी ॥
ब्रह्म बूंद में घटा समाणी, बाइ बीजुली सेती ।
अवनि अकास गए ताही मैं, चपल चात्रिगहिं लेती ॥
आखिर माहै पोथी बैठी, बंचक बीज बिलाना ।
जन रज्जब यहु अगम अगोचर, गुरमुखि मारग जाना ॥४॥

संतौ कण चाकी कौं पीसै ।
तामे फेर सार कछु नाहीं, गुरु प्रसाद सो दीसै ॥टेक॥
दीपक जलै पतंगे माहीं, मूंसै मीनी खाई ।
कीड़ी कुंजरि मारिग टारयो, हिली सु हाथा जाई ॥

लाकड़ि पकड़ि कूहाड़ी काटरा, तिणकै तंबा चाबी ।
दीन दादुरो अहि आरोगै, बाछी बाघणि दाबी ।।
अदभुत बात उरहुं क्यूं आवै, यहु सब उलटी सारी ।
जन रज्जब सो परतषि देखी, कुही कबूतरि मारी ।।५।।

संतौ यहु गति बिरला बूझै ।
गुरुप्रसाद होइ यहु जाके, ताही कूं यहु सूझै ।।टेक।।
आंधी अनंत दीपनै दाबी, दीवा बुझि नहिं जाई ।
जाकै द्वार दीप था ऐसा, तिनि यहु कीरति गाई ।।
सलिता सकल समंद सो पैठी, कंवल कोस मैं आई ।
ऐसा एक अचंभा देख्या, नदी कंवल मैं न्हाई ।।
पृथ्वी सकल प्रजा पुनि सारी, ले आकास बसाई ।
जन रज्जब जगपति की किरपा, घरि घरि होंहि बधाई ।।६।।

औधू अकल अनूप अकेला ।
महापुरिष माहै अस बाहरि, माया मध्य न मेला ।।टेक।।
सब गुन रहित रमे घटि भीतरि, नाद व्यंद मैं न्यारा ।
परम पवित्र परम गति खेलै, पूरण ब्रह्म पियारा ।।
अंजन माहिं निरंजन निरमल, गुण अतीत गुण माहीं ।
सदा समीप सकल बिधि समरथ, मिले सु मिलि नहिं जाहीं ।।
सरवंगी समसरि सब ठाहर, काहू लिपति न होई ।
जन रज्जब जगपति कै लीला, बूझै बिरला कोई ।।७।।

अवधू यहि बिधि जुगि जुगि जीजै ।
दह दिसि उलटि आव घर अपनै, अमी महा रस पीजै ।।टेक।।
देही माहिं देह थैं न्यारा, नांव निरंजन न्यारा लीजै ।
आरंभ यहै रटौ निसिवासर, कारिज और न कीजै ।।
आतम माहिं अनंत सुधा रस, आपा रहत रमीजै ।
जे कछु आप माहिं कण सारा, सो सब नामहिं दीजै ।।
आपा भूलि भूलि मन लागै, रहते रहता रीझै ।
ऐसे अमर होइ जन रज्जब, लांबा कारिज सीजै ।।८।।

मन रे करि संतोष सनेही ।
तृष्ना तपति मिटै जुग जुग की, दुख पावै नहिं देही ।।टेक।।
त्याग्यू तजै नाहिं सो सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै ।
तामै फेर सार कछु नाहीं, राम रच्या सोइ पावै ।।
बांछे सरग सरगि न पहूंचै, प्रीति पतालि न जाई ।
ऐस जानि मनोरथ मेटहु, समझ सुखी रहु भाई ।।
रे मन मानि सीख सतगुर की, हिरदै धरि बेसासा ।
जन रज्जब यो जानि भजन करि, गोव्यंद है घरि दासा ।।९।।

मालिक मिहरि करी भरपूरि ।
काफिरा करि कतल केसौ, दूंदरा दिल दूरि ।।टेक।।
रहम मैं रिप खलक खालिक, गरब गंजन सूरि ।
इह तलब तालिब पुकारै, राखु नांव हजूरि ।।
जानि राइ जाहिर तुझी मैं, नाहिं कोई दूरि ।
बीच ही बटमार कैसे रहे मारग पूरि ।।
फरजंद की फिरियाद फारिक, नफसरा करि चूरि ।
रज्जबा अरवाहि आतुर, रहौ मिलि मासूरि ।।१०।।

माया माहिं भज्या हरि जाइ ।
सकल संत देखौ निरताइ ।।टेक।।
जैसे चंद कमोदिनि नेह, जल बिछुरै पुनि त्यागहि देह ।
जैसे सीप स्वाति रत होइ, साइर बिन जीवै नहिं सोइ ।।
ज्यूं तरवरि प्राणी की आस, धरती बिछुरै मूल बिनास ।
काया माया तजै न कोय, रज्जब भजे सकल सिधि होय ।।११।।

गुर के गमन दुखी सिष सारे ।
सब सुख निधि के बिलसणिहारे ।।टेक।।
सरवण सुखी सुनत सत बानी, नैन दुखित डारैं बहु पानी ।
दुखी रसन मुखि बातैं करते, सीस दुखित गुर चरननि धरते ।
तन मन दुखी जु फेरि संवारे, अंतरिध्यान भये गुर प्यारे ।
जन रज्जब रोवै दुख आदू, परमपुरुष बिछुरे गुर दादू ।।१२।।

* राग टोडी *

भगति अखंड करै हरि माहिं ।
एक मेक अरु दूसर नाहिं ॥टेक॥
ज्यूं सूषिम गुण आत्माहिं, है भासहि दूसरे नाहिं ।
यूं जन जगपति एकै होइ, ता ऊपरि भजिबे कौ दोइ ।
जैसे राग अकलि मिलि येक, जब चाहै तब भिन्न बमेक ।
ऐसे जीव ब्रह्म कै आथि, मजै भिन्न औ सांई साथि ।
ऐसे भगति अखंड अपार, दादू कौं दीनी करतार ।
रजब रटेला बिले माहिं, जात भये अरु भजते जाहिं ॥१॥

ऐसे गुर गोबिन्द अगाध ।
अखिल अनंत निपावहिं साध ॥टेक॥
ज्यूं चकमक पाहण परसंग, अगिन अपार उपाइ अभंग ।
ज्यूं दिनकर दर्पण दिसि देखि, प्रगटै अनल रूप सु बिसेखि ।
द्वै दीपक मैं दीपक जोइ, रज्जब जोति मंद नहिं होइ ॥२॥

साधु संग भक्ति रंग गुर प्रसादि पावै ।
परम प्रीति परम रीति, परमपुरिष गावै ॥टेक॥
सतगुर के दरस परस, दीरघ दुख भागे ।
करम काल बिघन व्याल, बहुरि नाहिं लागे ॥
अचल नांव अगम ठांव, आनंद धरि बासा ।
सकल सिद्धि अकल बिधि, सतगुर संगि दासा ॥
अधिक भाग सिरि सुहाग, सांई संगि खेलै ।
जन रज्जब गुर प्रसाद, जीव ब्रह्म मेलै ॥३॥

सांचा गुरू दिखावै राम ।
निर्लोभी खर तर निहकाम ॥टेक॥
परमारथि परमोधै प्राण, बिषिया माहि न देवै जाण ।
काम प्रसिद्ध करै मन लाइ, स्वारथ संघ सरकि नहिं जाइ ।
दीरघ दसा देहि दिल आंणि, त्रिगुण रहति निर्गुण निज छांणि ।
जामति मै सीझै सब और, सो ले देइ नांव निज ठौर ।
नख सख फेरि करै निज रूप, बिषय बिकार काटि गृह कूप ।
जीव माहिं जीवनि ले देइ, यूं रज्जब सतगुर करि लेइ ॥४॥

लोभी गुरू कहै मुखि राम ।
मन माहै सूधा सहकाम ।।टेक।।
जैसे बधिक बाण गहि लेइ, मुखि टाटी धीजण कौ देइ ।
मूठी तलि आवै जो प्राण, सो जिव लहै न बाहरि जाण ।
जैसी बिधि बग मांडै ध्यान, अन्तरिगत औरै कछु आन ।
जो मनसा मन धीजै आइ, ताही कौं बैठे गटकाइ ।
बीच बघेरा लूक लगाइ, सिष स्वान सब लेइ निकाइ ।
जन रज्जब जो परसै प्राण, ताही कौं लागा सो खाण ।।५।।

नांव निरंजन प्राण कहै ।
पंद गहै दुख द्वंद दहै ।।टेक।।
अकल अमर ल्यो लाइ रहै, काल कृतक सिरि नाहिं सहै ।
सुमिरन सलिता माहिं बहै, द्वै दिसि दुबिधा मेटि रहै ।
अगम अगोचर ज्योति रहै, जन रज्जब जगि काम इहै ।।६।।

राम सौं रता राम सौं मता ।
राम रसायन प्राण पीवता ।।टेक।।
राम सौं लीन राम सों भीना, राम रटनि उर अंतर कीना ।
राम सौं संगा राम सौं रंगा, राम सनेही मित्र अभंगा ।
राम सौं मीठा सब मै दीठा, अंतरजामी आतम ईठा ।
राम सु प्यारा प्राण हमारा, जन रज्जब कहै फेर न सारा ।।७।।

मेरो मन रातौ माई, प्राणप्रिया के संग ।
मौज अनेक अनूपम आछी, चोल चरन कै रंग ।।टेक।।
मिहरिम जीव रहम की रहणी, मन बुधि सुरति सुरंग ।
रज्जब लाल लाल की ल्यो मिल, जुगि जुगि अचल अभंगा ।।८।।

आव रे हरि आव रे ।
उर अंतरि यहु भाव रे, यहु अवसर यहु दाव रे ।।टेक।।
यहु अंदेसा नाहिं संदेसा, जीवन कैसा दाव रे ।
ताला बेली पीव अकेली, रैन दुहेली आव रे ।।
अबल अधीरा पंजरि पीरा, नैननि नीरा आव रे ।
रज्जब नीरा बिरहै जारी, तुम परि वारी जाव रे ।।९।।

कहर काम राखि राम मैं अनाथ तेरा ।
करि सहाय राम आइ, अरि अनंग घेरा ।।टेक।।
मदन बान बिंधे प्राण, आतम उर झेरा ।
व्यंद व्याधि अति असाधि, रोका निज सेरा ।।
बिबिधि अंग सदा संग, उर अंतरि नेरा ।
काम काल करि बेहाल, त्यागै नहिं केरा ।।
बिखे बास मनहिं पास, राम करि निवेरा ।
जन रज्जब दीन लीन, नाही बल मेरा ।।१०।।

तू साहिब सबल हमारा ।
यह रोक्या प्राण तुम्हारा ।।टेक।।
बिरह बिचार परसि नहिं कबहूं, दूंदर अधिक अपारा ।
परगट गुपत गुपत हरि परगट, सेवग दुखित तुम्हारा ।।
संसा सबल सदा ही व्यापै, पलक पलक पर जारा ।
पंच अहेड़ी चढ़े बधिक ह्वै, जीव जबह करि मारा ।।
चढ़ौ पुकार सुरति करि सांई, समरथ सिरजन हारा ।
जन रज्जब जिव जाइ बंदि मैं, स्वामी करहु सहारा ।।११।।

यों पावन पतिति उधारि ।
हम अपराधी आदि अंति के साहिब लेहु सुधारि ।।टेक।।
दीनदयाल दीन सुखदाई, सेवग सोच नित्रारि ।
काम क्रोध व्यापै बिचि अंतर, देही दूंदरि टारि ।।
पंच पसारै पल पल दौरैं, तीनिउ मांहि निवारि ।
लीयो जाइ बंदि बसि कीये, बाहड़ि बिरद संभारि ।।
सेवक सदा संभारे स्वामी, तैं अपनी उनहारि ।
जन रज्जब परि परम कृपा करि, आड़ा अंतरि जारि ।।१२।।

हरि नांव मैं नहिं लीना ।
पंचौ सखा पंच दिसि खेलै, मन माया रसभीना ।।टेक।।
कौन कुमति लागी मनि मेरै, परम अकारिज कीना ।
देखौ उरझि सुरझि नहिं जान्यो, बिषम बिषय रस पीना ।।
कहिये कहा बिकल मति अपनी, बहु बैरिन मन खीना ।
आतम राम सनेही अपनौ, सो सुपिनौ नहीं चीन्हा ।।

आन अनेक आनि उर अंतरि, बहुत भांति तन छीना ।
जन रज्जब क्यूं मिलै जगत गुरु, जगत माहिं जिव दीना ॥१३॥

गुनहगार गुनहगार ।
लेखा कछु नाहिं मार, ऐब है अपार ॥टेक॥
बहुत मैल बुरे फैल, बेहद बदकार ।
अबलि रोग दिलि दरोग, बदी बिसियार ॥
तरक खैर सूम सैर, नेकी बेजार ।
बहुत ढील मन बखील, पावे क्यूं पार ॥
बहु गुमान तजि सुभान, नाहीं अखत्यार ।
रज्जब रजूल गुफत, सूल सांई सत्तार ॥१४॥

भाइ मिलै भगवंतहिं आइ ।
नेह बिना कोइ नाहिं उपाइ ॥टेक॥
प्रथमै भाव भगति का मूल, सुकृत सब डाली फल फूल ।
नाव चढ़ै भौसागर पार, जैसे नावहिं नीर बिचार ॥
ज्यूं पंखौं परि अनल अकास, त्यूं भावहि चढ़ि चरनि निवास ।
जन रज्जब जगपति की आण, प्राण पुरिष कौ भाव बिवाण ॥१५॥

सब सुख की निधि आये साध ।
करम कलेस कटे अपराध ॥टेक॥
दरसन देखि किये डंडौत, अघ उतरे अंकूर उदौत ।
परदच्छिन देतैं दुख दूरि, चरनोदिक लेतैं सुख पूरि ।
श्रवनौ कथा सुनत सुख सार, साध सबद गहि उतरे पार ।
सांचे संत सजीवनमूरि, रज्जब तिन चरनन रज धूरि ॥१६॥

सुनि लै सांची सीख मनं, जपि राम खिनं सब पाप हनं ।
जग सूं तोरि जोरि हरि सेती, गृह दारा सुत त्याग धनं ॥टेक॥
बिगता बिरचि सकल गुण न्यारा, सूषिम सोटा पाप वनं ।
कारिज सरै समझि मन सुन्दर, सतगुर साधू साखि जनं ।
बिषिया संगि जरै जग सारा, दुख दीरघ अधिकार सुनं ।
निहकामी सीतल ह्वै बैठे, उर अंतरि लै नांव धनं ।
रहते संगि राखि लै रजमा, आव अल्प यहु जाइ तनं ।
जन रज्जब रामहि रटि लीजै, औसर समझिर एक षिनं ॥१७॥

डरु है रे मुख डरु है रे ।
पल पल आयु घटै तन छीजै, जम बैरी सिर परु है रे ।।टेक।।
बादल बिपति बीजुरी मनसा, बिबिधि विघन का झरु है रे ।
चौरासी लख जीव जवासे, तेरी केतुक जरु है रे ।।
आपा अगनि अनंत दौ लागी, पंच तत्त सब तरु है रे ।
मिहरि मेघ बिनु कौन बुझावै, तन मन नूति नुखरु है रे ।।
दीरघ दुख दीसै दसहूं दिसि, मीच सु सचराचरु है रे ।
काल कसाई प्रान सु पसु ये, सबके सिर परि करु है रे ।।
त्राहि त्राहि यहु त्रास देख कर, हरि सुमिरन कौ हरु है रे ।
जन रज्जब जोख्यूं टारन कौं, एक राम कौं बरु है रे ।।१८।।

भय है रे मूढ़ भय है रे ।
बाहरि भीतरि बैठि सु साईं, जीव कहां ह्वै जैहै रे ।।टेक।।
मनषा जनम द्यौस सोई बीतौ, रैनि परीतम मैं है रे ।
जामण मरण खाहिं जीव गोते, दूतर आडीनैं है रे ।।
जनम लुहार जीव सोई लोहा, आपा अगिन सुतै है रे ।
घर घर आरणि सुरति संड़ासी, गुण घण याण युदै है रे ।।
चौरासी चौपड़ि फिरि आयौ, अब देवै को पैहै रे ।
करनी हीन होइ सोइ कांची, चोट चहूं दिसि खैहै रे ।।
जुगि जुगि जीव काल कौ भक्षन, जम धायो नहिं धैहै रे ।
जन रज्जब यूं समझि सयाने, छूटन कहं हरि लैहै रे ।।१९।।

पारै पारै पुकारै लोई ।
वार पार की खबरि न कोई ।।टेक।।
पार कहै सोई सब वारा, समझि सोच कछु करौ बिचारा ।
भयो भरम करतूति सु वारा, तीरथ बरत सु मांझ मझारा ।
जप तप साधन बैली बोरा, सरग पताल उनी मैं दौरा ।
रिधि सिधि सबै सुबैला आसा, आगम निगम जगत मैं वासा ।
परम पुरुष गुरु सबतैं आगै, रज्जब वार पार यूं त्यागै ।।२०।।

कारण कारिज सम क्या भाई ।
सतगुर नै आटी समझाई ।।टेक।।
कारण माटी कारिज भांड़ा, ज्ञान गुरू फूटा भ्रम आड़ा ।
कारण गिरिवर कारिज मूरति, ताऊ पै भूली सब सूरति ।
कारण करता कारिज देही, रज्जब भ्रम भान्या सु सनेही ।।२१।।

यूं निरपखि मन भया हमारा ।
इन दून्यूं का देखि पसारा ।।टेक।।
पाला पहरु तसबी लागै, यासीहूं कछु नाहीं ।
ऐसे समझि तजे सब बंधन, क्या पहरै गल माहीं ।।
बरत कियूं रोजे रिस मानै, इन मैं कहा बड़ाई ।
ऐसे जानि तजे सब बंधन, संकट पासि छुड़ाई ।।
देवलि जाउ मसीति मरै जलि, यामैं क्या सिधि पाई ।
ऐसे समझ रहे दून्यूं सों, उर अंतरि ल्यों लाई ।।
दाग देवतौ गोर गुमाणी, गाडैं माण मसाण ।
ऐसे जाणि धरया चौड़े मैं, दून्यूं रहे झिकांण ।।
एकहि तज्यूं एक बल बांधै, टलै न सौकि अड़ी ।
ऐसे समझि रहति जन रज्जब, दून्यूं त्यागि खड़ी ।।२२।।

प्राण परषि बिन खोटा खाई ।
अकलि आंखि दिब दिष्टि सु नाहीं ।।टेक।।
प्रथम परख बिन अंध अग्यानी, तापरि ठगनि ठगाई ठानी ।
परख बिना पति पंथ भुलाना, परखि बिना मल मूल न जाना ।
परख बिना मनोरथ लीने, पारख बिना भेष बहु कीने ।
पारख बिना तीरथूं काबै, पारख बिन बहु देह दहावै ।
पारख बिना सु कष्टै काया, पारख बिना तैतीस मनाया ।
पारख बिना अवतार अराधै, पारख बिन कांकर कंठ बांधै ।
पारख बिन बैकुंठ बिसासा, पारख बिन रिधि सिधि की आसा ।
पारख बिन सोइ प्रान अनाथा, रज्जब पारिख परम धन हाथा ।।२३।।

* राग गुण्ड *

गुर गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया ।
दरसन परसन होत ही, भंजन भल भरिया ।।टेक।।
श्रवणि कथा सांची सुनी, संगति सतगुर की ।
दूजी दिल आवे नहीं, जब धारी धुर की ।।
भरम भुजागल बांध दी, संक्या सब तोड़ी ।
सांच सगाई राम की, लै तासौं जोड़ी ।।
सतगुर कै सिदके किया, जिनि जीव जिलाया ।
सहज सजीवनि करि लिया, सांचे संगि लीया ।।
जनमु सुफल तब का भया, बरनौं चित लाया ।
रज्जब राम दया करी, दादू गुर पाया ।।१।।

नटनी निरखि निहारि लै, मत मांहि समाना ।
मन इंद्री निज नांव सौं, ऐसी बिधि ध्याना ।।टेक।।
बरत चढ़ी बहु देखता, तन मन चित बांधी ।
सहजि समानी डोरि मैं, दह दिसि की आंधी ।।
भांवरि भरि चौकसि लई, चेतनि चढ़ि वासा ।
तन मन तामैं रलि गया, नहिं नजरि तमासा ।।
ऐसे सुरति नचाइ लै, हरि आगै खेला ।
रज्जब राम उमंगि करि, दे दर्शन मेला ।।२।।

ऐसे गुर संसार यहु, सुणि समझि बिचारा ।
जे चाहै उपदेस कौं, तौ पूंछि पसारा ।।टेक।।
चौरासी लख जीव का, लछिन लै माहीं ।
माया मिलि मरदी गये, पर मेलै नाहीं ।।
अचल मता उर लीजिये, गिर तरवर ताकी ।
जहां रोपे तहं रहि गये, सुणि सतगुर साखी ।।
चंद सूर पाणी पवन, धरणी आकासा ।
रज्जब समिता पूंछि लै, षट दरसन पासा ।।३।।

एक नांव भजिबे मैं भेद ।
कोई एक पावै, संत नरवेद ॥टेक॥
जो ज्यूं भजै तहीं त्यूं होइ, महल महल का हासिल जोइ ।
प्रथमैं नांव भजै संसार, कर माला करती संगि लार ।
मन मैं नहीं एक इकतार, तौ इहै नांव मृतग व्योहार ।
दूजै महल नांव की आस, भजिबे लागा सासैं सांस ।
अंतरि ऊंघ उठै सब और, इहि निसि लागि रहै सब ठौर ।
तीजै महलि पंच सरि पूरि, पंच सुभाव काढ़ि दे दूरि ।
जब उपजै अंतरि यऊ माहिं, तब पहुंचै संसा कछु नाहिं ।
चौथे महल जाइ जब लेइ, नौसै उलटि नांव मैं देइ ।
नौ निधि निपजि रहैं तन माहिं, तव प्राणी का दालिद जाहिं ।
पूरे महल पंच परि जाइ, रोम रोम रटि राम अघाइ ।
जन रज्जब जुगि जुगि यहु ठाट, सतगुर कही नांव निज बाट ॥४॥

ज्यूं पहलैं पीछै त्यूं होइ ।
कारिज सरै सत्ति करि जोइ ॥टेक॥
तीन मास बरस्यूं कछु नाहिं, साख समंगल चौथे माहिं ।
पहलै श्रवण लेइ नहिं आस, पिछले सवणि परे बेसास ।
मुंहमिल भये नाहिं कछु नीति, रज्जब रोपि रहे रण जीति ॥५॥

मन चाल्यूं पीछै कछु नाहिं ।
ऐसे समझि देखि मन माहिं ॥टेक॥
मन दीपग देही तैं जाइ, तबहीं तिमिर भरै घर आइ ।
मन आबिर देही लग जाणि, मिथ्या लग आबिर बूझाणि ।
मन प्राणी त्यागै तन अंग, तव रज्जब मिरतग परसंग ॥६॥

चेतनि चित चोरै कहां जाइ ।
निद्रा नेह मुसै घर आइ ॥टेक॥
ज्यूं रजनी गत रबि परगास, तारे सकल भये बल नास ।
जव मंदिर माहैं मंजार, तब चूहे त्यागे घर बार ।
तिमिर कहां जब दीपग जोइ, जन रज्जब जागे यूं होइ ॥७॥

नेह निरंजन सौं नहीं, सब अंजन ध्यावै ।
बइयर सौं बइयर मिल्यूं, सुत कौं नहीं पावै ।।टेक।।
पारब्रह्म कौं पीठि दे, दिल देई देवा ।
माया सौं माया भजै, सब झूठी सेवा ।।
गुण गहि गुण सौं पूजिये, तेती सब झूठी ।
जल बूड़त जल कौं गहै, मन मूरिख मूठी ।।
सकल बिकलि बाहरि रहे, गुरु ग्यान न पाया ।
जन रज्जब सौंधी बिना, दह दिसि मन लाया ।।८।।

मेरे मंगल मन माहिं भये, दीरघ दुख मेटै ।
अंगि अंगि अति उछाहै, दादू गुर मेटै ।।टेक।।
पारस पग परसत ही, कंचन भई काया ।
फिरि कलंक लागै नहीं, सतगुर की छाया ।।
सबद डंक श्रवन लागि, कीट भृङ्ग कीये ।
जनम फेरि दुख नवेरि, अपनै संगि लीये ।।
दादू गुरु दृष्टि मान, आतम जल काढ़े ।
जन रज्जब धरती लै, अकास चाढ़े ।।९।।

आज हमारै भये अनन्द ।
मिले संत भागे दुख द्वन्द ।।टेक।।
मंगलचार मगन गुन गावै, अमृत धार घेर कर लावै ।
सुखसागर घरि संत बिराजै, महा पतित जीव आइ निवाजै ।
अधिक उछाह कह्यो नहिं जाई, कितेक महिमा कह्यू बड़ाई ।
आदि अंत के कारिज सारे, जन रज्जब आये मौं प्यारे ।।१०।।

आये मेरे पारब्रह्म के प्यारे ।
त्रिगुण रहित निरगुण निज सुमिरत, सकल स्वांग गहि डारे ।।टेक।।
माला तिलक करै नहिं कबहूं, सब पाखंड पचि हारे ।
सांचे साध रहति सादी गति, सकल लोक मैं सारे ।।
नांव प्रताप परिपंच न मानै, षट दरसन सौं न्यारे ।
भजि भगवंत भेष सब त्यागे, एक सांच के गारे ।।
जिनिकै दरसि परसि सुख उपजै, सो आये चलि द्वारे ।
जन रज्जब जगपति सौं ऊंचे, प्राण उधारणहारे ।।११।।

* राग मलार *

राम बिना सावण सह्यौ न जाइ ।
काली घटा काल ह्वै आई, दामनि दगधै भाइ ॥टेक॥
कनक अवास बास सब फीके, बिन पिय के परसंग ।
महा बिपति बेहाल लाल बिन, लागो बिरह भुवंग ॥
सूनी सेज हेज कहूं कासों, अबला धरै न धीर ।
दादुर मोर पपीहा बोलै, ते मारत हैं तीर ॥
सकल सिंगार भार ह्वै लागे, मन भावै कछु नाहिं ।
रज्जब रंग कवन पै कीजै, जे पिव नाहीं माहिं ॥१॥

ब्रह्म बिन निस दिन बिपति बिहात,
दरसन दूरि परस पिय नाहीं, नहिं संदेस सुनात ॥टेक॥
पीर प्रचंड खंड करि नाखत, बैरी बिरह बिख्यात ।
साईं सुरति करौ सुन्दरि दिसि, सोच न स्यंव सकात ॥
नख सख सूल मूल मन बेधत, बरनत बनै न बात ।
झानी झाल लाल बिन लपटति, सो क्योहूं न बुझात ॥
सब सुख हीन दीन दीरघ दुख, बिसरी पांचर सात ।
रज्जब रही चित्र पुतरी ह्वै, मानहुं सतरंज मात ॥२॥

* राग केदारा *

मन रे सीख सतगुर की मानि ।
ब्रह्म सुख दुख रूप माया, कही लाभर हानि ॥टेक॥
भजि अनन्त अनन्त आनन्द, खलक खलह लखानि ।
सकल संत सब सोधि साधू, कही तो सौं छानि ॥
अमर अधर धरादि बिनसै, तोलि तुलि कर कानि ।
सांच झूठि बिचारि लीजै, मिहरि कै दीवानि ॥
मुकति प्राणी प्राणपति भजि, सकति संकट जानि ।
बास बसतो कीजिये मन, रचि न रज्जब रानि ॥१॥

मन रे गहौ गुरमुखि बंध ।
सकल बिधि सब होत कारिज, उनमनी ले संध ।।टेक।।
सबद साधू सीस धरि करि, रटण आतम रंध ।
ग्यान मारग गवन करतैं, अमर आतम कंध ।।
मन महंत सु मानि मन क्रम, परहु गोरख धंध ।
एक आतम लागि, एकहिं दह दिसा कै अंध ।।
बेध भेद अभेद पंचनि, निकुलि नांव सुनंध ।
मिलै रज्जब जोति जीवहिं, जाइ तनु बरु गंध ।।२।।

मन यहु मानि मुगध अचेत ।
समझि सठ हठ छांड़ि मूरिख, कहत हूं करि हेत ।।टेक।।
देह झूठ सु परत पल मैं, लई कै जम लेत ।
काल कर करवाल काटें, देखि लै सिर सेत ।।
सीत कोटर सुपिन संपति सुनहुं यहु संकेत ।
छिनहिं मै सब छांड़ि जैहैं, मारि मूड़हिं बेत ।।
माति पित सुत सखा बांधव, सकल कालर खेत ।
करि करखि यूं परचो रीतौ, खोलि देखौ नेत ।।
त्यागि धन तन गेह गाफिल, सीख सतगुर देत ।
रज्जबा जम जोरि लैहैं, देस मोहड़ै रेत ।।३।।

संतहु अगह गहे गुर ज्ञानि ।
मनसा बाचा कबहुं न छूटै, बैठा ये निज थानि ।।टेक।।
चंचल अचल भये बुधि गुर की, मनहिं मनोरथ जानि ।
अस्थिर सदा एक रस लागे, माते अमृत पानि ।।
बहतै रहे मानि मति गुर की, समझि परी उर आनि ।
पंच पचीस स्वादि सब छूटे, ले जाते जो तानि ।।
थाके अथक परे पंगुल ह्वै, चंचलता दे दानि ।
जन रज्जब जग मैं नहीं पसरैं, गुर बाइक सुनै कानि ।।४।।

है हरि नांव सौं सब काज ।
आदि अंत सु प्रान तारन, बिषम जलधि जहाज ।।टेक।।
प्राण पोषण पंच सोषण, फेरि मंडण साज ।
गुनहुं गंजन पीर भंजन, देत अबिचल राज ।।

सुकृति जागै कुकृति भागै, सुनि भजन की गाज ।
उरहुं मंडण अघहुं खंडण, देखतै दुख भाज ॥
धरे काटण अधर चाटण, जीव की सब लाज ।
नांव नीका धरम टीका, रज्जबा सिरताज ॥५॥

ऐसा तेरा नांव बहु गुनवंत ।
सकल बिधि प्रतिपाल प्राननि, जपि निवाजे संत ॥टेक॥
सेस संकर बिष्न ब्रह्मा, ओंकार रटंत ।
सुरनि सति सुमिरन बतायो, भागि भूत करंत ॥
हरि अराध सु हरत पापनि, आत्मा उधरंत ।
गिनूं कीते ज्ञान नावैं, सिष्टि साधू संत ॥
आदि अंतिर मध्य मनषा, नांव ठांव चढंत ।
जाहि जलनिधि उतरि आतम, नीच ऊंच अनंत ॥
सकल बिधि सुख रासि सुमिरन, अनंत काज सरंत ।
रज्जबा क्या कहै महिमा, भजन बिधि भगवंत ॥६॥

है हरि नांव नरनि कलंक ।
पतित पावन प्रान परसत, राव सुमिरौ रंक ॥टेक॥
नांव चन्दन लागि पलटत, बय बनी बस बंक ।
होत सकल सुगंधि संगति, बास दुरगंध टंक ॥
नांव पारस लाग लोहा, भेंटि मेटत अंक ।
साध सोना होत देखत, बिकत मंहगे टंक ॥
अराध ओषदि जीव रोगी, राखि पछ्र नित फंक ।
रज्जबा यूं रहै निसि दिन, होत निमन निसंक ॥७॥

ऐसा तेरा नांव निधाना, करै को बक्त्र बखाना ।
स्यो बिरंचि सुक आदि शेष मुख है न परमाना ॥टेक॥
नेत नेत कहि निगम पुकारत नाइ न जाना ।
रज्जबा कहा कहै इक रसना जानत हैराना ॥८॥

नांव बिन मन निरमल नहिं होइ ।
आन उपाइ अनंत अघ लागै, बहुत भांति करि जोइ ॥टेक॥
जोग जग्य जप तप ब्रत संजम, करता है सब लोइ ।
धरम नेम दान पुन्नि पूजा, सीझ्या सुण्या न कोइ ॥

भेषर पंषि नाहिं घर बाहरि, ज्ञान अज्ञान समोइ ।
ज्ञानी गुनी सूर कबि पंडित, ये बैठे सब रोइ ॥
भरम न भूलि समझि सुणि प्राणी, यहु साबुण नहिं सोइ ।
जन रज्जब मन होइ न निरमल, जल पाखा नहिं धोइ ॥९॥

भजन बिन भूलि परचो संसार ।
पच्छिम काम जात पूरब दिसि, हिरदय नहीं बिचार ॥टेक॥
बांछै अधर धरे सौं लागे, भूले मुगद गंवार ।
खाइ हलाहल जीवौ चाहै, मरत न लागै बार ॥
बैठे सिला समंद तिरन कौ, सो सब बूडणहार ।
नांव बिना नाहीं निस्तारा, कबहुं न पहुंचै पार ॥
सुख कै काज धसे दीरघ दुख, ताकी सुधि नहिं सार ।
जन रज्जब यों जगत बिगूचै, इस माया की लार ॥१०॥

हमारै सबही बिधि करतार ।
धरम नेम अरु जोग जागि जपि, साधन सांई सार ॥टेक॥
पूजा अर्चा नवधा नांवैं, सोधि कियो व्योहार ।
तीरथ बरत सु नांव तुम्हारा, और नहीं अधिकार ॥
बेद पुराण भेष पष भूधर, तुझ ही सिरि पर भार ।
बुधि बमेक बल ज्ञान गुसांई, और नहीं आधार ॥
सकल धरम करतूति कमाई, सब तुम ऊपरि वार ।
जन रज्जब कै जीवनि रामा, निसि दिन मंगलचार ॥११॥

नाह बिन निसि बिघननि की खानि ।
बिरहनि बहुत भांति दुख पावै, सकल सुखौं की हानि ॥टेक॥
ससि नहीं संक कलंकी जातै, काहू की नहिं कानि ।
बिरह मौज मै भामनि बैठी, घ्यो नावत है आनि ॥
तारे तरु नितप्रति सिरि ऊपर, ससि बन्धू पहिचानि ।
देखौ दुख दाइक दसहूं दिसि, नौ लख बैरी जानि ॥
महल मसान सेज भइ स्यंघनि, मारुत मीच समानि ।
रज्जब राम बिना रजनी दुख, केतक कहौं बखानि ॥१२॥

आज निसा न क्यूं हूं घटत ।
दीरघ रैन भई बिन दरसन, आतम रामहिं रटत ॥टेक॥
एकस रैन अधिक अरिहुन ते, तारे तीर तकि तकि क्यूं जटत ।
चंद्रहि चंद बाण कै छूटत, मारुत नैक न हटत ॥
जामनि जुग प्रमाण अति बाढ़ी, कामनि कंत विना क्यूं कटत ।
रज्जब रुदन करत करुनामय, बिगसि बिगसि उर फटत ॥१३॥

बेगि न मिलौ आत्म राम ।
जात जनम अमोल अदभुत, लेत हूं हरि नाम ॥टेक॥
भूख भंग अभंग च्यंता, गिनत छांह न घाम ।
मघ अमघ यहु भाम भूली, समि सु आरणि ग्राम ॥
बिरह पीर सु नीर नैनौ, महा बिह्वल बाम ।
ठगी सी ठिक ठौर बिसरी, को करै गृह काम ॥
दीन दुखित अनाथ अबला, गये यहि बिधि जाम ।
मास गूंद सु बिरह बिलस्यो, रहै अस्थिरु चाम ॥
और कहत सु और आवत, नहीं मन मति धाम ।
रज्जबा रही रोज हांसी, ज्यों सती सल ठाम ॥१४॥

सखी सुन्दर सहज रूप, देखि लै जगत भूप, प्राननि मैं प्रानपति भृकुटी कै तीरा ।
बैठी क्यूं नवल नारि, कही सो श्रवनौ धारि, निकट नाहै निहारि नैन नितै नीरा ॥टेक॥
बिधि सौं बिलोकि बाम, सेइ लेइ साजन राम, पूरन सकल काम थापनि सो थीरा ।
उठी तू आतुर धाइ, पूजि लै परम पाइ, अंतरि अनन्य भाइ पीरन कौ पीरा ॥
बिमल ब्रह्म अंग, सरवंगी सर्व संग, सोधि लै आत्मा दंग हिरदै कौ हीरा ।
रज्जब भामिनी भाग, आदि कौ अंकूर जाग, देहि जो सेज सुहाग मीरनि कौ मीरा ॥१५॥

माधौ करौ क्यूं न सहाइ ।
तुझ बिना कोई और नाहीं, कहूं तासूं जाइ ॥टेक॥
काम बैरी क्रोध बैरी, मोह बैरी माहिं ।
पंच मारै सो न हारै, क्यूं हरि आवौ नाहिं ॥
काया बैरी माया बैरी, परकिरति भरपूरि ।
दीन की फिरियाद सुनिये, करौ ये सब दूरि ॥
पिसण सारै मै न मारै, मोहि मारे जाहिं ।
बहुरि तुम कहा आइ करिहौ, जन रज्जब जब नाहिं ॥१६॥

* राग मारु *

दुख अपार बिन दीदार, लेखा कछु नाहीं ।
बिकल बुद्धि नाहिं सुद्धि, मृतग भई माहीं ।।टेक।।
सुख बिलास सकल नास, आतम उर भागे ।
मध्य पीर नाहिं धीर, बिरह बान लागे ।।
बहु बियोग परस सोग, डगमगति डोलै ।
नाहिं चैन बिरह बैन, व्याकुल भइ बोलै ।।
तपति पूरि नाहिं दूरि, मिलिये सुखदाई ।
रज्जब की जलणि जाइ, प्रगटौ हरि आई ।।१।।

सखी सुन्य मैं दुख सोधि लियो ।
महा निठुर अपनै रंग रातौ, सोई कंत कियो ।।टेक।।
जाकै बिरह बसी मन माहीं, सब जग त्यागि दियो ।
सो पुनि पिय परसै नहिं ताहीं, अजहूं हारी देखि हियो ।।
जगपति मिले न जगत सुहावै, फाटौ दिल न सियो ।
द्वै दुख देखि भयो चित चक्रित, बिषहुं न बांटि पियो ।।
कहिये कहा कवनि मति उपजी, मनि मानै न बियो ।
जन रज्जब रुचि रूप न पावै, धृग धृग येह जियो ।।२।।

सखी सुनि कैसे रहिये ।
हरि बियोग बिरहन तन, कासौ कहुं कहिये ।।टेक।।
बिरहनी बियोग सोग, रैनि दिवस दहिये ।
दीरघ दुख देखि देखि, कौन भांति सहिये ।।
बिरह पीर नैन नीर, तामें बहिये ।
दीसत नहीं सो जहाज, जो बूड़त गहिये ।।
देखौ दुख मीन भीन, चात्रिग चहिये ।
जन रज्ज्जब जीवहि क्यूं जीव नाहिं लहिये ।।३।।

सखी हूं बिरहै घेरी ।
लहियत नहीं मोहन मघ सुख की सेरी ।।टेक।।
बिपति राज बैठे आज, दीन दुखित टेरी ।
बिरहे की आन दान, दोही फेरी ।।

बिरह आगि मनहुं लागि, जरत देह मेरी ।
बरसत नहीं मिहरि मेघ, दह दिसि हेरी ॥
जनम जाइ मिलहु आइ, चेरी तेरी ।
रज्जब को दरस देहु, राखहु नेरी ॥४॥

सखी हूं मोहनै मोही ।
कन कन कै काटि लीनी, ऐसे सोई ॥टेक॥
भूली सब काम धाम, तन मन दोही ।
असन बसन बिसरि गई, सूका लोही ॥
श्रवनहु बाणी अधारि, समझ्या ओही ।
जन रज्जब जोये बिनु, रंग बिरोही ॥५॥

नाह राती हो, सु तेरे नाह राती हो ।
पंचौ पिय पिय करैं, भई प्रेम की माती हो ॥टेक॥
लीन भई त्रिसना बसौ, जो कर्म की काती हो ।
चलता बैठता सूवता, सुध तेरी आती हो ॥
नांव सदा ले नेह सों, नाना बिधि भाती हो ।
देखौ भाग्य उदै भये, पाई पूरन थाती हो ॥
जो भजि भजि साधू भये, तो मैं लई पाती हो ।
जन रज्जब बलि राम कै, दई दीरघ दाती हो ॥६॥

नाह रंगी हो, तेरे नाह रंगी हो ।
नैनौ नाह न देखिये, एता दुख अंगी हो ॥टेक॥
पीव पीव टेरौ रैन दिन, दीदार उमंगी हो ।
सो दीदार न पाइये, यू नारि न चंगी हो ॥
सुमरि सुमरि सुधि बुधि गई, कहि कहि सरबंगी हो ।
बन बन ढूंढ़्यो रोवती, पीय हैं किस ढंगी हो ॥
नांव छांड़् नाह का, भई गति अपंगी हो ।
रज्जब रजनी यूं गई, कब मिलिहौ संगी हो ॥७॥

जागि रे जपि जीवनि भाई ।
काहे सोवै नींद भरि, उठि अवधि आई ॥टेक॥
सौंज सिरोमनि सब गई, कछु ठौड न लाई ।
काया कुन्दन सारिखी, कुलि बादि गमाई ॥

कौन ठाट किस करम कौ, यहु चित्त न आई ।
अंतक उभा दम गिनै, कछु नाहिं भलाई ।।
यहु अवसर बहुरचू नहीं, मन सुनि धुनि लाई ।
रज्जब ढील न कीजिये, उर ऊंघ उठाई ।।८।।

रे मन राम रटि अघाई ।
जनम सुफल सुमिरन कर, तन मन ल्यो लाई ।।टेक।।
जागि लागि सकल त्यागि, काल कठिन खाई ।
यहु बिचार सुमिरि सार, आव अलप जाई ।।
बिरचि बीर बिषै सीर, देखौ निरताई ।
हरि संभालि सील पालि, ऐसो तन पाई ।।
साधु साखि नांव माखि, अंतरगति आई ।
रज्जब रुचि राम नाम, आतुर उठि धाई ।।९।।

सेवग राम कारे, सतगुर की सुणि धारि ।
राम नाम उर राखिये भाई, आतम तत्त उतारि ।।टेक।।
दीन हीन ह्वै लीजिये, जीव की जीवनि सोइ ।
समये सुमिरन कीजिये, यहु औसर नहिं होइ ।।
सांई सनमुख राखिये, सदा सुरति इक बार ।
ऐसी बिधि अघ ऊतरै, भाई जुगि जुगि मंगलचार ।।
भगति अखंडित कीजिये, अगम अगोचर ठौर ।
जन रज्जब जगदीस भजि, भाई अति आतुर उठि दौर ।।१०।।

कठिन काम भजन राम करिबे कौं कोई ।
एक आध सुमिरि साध, आपै गत होई ।।टेक।।
बिकट बाट बहुत घाट, मारगि मरि चलना ।
कोटि माहिं एक जाहिं, अरि अनन्त दलना ।।
अचल चाल नाहिं ख्याल, गवन गुननि न्यारा ।
यहु बिचार आप मारि, चलै चलनहारा ।।
अति अपार हरि दीदार, बीचि बिघन भारी ।
रज्जब कोइ एक जाइ, देही गुन मारी ।।११।।

* राग भैरूं *

मार भली जे सतगुर देइ ।
फेरि बदल औरै करि लेइ ।।टेक।।
ज्यूं माटी सिरि करै कुम्हार, त्यूं सतगुर की मार बिचार ।
भाव भिन्न कछु औरै होइ, ताथे रे मन मारन जोइ ।
जैसे लोहा धड़ै लुहार, कीट काटि करि लेवै सार ।
सूंजै मारि मिहरि करि लेइ, तौ निपजै फिर मारन देइ ।
ज्यूं साठी संकट मैं आणि, सोधी करै तीरगर जाणि ।
मनि तोड़न का नाहीं भाव, जे तुच्छ टुटि जाइ तौ जाव ।
ज्यूं कपड़ा दरजी के जाइ, टूक टूक करि लेइ बणाइ ।
त्यूं रज्जब सतगुर का खेल, ताते समझि मार सब झेल ।।१।।

ऐसा सतगुर बंध बताया ।
आपा मेटि मिलै हरि राया ।।टेक।।
ज्यूं अति नींद मिलै मन आइ, तब मन की रामति सब जाइ ।
जथा बबूलै आंधी मेल, तब ताका भागा भ्रम खेल ।
ज्यूं पाला गलि पाणी माहिं, तब रज्जब दूजा कछु नाहिं ।।२।।

सेइ निरंजन दीनदयाल ।
पेड़ परस पूजी सब डाल ।।टेक।।
स्यो बिरंचि सब देव दयाल, जेते सेया श्रीगोपाल ।
नबी साथि सब पीर पसारा, सेवग सहजा सबहुं पियारा ।
सिध साधिक सबही सुख पाया, जेते जीव जगतिपति धाया ।
भूल बिना डालौ सब नाहिं, रज्जब समझि लागि रसु माहिं ।।३।।

कलजुग कपट कर्म का रूप ।
पहरा पाखंडी भ्वै भूप ।।टेक।।
पाप प्रधान लोभ सोइ तसकर, अंग अग्यान अनंत उमराव ।
परपंच प्राण आण अनरथ की, भरम भुवन बरतैं यहु भाव ।।
कपटी केलि करैं कलि माहीं, खोटी खलक खुसी तिन संग ।
झूठ सु मीत सांच सो बैरी, ऐसी बिधि कलिजुग का रंग ।।

चाम दाम चालै यहि अवसरि, कोई वणिज करौ संसार ।
खोटे खरे न परखै प्राणी, गुण इंद्री गरजै सु बिकार ।।
लंपट चोर चौधरी दीसै, ठग ठकुराई कौं सु आज ।
जन रज्जब कलिजुग सो ऐसा, कैसे सरै सु आतम काज ।।४।।

* राग ललित *

गुरु गुन का कछु अन्त न पार ।
अलप बुद्धि का करौं बिचार ।।टेक
दुख दरिया दूजी दिसि टाले, सुख के संग याहि मैं डाले ।
बिबिधि बिलास बिषै फंद जारे, ये कारिज गुरू किये हमारे ।
भांति भांति के काटे साल, जन रज्जब गुरु किये निहाल ।।१।।

बिनती सुनौ सकल पति साईं ।
तौ सेवग पहुंचै तुझ ताईं ।।टेक।।
च्यंतामणि प्रभु च्यंत निवारौ, चरन कंवलि चित अंतरि धारौ ।
काम धेनि कलपतर केसौं, अंतरजामी मानि अंदेसौं ।
जन रज्जब की दीजै दादि, तुझ बिन और न आवै यादि ।।२।।

* राग बिलावल *

जिनि जिनि जब हरि नांव रटै रो । -
आदि अंति मधि मुकत भये सब, अखिल अभै धन प्रान खटै रो ।।टेक
आनंद आदि गये अघ ऊतरि, उर अंतरि यहु भाव डटै रो ।
सदा सुखी सांई सौं सनमुख, प्रेम पिया सौं नाहिं घटै रो ।।
अदभुत बात कहै को मुख तैं, हरि हीरौ हिय हेम जटै रो ।
मंगल मुदित मध्य मन माहीं, दुख दीरघ दिल दूरि छुटै रो ।।
कुसल कल्यान जीव को जुगि जुगि, जम के कागर कर्म कटै रो ।
जन रज्जब जग मैं नहीं आवै, जपि जगदीस संसार सटै रो ।।१।।

नांव निरंजन निरमला नर के मल धोवै ।
सकल पतित पावन भये, कोई जाति न जोवै ।।टेक।।
जैसे जल दल जगत की, तिस षुध्या मेटै ।
त्रिपति करै तिहुं लोक मैं, जा जीवहि भेटै ।।

ज्यूं औषधि दुख को दबै, सबहिन सुखदाई ।
बिथा बिलै बप बिकल है, पछ राख जुखाई ॥
ज्यूं बोहित बूझै नहीं, कोई बरण बिचारा ।
जन रज्जब कुल कोर कै, सबकौं करै पारा ॥२॥

महिमा सुणिये नांव की, साधौ श्रुति भाखी ।
जहां जहां संकट पड़े, सुमिरण की राखी ॥टेक॥
प्रथमि पेखि प्रहिलाद कौ, निज निरखौ रामा ।
भूत भजन की भीर की, भै भंजन रामा ॥
नांव सु दीपग राग है, जहि जोति प्रगासै ।
आन कष्ट कुल रागणी, तिन तिमिर न नासै ॥
नांव सु नर हरि जिव चहै, तन आतम रामा ।
रज्जब जप तप जोग जगि, यहु होइ न कामा ॥३॥

हरि हिरदै आया तबै, जब और न आवै ।
देखि दिवाइर कै उदै, तम ठौर न पावै ॥टेक॥
चंदणि चील न ठाहरै, जब गरुड़ गलारै ।
ऐसे अरि उर क्यूं रहै, प्रभु जी पांव धारै ॥
स्यंघ सबद सुणि जात है, सारंग सब डारा ।
त्यूं गुण गण त्रासै सही, हरि हेरि पियारा ॥
अगनि उदै होतौ उठै, गुण भार अठारा ।
रज्जब बिलै बिकार यूं, मिले राम पियारा ॥४॥

सोई साध सराहिये, जोई सक्ति न राता ।
मगन गलित गोव्यन्द मैं, गुर ग्यान सु माता ॥टेक॥
प्रथम पंच पावन करै, परलोक सु साधै ।
सुखदाई सब आतमा, अगाध अराधै ॥
राग दोष राखै नहीं, गुण औगुण न्यारा ।
परम पुरिष पूरै मतै, परमेसुर प्यारा ॥
भेष भरम भ्यासै नहीं, उर आतम दिष्टी ।
पंखि पानै परपंच लै, सब डारे पिष्टी ॥
सरग नरग संसै नहीं, तीरथ ब्रत त्यागी ।
आदि अंति सब सोधि करि, लै अबिगति लागी ॥

रज्जब राम पिछांणि ले, जो जोनिन आया ।
सारा साध सु सेइये, गुर ग्यान लखाया ॥५॥

सारा साध सु सेइये, परमेस्वर प्यारा ।
आदि अंति मधि एक रस, यह जु असवारा ॥टेक॥
फूटै मैं सारा रहै, बहतै मैं रहता ।
ऐसे अगम अतीत कौ, अंकूर सु लहिता ॥
अंजन माहिं निरंजना, निरगुन गुन माहीं ।
भगवन्त भगत एक सों, भल भाग मिलाहीं ॥
प्यण्ड ब्रह्मण्ड परै रहै, इल माहिं अकेला ।
रज्जब पुन्नि सु पाइये, मुनि मुनियर मेला ॥६॥

पतिब्रता के पीव बिन, कोई पुरिष न जाया ।
एक मनी उर एक सों, मन अनन्त न लाया ॥टेक॥
ब्रह्म वींद को बस करै, बामा ब्रतधारी ।
सदा सुहागिण संग रहै, परमेसुर प्यारी ॥
प्रेम नेम न्यारा नहीं, निज निरगुण नाहा ।
अगम निगम सुन्दरि करै, सत सील सु लाहा ॥
आज्ञाकारी आतमा, अबिनासी लागै ।
जन रज्जब रत राम सों, पूरन वड़ यागै ॥७॥

हेरत हूं हरि नाम तुम्हारौ ।
दीनदयाल दया कर दीजै, संतनि जीवन प्रानअधारौ ॥टेक॥
जीवन बिन जिव कैसे जीवै, ज्यूं पानी बिन मीन बिचारौ ।
चात्रिग च्यंत रही घन वरिषा, त्रिषावंत पिव पीव पुकारौ ॥
कारिज कहां सरै कहु कैसे, जे सीपहि नहिं स्वाति सहारौ ।
मन मोती कैसे करि निपजै, घन समुद्र अति आहि पसारौ ॥
बालिक दूध बेगि नहिं पावै, देही दगध होत परहारौ ।
जन रज्जब कैसे करि जीवै, नांव बिना यहु हाल हमारौ ॥८॥

जागौ जागौ जीव जनम जाइ, कौन नींद घोली ।
भजिये भगवंत राइ, तजिये माया उपाइ, ऐसौ तनि ठौर लाइ देखौ दृग खोली ॥टेक॥
सतगुर की सुनहु कानि, सांची जिय माहिं मानि, होती है परम हानि हारौ निरमोली ।
ऐसो अवसर बिहाइ करि लै कछु भगति भाइ, कांधे पर जम रिसाइ सीस सांगि रोली ॥

सूतै हौ कवन हेत, आये देखौ न सेत, टूटहिंगे मूंड बेत छांड़हु मति भोली ।
लालच कहि रहे लाग, दह दिस जम दीन्हीं आग, जन रज्जब जागि भाग होती है होली ॥९॥

भगति जाति कौं क्या करै, सुणियो रे भाई ।
बेटी सहारै बाप कै, जहं भेजै तहं जाई ॥टेक॥
नाम कबीर सु कौण थे, कुन रांका बांका ।
भगति समानी सब वरहु, संतनि कुल नाका ॥
लघु कुल द्योगू दीप थे, कीता सु कणेरी ।
भगति भेद राख्या नहीं, किन कै घर चेरी ॥
बिदुर बांदरा बंस से, सो भगति न छोड़े ।
नीच ऊंच देखै नहीं, मनमाने मोड़े ॥
आदि मिलीं जैसे देव को, रैदास समाणी ।
सो दादू घर पैठतौं, क्यूं रहै निमाणी ॥
रज्जब रोकी ना रहै, आज्ञा ले आई ।
राव रंक समि भगति कै, भाव धारचूं पाई ॥१०॥

* राग सोरठि *

मन रे राम न सुमिरचो भाई ।
जो सब सन्तन सुखदाई ॥टेक॥
पल पल घरी पहरि निसिवासर, लेखै मैं सो जाई ।
अजहूं अचेत नैन नहीं खोलत, आव अवधि सो आई ।
वाररु पाख बरष बहु बीते, कहि धौं कहा कमाई ।
कहत ही कहत कछू नहीं समझत, गति एकौ नहीं पाई ॥
जनम जीव हारचो सब हरि बिन, कहिये कहा बनाई ।
जन रज्जब जगदीस भजे बिन, दह दिसि सौं जग गाई ॥१॥

रे सुनि कोली प्रान हमारा, तू कर लै काम संवारा ।
कर गहि बैठि गजी बुणि लीजै, विरता भला तुम्हारा ॥टेक॥
नौसै पूरि निरंतर ताणा, भाव भगति करि भेवौ ।
मांडी मिहरि तेल तत निरमल, प्रेम छांट दै लेवौ ॥
बैठि बिचार सुणि फमी फहम की, सरब सूत भरि लीजै ।
मन चित लाइ किरित करि कोली, तार न टूटचा दीजै ॥

बाणै वाहि बस्त बित ऊंचा, ज्यूं उस हाटि बिकावै ।
लेऊ राम महा अति चौकसि, और न नीडे आवै ॥
ऐसे समझि बुणी रे बुणकर, फेर उलट नहीं आवै ।
रज्जब रहै राम घरि रेजा, दरस दाति बित पावै ॥२॥

मेरौ नाह निकुल निज ज्ञानी हो ।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, प्रगट गुपत नहिं छानी हो ॥टेक॥
अंतरजामी अंतरि देखौ, तासों कहा दुरानी हो ।
बक्त्र बनाइ कहै बिच औरै, यापरि अरज न मानी हो ॥
सरबंगी समझै सब ठाहर, जो नख सख मनि मानी हो ।
रज्जब रुचि भरि कैसे पावै, गति गोव्यंद नहिं जानी हो ॥३॥

* राग बसंत *

मति वाले रे मति वाले ।
निरमल भगति प्रेम रस पीवे, देह गलित गुन गाले ॥टेक॥
बिरह दरीबै भोजन बैठे, पल पल पीवै प्याले ।
बिलरे देह गेह सुख सम्पति, माया वोडण डाले ॥
भाठी भाव सुधा रस निकसै, सुरति मंडी तिस नाले ।
मगन होइ पंचौ मिलि बैठे, निमष सकैं नहिं चाले ॥
अहि निसि सदा एक रस लागे, बैठि इकंत निराले ।
रज्जब चरन सरनि तिन चेरा, ले रस रूप बिचाले ॥१॥

बसंत बन्यो खेलौ गोपाल ।
अंतरजामी सुनि दयाल ॥टेक॥
बप बन मारे राम राय, रमहु राम औसर बिहाय ।
पंच सखी करि रही सिंगार, रमौ राम लावौ नहिं बार ।
सब अंगन सरैं सकल काम, जान राइ जब मिलैं राम ।
तन मन मंगल के उछाह, जन रज्जब पाये सुनाह ॥२॥

रुति जाइ माधव रमि बसंत ।
यहु जोग जानि घरि आव कंत ॥टेक॥
औसर अजब अनूप वार, ताथैं सुंदरि ठाढ़ी करि स्यंगार ।
अब अबला का राखिये मान, यहु दरस पियासी देहु दान ।

सुन्दरि चाहै सेज संग, अंतरजामी दै उमंग ।
तब दरसन देखै अघाइ, यहु चरन निकट लीजै लगाइ ।
अति गति आतुर अहीं भाइ, यहु आयु अलप रजनी बिहाइ ।
अब नारी का निरखि नेहु, बिपति जानि हरि दरस देहु ।
दयास्यंध दीजै निवास, इस महा पतित की पूरि आस ।
तब तींबीसरि होइ भाग, जन रज्जब पावैं सुहाग ॥३॥

सुखी सुख सेज न चाहडी रे ।
सु देही दुख मांडी रे ॥टेक॥
न देवै प्रेम पियाला रे, कहावै दीनदयाला रे, करै किमि येतला टाला रे ।
न देवै अंग अयानी रे, सुनेह ना जीवनि जानी रे, सुसहुवै दुख निहानी रे ।
कहूं किन्हे दुखनी बातैं रे, राखै सेण संघातै रे, सु रज्जब बरणै जातै रे ॥४॥

* राग कान्हड़ा *

राजिव राम सनेही आवहीं ।
तन मन मंगल होइ परम सुख आनन्द अंगिन मावहीं ॥टेक॥
अधिक उछाह मुदित मन भरैं, चहुं दिसि चौक पुरावहीं ।
बलि बलि जाउं अघाउं न कबहूं, प्रेम मगन गुन गावहीं ॥
सकल सुहाग भाग सुन्दरि के, मोहन रूप दिखावहीं ।
जन रज्जब जगदीस दया करि, परदा खोलि खिलावहीं ॥१॥

कबै हौं देखि हौं हरि चरन ।
मन करम बचन जांव बलिहारी, जे पाऊं सिर धरन ॥टेक॥
सारंग भई सकल तजि सजनी, नांव रटन उर करन ।
तन मन सकल करौ न्योछावरि, जे आवै पति घरन ॥
सुरति सीप सांई सब लागै, नांव स्वाति ता सरन ।
जन रज्जब की बिपति दूरि करि, आइ मिलौ दुखहरन ॥२॥

भगति करि लेहु प्रानपति लाल ।
ऐसे समझि देखि उर अंतरि, और सकल तजि ख्याल ॥टेक॥
जिन जिन भगति करी केसौ की, ते सब भये निहाल ।
मन बच करम मानि मन ऐसे, नांव निकट गोपाल ॥

नांव नेह केते पति परसे, तोरि सकल जंजाल ।
ऐसे जाणि बाणि रटि रज्जब, संत मिले इस चाल ॥३॥

निह्चल को निह्चल ह्वै भजिये ।
चंचल मति चंचल सब तजिये ॥टेक॥
रह्तैं कौ रहता कै रमिये, मनिषा जनमि बादि क्यों गमिये ।
अस्थिर सौं अस्थिर ह्वै रहिये, बहते संग काहे कौ बहिये ।
पोतहिं पोत मिले तब सेवा, जन रज्जब भजि अलख समेवा ॥४॥

मन किन तजहु विषिया बट ।
हटक्यूं रहत नाहिं हरि हार्यो, विषै खेत खूंदे धरणी घट ॥टेक॥
मगन मुदित मन बहत दसहूं दिसा, राख्यो रहत न नांव निकट ।
श्रवनौ सुनत नाहिं मति मोरी, रोम रोम लागी रामहि रट ॥
चंचल चोर चरन निज भूल्यो, खलकहिं लाइ किये खाली घट ।
सतगुर साध बेद बुधि बरजत, दहै तहीं कहत सकृत निघट घट ॥
बिबिधि भांति मन कौं समझावत, इन न गह्यो सुंदरि सलिता तट ।
रज्जब र्‌यंद रूठि रह्यो हरि सौं, पुकारि पुकारि प्रान तोरी लट ॥५॥

अरे मन करि रे सूषिम त्याग ।
सतगुर सबदि समझि उर अंतर, मेलि मनोरथ भाग ॥टेक॥
आन अनेक च्यंत तजि चेतनि, परम पुरिष सौं लाग ।
सकल ग्यान गुन समझि सयाने, घामि दसौं दिस भाग ॥
सरग पताल जंजाल छांड़ि मन, तोरि जगत सौं ताग ।
अकल अनंत बिलोकिव चारहु, बिबिधि बासना दाग ॥
सुपिनै की सम्पति करि संग्रह, सब समझौगे जाग ।
जन रज्जब जगदीस भजन करि, जे सिर मोटे भाग ॥६॥

अरे मन भजि रे आतम राम ।
कारज इहै करौ मन मेरे, इहि औसरि इहि धाम ॥टेक॥
मनिषा जनम मानि मन माहीं, कहौ निरंजन नाम ।
पंचौ गुन पंचौं दिसि रमिहैं, करि लीजै निज काम ॥
ऐसे समझि तजौ मन मूरिख, गृह दारा धन धाम ।
जन रज्जब जगदीस भजन करि, बीते चारच्यं जाम ॥७॥

मन मानि सीख मेरी ।
त्रिगुन त्यागि नृगुन लागि, मनसा गहि फेरी ॥टेक॥
पंच बंधि अगम संधि, रैनि दिवस टेरी ।
सबसे केलि ब्रह्म मेलि, परम गति नेरी ॥
सकल झूठ देह पूठ, ग्यान नैन हेरी ।
रज्जब जोध मन प्रमोध, रिद्धि सिद्धि चेरी ॥८॥

मन ध्यंत च्यंत कीजै ।
अगम रूप तत अनूप, गोव्यंद भजि लीजै ॥टेक॥
जनम जाइ करि उपाय, छिनि छिनि छिनि छीजै ।
यहु बिचारि सुमिरि सार, अमृत रस पीजै ॥
सुनहु कान तजहु आन, सीस ईस दीजै ।
रज्जब सूर हरि हजूर, जुगि जुगि जुगि जीजै ॥९॥

पिय कै भाइ बैठी न्हाइ, बिगसत ज्यूं जाइ ।
नौसत साजे स्यंगार, पलक पाट खोले द्वार, देखन हरि चाइ ॥टेक॥
राखी रति सेज बानि, नख सख सब सौंज आनि,
प्यारे पीय कौ सुजानि, लागन कौं पाइ ।
खेलन के सकल साज, कामनि सब किये आज,
बोलन की छांड़ी लाज, वामहि रमाइ ॥
दीपक मन महल जोइ, ठाढ़ी पति ध्यान होइ,
कब आवत कहै कोइ, राइन के राइ ।
बिबिध भांति बाजैं नूर, प्रीति पंथ चौक पूर,
रज्जब धन है हजूरि, मिलिये प्रभु आइ ॥१०॥

तन मन तपति रहत निज नाहा ।
निस दिन दुखी पुकारत पिय पिय, दरसन देहु करत हूं छांहा ॥टेक॥
नख सख पीर धीर नहिं तुझ बिन, दीन दुखित दीरघ दुख दाहा ।
सकल कलेस लेस नहिं सुख कौ, लाल बिना नाहीं जग लाहा ॥
अंतरि अगनि जरावत जिव कौ, बिपति बिछोह बिघनि मैं बाहा ।
रज्जब रहति एक रंग कामिनि, चरन दिखाइ कंत बलि दाहा ॥११॥

परम प्रान सुखनिधान, रहत कौन थान ।
बिरहनि बेहाल लाल,अंतरगति बिरह काल,देखे बिन अधिक साल सुनहु पिय सुजान ।।टेक।।
कब की हौं दुखित राम, बीती निस च्यारि जाम,
तुझ पूरन सकल काम होत है जु हरि बिहान ।
गिलहु आह परम राइ, अति गति औसर बिहाइ,
हिरदै नहिं दुख समाइ, हारी प्रभु मान ।।
पिय बिन फीके स्यंगार, सूने गृह दुख अपार,
कुसुम सेज होहिं अंगार, दीरघ दुख आन ।
कासौं यहु कहै नारि, बैठी सब जनम हारि,
रज्जब कौं मिलि मुरारि, दीजै जिय दान ।।१२।।

मिहरबान करि असान, राखौ रहिमान ।
बदी बदकार फैल, दिल दरोग बहुत मैल, कैसे ह्वै सैर सैल, आवै क्यूं जान ।।टेक।।
तुझ बिन तालिब सुमार, पंचौ मिलि करि गुजार,
दरदबंद करि पुकार, सिकसता सु बिहान ।
कैसे करि गुजर होइ, जिकरि फिकरि नाहिं कोइ,
पहुंचै नहि कपट दोइ, देखौ दीवान ।।
दुसमन देखौ दिल मांहि, कबहूं नहीं दूरि जाहि,
बैठे औजूद मांहि, बैरी सैतान ।
सांई सुणिये फरियादि, बंदे की देहु दादि,
रज्जब हैं खाने जादि, हाजिर हैरान ।।१३।।

अहो देव नांव निरंजन तेरा ।
यूं प्राण पियासा मेरा ।।टेक।।
पिय दीन दया करि लीजै, निज नांव निरंजन दीजै, ऐसे प्राण पतीजै ।
पिय दीन दुखी यहु चाहै, कब नांव निरंजन बाहै, यहु जनम सुफल इहि लाहै ।
तुम दाता सुखदाई, यहु नांव निमित चलि आई, दिल देह निरास न जाई ।
पिय जनि जीवनि यहु पावै, तेरा नांव निरंजन गावै, जन रज्जब बलि जावै ।।१४।।

राम रंगीले कै रंगि राती ।
परमपुरिष संगि प्रान हमारौ, मगन गलित मदमाती ।।टेक।।
लागै नेह नाहिं निरमल सौं, गिनत न सीली ताती ।
डग गग नहीं अडिग उर बैठी, सिरि धरि करवत काती ।।

सब बिधि सुखी राम ज्यूं राखै, यहु रस रीति सुहाती ।
जन रज्जब धन ध्यान तुम्हारे, बेर बेर बलि जाती ॥१५॥

मुझे लागै नांव पियारा ।
सब संतनि कै जीवनिमूरी, मेरे प्रानअधारा ॥टेक॥
नांव नांव जग जिवनि तारि कै, भौसागर करै पारा ।
परदा तोरि प्रान पहुंचावै, दरसन का दातारा ॥
सब सुखरास बिलास बिमल रस, बिपति बिदारनहारा ।
जन रज्जब रटि नांव निरंजन, छिन छिन बारंबारा ॥१६॥

* राग काफी *

मुझै लागै नाम ही चंगा ।
नौखंड माहिं नांव निस्तारा, भगति मुकति ता संगा ॥टेक॥
जोगि जागि जप तप ब्रत नांवै, और न आवै अंगा ।
भरम करम करतूति कसौटी, बैठे नहीं दिल दंगा ॥
साध बेद गुर नांव दिढ़ावै, कहै ज्ञान की गंगा ।
जन रज्जब रुचि सौं रत नांवै, अहिनिसि भजत न भंगा ॥१॥

मुझ लागै नांव रस मीठा ।
और सकल रस रुचै न आतम, सकल रसाइन दीठा ॥टेक॥
तन मन सकल सौंज दे पायो, नांव निरंजन नीठा ।
परम पियास प्रीति सौं, पीवत प्रान पियूष सु ईठा ॥
हरि रस रसिक पिवत सिर ऊपरि, निडर निरंकुस दीठा ।
रज्जब सुमिरि सुधारस लागा, देइ जगत सौं पीठा ॥२॥

पीय हूं तेरे रंग रंगी ।
परम सनेह लग्यो मनि मेरे, सुणि सुणि गल्या चंगी ॥टेक॥
तन मन प्रान धरौ तुझ आगे, चूक न राखौ अंगी ।
सकल बंजाइ मोह माया मनि, सजण सांण उमंगी ॥
निस दिन अंग संग सुख पाऊं, सुनि अधार श्रवंगी ।
रज्जब धन तेरे रंग रंगति, दाइम काइम संगी ॥३॥

* राग कल्याण *

बिनती सुणिये हो निज नाथ ।
सलिता सकति बहावत आतम, इहि औसर गहौ हाथ ।।टेक।।
जोख्यूं जल सफरी सुसिसन सब, माहिं मगर मन मारनहार ।
गर्व मोह जलचर सु पचीसौं, बिरद बिचारौ बार ।।
त्रिगुन भंवर भयभीत तरंगै, संसै सोच संब्रूह सिवार ।
च्यंता तट धन ध्यान धारमय, रज्जब कीजै पार ।।१।।

दीन की सुनिये अरदास ।
प्रान पुकार करम करि केसव, काट कठिन क्रम पास ।।टेक।।
ब्रह्मा बिष्न ईश तेतीसौं, बसौं न तिनकै त्रास ।
आदि अंत मधि मुकति करौ तुम, यौं जीवहि बेसास ।।
और ठौर नाहीं ठिर ठाहरि, मोचन नौ ग्रह रास ।
जन रज्जब जिव जड़यो जंजीरनि, निरखत निकट निवास ।।२।।

काछि रे राम के आगै ।
करि लै निरति निरंतर निस दिन, और सकल संसारहि त्यागै ।।टेक।।
तन मन सकल सौंज सिर सहिता, ताहू मै बिकता बैरागै ।
यूं मन लेइ लाइ उनमन सों, ज्यूं चकोर चंदा हित लागै ।।
सब रस रहित रसिक रमितासौं, ब्रह्म बिचार बिषै सन भागै ।
परवनि पानि समान सुरति धरि, चरन कमल ऐसै अनुरागै ।।
ऐसे काछि निरंजनि आगे, अंजन नेह नींद सौं त्यागै ।
जन रज्जब जगपति यूं परसै, जाइ मिलै उस बिछुटै बागै ।।३।।

तीनि रूप आज्ञा अंकूरि ।
हरिमुख गुरुमुख मनमुख दूरि ।।टेक।।
हरिमुख हिरदै हरि सौं लागै, गुरुमुख गुरु संगति सौं जागै, मनमुख मूढ़ महा निधि त्यागै ।
हरिमुख हिरदै हरि का बास, गुरुमुखि ज्ञान गुणों परकास, मनमुखि जीव जनम का नास ।
अंकूर हरिमुखी है बस काल, गुरुमुख आहि अंकूर उन्हाल, मनमुख होत महा मधि काल ।
त्रिबिध रूप अंकूर पिछानै, हरिमुख गुरुमुख मनमुख बानै, जन रज्जब साधू सो जानै ।।४।।

* राग नट नारायण *

तुम बिन तुझसी कौन करै ।
और दान दत बैली बोरा, यापरि नाहिं परै ॥टेक॥
कलि कुल हीन निकाजिल आतम, सो प्रभु आप बरै ।
यौ अधिकार अपार अमित अति, सुर नर पाइ परै ॥
पाप प्रचंड प्रान मै पहले, सो हरि सकल हरै ।
महा मलिनि ऊजलि करि आछ्यो, अबिगति अंक भरै ॥
नर नारायन होत नांव बलि, सुमिरत एक करै ।
रज्जब कहा कहै यहु महिमा, सुत पित कंधि धरै ॥१॥

बिनती सुनिये सकल सिरताज ।
सब की आदि सकल प्रतिपालक, सदा गरीब निवाज ॥टेक॥
यौ अरदासि पासि प्रभु राखौ, सारौ सेवग काज ।
आतम रामहि कौन मिलावै, काहि कहै तुम बाज ॥
यौ अंतरि मेटौ इहि अवसर, अंतरिजामी आज ।
बारंबार बहुरि नहि लहिये, नर नाराइन साज ॥
त्राहि त्राहि कहिये कहि आगै, पुत्र दुखी पितु राज ।
रज्जब रुदन करूं करुनामय, बहौ बिरद की लाज ॥२॥

न्यन्दक नरक निवारत नरकौ ।
कहै अनीति अधिक अघ लागै, पातिग उतरत परकौ ॥टेक॥
ज्यूं सुरही सुत सो तनि चाटत, मुखि मल लेप न धरकौ ।
यूं निन्दक माता मत धारैं, काज करत घर घरकौ ॥
ज्यूं सूकर सति सूझ बिहूने, होत सुधारस हरकौ ।
त्यूं रज्जब न्यन्दक करि निरमल, धोवत कारो छिरकौ ॥३॥

मोसौं पतित न पापी और ।
प्रथम देह धरि नांव बिसारो, अरु तरुनी तन त्यौर ॥टेक॥
चरन बिमुख चूक्यो यहि अवसर, फ्ररत दसों दिसि दौर ।
देखौ हरत परत ह्वै हारे, सरग नरग नहिं ठौर ॥

अति अपराध क्रितघनी प्रानी, दे दे पायो कौर ।
सो प्रतिपाल पिछाणि पीठि दै, यहि चोरी भयो चोर ॥
बहुत ज्ञान गुन सिखे सांच बिन, गहत झूठ झक झौर ।
रज्जब कहै राम जी के तुक, सब गुनहिन सिरिमौर ॥४॥

मेरे मन मति हीन न मानी ।
सतगुर सीखि बिबिध परि दीनी, प्रगट कही अरु छानी ॥टेक॥
साधु बेद गुर साखि सुनावत, सुनि सठ दीनी कानी ।
अधम अज्ञान अनीत अंध गति, धरम मैंड सब भानी ॥
भांति भांति मन कौं समझावत, मनहु लीक लख पानी ।
सो गति समझि भई यह मन की, कहिये कहा बखानी ॥
नमो नमो हारे मन आगै, कौन कुमति है सानी ।
जन रज्जब जुग जुग यह जीव सू रह्यो ग्यंदगी ठानी ॥५॥

अलकहि कौन कलै कल माहीं ।
आदि अंत मधि महा पुरिष, सब पारहि पावै नाहीं ॥टेक॥
ब्रह्मा आदि बिचारत थाके, संकर सोच सरीरा ।
नारद सहित सकल सिध साधिक, कोउ न लहै तट तीरा ॥
सेस सहस द्वै रसन रटत नित, परम प्रमान न जाना ।
नेत नेत कहि निगम पुकारत, तेऊ है हैराना ॥
ख्याल परे खट दरसन खोजैं, कोऊ खबरि न पावै ।
अगम अगाध गगन गति गोव्यंद, रज्जब खग कहां धावै ॥६॥

प्रभु मेरौ पूरन है सरवंग ।
सेवग के संदेह दबन दुख दिखरावत रुचि रंग ॥टेक॥
चरन च्यंत तौ चितव चरन मै, सुरति किये सब सीस ।
श्रवन नैन नासिक मुख रसना, जितहि तितहि जगदीस ॥
भुज भावहि भगवंत भुजा भरि, उर रूपी वह अंग ।
पेट पीठि पहिचानि सु पावत, निकट सु न्यारे नंग ॥
नरकै नेह नकस नख सख करि, नाहिं सु नजरि दिखाये ।
जैसे सीत कोट सुनि अस्थल, रज्जब पेखि न पाये ॥७॥

आये मेरे प्यारे के प्यारे ।
दरसन देखि दृगनि सुख पायो, नख सख लौं ठारे ॥टेक॥
मंगलचार मुदित मन नेरे, मोहन म्यंत पधारे ।
अंगि अंगि आनंद अति बाढ़्यो, नेही नाहिं निहारे ॥
परम पुनीति प्रीतम पति पेखत, पावन प्रान हमारे ।
सुख सागर सौं सैन सनेही, मिलत महा दुख टारे ॥
प्रान सु पीव जीव की जीवनि, जोवत कारिज सारे ।
श्रीपति सहित सकल बसि जिनिकै, जन रज्जब सिरधारे ॥८॥

* राग जैतश्री *

दुखितवंत कारनि कंत ।
परम पीर मन अधीर, नौसत सब भूलै चीर, नैनौ नित श्रवत नीर, बिरहै बपु हंत ॥टेक॥
दीरघ दुख रह्यो छाय, दुसह अति सह्यो न जाइ,
कासौं यहु कहौं भाइ, बैरी मैमंत ।
दसवैं कुल लागि नाग, देखि सखी मेरे भाग,
प्यंड प्रान होत त्याग, नाहिं तंत्र मंत्र ॥
बीचै बीच बहुत मार, तन मन सिर बहत धार,
प्यारे पिय बिन पुकार, सूलनि जिय जंत ।
रज्जब धनि राखि लेहु, नारी को निरखि लेहु,
हरि उमंगि दरस देहु, लीजै नहीं अंत ॥१॥

पिय कै प्रेम बांध्यो नेम ।
दहूं दिसि पानी गंभीर, पीवै नहीं ताल तीर, चित चात्रिग जेम ॥टेक॥
अंतरगति यहु बिचार, परसै नहीं जग विकार,
सुमिरै हरि बार बार, मन माने मति पेम ।
अंबुज ज्यूं अंभ स्थान, मन मयंक रहै आन,
करै हो सु साधु पान, तन मन गति नेम ॥
सीप ज्यूं समुंद बास, बारि बूंद सौं निरास,
एक स्वाति सुरति प्यास, उर बोले नहीं हेम ।
रज्जब धनि धनि भाव, बरत बंधि चित चाव,
मंगल मन मध्य भाव, सकल कुसल छेम ॥२॥

गोव्यन्द राखि सकल नाखि ।
सतगुर की श्रवनि धार,बेदहूं बिलोकि चार,पंचन कौं पटकि मार,सब संतन की साखि ।।टेक।।

ऐसो कछु और नांहिं, सेवा समि जगत मांहिं,
जासौं अघ दोष जांहिं, निस दिन सो भाखि ।
जपि लै जीव जगतमौरि, अंतरगति अगम ठौरि,
आतुर दिन रैनि दौरि, पहलैं ही पाखि ।।
चरन कंवल बांधि नेह, जीवनधन सुमिरि लेह,
सुत दारा त्यागि गेह, अमृत रस चाखि ।
रज्जब भजि भानि भोल, भगति रूप आनि मोल,
दीजै मन नेग खोल, सौंधी सिर लाखि ।।३।।

गोव्यन्द पास सुख बिलास ।
श्रवन सुखी सुनत बैन,बदन जोति निरखि नैन,आत्म राम मिलत चैन,मगन मुदित दास ।।टेक।।

परम पुंज परत हाथ, बिबिधि भांति भरत बाथ,
सर्ब बोल साईं साथ, पूरन मन आस ।
जीव ब्रह्म बनत खेल, रोम रोम करत केल,
रस रूपी रेल पेल, पाये निधि बास ।।
सकल कुसल साईं संग, अति उछाह अंग अंग,
दरस परस ह्वै अभंग, जनम सुफल तास ।
जीवनमूरि हरि हजूरि, बिमल रूप प्रान पूरि,
रज्जब प्रगटे अंकूरि, आनन्द बारह मास ।।४।।

* राग धनाश्री *

आरती

आरती तुझ ऊपरि तेरी ।
मैं कछु नांहिं कहा कहौं मेरी ।।टेक।।

भाव भगति सब तेरी दीन्ही, ता करि सेवा तुम्हरी कीन्ही ।
मन चित सुरति सबद सब तेरी, सो तुझ लै तुझ ही पर फेरी ।।

आत्म उपजि सौंज सब्र तुझतैं, सेवा सकति नाहिं कछु हमतैं ।
तू अपनी आप प्रानपति पूजा, रज्जब नाहिं करन कौं दूजा ॥१॥

आरती आतमराम तुम्हारी ।
तन मन सेवा सौंज उतारी ॥टेक॥
दीपक दृष्टि गुरू की दीनी, घंटा घट धीरज धुनि कीनी ।
ध्यान धूप हित कौ कहि हारा, पाती पहुप अठारहि भारा ।
नख सख चन्दन नान्हां बांटै, केसरि करनी सोहरि छांटै ।
ऐसी बिधि उर अंतरि सेवा, जन रज्जब क्या जाणैं भेवा ॥२॥

आरती अवगति नाथ तुम्हारी ।
करि कहा जानै सुरति हमारी ॥टेक॥
अपणै पाट प्रभू आप बिराजै, सेवग उर आसण कहां साजै ।
पहुप पाणि अंगि अंगिनमावैं, हम कहां पाती प्रीति चढ़ावैं ।
जोति प्रकास सकल उजियारा, ज्ञान अगिन का दीपक जारा ।
सुन्नि सरोवर सलिल अनंता, काया कुंभ कहा भरै संता ।
अहिनिसि अनहद गोपि सु गाजै, घंटा चामीधर कहा बाजै ।
सकल सौंज साई कन सांची, रज्जब आरती करहि सु काची ॥३॥

आरती कहु कैसी बिधि होई ।
सौंज सिरोमणि सारी खोई ॥टेक॥
प्रथमि पाटि उर बैठे औरे, परमपुरुष कौ नाहीं ठौरे ।
बामा बापु बही बिचि आई, ज्ञान दीप दिल दिया बुझाई ।
स्वाद सिला परि घंटा फूटी, पवन चंवर डांडी श्रुति छूटी ।
पाती प्रीति पहम परि डारी, फहम फूल की माल बिसारी ।
च्यंता चौरि लियो चित चंदन, क्यूं कीजै अरचा प्रभु बंदन ।
ठाकुर खड़े खोड़ि कौ खड़िया, खोस्यो खल खट पैंड़ा पड़िया ।
रज्जब मांगे सौंज सु दीजै, अंतरजामी आरती कीजै ॥४॥

यूं आरती गुरू ऊपरि कीजै ।
जामे आतमराम लहीजै ।।टेक।।

ज्ञान ध्यान गुरु माहैं पाया, बिषम विषय सो प्राण छुड़ाया ।
दुख दरिया माहैं तैं काढ़्या, नांव जहाज जीव लै चाढ़्या ।
माया मोह काटि मन धोवै, परम पवित्र गुरू तैं होवै ।
जिनि अंगौ प्राणपति सेवै, ते सब अंग गुरू दिल देवै ।
जन रज्जब जुगि जुगि बलि जावै, गुरु परसादि परमपद पावै ।।५।।

पद भाग समाप्त ।

रज्जब जी द्वारा रचित—

सवैया भाग

श्री स्वामी दादूदयाल जी की भेंट का सवैया

निरपषि निज का अंग

भगवान जु भावै नाहिं बिभूति लगावै नाहिं पाखंड सुहावै नाहिं ऐसी कछू चाल है ।
टीका माल मानै नाहिं जैन स्वांग जानै नाहिं परपंच प्रबानै नाहिं ऐसो कछू हाल है ॥
सींगी मुद्रा सेवै नाहिं बोध ब्रिधि लेवै नाहिं भ्रम दिल देवै नाहिं ऐसा कछू ख्याल है ।
तुरकी तौ खोदि गाड़ी हिन्दुन की हद्द छांड़ी अंतरि अजर माड़ी ऐसो दादूलाल है ॥१॥

निरपषि निज अंग मिलै न काहू के संग रंगे जु हरी के रंग हृदय हंस ज्ञान है ।
चाल माहिं चाल काढ़ी दोऊ पष रही ठाढ़ी लांबि ले अधिक बाढ़ी प्रबीन बिनान है ॥
नीच ऊंच छांड़ी दोइ आत्मा लई जो जोइ ऐसी बिधि रमै सोइ अधिक सयान है ।
कबीर जैसे पंथि धायो कीट भृङ्ग होइ गायो ऐसी बिधि पति पायो दादू जी सुजान है ॥२॥

बाइ ये बन्धन स्यन्द निकन्दन ये कल मल अमिट करारौ ।
रजापति साहि गये जब बाहि अटै न मिटचो कहु खेत जुझारौ ॥
चली सब हद्द सु आये बेहद्द फोर कियो द्रुहु बीच दरारौ ।
रही रज रेष सुनी ससि सेष हो ऐसो भयो कलि दादू पजारौ ॥३॥

हलै न चलै न पिलै न ठिलै, ऐसो रोपि रह्यो बलिवंत बिहारी ।
अटचो न मिटचो न बटचो न लुटचो, अज मायार मानि गये पचि हारी ॥
हलायो चलायो डुलायो न डोलई, देखहु साध सुमेर ते भारी ।
हो दादुव साधुव आदि अनादि, सिरोमनि देखि भयो बलिहारी ॥४॥

दयो हरि आज गरीब कौ राज मिल्यो सब साज हो छत्र छबीले के सीस बिराजै ।
जहां लग भान तहां लग आन अगम्महु जान सबद निसान प्रगट बाजै ॥
उठे सब साल दयूं अरि काल रह्यो बिचि लाल हो ग्यान गयंद चढ़चो सिरि गाजै
हो दादू को राज गरीबनेवाज अनाथ के लाज हो रज्जब रंक के पूरण काजै ॥५॥

नौलख तारे को तेज गयो चलि, एकहि सूर की तावहिं देखत ।
बाजे अनेक गये सुनिबेसौं जू, एकहिं यन्द्र की घोरहिं लेखत ॥
यूं लोग अनेक अकेलो है दादू जी, एकहु अंट घने खत छेकत ।
कोटिक गाइ गई जु दसौं दिसि, एकहि स्यंघ की आंख्यूं पेखत ॥६॥

मन से मयमंत उछारे अकास कौ, फेरि परै नहिं ऐसे तै नाखै ।
नौ कुली नाग ज्यूं कीलि करंड मैं, ऐसो प्रकार इंद्री अटि राखै ॥
सरीर सरोवर सूर ज्यूं सोखै, मनौ दरियाव अगस्त ज्यूं चाखै ।
हो दादू दयाल कहूं कौन वोपम, मेरे बिचारि बयेन मैं भाखै ॥७॥

एक के एक किये जु अनेक सौ, पेखि पुरातन सोधि सगाई ।
अनंत अनीति उठाय उरहु सौंजी, आतम राम कै पंथि चलाई ॥
नारि पुरुष कौ नेह रह्यो जगि मानौ हनौ तनै हांकि सुनाई ।
हो रज्जब दादू के काम न की कछु ब्योरि बिचारि कही नहिं जाई ॥८॥

बेद कुरान कौ बोध बिलोक, भरंम करंम मैं नाहिं बह्यो है ।
भेषर पक्षि रहे सब लक्षि, गये सब झक्षि निरखि निरंजन पंथ गह्यो है ॥
औतार अपार गये केइ बार, सु देखि तिन्हौ दिसि नाहिं चह्यो है ।
हो रज्जब रत्त अनंत अनूपम, दादू न दूजे को दंड सह्यो है ॥९॥

मरेहु जरे सु करे जु कटाछि मैं, छाया छबीले की तेहू न छीने ।
नांव न ठांव न गांव न ज्ञान मैं, तेउ जी चंत्रक ज्यूं सब बीने ॥
बहेहू रहे जु अहे अपने कर, काल के गाल से सो गहि लीन्हे ।
हो दादूदयाल कृपाल कृपा करि, रज्जब देखि अचंभे जु कीन्हे ॥१०॥

दादू सो दान नहीं दृग देखत दुंग दलिद्र कौ तोरनहारौ ।
रंक सो रान भये दिसि देखत, आपद फेरि तक्यो नहिं द्वारौ ॥
जु जासु कृपा करि ते भये ईसुर, नांव सो बित्त चढ़्यो कर सारौ ।
हो रज्जब संत सुखी सब मंगित दादू मिलै मन मंगलचारौ ॥११॥

नांव की ठांवर नीति को आगर, ज्ञान की गंग बहै मुखि मागै ।
सांच सींव सुदिढ़ सुमेर सौ सील की साल मंडी मुख आगै ॥
समाइ समुंद्र सुगंध कौ चंदन, पारस रूप मन करम लागै ।
हो रज्जब राम दयो दत दादू कौ, अंग अनंत बड़े बड़भागै ॥१२॥

वोपमा अनंत भाइ, काहू पै कही न जाइ,
कहै कहा जन बनाइ, कौन अंग कै समान दादू जी बखानिये ।
यंद चंद है समुंद, येक येक माहिं दंद,
तहां न आनंदकंद, मांड मैं सोभा समानि कौऊ नहीं जानिये ॥
पारस पोरस न सति कामधेनु पसू गति तिनमैं नहीं भजन मति,
सतगुर समि सति रूप इनमैं क्या बानिये ।
सु कछु नाहिं जगत माहिं पटंतर कौ कहै जाहिं,
तेब त्रिगुन मैं समाहिं जन रज्जब गुर गोव्यंद मन करम मानिये ॥१३॥

दादू गुरू के गुनौ नहिं अन्त, जु कौन समानि सो अंग बखानौ ।
उरै उन्चासि सु औनि अंकूर, नछित्र न आगे नहीं नभि जानौ ॥
बूंदनि छेह बरसि बिरारत, नीरही तीर समुंदि समानौ ।
हो रज्जब आभहुं वोर रुति गति, मौन को पार बहंत बिलानौ ॥१४॥

बीनती कौन करै तुम सेती जु, कौन के भाव भयो तुम लाइक ।
कौन कला गुरदेव बुलाइये, कौन कै मुखि बन्यो ऐसो बाइक ॥
कौन कै प्रीति प्रचंड भई उर, जापरि गौन करै गछ नाइक ।
रज्जब रंक रिझावै कहां कहि, आप सौ जानि चलौ सुख दाइक ॥१५॥

बीनती बिकट बात कैसे करौं गुर तात, सु कछु न मुख जीभ जाहि कै बुलाइये ।
तैसी नाहिं भाव सेव जाहि रीझै गुरदेव, प्रीति पानि कौन आनि ठौर तै हलाइये ॥
सर्ब अंग हीन दीन चाकरी कदे न बीन, कौन भांति मान तान जोर कै चलाइये ।
कहत कह्यो न जाइ रज्जब रह्यो न जाइ, दादू जी दयाल होइ पयानौ दिलाइये ॥१६॥

दादुर पिक मोर सीप यंद आस सकल दीप, चाहैं सब सुख समीप जीवनि जगि भावै ।
तिन तरु बेल्यो बिलास किरनि कुसुम कष्ट नास, चाहैं जु चकोर दास कब मयंक आवै ॥
चकवा चकवी सुम्यंत दृष्टि इष्ट कंवल कंत, रबि प्रकास रयन अन्त जगत कौ जगावै ।
तैसे दादूदयाल कीजै सब की संभाल, दरस परस ह्वै निहार रज्जब सुख पावै ॥१७॥

सेवग संतोष काज परमपुरिष आये आज, पुरये सम सत्ति काज पावन मन कीने ।
जिनको जिनूकी लाज सो पधारे सीस ताज, उपजै आनन्द राज पाप पुंज छीने ॥
बैठाये नांव जहाज दिये हैं सकल साज, पूरौ की पूरी निवाज राम नाम दीने ।
दीसै दीरघ साज दादू गुर गृह बिराज, संकट दुख सकल भाज अपने कर लीन्हे ॥१८॥

दादूदयाल के संगि सदा, दलि राम रंगीले दसौ दिसि ठाढ़े ।
जिनकै प्रताप प्रपंच गये भजि भेष, भरम से मांड सो काढ़े ॥
महां परचंड निसंक निरंकुस, सरगुण रूप सु सीस न चाढ़े ।
रहत्ति कहत्ति सबै बिधि समरथ, रज्जब राम भजन सौ गाढ़े ॥१९॥

दादू जी मात बुलाये पिता, हरि बालिक बाल सु गोद सो डारे ।
सांई समीर लयो घन दादू, चहूं दिसि चात्रिग चित्त पुकारे ॥
आदित आप सरोवर दादू जी, सोखत ही सफरी सिष मारे ।
हो दादू के गौनि दुखी सिष रज्जब, प्रीति प्रचंड सु अंतरि जारे ॥२०॥

दीनदयाल दयो दुख दीननि, दादू सी दौलति हाथ सो लीन्ही ।
रोस अतीतनि सौंज कियो हरि, रोजी जो रंकन की जगि छीनी ॥
गरीबनेवाज गरीब हते सब, संतनि सूल अती गति दीन्ही ।
हो रज्जब रोइ कहै यहु काहि, जु त्राहि जु त्राहि कहां यहु कीन्ही ॥२१॥

गरीबदास जी की भेंट का सवैया

दादू के पाटि दिपै दिन ही दिन, दास गरीब गोव्यंद कौ प्यारौ ।
बालजतीर जनम को जोगी, जु सूर सधीर महा मन सारौ ॥
उदार अपार सबै सुखदाता, हो संतनि जीवनि प्रानअधारौ ।
हो रज्जब राम रच्यो जिय जानि कै, पंथ कौ भार निबाहनहारौ ॥१॥

दादू प्रसाद पुरातम चीरी, गरीबी की गोइ गरीब कै साथि है ।
तीषै तुरंगि चढ़चो मनि चेतनि, ज्ञान चौगान सु हेत के हाथि है ॥
काया मैदान बंदगी बंटौ लये, सोइ जाइ सु संतनि आथि है ।
हो रज्जब पंच पचीस न पूजै, भई हरिहुं हद दई दीनानाथि है ॥२॥

गरीब कै गरब नाहिं दीन रूप दास माहिं,
आये न बिमुख जाहिं आनन्द कौ रूप है ।
दादू जी के पाट परि बैठायो जु आप हरि,
उपज्यो सु बीर भरि भगति भौमि भूप है ॥
यौवन मैं राख्यो जत पूजवान पूरि मति,
राम रंगि प्रान रति निरमैला निकूप है ।
आतमा कौ रच्छपाल पठ्यो दीनदयाल,
पंथ कै तिलक भाल रज्जबा अनूप है ॥३॥

गुरदेव का अंग

सीर सतगुर मैं सब सिक्षन कौ, नीति की बात कही निरताई ।
साझौ दयो गुरदेव सु ज्ञान मैं, भाव भगति की खानि बटाई ॥
दृष्टि सो दान दियो दत दीरघ, जोति मैं जोति लै जोति जगाई ।
हो रज्जब मेल्यो सुभाग मैं भाग, तो छाजन भोजन की कहा भाई ॥१॥

बिरह का अंग

उठी उर जागि बिरह की आगि, गई मन लागि भई तनि कारी ।
पीर प्रचंड भई नवखंड जु, बीचि बिहंडि गई सुधि सारी ॥
भई चकचाल कहै बिकराल, नहीं कछु हाल सु लाज बिसारी ।
हो रज्जब रोइ कहै पिय जोइ, दुखी अति होइ बियोग की मारी ॥१॥

हो पीय बियोग तजे सब लोग, न भावहिं भोग भई बनबासी ।
जु भूषन भंग दिगंबर अंग, रंगी इहि रंग अनाथ उदासी ॥
बैराग की रीति गई तन जीति, भई बिपरीति दुखी दुख त्रासी ।
हो रज्जब राम मिले नहिं बाम, गये सब जाम कहो कब आसी ॥२॥

दुखी दिन रात परी बिललात, कहूं किस बात जनम की जाती ।
जु मांड के सुख भये सब दुख, बिना पीय मुख बिगसत छाती ॥
गई सब बैस न आये नरेस, जु याही अंदेस परी उर काती ।
हो रज्जब कंत सु लेत हैं अंत, जु हेत सो हंत जरी जिये जाती ॥३॥

परी झर माहिं निकसत नाहिं, बिना बरबाह कहौ कहा कीजै ।
होसा उसास रहै तिस पास, जु देखि निरास नहीं धर धीजै ॥
पल पल पीर सु होत गंभीर, धरै कहा धीर छिन छिन छीजै ।
हो रज्जब रट्ट भई जरि मट्ट, जु पीय परट्ट दरस न दीजै ॥४॥

हो ब्रह्म बियोग ब्रह्मंड मैं सोग, लयो जिय जोग सबै दिसि रोवै ।
नहीं नमि धीर परै बहु नीर, सही उर पीर घटा तन खोवै ॥
फिरै ससि भान समीर समान, रहै नहिं ठान दसौ दिस जोवै ।
गिरै गिरधार कहै पतझार, सु पोसहिं बार क्यों रज्जब गोवै ॥५॥

हरि बियोग बिघन मूल अंतरा अनंत सूल,
पति परदै पाप मूल मन बच क्रम मानी ।
बिरचि बींद बिपति हाल गुपत कंत कीन्हो काल,
सनमुख नाहीं मु साल सुन्दर जिय जानी ॥
अबोलनौ अनी सु सार पींठि बहत धार,
मन मरोर मीच मार या समि नहिं आनी ।
दीरघ दुख दिल न ठौर तुपक तीर तरक त्योर,
बैन बाग कहत और रज्जब धन भानी ॥६॥

सवैये सूरातन के

जे पर सूर लहै सु महूरत, साहिब संग तहां सिर डारै ।
बाहर देखि खरौ तेहि ठाहर, सूर संग्राम मरै अरु मारै ॥
सरीर कौ सोच करै न डरै कछु, आरनि माहिं अरचूं ललकारै ।
हो रज्जब राम कै काम तजै, तन ताहि निरंजन नाथ बधारै ॥१॥

सबद की सांगि लगी जेहि आंगि, सु मारहु वो सोइ स्वादहि जानै ।
ज्ञान की चोट रही नहिं ओट, हो हाथ लहीय परचूं पहिचानै ॥
सुबुद्धि को सेल गुरू गहि मेल, हो मारि लियो महा चंचल पानै ।
परचो सोइ घाव गिरचो मन राव, हो रज्जब पैड़ै न छांड़हि थानै ॥२॥

सिंहिनी सुमति काढ़ि जे हलै जुगति चाढ़ि,
बैन बान धाई बाढ़ि सतगुर साहई ।
कपट करम फोरि कुमति करी कौ तोरि,
नीकस्यो पैलीजीवोरि ऐसे कसि बाहई ॥
निज ठौर लागौ तीर लायो जी बमेकी बीर,
लागत रही न धीर पानीहूं न चाहई ।
ऐसी विधि मारचो बान तन मन कियो घान,
अंतरि बेध्यो जु प्रान रज्जब अज्जब चोट रह्यो खेति नाहई ॥३॥

गम्भीर धीर बिरचि बीर, खेत मैं गलारई ।
रोपि पांव जुद्ध चाव सूर बीर आये दांव आप मरै मारई ॥
सरीर की सुरति छांड़ि मित मैं अमल चाढ़ि, पिसण जाण तेग काढ़ि फेरिहूं न बारई ।
जु त्याग दे सरीर धाम रज्जबा सु राम काम, राखई जु एक नाम सो कदे न हारई ॥४॥

सूर स्यंघ छेरे खाइ तासों न कीजै उपाइ,
देखत बिहंडि जाइ सो न जुद्ध कीजिये ।
दारू के भुवन माहि पावक ले संगि जाहिं,
तिनकी जु आस नांहिं बादहीं जरीजिये ॥
हिमगिर कै लागि कोटि देत हैं निसान चोटि,
उबरैंगे कौन वोटि देखै तैं गरीजिये ।
तैसी बिधि ह्वै अयान साधु सों न मांडि ज्ञान,
रज्जब की सुनहु कान च्यंतामनि मधि माग काल कौ न लीजिये ॥५॥

भजै संसार लगै न पुकार न होइ करार, लहै न बिचार हो नांत्र अपार सु एक लहैगो ।
पंषी हजार उड़ैं सब डार सु आवनहार, रहै न करार अकासि अनल ज्यूं एक रहैगो ॥
चले बहु संग सु देखन जंग न आवै अंग, ह्वै मूरति भंग सती ज्यूं सलौ कोइ एक गहैगो ।
चले बहु पूर सु बाजहिं तूर गये भग भूर, रहे रन सूर हो रज्जब राम कोइ एक गहैगो ॥६॥

साध का अंग

साध की दृष्टि सो साध को देखिये, जे होहिं आष सौं आषिन सानी ।
दीप उदीप सो दीपक पेखिये, प्रान पतंगनै जोति यूं जानी ॥
चन्द्र कराति लखै चषि चन्द्रहि, चारि चकोर सुधा रति मानी ।
हो रज्जब सूरहि सूर दिखावत, बात प्रगट रहै नहीं छानी ॥१॥

संत प्रताप मिलै जिव संतनि पाव पसाव बिना नहिं पावै ।
कंवलि की बासि गई बसली कन संगि सुगंध तहीं अलि आवै ॥
सीतल अंग महा श्रिक सौरभ पाइ परमल कौ अहि धावै ।
हो रज्जब देखिहै स्यो बल चंबक सूती हुई श्रुति अंगहि लावै ॥२॥

साध मिलै तौ सुधा रस पीजिये आतम आनन्द होत अपारो ।
ज्यूं ससि देखि मुदित प्रमोदनि कूची लागै खुलै जु किवारो ॥
हो सीप को संपुट स्वाति सों ऊधरै रोजो खुलै जब देखिये तारो ।
रज्जब रैनि गई चकवा की ज्यूं आइ मिल्यो मानो सूर पियारो ॥३॥

साध समागम होत ही पाइये राम कौ नाम सिरोवनि साचो ।
निरमल ज्ञान गोव्यन्द कौ ऊपजै कंचन होत पलट्र कै काचो ॥
तामहिं फेर न सार मन करम साध कै संगि कोई नर राचो ।
हो रज्जब सुख सदा सतसंगति जीवहि लागै नहीं जम आचो ॥४॥

पाप प्रचंड कटै सतसंगति पानी पषान सों पाप न जाहीं ।
चंदनि संगि सुगंध बनी सब नीब सुगंधि न बागहु माहीं ॥
चंबक चाहि सुई सब चेतनि सों बल और पषानहु नाहीं ।
पारस लागि पलट्टत लोह ज्यूं रज्जब त्यूं न सुमेर सिलाहीं ॥५॥

साध सबित्त सो काम सरै सब, नाहीं अबित्त सों कारज सीझै ।
समीर सरोवर प्रान सुखी सब, सूके सरोवर में कहा पीजै ॥
बरिषत बारि भले सोइ बादर, नाहिं जु नीर घटा कहा कीजै ।
हो रज्जब थाह सु पाथर प्यारो, पै नीर सु थाह पषान न लीजै ॥६॥

सुध बुध आप भजै भगवंतहि श्रेष्ठ काज अनन्त के सारै ।
बिप्र की मीच भई अपने जिव सूर संग्राम किते नर मारै ॥
पावक आप पचै जु पतंग हो चूहे की आगि घने घर जारै ।
हो रज्जब पान तिरै अपने अंग बोहित बीर बहुत बप तारै ॥७॥

साध मिलाप मंगल उछाह का अंग

देस दसा धनि भोम सु अस्थल, जापरि जीवनि संत बिराजैं ।
दरस परस कटैं सब पातिग, काल जंजाल निरखत भाजैं ॥
प्रेम कथा सुनि होसि सुखी, सत्र नांव निसान प्रगट बाजैं ।
हो रज्जब भाग उदै मिलि साध सो, संत प्रताप सदा सब गाजैं ॥१॥

ज्ञान के थान बमेक के बासन, देस कया के दया करि आये ।
आनन्द के कन्द बिलास की रासि, सुखहु के समंद सभाग सौं पाये ॥
भगति की भोमि भंडार भजन के, पेम कै पुंज मिले मन भाये ।
प्रान के प्रानर जीव की जीवनि, रज्जब देखि दरस अघाये ॥२॥

उत्तिम ठौर अतीत को बासौ जु, साध समाइ न मद्धिम कै घर ।
मानसरोवर सी निधि छांड़ि कै, हंस रहे कत आइ थली पर ॥
बिबिधि प्रकार के बाग त्रिना अलि, केतग बेर ह्वै कैर कली हर ।
कोकिल कीर आबै रचै रज्जब नाहि समान न आकहु केसर ॥३॥

उपदेस का अंग

आप सौ होइ सुतौ कछु कीजिये, जोब न होइ सु राम कै सारै ।
सूर सु दोस न नैंन मुदे परै, जौलौं न प्रान पलक उघारै ॥
मेघ सौं मान कहौ कहा कीजिये, जो खेत की सौंज किसान धारै ।
हो रज्जब त्यों सुनि सुक्रित बाहिरै, साहेब साध कहौ कैसे तारै ॥१॥

आनन काढ़ै सो सार ह्वै सीतल, सार की आगि सु ओषदि मारिये ।
बंबूर कै बीछरैं बीज ह्वै चीकनौ, बीच अंकूर सु पावक जारिये ॥
सालरि बाढयो रही बढ़िबे सौं जु, उगिबौ जाइ जे छूत उपारिये ।
हो रज्जब सुख कुटंब के छांड़े, कुबुद्धि के छांड़े सो कारज सारिये ॥२॥

सरीर कौ नास करै सन्यासी जु, जोगी सोई जुग जुगति सारै ।
दरबेस सोइ जहि देह न व्यापै, बोध सोइ जु बप्प बिसारै ।
भगत सोई सब भूलै बिना हरि, जैन सोई जोइ जीव उधारै ।
ऐसे गिनान मिलै भगवंतहि, रज्जब राम न स्वांग सो तारै ॥३॥

देह धरे तन मैं मन निहचल, तीन प्रकार परगट पेखतु ।
अति गति सीत सरोवर बेधत, पानी पषान सो आहि बसेखतु ॥
ज्यूं असु उभौ रहै जटि चंबक, चातर दौर नहीं कछु देखतु ।
मूसौ ज्यूं पारौ पिये पग पंगुल, रज्जब राम न रसै लिय लेखतु ॥४॥

नींद के नेह नृमूल भयो नर, सास उसास की चाल न थाकी ।
पंथी को प्रान परयो तम नींद है, पाइ सु दृढ़ रहै रूपि साखी ॥
राहर केत ग्रसै ससि सूरिज, चालनि साल रहै नंहि राखी ।
हो रज्जब प्यंड ने प्रान गह्यो, यो लै नग हींजि जियो जहि बाखी ॥५॥

जे परि साधू कै सांची जु उपजै, तौ कहां मायार मोह करैगो ।
ज्यूं ससि सूर घटा मधि ऊगत, तौब कहां कछु आभै अरैगो ॥
कंवल को बाल परयो पगि हाथी के, तौ कहा बैरी कौ काम सरैगो ।
जेर सुमेर समुंद मैं डारिये, रज्जब सो धरि जाइ परैगो ॥६॥

एक को ठौर सही उर अंतरि, माया रहै भावै ब्रह्म बिचारै ।
ज्यूं मुख कीरी कै येक कनी को जु, दूजौ गहै जब दारू ह्वै झारै ॥
तिनै परि बूंद रहै सुनि एकहि, तापरि और कहौ कैसे चारै ।
हो ज्यूं कि ह्वै बाइ तरंग ह्वै त्यूं ही की, रज्जब साम्हो हिलोरौ न मारै ॥७॥

हीरे के दीवे सों आगि न लागै, जु चित्र को स्यंघ कही कहु खाई ।
जरी जेवरी सों प्रसंग जग बुनै कोऊ, बिभंम कै नीर कहा तिस जाई ।।
मक्री कै सूति सितारौं न नीपजै, सीत के कोट को ओट रहाई ।
हो रज्जब साधु को लोग न चाहैं, जगत्र को संत कहा करै भाई ।।८।।

सुकृत का अंग

देत ही देत बयो जु उगावत, भावत है भगवंत भलाई ।
कृपाल कबीर दई निज दोवटी, ताही तैं ताकै जु बारदि आई ।।
धान की पौड धनै दई बिप्रहि, बीज बिना सु किरषि न पाई ।
हो रज्जब रंग रह्यो दियदान जु, दादूदयाल पईसौ दे पाई ।।१।।

समिता निदान का अंग

जैन जोग अरु सेख सन्यासी, भगत बोध भगवंतहि धावै ।
बोवत बीच परै धर क्यूं हो, अंकूर उदै होइ ऊंचे ही आवै ।।
नौ कुली नाग परे नौखंड मैं, पंथ लहै सोइ चन्दनि जावै ।
दसौ दिसि नीर बहै सलिता सब, रज्जब सोई समंद समावै ।।१।।

काष्ट लोह पषान की पावक, एकहि रूपर एकसी ताती ।
बृच्छ अठारह भार बहू बिधि, प्रान कै पान मधुर मधु जाती ।।
मंच अनेक अनेक ही जाति के, या मत एक जु नीर संघाती ।
हो रज्जब राम कौ नाम भजै जु, सु आतम एक जु एक सौं राती ।।२।।

साध के सुद्ध भये मन पंचौ, तौ जाति कुजाति को बंक न कोई ।
चंदन बंक भुवंग न भागई, चंद की बंक चकोर न जोई ।।
बंक बुरी नहिं ईख जलेबी की, स्वाद कै संगि गई सब खोई ।
हो रज्जब बंक बिचार न बोहित, जापर प्रान पारंगत होई ।।३।।

जाति कुजाति भई सम सारिखी, नांव निरंजन मैं जब आये ।
तांबेर लौह को अंतरभागौ जी, कंचन होत है पारस लाये ।।
भार अठार ज्यूं आंबर अंक लै, चंदन संगि सुगंध कहाये ।
हो रज्जब आगि मैं आगि भये सब, काष्ठ के कुल भेद जराये ।।४।।

जाति कुजातिर उत्तिम मधिम, जाति कै जोरि न जोति को ज्वैहैं ।
बैरी भली नहिं सोनेर लोह की, पाइ परै कहु पंथन ह्वैहैं ॥
नींद को नास न जौन अंधेरी मैं, सूर बिना सुख नींदहिं स्वैहैं ।
हो रज्जब राम मिलै नहिं ऐसे जु, जौलौं न प्रेम कौ बौहड़ौ ब्वैहैं ॥५॥

हींदू की हद्द न ताब तुरक्क की, मुद्रा की मानि न मौनि सुहावै ।
मालान मेलत जीत सबी सब, गेरून गति भसम न भावै ॥
गूदड़ झूठ नंगि गनहिं कछु, मूढ़ मुगद सु मूंड खुसावै ।
पषापष प्रीत न भूलै सभेषौ, रज्जब राम रटै सोइ पावै ॥६॥

कौन कुलीन कौ देवल फिरचो जु, कौन कुलीन कै बारधि आई ।
कौन कुलीन कौ संख बजायो रे, कौन कुलीन कै बेर सु खाई ॥
कौन कुलीन कै गाति जनेऊ हो, कौन कुलीन सु देखि कसाई ।
हो रज्जब राम रचै नहिं जातिन, प्रीति प्रसंग मिलै हरि भाई ॥७॥

भजन प्रताप का अंग

केलि को नास भयो फल लागत, कागद नास भयो फल पाये ।
पाप को नास भयो पुनि ऊगति, बीछनि नास भयो सुत जाये ॥
फूल को नास भयो फल आवत, रैनि को नास भयो दिन आये ।
हो तैसेहि नास भयो जन रज्जब, जामण मरण जगपति ध्याये ॥१॥

पीव पिछाण का अंग

धरेही को ज्ञान धरेही को ध्यान, धरेही के गीत घरै घर गावैं ।
धरे को बमेक धरे को बिचार, धरे को ही नांव बड़ौ कै दिखावैं ॥
धरेही की वात धरेही की च्यंत, धरेही की घात अनेक मिलावैं ।
धरेही सु लैन धरेही सु दैन, हो रज्जब राम धरे ह्योही बतावैं ॥१॥

कहै सब हद गहै सब हद, बेहद नहीं उनमान मैं आवै ।
गुडी कौ उढ़ान डोरी कै प्रवान, हो चक्रिहुं डोरि कै वोरि ह्वै आवै ॥
तीर कौ जात जहां लग पान, जुदैंद कौ गौन पैड़ दस पावै ।
तरंग की चाल जहां लग पाल, हो रज्जब डागुल दौर का धावै ॥२॥

साखी भूत का अंग

लोक लियेर लिपै नहिं लोकनि, प्रन कौ प्रानर प्राननि न्यारौ ।
जो जल जीवनि मीन जलचर, नीर न सींररु सैन सहारौ ॥
मारुत मैं पब बैनर बादर, बाइ बिरंचिर हीर अधारौ ।
सूर सु दूरिर नैननि नीरौ, हो रज्जब येहौ बमेक बिचारौ ॥१॥

स्वान सिला सलिता सोइ सोइ जु, सूकर स्यंघ सु सींगि लखावै ।
देवलि थम्भर मूरति कै मधि, छानि छबीलौ सु संति की छावै ॥
गौरिर गोर गयंद मैं गोव्यंद, सेवग संत कहां कहां धावै ।
हो रज्जब राम रह्यो रमि सारे मैं, रूपहिं छांड़ि अरूपहिं पावै ॥२॥

सांच चाणक का अंग

बिकृत रूप धरचो बप बाहिर, भीतरि भूख अनन्त बिराजी ।
ऊपरि सौं पनहीं पुनि त्यागी जु, माहिं त्रिषा तिहुं लोक की साजी ॥
कपट कला करि लोग रिझायो हो, रोटी कौ ठौर करी देखौ ताजी ।
हो रज्जब रूप रच्यो ठग को जिय, साध लखै सब लाखिर पाजी ॥१॥

निरास रहैं अरु नग्रन सों हित, देखि महंतन माया जु त्यागी ।
टोपीर कोपी को नाहिं कछु मनि, प्रीति प्रचंड बजावहु लागी ॥
अति गति ध्यान धनाढि सों कीजिये, लोग सु नाइन कौड़ियहु मांगी ।
हौ रज्जब र्यंद कपट छिपावत, साधन कौ सब्र दीसत नागी ॥२॥

निरासनि रूप करै निस बासर, दास की आस कै धाम न आवै ।
सेवग सेव रचै तहां बैठि जू, बिरकत बात अनेक चलावै ॥
गावै द्वै चारि मैं चित अटक्यौ, हो चील की नाइं तहां मंडलावै ।
हो रज्जब और के और कहै कछु, आपनौ दुख दसा मैं दिखावै ॥३॥

निरगुन रूप दिखाइ दुनी कहुं, देखहु लोग ठगे ठग सारे ।
कोपीर टोपी गरैं गर गूदर, मानौ डकौत बजार उतारे ॥
जैसी जुगति जगत सुखी सब, तैसी यसूल के स्वांग संवारे ।
हो रज्जब दास दुनी के भये, उर बानै किरानै के बेचनहारे ॥४॥

रोग के जोग सौं लोग रिझाई, होही जसौ फरि इंद्री जित कीनौ ।
घने घन घाम सहे बिन धाम, जगत्र सुनाइ कहै तप खीनौ ।।
औभाग की चूर गये सुख दूर, कहैं कछु जानि देहि दुख दीनौ ।
हो रज्जब दुख दसा मैं बनाइ, कहीं कौ प्रसंग कहीं कर लीनौ ।।५।।

जगत्र कर्मै जोग चलै जगि मारगि, तासौं खलक खुसी किन होई ।
संसार के सेरे सबै लिये स्वामी जु, काहे को रोस करै कहु कोई ।।
तहि मधि पाग मुदित ज्यूं मेदनी, मांड मतै मन माजु मिलोई ।
हो रज्जब प्रान पुलै प्रथि पंथि, प्रीति प्रजा परलोक सौं खोई ।।६।।

सुध बुध को काम सरै सतसंगति, खेचर स्यंद कदे नहिं सीजै ।
नागर नींब कौ दूध सौं पोषिये, देखहु जात सुभाव न छीजै ।।
खार समुंद न होइ सुधारस, पाहन पानी हो माहिं न भीजै ।
क्वैला कुटिल करै कूं न ऊजल, रज्जब रंग क्यों संखहिं दीजै ।।७।।

तेल कौ कूपौ न तेल सौं कोमल, नीकी नरम ह्वै और अधौरी ।
गाइ कै दूध महा बलि छारौ, गाइ गई अपने बलि बौरी ।।
मनिसौ बिष और मनिष कौ उतरै, सर्प समीप सदा इकठौरी ।
हौं रज्जब सुख सदा सुरतें, बकतें के बिनास कदे नहिं त्यौरी ।।८।।

सबद की चौभ रहै न अचेत कै, कोटि सुनै कछु हाथु न आवै ।
भुअंग अनेक थलै बिल पैसें जु, पीछे न आगे सु पोलि लखावै ।।
मीन अपार चलै जल माहिं, पै सोधि न संधि कहीं कोइ पावै ।
पंषी अनन्त उड़ै बहु बाइ मैं, रज्जब पौन सु फाटि न जावै ।।९।।

दसा करि दीन दिवानौ बकै, कछु सोई कहा कछु कानि धरैगो ।
थोथे से बान चलावै बिना बलि, ऐसेब गैंडा हो क्यूंब मरैगो ।।
तूपक पूरि पली तौ न पावक, फूंक कै फूंका फोर करैगो ।
बूटी न बैद टटोरत पाती, हो रज्जब सो कैसे पीर हरैगो ।।१०।।

चाल लै चोर की बोलिबौ साध कौ, ऐसै न साध कै मोलि बिकाइगो ।
हंस की बोली सु सीखी जु काग नै, तौब कहा कछु हंस कहाइगो ।।
पोथी कौ पानौ लहौ जड़ पंथि मैं, तौ सब सासतर सोधि मैं आइगो ।
पंखी को पंख धरचो नर कै सिर, रज्जब सो न अकास को जाइगो ।।११।।

का पद साखी कबित्त के जोरे, जे काया की सौंज न जोरी जु जाई ।
रसना रस नैन निरखि दसौं दिसि, नासिका बास गई लपटाई ॥
इन्द्री अनंग सुनै श्रवना गये, माहिं गये मनि सुद्धि न पाई ।
हो रज्जब बात बहू बिधि जोरी, पै आतमराम न जोरी रे भाई ॥१२॥

कहनी रहनी बिन काम न आवई, अंध क्यूं दीप लै कूप टरैगो ।
नर तैं सुनि नांव लयो सुक तारौ न, तौब कहा कछु काम जरैगो ॥
बिद्या धनत्र की सीखी जु बादिन, मूये कौ बिष न कोई हरैगो ।
साध सबद असाधनै सीखै, हो रज्जब यूं नहिं काम सरैगो ॥१३॥

कहै कछु और गहै कछु और, लहैगो सोई जामैं चित्त समायो ।
कहै मुखि राम गहै करि चाम, हो मालीनै अंति चरसहीं पायो ॥
जरच्यूं सब गांव उठी गृह ठाम, हो बात कहै कछु नाहिं सिरायो ।
पेट की पाहि जगावत गोरख, हो रज्जब जोगी को टूकहिं आयो ॥१४॥

साखी कही सु कहा कहि साखि, कहै जो सिलोक सुलोक न पायो ।
जोरै कबित्त न बित्त जुरचा तत्त, गति गये गति माहिं न आयो ॥
गाथा गरंथि ग्रथ्यो नहिं गोव्यंद, पाठ पदौं पद मैं न समायो ।
हो रज्जब राम रटे बिन बादि, सवारि सवैये सु त्वै न सवायो ॥१५॥

कूंडरि यूं सकरम न कूंडरि, दूहरौ गूंदर सो न दुखीनौ ।
अरिलौ उचारि अरचो न उरंतरि, आरज की सु अरज न कीनौ ॥
गाहत गाह गह्यो न तन मन, छंद कहै छल छेद न छीनौ ।
हो रज्जब पंथ परा पग पंगु, चबत चौपई है मतिहीनौ ॥१६॥

बैन बेअर्थ बिकै बसुधा मैं जु, अंध अज्ञान कहै गहैं लोई ।
रमती सौं गाड़ी गाड़ी सौं ऊपर, देखत दृष्टि कहै सब कोई ॥
जड़ कहै जाइर पंषी को बासौ सुने, सुनि बैन अचंभो जो होई ।
हो रज्जब दीप बुझे को बड़ौ कहैं, सठ संसार नै मति ज खोई ॥१७॥

अंध अचेत अज्ञान के आगर, आन की आन कहै मुख माहीं ।
साध असाध असाध को साध जु, सुद्ध सरूप सुरति मैं नाहीं ॥
सत्त असत्ति को असति को सत्तहि, प्रान मैं पंच प्रपंच की छाहीं ।
नीति अनीति अनीति सौं नीतिग, रज्जब जानि जमैपुर जाहीं ॥१८॥

सेवग अंध जाचंद गुर पायो सु कहा ब्रह्म की बाट बतावै ।
पानी की बूड़ तौ पानी ही पाकरै, ऐसै मतै कैसे पार कौ जावै ॥
बाइर बंझर हींज कौ मेटिबो, ऐसे उपाय न पुत्र ह्वै आवै ।
दीपक छांड़ि पतंग जु चूल्है मैं हो रज्जब चैन कितौ इक्र पावै ॥१९॥

झूठे गुरू ग्रह कोटिक त्यागि कै, सांचे सतगुर कौ सिर नावै ।
काठ कौ नीकस्यो कोठै न ठाहरै, धोम कौ धाम जु सुन्नि समावै ॥
कूवै कौ काढचो रहै कहि क्यारी मैं, नीर निहारि सु सूर मैं जावै ।
हो रज्जब रोक्यो रहै न बमेकी जु, सेइयो ताहि जु राम मिलावै ॥२०॥

मोटे अभाग उदै भये जीव के, साध समागम सौं लै छूटी ।
मनौ गढ़ गाढ़ सौं भेरि परे अरि, दुंग मैं नीर की सीर न षूटी ॥
रोग अपार महा दुख संकट, ताहू मैं गांठि गई खुलि बूटी ।
हो राम भजन बिना सतसंगति, रज्जब खानि मैं धाह सी टूटी ॥२१॥

गुर तैं बिरचै सिष होइ सुखी कत, सो कोइ ठौर न ठाहर सूझै ।
भूमि तैं पाइ उठाइ धरै कत, काहे को काहि बृथा केइ जूझै ॥
मीन जै मान कै जाइ जलै तजि, बाहरि जाइ तबै सुख बूझै ।
काग कुमति कै बोहित छाणि, हो रज्जब रांड न अस्थलि दूजै ॥२२॥

नहीं ब्रत बंध फिरै उर अंध, उठाये जु कंध कहौ कहा कीजै ।
गुरू कृत हंति रगै बहु भंति, गई गति मंति नहीं जन दीजै ॥
महा गुन मेटि भये बस पेटि, छिपै नहिं नेटि सु कौड़ी न लीजै ।
हो साध सौं तोरि जगत्र सौं जोरि, लगी बहु खोरि सु चूल्ह मैं दीजै ॥२३॥

माया मधि मुकति का अंग

बरतण बरतै अपार मन मैं नाहीं लगार,
बैठे हैं करि बिचार एक अंग लागे ।
सूरे का सुनहु खेल संपति बहु करत केल,
मन मैं कौडी न मेल पल मैं पटकि जाइ बाहर बागे ॥
देखि लै सती सु अंग माया सम्बूह संग,
मन मैं लागा न रंग पीव प्रहार होत ही देखत गृह त्यागे ।
साधू यूं कंवलि भाइ दह दिसि पाणी अघाइ,
रज्जब सिर चढ़ि न जाइ मुरझावै म्यंत वोट माया जल आगे ॥१॥

दास निरास रहै दिसि माया की, आइ मिलै मन ताहि न लावै ।
उदधि की बिधि न नेह नद्यू सौं, जु माहिं मिल्यूं नहिं स्वाद समावै ।।
सुन्नि की मुन्नि ज्यूं आभेर धोम सौं, घेरैं घटा घटि मैं मैल न जावै ।
हो वाव कै भावन बांस रुचै कोउ, रज्जब सो न तहां ठहरावै ।।२।।

स्वांग का अंग

सिलक सौं तिलक देइ छापे सौं अघाइ लेइ, रूप सौं रूपक सेइ कहा कीधौं जाइगो ।
काठ माटी मन लाइ झूठे सेती झूठ गाइ, धरे सौं धरचो रिझाइ कौन मैं समाइगो ।।
नित्यप्रति मांडि न्हान प्रीति सौं पूजि पषान, सुचि सेती खाइ खान कौन पति पाइगो ।
स्वांग सौं सरीर मांडि सांच सौं सनेह छांड़ि, रज्जबा जनम भांडि देखतैं ठगाइगो ।।१।।

स्वांगी सरप फिरैं चितकाबरे, काहू के सैन न काहू के साथी ।
बानौ बनाइ बिगूचै बिषै सौं जु, पुत्री न पीठि मिटै नहिं माथी ।।
भूंदू जी भेष धरचो पसु की गति, सूकर स्वान भरै बिष बाथी ।
हो रज्जब चित्त किये चित चंचल, बैल दिवाली के ईद ज्यूं हाथी ।।२।।

भेषि अलेख मिलै नहिं भाई रे, जौलौं न जीव जगतपति धावै ।
गनेस गोरख नाद न मुद्रा पै, सिद्ध प्रसिद्ध सु देस कहावै ।।
द्वादस दूंण गुरू दत थापे, सु देखि दरसन कौन बनावै ।
हो रज्जब सेख सुखदेव स्वांग न, औसे सु ओदरि मैं ल्यो लावै ।।३।।

अज्ञान कसौटी का अंग

छाया के छेदे छिदै नहिं पंषी जु, बांबि के मारि क्यों ब्याल मरैगो ।
काठ के काटे कटै न हुतासन, पानी पीटे क्यूं मीन मरैगो ।।
हो खोरो ह्वै ऊंटर डाभिये गादह, ऐसे बज्ञान क्यूं काम सरैगो ।
काया की त्रास न त्रासिये सौं मन, रज्जब यूं न गुमान गिरैगो ।।१।।

सठ कै हठ तजै पट पानहीं साध सौं, दोष संसार सों रागी ।
दाबै दिखावै कौं होइ दिगंबर, कोपीर टोपी कुमत्ति कै त्यागी ।।
मानि मिलन मले पग नागे हवै, आटी भरे सु अज्ञान अभागी ।
हो रज्जब रीझ्यो देखै रस रोसहिं, कौन कपटि कसौटी है लागी ।।२।।

हिमालय गरैर हुतासनि पैसै जु, मन कौ मान रती नहिं छीजै ।
सीस करौत समंद कै झंपिबै, गर्ब गुमान सु नैक न भीजै ॥
दीवक देह खुलाइ खपै क्यूं, मन मैवासी सु खैट न लीजै ।
हो काया के कष्ट करौ कोउ क्यूंहू जु, रज्जब राम बिना नहिं सीजै ॥३॥

काचो तन मन आसिरै ऊबरै, जौलौं सुरति सरीर मैं सानी ।
भूख की ऊख अहार ही ऊतरै, त्रास त्रिसा कि गई पिये पानी ॥
सीत की मार उबार ह्वै अम्बर, घाम घनै कौ छेवाइ लै छानी ।
हो रज्जब वोटहि चोट टरी सब, पानी हि त्यागि कहां ठग ठानी ॥४॥

असारग्राही का अंग

औगुन लेत तजै गुज गाफिल, ज्ञानहीन हिरदै कै जु फूटे ।
ईष को कोल्हू ज्यूं अमृत छांड़ि, अचेत न है दिल थोथरे बूटे ॥
चालनी चून तजै तुस पाकरै, जामैं छिद्र सहंसक छूटे ।
हो रज्जब भाटी मैं बाकस ठाहरै, ऐसे अज्ञानिहु औगुन लूटे ॥१॥

काम का अंग

काम सौं राम रसे रम रावन, यन्द्र अनंग से ईस नवाये ।
बीरज कै बसि बास बिरंचि जु, नारद ने सुत साठिक जाये ॥
मीच मदन ने मारि ली मेदनी, डूबहिं खात तपा तेउ खाये ।
हो रज्जब काया न कूप रहै ठग, ताहिं ठगे सु निरंजन भाये ॥१॥

तिरिया की त्योरी मैं देखत ही, नर सुन्दर सीस गमाइ गये हैं ।
नारी जु नाग भये नर दीपक, देखत दृष्टि बुझाइ दये हैं ॥
ज्यूं गज देखि बिभ्रम्म की हस्तिनी, हो रज्जब बित्त लुटाइ भये हैं ।
मनौ कपि काठ की पूतरी देख, हो रज्जब बित्त लुटाइ भये हैं ॥२॥

यूं नारी के हेत हते नर सारे, अलप सुखी दुख होत अपारा ।
मच्छ मुगद कौ मीच न सूझई, स्वाद कै संगि ह्वै बाहरि डारा ॥
ज्यूं बग बुद्धि बिना बप हारत, चूख नालेर न जीवनहारा ।
हो रज्जब मूस मरै तुछ लालच, बाती चुराइ किये तन छारा ॥३॥

नारी कि छाया मैं नाग रहै चकि, जद्यपि जाय समागम नाहीं ।
ज्यूं नर नींब निकट ही आवत, मीठै तैं खारौ ह्वै छायहि माहीं ॥
छाया मैं नीपजै काठ ह्वै कोमल, बृछ पषान ह्वै मिलाप न जाहीं ।
हो तीन प्रकार त्रिया तकि त्यागिये, रज्जब रंग नहीं गहे बाहीं ॥४॥

बेसास का अंग

साधू संतोष माँहि बरतनि की च्यंत नाहिं, आवै सब सहज माँहि आसा बिन हूवै ।
आभे ज्यूं अधर अंग नाहीं कछु सुरम संग, गृह गृह अगनी उमंग पोषत त्यो धूवै ॥
रहते हैं भंवर भाइ करते नाहीं उपाइ, पावैं तेउ बास बाइ बारी बिन कूवै ।
जैसे मिरतग अचेत नाहीं कछु लेन हेत, असन बसन आनि देत रज्जब ज्यूं मूवै ॥१॥

तृष्ना का अंग

लोभ सु पाप पाखंड प्रपंच, छंदर बन्द सु दन्द उपावै ।
अनीति उपाधि अलेखै उदंगल, स्वारथ सैलि समुंदि समावै ॥
चाकर चोर ठगाई बट कुट, भूष भगल सु भांड मंडावै ।
हो सीत न घाम गिनै न निस दिन, रज्जब चाहि चिता जु जरावै ॥१॥

लोभि लगे सकल जंत तिहूं लोक इहै मंत, भूल को सेवै अनंत सिध साधक देवा ।
एक भगति मुकति आस कोई रिधि सिधि प्यास, बहुत सबद फुरत दास दीन लीन लेवा ॥
तृष्ना तप कष्ट देख कामना सु पाठ भेख, स्वारथ संगीत रेख हूदै हिरनि हेवा ।
चतुर खानि च्यंत चाहि प्रान प्यंड पेखि पाहि,जन रज्जब त्राहि त्राहि कैसी कलि सेवा ॥२॥

सबद का अंग

अनादि अबिगति तैं ओंकार उपाइ ब्रह्मंड सु प्यंड संवारे ।
सबद की मांडर मांड मैं सोई जु गोइ गुरू सिष सुरति सुधारे ॥
बाइक बंदि चलैं बिति लोइ जु देव दयाल वचन सु सारे ।
आषिर माँहि अगम सुगंभ हो रज्जब बैठि सु बैन बिचारे ॥१॥

जरनै का अंग

सुनहा सठ हठ रटै बहुतेरे पै कूंजर कै कछु कानि न आवै ।
जंबुक जीव पुकारे अनेरे पै स्यंघ न काहू हो स्याल को धावै ॥
सूरहि सनमुखेह खेह उड़ावतैं तौब कहा कछु मैल समावै ।
हो रज्जब राम रटै निसि बासर मूरिख भूखि भलै सचपावै ॥१॥

काल का अंग

बारि बुदबुदे वोरे कि आव, तिनै परि बूंद कहा ठहरावै ।
ज्यूं सीत के कोट सभा ससि मंडल, सैन सुपिन सीधे न समावै ॥
बारूंबार निबयारि मूंठी भरि, माहिं महूरत मैं चलि जावै ।
हो तारौ तुटे रवि कंतर बीजुरी, रज्जब जोति विलम्ब न लावै ॥१॥

खालसा का अंग

ग्यानी कौं गौन दसौं दिसि एक सौं, पंषी उड़ै कहीं वोर अरैगो ।
जल कै पग सीस सबै दिसि सारिखौ, प्यास पीर सब वोर हरैगो ॥
सूर सौं मंगल वोर उजागर, सीत अंध्यारे कौं सोधि चरैगो ।
लोहरी कौं घाट समस्त ही धार मैं, रज्जब लागत घाव परैगो ॥१॥

पापर पुन्नि तो ग्यान सौं देखिये, ग्यान कौं पाप न पुन्नि दिखावै ।
राइर मेर सौं सूर सौं पेखिये, सूर कौं राई न मेर पिखावै ॥
धाम की सौंज सु दीप सौं लेखिये, दीप कौं सौंज न कोई लखावै ।
हो रज्जब धात परखि पिछानिये, धात न कोई परखि सिखावै ॥२॥

पाथर राइ परचू खर जाम्यौ जु, फाटे बिना कहां फूस कौ बासै ।
भोडल भेद परे पर पूरन, याही तैं ताकौ भयो न खिनासै ॥
मंदिर मध्य बिराइ बुरी गति, पानी प्रवेस पनिग निवासै ।
सो रज्जब राम सौं राइ परे, दिल देखत काम करै परगासै ॥३॥

दुष्ट की हासीर हेत हतै नर, तामहिं फेर न सार जु कोई ।
ज्यूं सठ सर्प डसै पसु मानस, पेट न खाइ मरै जिय सोई ॥
करै कपि केलि बुरे दिन बइयूं के, धाम बिधंसि सु ठाहर खोई ।
हो रज्जब मूस मनोरथ मोद कै, चीर कौ रद्दत हानि न होई ॥४॥

कुसंग सौं भंग भयो सबही कौं जु, देखहु मान महातम आई ।
गंग गुमान गयो सबहीं, जबहीं जाइ खार समुंद समाई ॥
उदधि उपाधि करी न हरी कछु, रावन संगि सिला जु बंधाई ।
हो रज्जव रंग रहै न कुसंगति, सोचि बिचारि तजौ किन भाई ॥५॥

स्वामी रज्जब जी की भेंट के सवैये

गरवो गंभीर धीर बुद्धि अनंत थंभ थीर, बानी बिग सुखौ सीर बक्त्र सौं बखानिये ।
लाधौ है ब्रह्म भेद कीयो नीकै नखेद, संसौ करि सकल छेद पहुंचे परवानिये ॥
ऐसो सोई दृढ़ मंत सुमिरै सति म्यंत कंत, निरखै निज परम तत्त संतन मैं मानिये ।
समझै हैं सकल घाट ज्ञानी गमि अगम बाट, चैन कहै परम ठाट रज्जब जगि जानिये ॥१॥

महा बलवंत चढ़चो गुर ज्ञान, जु सूर संग्राम अडोल है हीयो ।
केसरी स्यंघ ज्यूं काम परै परि, येक अनेकहु जाइ न लीयो ॥
जु स्यावज स्याल गये दसहूं दिस, देखत भाजि पयानो जु दीयो ।
हो रज्जब अज्जब राम को सेवग, आकिल एक अलख कौ कीयो ॥२॥

भान सौं ज्ञान प्रकास महा मुनि, सोम से सीतल कूंड अमी है ।
बानी मनू बिधि सिद्धि गनेसर, बुद्धि महा त्रिस करम समी है ॥
सील हनू सुखदेव की गोरख, ब्रह्म अगनि मैं देह दमी है ।
सेस भजन्न तजन्न फरस ज्यूं, रज्जब औगम राम ठमी है ॥३॥

ज्ञान अनन्तर ध्यान अनन्त हो, बुद्धि अनन्त दई न अनाथै ।
बमेक अनन्त बिचार अनन्त हो, भाग अनन्त लिख्यूं जहिं माथै ॥
सिद्धि अनन्तर निद्धि अनन्त हो, रिद्धि अनन्त रहै नित हाथै ।
सब बोल अनन्तर पाप कौ अन्त हो, षेम कहै गुर रज्जब साथै ॥४॥

छप्पय

विद्यावन्त बसेख जती पड़ि जोबन बालं ।
महाराज मानियो भेंट लै मिलै भुआलं ॥
अठ सिद्धि नौ निद्धि पेवै ऐन उभी मोह आगे ।
भगति राज सिरताज भयंकर दूंदर भगे ॥
सकल बोल सोभा लिये एकणि अंग पेख्या अज्जब ।
षेम हेम नैना हुये दरसण देख्या रज्जब ॥१॥

ज्ञानवंत गंभार सूर सावंत सुलक्षिण ।
पंच पचीसौ पेलि भरम गुण इंद्री भक्षिण ॥
दुरजन द्वै दल दमे मोह मद मच्छर माया ।
खल रिप सब पेसवै कीध इकरज्जी काया ॥
मस्त मान गुर ज्ञान मैं बोध बुद्धि ले अरि हतै ।
ध्यान अडिग धर धीर धर जन रज्जब पूरै मतै ॥२॥

बुद्धि अनन्त बहु जाण बाणि मुखि अमृत बाइक ।
ज्ञान अगम गमि किये साध संतौ सुखदाइक ॥
धीर थीर ध्रम ध्यान सील समिता सतसंगा ।
आदि अन्ति अहिनिसि रहै रसि एकणि रंगा ॥
बिमल उदर ऊजल बदन परम साध पति परखिया ।
जन रज्जब निहकंप जल निरमल गंगे सा निरखिया ॥३॥

*बेद भेद बाखाण कुराण कैद तुरकी ।
अषिर ध्रर वोपम मत गाह न फोरकी ॥
जोगेसुर सिद्धान्त ज्ञान सब अनभौ सारी ।
भटती चारणी भगति बिगति नौधारी ॥
षट भाषा सुर सपत ले प्यंड ब्रह्मंड ब्योरे किये ।
सब अंग राम रज्जब रता दादू गुर दतवी दिये ॥४॥

कबित्त नीसणी बंध

एक ब्रह्म आधार दोइ गुण तजे त्रिगुण तनि ।
च्यारिउं जुग बसि पंच छहूं रस छांड़ि दिये मनि ॥
सातौ धात सरीर जोग आठौ मैं आणे ।
नौ नाड़ी दस द्वार येक दस मारग जाणे ॥
बारह अंगुल बाइ बप तैं रस तत लागे रहै ।
चौदह बिद्या पति पन रहै सो रज्जब सुमिरण गहै ॥१॥

एकल सूर सुभट वियो कोइ हृदय न हरि बिन ।
तीन लोक कौ नाथ च्यारि सब खानि स्रजी जिन ॥
पंच तत्त तिण सेव छटा मनि उनमन लागा ।
सपत धात अठ सिद्धि नवै निद्धि थाटी आगा ॥
दसमी भगति दिल परि मंडी ग्यारा रुद्र ज्यूं अंग गत ।
बारचूं कला रबि रज्जब इसौ प्रकास पति राम रत ॥२॥

---

* इस पद का शुद्ध पाठ नहीं मिला ।

कबित्त छत्र बंध

है करता अति हेत तबै सनकादिक तिणि तत ।
छांड़ि रस रती छके रहैं सो जोग जुगति रत ।।
समझि द्वार दीरघ बसि करि कृष्ण सुकल पष ।
जास रतन जपि जाप रहै सिस मत सुरपि भष ।।
निमध भार अदभू चिहुर जस नख सख सौं कहै ।
अमर दास वोपम अनंत जन रज्जब सिरि छत्र है ।।१।।

सवैया

मारुत तैं भयो जैसे हनू मुनी महाबीर जत मत जोर जोग जगति परवानिये ।
अन्ति कायपितहूं तैं दत भयो रिष राइ ताकी सोभ सरबरि कौन उर आनिये ।।
मछिंदर तैं भयो जैसे गोरख ज्ञान की गंग सिद्ध चौरासी नौ नाथन में मानिये ।
तैसे भयो दादू तैं रज्जब अजब रूप भगति कौं भूप भलै कल्यान बखानिये ।।१।।

जती हनूमान किधौं सती हरिचंदहूं से, परैं दुख कांपिबे को बिकरम बसेखहीं ।
ध्यान जैसे ईस अर ग्यान गति गोरख से, कथा कीरतन सुकाचार समि लेखहीं ।।
दत्तात्रेय से मुनी अरगुनी रिष नारद से, दुर्बासा से बैन सुतौ ऐन करि देखहीं ।
दादू जी परतापि येते रज्जब अजब मंत, और हैं अनन्त कहि सकत न सेषहीं ।।२।।

रसनाहू मांगि ल्यूं सहसफनी सेस हू पै, जासौं गुर रज्जब को सुजस बखानिये ।
नैन जाइ जाचौं सक्र बक्त्र हू बिलोकिबे को, जासौं सब सोभा उर अंतर मैं आनिये ।।
सहस बाह पै जाइ गाहब ह्वै मांगौ बाह, जासौं सेवा सौंज जु सहस विधि बानिये ।
लंकेस पै सीस तेइ बंदन करूं कल्यान तौ, है अगाध अति साध नहिं मानिये ।।३।।

पावन सोभाव गुर दिस की जु रुचि होत, पावन सो पावहिं पंथि जब धावहीं ।
पावन सोई पै नैन देखियत ऐन अंग, पावन सोई पै सीस चरननि नावहीं ।।
पावन श्रवन तब सुनियत मुख बैन, होत कर पावन जु सेव को लगावहीं ।
रोम रोम पावन परसे गुर रज्जब को, गये सब अघ अब आगि ले बिलावहीं ।।४।।

कबित्त

अरक जेम ऊजास सुधा सरवै जिमि ससि हर ।
पावस ज्यूं पालग धरा धारत जिमि मणि धर ॥
श्रिक जिम बास सुवास गहर ने लंभ गिणीजै ।
आसण ध्रू जिमि अचल भूम जिमि गुरू भणीजै ॥
कामधेन तरु कल्प समि पारस पोरस पेखिया ।
च्यंतामणि च्यंता हरति रज्जब अज्जब देखिया ॥१॥

गिरापती जिमि मेर सहूं सरपति जिमि साइर ।
सुरापती जिमि सक्र ग्रहपती जिमि देवाइर ॥
उडियणपति जिमि यंद नदी नौसै पति गंगा ।
धातपती सोबरन द्रुमापति कलप तरंगा ॥
सिद्धनाथ पति गोरख ज्यूं मुनि पति दत्त प्रमाणिये ।
रज्जब अज्जब साधपति दादू पंथि बखानिये ॥२॥

अकल अध्यान अभार अकल निज ज्ञान उचारन ।
अकल प्रीति रस रीति अकल मति नेम अधारन ॥
अकल जत्त सक अकल अकल मत सील सुजाणं ।
अकल नव बिश्राम अकल रहिता रहिमाणं ॥
अकल त्याग बैराग अगि अकल भाव लागा भला ।
रज्जब अज्जब गति अकल अकल सिद्धि आपै भला ॥३॥

कबित्त छत्र बंध

रिसि मस हंस कर सरिस धरनि ताइ बेद भेद धुनि ।
तवति राग सुजस भाषा छवति गति जोग जुगति मुनि ॥
बदति नाम हरि जाम जतन मारुत जी जिसहिं ।
अग्रि भुवण आतम बदनि ससि कला सरब कहिं ॥
जस पुराण जाण जुगति रचति बिसवा जोग करि ।
बंदै सिव सनकादि सुर रज्जब अज्जब छत्र धरि ॥१॥

कबित्त कंवल बंध

श्री त्री स्रङ्ग परहरण स्वाद बिष बाद बिदारण ।
मीति माह विसंभरण रसण रंकार उच्चारण ।।
जगत बिसत सजरण बप जम तपहु उबारण ।
जीति प्रकीरति किरण चीत अण जीत सियारण ।।
रज्जब गुर मैं तुव सरण जीवहु पल न बिसारण ।
सर्व पाप ताइ हरण दान दरसण पावै करण ।।

सवैया

कुरान पुरान कहैं बेदहूं सास्त्र बिधि संध सार सुत जाकै पूजीहूं कौ साज है ।
अनभै बनिजै अंग लेहु मांडो कान अरध सवाई नफौ येतौ कोई लाज है ।।
जेउ जेउ निजै जाइ खोटौ कोउ नहीं खाइ बोलत बचन सुध पुण्य ही पाज है ।
ब्यास सुखदेव ब्रह्मा इहां औतरे आइ रज्जब दयाल सुत ब्रह्म कौ बजाज है ।।१।।

छप्पय

दरसन दादूदयाल पधति प्रगट जन ।
रज्जब पारस परस दरस सकल दुख हरन ।।
परम धरम परवान आन मारग सब भंजन ।
करुना स्यंधु कृतज्ञ अखिल संपद बिस्तारन ।।
मन संकलप बिकलप जलपि दुखु दुन्द निवारन ।
निरलेप निरंजन गुण मगन मोहन अघ नासन ।।१।।

सवैया

संतन सुकबि संत साहस सधीर बीर जानै पर पीर सिद्ध समानि मैं मानिये ।
परम उदार सब जीव उपगार कर स्यंधु वारपार जाकी कीरत बखानिये ।।
दादू दरियाव उपदेस सेस समि ज्ञान अकल निरंजन सुजस नित गानिये ।
सुख कौ निवास सबिलास पुरवन आस ऐसो जन रज्जब प्रसिद्ध जगि जानिये ।।१।।

ज्यूं बसि मंत्र वे आवत बीर जहां जस जो तहां तस मूके ।
ज्यूं धर्मराज के काज करैं सब दूत अनेक रहैं ढिक ढूके ।।
ज्यूं नृप के तप तेज तै कंपत पास रहै नर आइ कहूं के ।
ऐसी ही भांति सबै दृष्टांत हो आगे खड़े रहैं रज्जब जू के ।।२।।

संध्या समै ज्यूं सबै सुरही घर आवैं चली जैसे बच्छ कै रागैं ।
भूपति कौ भवमानि दुनी जु अनीति बिसारि सुनीति सौ लागैं ॥
मोहन ज्यूं बसि मंत्र कै बीर प्रभाति चटा चट सार कौ जागैं ।
घन ज्यूं घिरि यूंही कथा कै समैं दृष्टांत आये रहैं रज्जब आगैं ॥३॥

त्यागि बदूं हरिचंद पटंतरि मांगि ज्यूं इन्द्र कुबेर भंडारी ।
रागि बदूं मुनि नारद से अनुरागी सदा सिब ज्यूं ध्रम धारी ॥
ज्ञान बदूं गति गोरख की पुनि ध्यान बदूं दत ज्यूं दृढ़ तारी ।
रज्जब अंग अनन्त अपार सु मोहन देखि भयो बलिहारी ॥४॥

सूर ज्यूं नूर दिपै अंगि ऊजल चंद ज्यूं सीतलता तनि भारी ।
चंदन रूप सुगंध सदा पुनि पारस रूप पराक्रम धारी ॥
सुमीर ज्यूं धीर न हीर भनै घन सीर सुधा पर पीर निवारी ।
रज्जब अंग अपार सु मोहन देखि भयो बलिहारी ॥५॥

मणि ज्यूं मुखि सर्प सदा संगि ही रंगहीन मिली अहि के बिष सौ ।
बड़वानल बारि मैं न्यारी सदा पुनि लोइ मैं सूत सितै निकसौ ॥
नीर मैं कौलर सीप जुदे नभि दे जल कै रंग अंगि बसौ ॥
ऐसे रज्जब अज्जब मांड मझारि न मोहन मेल मया सिख सौ ॥६॥

आयो साधि सूर अंगि नूर भरपूरि घिपै सोधि सब अरिन के अखारे उठारे हैं ।
मारचो है मदन सु सदन की न सुधि कहूं क्रोध सेन जोध फेरि द्वारन झकारे हैं ॥
ठौर ठौर राम राज कीनौ दादू दास केनै मोहन मैवासी मारि पाइ पीसि डारे हैं ।
रज्जब दहार सौं पहार फाटि पैड़ भये काम क्रोध लोभ मोह मूल ज्यूं उखारे हैं ॥७॥

रज्जब के चरन कौ छुवै को प्रताप ऐसो पाप के पहार मानो फाटे हैं पराकि दै ।
जुगि जुगि जिव जम द्वारि दंदी वान होतौ सांकल के संधि साल फूटे हैं खराकि दै ॥
गौतम की तरुनी करनी ज्यूं कृपाल भये सांचे हैं सराप टूटे ताति ज्यूं तराकि दै ।
ज्ञानि कै गयंद चढ़ि लेहैं मोहन मन ऊंचे आसमान जाइ बैठे हैं फराकि दै ॥८॥

जती हनुमान से न सती हरिचंद समि तेजवंत सूर से न रंग न सबज से ।
अचल सुमेर से न मेर से न धनी और समाई समुद्र से नखत न कबज से ॥
गोरख से जोगी न बियोगी महादेव समि रूपवंत काम कलैं और न अजब से ।
मोहन मंडा मैं उड़ान सारू सारे भले गोरख से जुड़े जोगि ज्ञानी न रज्जब से ॥९॥

गीत

तुरक सिरताज पति साह दिल्ली तणौ हिंदू वा सीसि सिरताज राणौ ।
राज सिरताज अधपति जु आंबेरिरौ यूं पंथि दादू तणै रज्जब जाणौ ॥
अष्ट कुल परवता मेर सबसै सिरै नौ कुली नाग सिरि सेस सहु जाणौ ।
नौ लख तारा इण सिर ससि जु सबरै सिरै त्यूं पंथि दादू तणौ रज्जब बड़ जाणौ ॥१॥

हिदुवा हद होइ जका साषि गीता कही तुरकबां मुसाफ सुणि राड़ि मूकी ।
अध्यातम अनभै जिती भगति भाषा तिती तठै रज्जब कह्या परि आंट चूकी ॥
पाव पतिसाहरा परसि चाकर थक्यूं अलि थकौ परसि परजात फूल चाड़ि ।
आनरो ज्ञान सुणि थिर न आतम भई रज्जब री कथा सुणि पड़ी अनि आड़ि ॥
भूख भागी जबै भेट अन्न सो भई प्यास भागी जबै नीर पीयो ।
रज्जब री रहमतै फहम लाधौ सकल अकल रटि मोहनौ रंक जीयो ॥२॥

कबित्त

नग सिर सोभा सु नीर नीर सोभा सु मृणालं ।
सोभ निसाकर निसा दिबस सोभा सबितालं ॥
मैं करि सोभ गज्यंद्र तुरंग सोभा सु तताई ।
अवनि सु सोभ अनील सील सोभा प्रमदाई ॥
हंसन करि सोभंति सर मोहन मनौ बसेखिया ।
दादूदयाल पंथ सोभ सिर रज्जब अज्जब देखिया ॥१॥

सवैया

पूरौ ही भागि अनुरागि बैरागि पूरौ पूरौ ही ग्यान अरु ध्यान जत सत सौं ।
पूरौ ही साहिबी में सावधानी पूरौ परसिध पूरौ ही पीर पायो दादू राम रत सौं ॥
पूरौ ही रहनी कहनी तैसौ ही पूरौ पूरौ पटै परम नीर निरखौ गुर मत सौं ।
मोहन मंगिनौ गावै दया को दान पावै रज्जब को रिझावै गावै गुन हित सौं ॥१॥

सवैया भाग समाप्त ।

छंद जाति त्रिभंगी

सुमिरन का अंग

दोहा : बंदौ गुर गोव्यंद मुखि, प्राण उधारणहार ।
जन रज्जब जुगि जुगि सुखी, किया अगम उपगार ॥१॥

प्रथमे पग गुरदेव के, मन मस्तग उर धार ।
जन रज्जब ताके सबद, समझ्या सिरजनहार ॥२॥

छंद : तौ नमो निधानं प्रान सु प्राणं करन जहानं जग जानं ।
देन सु दानं और न आनं खान सु खानं नहि छानं ।
सकल सगानं सबमैं जानं लगे न बान सो तत्तं ।
दादू जी दत्तं दीरघ बित्तं रज्जब अघ आपद हत्तं ॥३॥

नमो अपारं निज निरकारं तारणहारं जन पारं ।
सारंग सारं जग जहि लारं ग्यंत हमारं सब धारं ।
जेहि सिरि भारं सब सिरि धारं मंगलचारं सेवग सू राखै नत्तं ॥४॥

नमो सरामं पूरण कामं आतम ठामं जग जामं ।
निकुल निनामं पुरिष न बामं जीवन चामं पुनि पामं ।
सीत न घामं अगम सुधामं रावण मामं सो छत्तं ॥५॥

नमो सपूरं निरमल नूरं जगत जहूरं सब सूरं ।
सकल अकूरं नाहीं दूरं हेत हजूरं नहि ऊरं ।
दैणहि नूरं दाता सूरं दालिद चूरं अग्नि मत्तं ॥६॥

नमो गभीरं सब गुर चीरं धीर सु धीरं पर पीरं ।
निकट सु नीरं नख सख सीरं लिपै न बीरं हर हीरं ।
मीर सु मीरं धीर सु धीरं तट्ट न तीरं तहि रत्तं ॥७॥

तौ नमो अलाहं बेपरवाहं अगम अगाहं निगमाहं ।
आवन जाहं ठौर न ठाहं च्यंत न चाहं सौ डाहं ।
अतिर अथाहं नाहीं ढाहं लोकि सु लाहं घर घत्तं ॥८॥

तौ नमो सु अंगं रूप न रंगं सब सर्वंगं नह षंगं ।
सुन्नि सु संगं अलख अलंगं भूप अभंगं सो भंगं ।
रूप न हंगं दीरघ दंगं तुच्छ न तंगं अहि धत्तं ॥९॥

तौ नमो अनंदं आनंदकन्दं पूरण चन्दं सब छंदं ।
सुन्नि सुरंदं मते न मंदं तहि हद्दं सब जग बंदं ।
देण सु पंदं काटण फंदं दूर सु दुंदं सिर षत्तं ॥१०॥

कबित्त : नमो सकल सिरताज नमो सब संत सनेही ।
नमो परम गुरदेव नमो निकलंक सुदेही ॥
नमो गरीबनिवाज नमो निज दीनदयालं ।
नमो अनाथहु नाथ नमो पूरण प्रतिपालं ॥
नमो बिरद नहिं पारब्रह्म स्यो कहे न जाहीं ।
जन रज्जब हैरान रहे तुव नाम सु छाहीं ॥११॥

गुण छेद मधि का अंग

दोहा : रज्जब तांबा लोह पखि, पारस है प्रभु नांव ।
परसे सो कंचन भये यहु, निरपष निज ठांव ॥१॥

पुरान कहै पच्छिम दिसा, पूरब दिसि कहै बेद ।
रज्जब दिल दीवान था, सु गुरू बताया भेद ॥२॥

छंद : तौ बेद कुरानं उभै अयानं बहसि बिलाणं है ताणं ।
द्वै दिस ठाणं जुगति न जाणं जगत भुलाणं यहु हाणं ।
रंक सु राणं पषि बखाणं कीया छाणं निज जाणं ।
अर जोध जु बाणं देव सदाणं आये घाणं चतुर बरण बांधे बषं ।
दादू का सिषं प्रीति न पंषं मधि मारग रज्जब रषं ॥३॥

जो मधि मारग रज्जब रषं तौ हींदू नहि तुरक्कं ।
द्वै रह थक्कं माया मक्कं पाई जक्कं गुर बक्कं ।
सूर न सक्कं डरै न धक्कं मधि मधतक्कं नह चक्कं ।
उनमनि छक्कं प्राण सु पक्कं हासिल हक्कं अहि नक्कं ।
द्वारिका मक्कं बाज्या डंकं सब सुणि ढक्कं ऐसी बिधि साहिब अषं ॥४॥

तौ द्वै पष त्यागं पाया मागं पंथि सु लागं निज पागं ।
सो बिचि बैरागं यूं जगि जागं ताणा तागं जग रागं ।
सब झूठि सुझागं थांभी बागं धोया दागं है भागं ।
गहि ज्ञान सु षागं निज करि नागं बैरी भागं सम कीया लक्खं ।।५।।

तौ घर व्योम निरालं अदभुत चालं मुगध मुरालं बिगतालं ।
घेरे घालं कोमल नालं पैठाल तहं रस आलं ।
प्राण सु पालं करम न कालं मति वालं भाग सु भालं ।
हरि सम्भालं टूटा सालं ऐसी विधि अमृत अषं ।।६।।

तौ उभै न रीतं पाई थीतं कारिज कीतं जगि जीतं ।
सो अगम अजीतं निरमल चीतं इहि मत मीतं निज नीतं ।
भरम सुभीतं इहि बिधि बीतं लाहा लीतं धनि धीतं ।
करि हरि हीतं दान सु दीतं नाहीं ईतं कहा होइ वाहू झक्षं ।।७।।

तौ गुर सब्दं निरख्या नद्दं चेत्या तद्दं यहु गद्दं ।
माया का मद्दं उतरचा तद्दं ज्ञान गरद्दं करि बद्दं ।।
द्वै पषि हद्दं देखी रद्दं बिचि बेहद्दं सो पद्दं ।
तो दिल न दरद्दं लाहा लद्दं घटै न कद्दं दीरघ गुर दीरघ खद्दं ।।८।।

तौ सुन्या सु कन्नं पषि न पन्नं यहु मत मन्नं सो जन्नं ।
जग मत धन्नं पकड्या रन्नं केतकम गन्नं है घन्नं ।
गुण गण हन्नं तिरै सु तन्नं नाहीं छन्नं सो धन्नं ।
देव न दन्नं लहै न थन्नं सो बिधि बन्नं ऐसी बिधि जगमग नषं ।।९।।

ता समि नहिं कोई त्यागी दोई गुरमुख जोई कहि होई ।
गोपि सु गोई आतम धोई खल मत खोई यहु छोई ।।
मैवासा मोई जग मति चोई ढाल सु ढोई रिपु रोई ।
सब जग टोई लाल सु लोई या तन मन काढ़ी दषं ।।१०।।

कबित्त : नर नाराइन रूप निरखि निरपषि निज न्यारा ।
सौ जोगेसुर जान प्रान परबीन सु प्यारा ।।
आतम अगम अगाध नजरि गुण जुगल सु नाहीं ।
मधि मारग चलि चाल मिलै मोहन को माहीं ।।
येकहि सौं ह्वै उभै उभै गुण मेटि सु येकै ।
रज्जब सीझ्या संत काटि क्रम कुली बमेकै ।।११।।

गुण छंद सूरातन के अंग

दोहा : माहै मारै गुणहु कौ, बाहरि जग सौं जुद्ध ।
जन रज्जब सौं सूरिमा, गोपि रह्या कुल सुद्ध ॥१॥

सब सूरू सिरि सूरिवां, जो जीतै गुण जोध ।
जन रज्जब जूझार सो, ताका उत्तिम बोध ॥२॥

छंद : तौ षत्री चारं खेत बुहारं पाया मझारं महि सारं ।
उठे अपारं करते मारं ठाही ठारं तहि बारं ।
काटचा क्रम कारं तीरथ धारं अंग अपारं दिल ठारं ।
जीत्या सिरदारं उतरचा भारं पाया पारं नांव नराजी यूं मेलं ।
दादू का चेलं पंच सु पेलं रज्जब रिण चौरंग खेलं ॥३॥

तौ तजि सब ओटं काया कोटं चौड़े चोटं बलि बोटं ।
काढ़े गुण सोटं बहु बिधि बोटं राजस घोटं काढ़या सब खोटं ।
मंगल मोटं करम सु छोटं हति झोटं बांधी पुनि पोटं ।
मान्या टोटं तासन जोटं ऐसी बिधि आपद रेलं ॥४॥

तौ सूर सुभट्टं करि खल खट्टं बैरी कट्टं गहि चट्टं ।
दुरजन थट्टं करि दह बट्टं फेरि घरट्टं यूं दट्टं ।
दूंदर धट्टं कीये पट्टं षाग सु झट्टं सो हट्टं ।
घेरे घट्टं नारद नट्टं अनन्त अवट्टं प्राण पिसण ऐसे ठेलं ॥५॥

तौ खोये खल खाहं मही सु माहं ठौर न ठाहं रिझ राहं ।
गिरवर गाहं गोपि ससाहं करै सु हाहं बदि बाहं ।
काटे दुख दाहं पड़ै न धाहं बेपरवाहं निज नाहं ।
जल जुद्ध अथाहं निकस्या ढाहं लीया लाहं करकिय सांचा सेलं ॥६॥

तौ सूर संभालं गहि करवालं अरि घर घालं अहि हालं ।
करम सु कालं मारे भालं पड़े न रालं गुन गालं ।
करि भुइचालं पिसण सु पालं बसुधा बालं बिगतालं ।
सब तोड़ै सालं निबह्या लालं उठै न झालं सारे सनमुख यूं झेलं ॥७॥

तौ ताते तावं घाले घावं मारे रावं यहु सावं ।
बीरा रस चावं पाया डावं आगै पावं है भावं ।
स्यंघ सु छावं करै सु घावं मिले सु बावं जस गावं ।
अगम सु आवं लाधी ठावं कदे न जावं जीव ब्रह्म ऐसे मेलं ॥८॥

तौ भूपति भाजं कीये पाजं राखी लाजं सिरताजं ।
सिद्ध सु काजं पाया राजं गुण सिरि गाजं सब साजं ।
नहिं अंदाजं खट्ट न खाजं बन्धी पाजं उर आजं ।
माया माजं ऊंचा छाजं अधिक अवाजं तिहूं लोक फूटा हेलं ॥९॥

तौ बैरी बासं दूंदर दासं खाई त्रासं गुण ग्रासं ।
पिसण अवासं फेरचा घासं दोसी नासं नह सासं ॥
जुद्ध जुजासं कहिये कासं बीर बिलासं नहि हासं ।
प्राणी पासं क्रील तरासं बारह मासं काटे क्रम करता केलं ॥१०॥

कबित्त : करि सु जोग संग्राम खेलि षट षोहणि खेसै ।
सुभट सूर बिख्यात सु नर नवखंड नरेसै ॥
दुरजन काढ़ि सु दूरि मारि मैवासा मोई ।
ऋण सु राखि रज रेख करै समसरि कहुं कोई ॥
राज काज समरथ बीर बीराधि बिराजै ।
जन रज्जब जगि जोध लोकि राखी ध्रम लाजै ॥११॥

गुरदेव का अंग

अरिल : चंद सूर आकास अवासहिं ज्यूं दिया ।
तैसें उर घर मद्धि गुरू गोव्यन्द किया ॥
ठौर ठौर की बसत न सूझै इन बिना ।
रज्जब कही सु सांच सत्य मानी मना ॥१॥

देखौ गुर उर पैठि कौन कारिज करै ।
काढ़ै मांड मझारि मिलावै सब परै ॥
दीसै बीच दलाल दुहूं दिसि का धणी ।
रज्जब राम उमंगि आप सौंपी घणी ॥२॥

मेघ बिना ज्यूं मूढ़ मेदनी सब मरै ।
चौरासी की चूणि न उपजै क्या चरै ॥
त्यूं काया मधि काल गुरू मति बाहिरै ।
रज्जब प्यंड ब्रह्मंड कौन बिधि ठाहरै ॥३॥

गुरु का काम न होइ सु काहू जीवतै ।
मन बच क्रम तिरसुद्ध इहै मानी सुतैं ॥
सब साधन की साखि बेद यूं भाखहीं ।
रज्जब गुर परताप सीस परि राखहीं ॥४॥

गुर गोव्यंद समान सिष करि जानई ।
मन बच क्रम तिरसुद्ध इहै उर आनई ॥
तौ कारिज परिसिद्ध होत कहा बेर रे ।
तौ रज्जब इक भाइ न करई फेर रे ॥५॥

गुर गोव्यंद तैं बाढ़ि हमहु कौ सूझई ।
औरूं समझ्यो कोइ अकलि मैं बूझई ॥
मक्कै बड़ा जहाज जाहि चढ़ि जाइये ।
रज्जब पीर प्रसंग खुदा ही पाइये ॥६॥

कहिये गुर गोव्यंद तीर मन है खुदा ।
उभै उरहुं मैं आय ऐन नाहीं जुदा ॥
मारहिं गुण तासीर जिलावहिं जीव जो ।
रज्जब राम रहीम कही जैं सत्य सो ॥७॥

आतम सुत्रि समान गुरू बिन को गढ़ै ।
पीव मिलै जिहिं पाठि पीरही सौं पढ़ै ॥
यहु न और तैं होइ दुहाई राम की ।
रज्जब सोच बिचारि कही निज काम की ॥८॥

पै पाणी मिलि जाहि हंस निरबारई ।
मधु मिश्रत बनराइ सु मधुरिष टारई ॥
सतिगुर सोधि सरीर करै जिव कौ जुदा ।
यहु न और तैं होइ पीर परि ह्वै मुदा ॥९॥

क्वांरे आतम राम पीर परणा वई ।
यहु इनहीं का काम इनहु ह्वै आवई ॥
नहीं त मेला नांहि निकट न्यारे सदा ।
रज्जब मेटै नांहिं गुरु का हुदा ॥१०॥

अपने सिरजे दूरि हजूरि गुरु गढ़े ।
अतिर अवनि आकास आधि सु घटे बढ़े ॥
साध बेद की साखि सु परतषि बोलई ।
रज्जब साषित भगत न समसरि तोलई ॥११॥

उभै अंग बिचि ऐन गरू गहणा मई ।
यूं आतम ले राम राम आतम लई ॥
पीर पटू दरम्यान देखि द्वै दिसि सुखी ।
रज्जब सौदा होइ मिटै नहीं गुरुमुखी ॥१२॥

गुरू बिना गोव्यंद सगा नहीं जीव का ।
देखा सोचि बिचारि मता हरि पीव का ॥
जल दल कपड़ा देइ किये की लाज रे ।
रज्जब राम न मिलैं सकल सिरताज रे ॥१३॥

पहलै बावन तीस जु आषिर जाणिये ।
पीछै बेद कुरान सु बोलि बखाणिये ॥
तैसे गुरमुख मांग जु प्राणी पाइहै ।
रज्जब पंथी सोई सुन्नि पुर जाइहै ॥१४॥

पंच तत्त के पंथि पंच तत्त आवई ।
तैसै गुरिमुख मांग परम रस पावई ॥
तालहु मै की बसत सु कूंची कर चढ़ैं ।
पद रज्जब ऐसै जाणि पीर पंदति पढ़ै ॥१५॥

ज्यूं जोतिग चढ़ि जीव गहन गति पेखई ।
तैसै गुर के ग्यान परम पद देखई ॥
दूरहि दरसै सिद्धि सोधि कै आवतै ।
रज्जब लहिये राम संत पद पावतै ॥१६॥

खोजी बिना न खोज सु काहू कन कढ़ै ।
है गै नर असवार फौज कहि दिसि चढ़ै ॥
वित्त बिना बाजार हाथि क्या आवई ।
रज्जब तैसै राम न गुर बिन पावई ॥१७॥

बिना पुरिष परसंग न सुत कारण रहै ।
ऐसें गुर तैं बिमुख सु गोव्यंद क्यूं लहै ॥
तामै फेर न सार उचारी बात है ।
रज्जब साधू साखि कहै सब बेदहूं यूं कहै ॥१८॥

सकती सुख अर सीत जर्माहि तन हेम ज्यूं ।
आतम अंड सु कूंज बंधे बप बारि यूं ॥
सतगुर सूरि जे तेज बिरह बैसाख रे ।
बहै नैन नदि पूरि मिलै सुत मात रे ॥१९॥

रजक रूप गुरदेव सु पंचूं कापड़ै ।
सब बिधि सब संजोग मिलावहिं बापड़ै ॥
ऐस उज्जल होइ सु बागा जीव का ।
रज्जब सभा समाइ दरसनी पीव का ॥२०॥

नीच ऊंच पल माहिं गुरू परताप तैं ।
सो निरखे निरताइ सु अपनै नैन मैं ॥
देखौ दिसि रैदास सु कीता कौन रे ।
रज्जब धनि सतसंग पुनीत सु भौन रे ॥२१॥

पीर पैगम्बर भये पीर पंदि आवतैं ।
यहु न और तैं होइ सु राना रावतैं ॥
खालिक खलक सहेत मुरीदहिं देत हैं ।
रज्जब रीती ठौर भली भरि लेत हैं ॥२२॥

होत मुरीद निहाल सु मुरसिद मौज तैं ।
दुख दालिद्र सु जाहिं सत्ति मानी सु मैं ॥
पीर प्राण प्रतिपाल पियारे पीव के ।
रज्जब कृपा कटाक्ष काज ह्वै जीव के ॥२३॥

गुरू गरीबनिवाज अनाथौ नाथ है ।
निरधारूं आधार अकेलूं साथ है ॥
परम पठंगा प्रान पीय कौ पेखिये ।
या समि और न वोट सु रज्जब देखिये ॥२४॥

नांव निरूपन गुरु नरहू निस्तारना ।
साधौ मन्दिर थानि सु साधू बारना ॥
पीव पौरि मैं पैठि मन्दिर मैं आइये ।
रज्जब अज्जब ठौर न इन बिन पाइये ॥२५॥

गुर की दया दयाल सुदरसन देत हैं ।
सुत सन्तन की बात तात सुनि लेत हैं ॥
पूरे पीर दलाल सु इहिं सौदे सदा ।
रज्जब साधू दूरि तिनहुं पाई बिदा ॥२६॥

मरहिं अमर अरि अंग मित्र दल जीवहीं ।
जावण मरण सु जाहि परम रस पीवहीं ॥
यहु सब गुर परसाद भगति भगवन्त लौं ।
रज्जब तन धन देहिं लेहिं जो तोहि लौं ॥२७॥

सुकृति के प्रतिपाल कुकृतौ काल हैं ।
मारहिं दुंदर सोधि सु दीनदयाल हैं ॥
सतगुर बिन ये काम जीव के को करै ।
रज्जब मन मंडान फेरि उलटा धरै ॥२८॥

गुर के दान समान न नौखंड पाइये ।
सुरगलोक सब सोधि पतालौं जाइये ॥
सुर नर सबही जाचि न पावै सोधना ।
रज्जब अज्जब मौज सत्ति मानी मना ॥२९॥

पाये गुर धर दान दलिद्र सुना रहैं ।
देखै सृष्टि सुदृष्टि भिख्यारी हूं कहैं ॥
एक नांव मैं आप सकल ले रमि रह्या ।
रज्जब पीर पसाय सोइ प्राणहु लह्या ॥३०॥

गुर गोव्यन्द अगाध सु महिमा क्या कहूं ।
मन बुधि सबद न माहिं अलह गुन क्यूं लहूं ॥
यहु अपना उनमान जु बोलि बखानिये ।
रज्जब प्रभुता पीर प्रमान न जानिये ॥३१॥

जुगि जुगि गुर परताप सिष सांचे बढ़ै ।
पंदहु परि पग धारि अगम ऊंचे चढ़ै ॥
गुर दादू की दाति रज्जबा है सुखी ।
औरौ भी आनन्द सु जेते गुरमुखी ॥३२॥

उपदेश चेतावनी का अंग

यहु पूरा उपदेस श्रवन सुनि धारिये ।
सौंज सिरोमणि पाइ बृथा क्यूं डारिये ॥
यहु औसर यहु बेर न कबहूं पाइये ।
रज्जब सोचि बिचारि राम गुन गाइये ॥१॥

नर नाराइन देह नांव की सीर रे ।
तामै बारंबार कहै गुर पीर रे ॥
त्यागि अनेक अयान एक उर आनिये ।
रज्जब रटिये राम समय ये जानिये ॥२॥

मनिषा देह स्थान जीव कब आइहै ।
चौरासी के फेर दुलभ पुनि पाइहै ॥
तकि औसर ततकाल राम रस पीजिये ।
रज्जब बिसवा बीस बिलम्ब न कीजिये ॥३॥

अकलि सु आतम जोर मनिष अस्थान रे ।
नर नाराइन होत देख दृढ़ मान रे ॥
चौरासी के माहिं सु बहुतै बप बली ।
रज्जब तन कै तेज न मूरति हरि मिली ॥४॥

यहि काया कल्यान भजन की ठौर है ।
चौरासी लख माहिं न ऐसी और है ॥
तामै कीजै काम राम रट लीजिये ।
रज्जब येही बेरि बिलम्ब न कीजिये ॥५॥

रज्जब अज्जब सौंजि सु सुमिरण लाइये ।
नर नाराइन रूप सू बहुरि न पाइये ॥
काया रतनहु माल रैनि दिन गुर रढ़ै ।
कीजै सोइ उपाइ जु यहु गोबिन्द चढ़ै ॥६॥

बिबिधि भांति की देह उधारी देत हैं ।
अवधि पूरि सो आप आपनी लेत हैं ॥
ऐसहि जानिर जीव बिलम्ब न कीजिये ।
रज्जब रटि जटि राम सु लाहा लीजिये ॥७॥

कौड़ी लगै न कोरि सु सुमिरन रावरे ।
ऐसा सोधा नाव न लेही बावरे ॥
सांस सुरति का काम राम रटि लीजिये ।
रज्जब परम पियूष प्रान किन पीजिये ॥८॥

नांव इसहि ले जाइ उसहि आने यहीं ।
सुमिरन समि न दलाल कष्ट कोई कहीं ॥
मेला आतम राम भजन करि होत है ।
रज्जब रटिये राम परचा निज पोत है ॥९॥

जप तप संयम दान सीस करवत धरै ।
साधन कष्ट अनेक देह दहणा फिरै ॥
प्रगट गुपत पुनि और नाम बिन कीजिये ।
रज्जब बिन भगवंत कदे नहिं सीझिये ॥१०॥

सुकृत सब सुख मूल श्रवन सुनि कीजिये ।
मनिषा जनम सु मौज सुफल करि लीजिये ॥
यहु औसर यहु बेर बहुत नहिं पाइये ।
रज्जब बिछुरे देह न परि गुन गाइये ॥११॥

इहै सीख सुनि लेहु न भूलौ बावरे ।
मनिषा देही मौज न लहिये दावरे ॥
यहि औसर यहि देह नांव निज लीजिये ।
रज्जब समझि अचेत बिलम्ब न कीजिये ॥१२॥

सारे सांस सरीर सु सुमिरन जोग रे ।
जब लग आये नाहिं जुरातन रोग रे ।।
रुकै उभै अस्थान नांव नहिं आवई ।
रज्जब ऐसे जानि अबहि किन धावई ।।१३।।

काल का अंग

बिनसै पंचौ तत्त आदमी कौन है ।
एक बिना जो और सबनि को गौन है ।।
काल करम बसि नाहिं सु मोहि बताइ रे ।
रज्जब जीतहुं अन्तकाल पुनि जाइ रे ।।१।।

मतै मेदनी मारि उपाई सृष्टि है ।
तब की मिरतग रूप सु देखी दृष्टि है ।।
मीचहि लागी मीच न जीवन पाइये ।
रज्जब ऐसी जानि राम गुन गाइये ।।२।।

सुमिरन का अंग

सुमिरन सब सुख मूल थूल क्यूं भूलिये ।
तेज पुंज के होत भजन करि धूलिये ।।
सीझै हिन्दू तुरक येक निज नांव सों ।
रज्जब रटिये राम प्रान की ठांव सों ।।१।।

सब जग देख्या जोइ न सुमिरन सा कछू ।
अमर ओषदी येह लेह राखिर पछू ।।
रज्जब रोग अपार सु छिन मैं जाइहै ।
भाग भले तहि माल जु रुचि सौं खाइहै ।।२।।

एक नांव की खोट चोट सारी टरहिं ।
इन्द्री अरि दल काल देख दीरघ डरहिं ।।
सुख सम्बूह अपार सु जुगि जुगि पाइये ।
रज्जब रुचि सौं राम रैन दिन गाइये ।।३।।

भै भंजन भगवंत भजै भय मानई ।
गुन इन्द्री क्रम काल निकट नहीं आनई ॥
टूटै जुर जंजाल न जिव जग मैं परै ।
रज्जब अज्जब काम जु अब सुमिरन करै ॥४॥

सब संतन का धाम नाम मैं देखिये ।
अमर अभै पद ठाम जु आहि बसेखिये ॥
काल करम की चोट न सुमिरन मैं सही ।
रज्जब साधू साखि बेदहूं यूं कही ॥५॥

मंगल कल्यान आनन्द सुमिर सुख होत है ।
दुखी दीरघ सब जाहि बहुत ही वोत है ॥
कीजै क्युं न अघाइ भजन सुणि राम का ।
रज्जब क्या गुन कहै सर्ब ही काम का ॥६॥

सुमिरन सब स्यंगार सुकृत तौ देखिये ।
तामह फेर न सार सु बीर बसेखिये ॥
भाग भलेहिं तहि भाल भजन भूषन किया ।
रज्जब तिनहुं सुहाग सत्य सांई दिया ॥७॥

छसै सहस इक्कीस माल मनिषा करै ।
हृदय हेत कै हाथि रैन दिन सौं फिरै ॥
यहु जोगेसुर जाप जीव जो जानई ।
तौ रज्जब निज नाह कहौ किन मानई ॥८॥

बाजै नाभि अस्थान सु नौबति नाम की ।
सो सुनिये सब लोकि अवाज सु ठाम की ॥
देखि कहां की बात कहां लौं जानिये ।
रज्जब छिपै न नांव जु गोपि बखानिये ॥९॥

एक नांव कै संगि नराइन डोलई ।
भजनी कौ सौ भाइ बोलाये बोलई ॥
ये सुनि कानन बात सु आनन लाइया ।
रज्जब तिनकै पास परम गुर आइया ॥१०॥

सुकृत रूप सरीर भजन भूषन करै ।
सुन्दर इह स्यंगार सु पिव का मन हरै ॥
तन मन साबति राखि रिझाया राम कौ ।
रज्जब धनि धनि भाग करी इस काम कौ ॥११॥

जिव कौ नांव जहाज सु करता ने करचा ।
बिसम समुद्र सरीर सु ताकै सिर धरचा ॥
चढ़ै सु प्राणी पार सुन्नि पुर जाइहै ।
रज्जब अज्जब दरस सु जुगि जुगि पाइहै ॥१२॥

सुमिरन करै सु सन्त सही सुख पाइहै ।
मन बच क्रम तिरसुद्ध जु हरि गुन गाइहै ॥
यहु आनन्द अस्थान सु मंगल जीव का ।
रज्जब लीजै नांव रैन दिन पीव का ॥१३॥

करी आतमा राम देखिये कहि ररै ।
अलिफ लागि अल्लाह सु पीर पगंबरै ॥
नमो नमो निज नांव सु महिमा को लहै ।
रज्जब अलप सुबुद्धि येक मुखि क्या कहै ॥१४॥

निरफल कदे न जाइ तरोवर नांव का ।
नेह नीर सौं सींचि निरन्तर ठांव का ॥
जुगति जतन करि राखि बाड़ि बैणहु करी ।
रज्जब फल हरि दरस आंखि वोड़ी भरी ॥१५॥

दया का अंग

इहै दया सुनि सत्ति सु जीवन मारिये ।
मन बच क्रम तिरसुद्ध पिसुनता टारिये ॥
सब सुकृत तिन कीन मिहरि मनसा धरी ।
रज्जब रीझे राम रही क्या अनकरी ॥१॥

जो न जिलाया जाइ सु जीव न मारिये ।
सिर साढै सिर लेइ सु क्यूं न बिचारिये ॥
लेखा लेइ खुदाइ ज्वाब क्या दीजिये ।
पीछै भारी होइ सु पहल न कीजिये ॥२॥

ऐसी सोच बिचारि मास क्यूं खाइये ।
हांसै टलै सु नांहि अन्त दुख पाइये ॥
रज्जब बणिक बिचार न कबहूं कीजिये ।
आपा पर समि देखि दया दिलि लीजिये ॥३॥

दया परै नहिं धरम न सुकृत देखिये ।
मिहरि मया महिमाहिं परम निधि पेखिये ॥
या समि और न अंग साखि सारे कहै ।
भाग भले तेहि भाल जीव जो यहु लहै ॥४॥

सकल भले का मूल दया में देखिये ।
धरम दान पुनि पड़े तेही में पेखिये ॥
सुखदाई दुःख दमन मांड में है मया ।
रज्जब अज्जब काम सु दिल लीजै दया ॥५॥

बड़े दिलन की दया बहुत सुख पावई ।
सो सहंस गुण होइ तहां फिर आवई ॥
तामह फेर न सार मया मन कीजिये ।
रज्जब सोब न होइ दोष मोहिं दीजिये ॥६॥

कोटि भांति कल्याण दया दरसावहीं ।
उनकी मया मनुष्य और सुख पावहीं ॥
हुये हमायसों ऐन आतमा यहि मती ।
रज्जब उनकी छांह जु निपजै नरपती ॥७॥

दया धरम की बात गात जेहि जानिये ।
तामैं दीनदयाल सत्य करि मानिये ॥
सब सुकृत तेहिं ठौर भलाई भासही ।
रज्जब मिहरि सु मांझ आप परगासही ॥८॥

दया रूप दिल होय तो ये कारिज करै ।
निरबैरी सब जीवन सों मारे मरै ॥
काहू धका न देइ न सो फिर पावई ।
रज्जब जग जगदीस सबन कूं भावई ॥९॥

दया दृढ़ावै धरम दुष्टता दिल हरै ।
उर गिर बज्र बिशेष कठिन कोमल करै ॥
आपा पर समि एक आतमा जानई ।
उपजै परमारथ सू पीर पर भानई ॥१०॥

बैरागर की खानि मिहरि की है मही ।
सुकृत सुजस अनन्त सु नग निपजै सही ॥
यहां भरै भंडार सु आगे सब भला ।
रज्जब या उपरान्त कहौ क्या है भला ॥११॥

बिरह का अंग

सुखी सकल संसार बिरहणी दुख भरी ।
बाम मिलत बर बारि अमिल अगनी जरी ॥
चौरासी बित चैन सु मुंह आगे मुदा ।
रज्जब चाहै राम दुखी दीरघ जुदा ॥१॥

बिरह बिथा तन पीर धीर केहि बिध धरै ।
ज्यूं मोती मधि थाल तनहि मन यूं फिरै ॥
दर्शन बिन बेहाल बियोगिन बावरी ।
रज्जब कृपा कटाछ कबहिं ह्वै रावरी ॥२॥

सत्ती सुख ससि सीर सुधा रस बरसहीं ।
पीवत प्राण पियूष सबै मन हरषहीं ॥
मोमन बाज बिसेष बिरह बपु चांदिया ।
रज्जब रस बिष होइ उभै सुख बांदिया ॥३॥

दुख यहु निज तन जाइ दुखित मन बसि नहीं ।
दौरै दिसि दीदार न दीसै सो कहीं ॥
ये पीरा परचंड जीव जरता रहै ।
रज्जब बिबिध वियोग कहौ कासौं कहै ॥४॥

बिरहिन ब्यथा बिछोह दरस दारू रटै ।
मानहुं रोगी रोग औषधी सौं कटै ॥
ज्यूं नर बूड़त नीर नाव सु चढ़ाइये ।
रज्जब के थे हाल हेरि हरि आइये ॥५॥

चाणक का अंग

मुख ही परिगासै और मध्य मन और है ।
यहु पूरण परपंच सांच केहि ठौर है ॥
दगाबाज ठग ऐन सु देखि न धीजिये ।
रज्जब तिनका संग कदे नहिं कीजिये ॥१॥

सिष्य न होये आप सिष्य औरन करै ।
यहु पूरण परपंच ठगारिन सौं परै ॥
पूजत बहु दुख होय पुजाये सौं दुखी ।
रज्जब कही बिचार सु निगुरा मनमुखी ॥२॥

अज्ञान कसौटी का अंग

अगणित कष्ट अनेक अज्ञान न कीजिये ।
नाम बिना नहिं ठाम छलावै छीजिये ॥
मृग तृष्णा का नीर सु मरकट आगि रे ।
रज्जब रीझा सांच झूठ दे त्यागि रे ॥१॥

अज्ञानी कसि देह न मन कूं मारि है ।
ज्यूं संकट मधि सर्प विषहु अधिकार है ॥
तैसै सठ हठ देखि न कबहूं लीजिये ।
रज्जब परखौ प्राण प्रपंच न धीजिये ॥२॥

बीनती का अंग

धरे अधर का सुख दान दीवान का ।
दीया लीया जाय सपिंड परान का ॥
बहु बिधि धन बियोग सु काया हंस के ।
रज्जब ते सब तुमतै जाय तुम्हारे अंश के ॥१॥

छंद जाति त्रिभंगी समाप्त ।

बावनी भाग

प्रथम बावनी

बावन आषिर बहु बिस्तार, आषिर सहित सु बिनसनहार ।
निरआषिर सो इनमैं नाहिं, रे मन समझि तहां चलि जाहिं ॥१॥

ओंकार आदि दे माया, तामैं तीन्यूं लोक उपाया ।
उपाये मैं उपज्या सोइ, जिस घटि ध्यान धणी का होइ ॥२॥

कक्का केवल पकड़हु बाट, कर करवत ले करमहि काट ।
काले सौं ऊजल यों होइ, बिबिधि बिकार ध्यान सौं धोइ ॥३॥

खख्खा खाली खेसहु खेल, खलकहि छांड़ि खसम सौं मेल ।
खैंचि खुली षट षोहणि खाव, खारै समंदि भूलि मत जाव ॥४॥

गग्गा गरब गुसा गुन गालि, गहौ गरीबी गुरमुख चालि ।
गरजै गगन गहर धुनि होइ, मरि मैदान मारि लै गोइ ॥५॥

घघ्घा घरही मैं घर बात, घर के घेरि बड़ी यहु घात ।
घूघू ह्वै घोलो मत नैन, साईं सूरिज ऊग्या ऐन ॥६॥

नन्ना नीड़ौ निरमल नूर, सो निधि निरखि जाहु मति दूर ।
नमो नमो निज निरमल देव, निसिबासुर करि ताकी सेव ॥७॥

चच्चा चित च्यंतामणि राखि, चंचल ह्वै दीजै नहिं नाखि ।
चंद चरन करि नैन चकोर, चेतनि ह्वै चाहो वहि वोर ॥८॥

छच्छा छोड़हु छोटी बाणि, लेहु कहा सुणि छारहि छाणि ।
छड़ि छड़ि छंटि करहु छैछीन, छल बल छेदै दूंदर दीन ॥९॥

जज्जा जगि जीवनि जसि गाइ, जिव जोख्यूं जुग जुग की जाइ ।
जाणि बूझि तजि जग व्यवहार, निसिबासुर जप जै जैकार ॥१०॥

झज्झा झटपट कीजै काम, झूठि झांडि झुकि भजिये राम ।
झांथे पड़ि झोले मति खाहु, झूरि झूरि पिव को मिलि जाहु ॥११॥

नन्ना नारायण औतार, निरगुण सुमिरण लावहु बार ।
नै नीचा ह्वै नाखो दोइ, निरखि निरंतर न्यारा होइ ॥१२॥

टट्टा टूटी जोड़हु संधि, टूक टूक ले उनमनि बंधि ।
एकटक अटल रहै दरबार, टोटा टाली फेर न सार ॥१३॥

ठठ्ठा ठिक ठाहरि ले सोधि, ठोकि ठांकि पंचौ परमोधि ।
ठंठणपाल होइ मति रहै, ठाल ठोठि मनमुखी बहै ॥१४॥

डड्डा डिढ़ डोरी उर राखि, डगमग डिंभ डील सौं नाखि ।
डिगे डन्ड दीजै दरबारि, अडिग अडोल सो उतरै पारि ॥१५॥

ढढ्ढा ढांढ़े की मति त्यागि, ढूकि ढूकि हरि सेती लागि ।
ढहि ढाहै तोड़हि मति पाव, ढाढ़स करि गोविन्द गुण गाव ॥१६॥

राणारिण जोना सब धोइ, चरण रैणि हरिजी की होइ ।
रैणाइर रसकै मैं न्हाव, ऐसे रंक राणा ह्वै जाव ॥१७॥

तत्ता त्रिगुण तिरौ ततकाल, तकि औसर तीखी गति चाल ।
ताइ तत्त तसकरि तनि त्रास, त्राहि त्राहि करि तामस ग्रास ॥१८॥

थथ्था थिरक्यूं थोड़ी बेर, थान थीति ले आतुर हेर ।
थरसलि थूल न थोथी थाप, थकित होइ बैठौ मत बाप ॥१९॥

दद्दा दूजी दसा न देख, देतौ दगधि राख रज रेख ।
दाइम दिल मैं देखौ नूर, दीनदयाल रहै भरिपूरि ॥२०॥

धध्धा धनि धनि धरिये ध्यान, धुकि धुकि लेहु गुरू का ज्ञान ।
धरि धीरज धुनि धरमहि साध, या परि और नहीं कछु बाध ॥२१॥

नन्ना नीका है निज नांव, नित नौबति बाजै बलि जांव ।
नासै पातिग निकसै तेज, नारी नाह अमोलिक हेज ॥२२॥

पप्पा पीव पुरातन जान, प्रेम प्रीति पूरी उर ठान ।
परमेसुर का लहिये पास, पाप पुंज पल माहैं नास ॥२३॥

फफ्फा फहेम फकीरी लेहु, फिरि फुटै जगि मन मति देहु ।
फोकट फकटै दीजै त्यागि, फारिक ह्वै फारिक सौं लागि ॥२४॥

बब्बा बिरचहु बिषै बिकार, बोध बिमल बुधि अन्तरि धार ।
बैन बिसम्भर बारह मास, कबहुं न होवै कंध बिनास ॥२५॥

भम्भा भूलि न भोजन जाहु, भरमि भरमि गोते मत खाहु ।
भीतर भूख काटि सब देहु, भजि भगवंत भलाई लेहु ॥२६॥

मम्मा मरणौ है संसारि, मानि मुगध माथे परि धारि ।
ममिता मान मैल मन धोइ, मोहन सुमिरयूं मंगल होइ ॥२७॥

जज्जा जोड़हु आतम राम, जुरा जोर करि जीतै जाम ।
जोग जाइ जन की नहिं जीति, जावण मरण जीव भैभीत ॥२८॥

रर्रा रोकहु मूलहु द्वार, रोम रोम रटि राम अपार ।
यहु रस रीति सकल सिरमौर, रीती रहै न कोई ठौर ॥२९॥

लल्ला लालच योंही जाणि, ह्वै लैलीन लाल उर आणि ।
लोक असंखि लंघि यूं जाहु, लांबी लगणि काल कौ खाहु ॥३०॥

वौव्वा वैली वोर न आव, उलटा उर अंतर धरि भाव ।
वारि वारि उस ऊपर जीव, उमंगि उमंगि उत्तिम रस पीव ॥३१॥

शश्शा सुमिरन करौ सबाहि, सांच सील उर अंतर बाहि ।
सूधे मारग मैं सिरि देहु, सो साईं अपणा करि लेहु ॥३२॥

षष्षा षिदमत करि इक तार, षड़े रहो षालिक दरबार ।
षान षजाना षीझे नाहिं, जैसे वाउरि षोटी माहिं ॥३३॥

सस्सा साईं सिर पर राखि, सतगुर साधु कहैं सब साखि ।
सुमिर सनेही समझौ दास, सुख के स्यंध माहिं कर बास ॥३४॥

हहा हरि भजि हरि ही होइ, हंसहिं हंस मेलि नहिं दोइ ।
हुये होइहैं साधू खेत, ह्वै हुसियार करौ हित हेत ॥३५॥

बावन अक्षर व्योरै बीर, निरअक्षर सौं नाहीं सीर ।
जन रज्जब केसो मन माहिं, जो कछु इन अंकन में नाहिं ॥३६॥

बावनी अक्षर उद्धार

दोहा : बावन अक्षर ब्रह्म भजि, वेत्ता बावन बीर ।
मन सिख मानहु मत यहु, कहै प्राण गुर पीर ॥१॥

बावनी : ओ अक्षर ते ओंकारा, ओ आराध आतम उर धारा ।
उत्तम गति अक्षर ओ माहिं, उनमन लागि अनन्य जन जाहिं ॥२॥

कक्का केवल है करतारा, कलि कुसमल सौं काटणहारा ।
काम इहै बरजौ मति कोई, केवल कहता केवल होई ॥३॥

खख्खा खालिक अक्षर खेवै, खिलै नाहिं खसमहिं जो सेवै ।
खलकबंध षोहणि खुलि जाहीं, खरतर खेत सुखै खैमाहीं ॥४॥

गग्गा गुरु गोविन्द गहि ज्ञाना, गुप्त गात गत मत सुगराना ।
गरक गूझ गहनी यूं आवै, गग्गा गगनहिं स्थान लखावै ॥५॥

घघ्घै घन सुंदर घन जाना, घण नामी का करहु बखाना ।
घणहु घणा घण लोक घणेरा, यूं घघ्घै आषिर सब घेरा ॥६॥

नन्ना निराकार करि नेहा, निर्गुण सुमिरि सफल निज देहा ।
नर नारायण करै सु नना, नीकी बात मान रे मना ॥७॥

चच्चा चिदानन्द चित राखी, चिन्तामणि चबि चंच सु भाखी ।
चित्र चारि चषि चारो आये, चरणकमल चच्चै सु समाये ॥८॥

छछ्छा छह दर्शन प्रतिपाला, छिन छिन छत्रपती सु संभाला ।
छैलछबीला छाना नाहीं, छत्तीस बस्तु सु छछ्छै माहीं ॥९॥

जज्जा जपि जगपति जगन्नाथा, ज्यूं जीव चढ़ै नाहिं जम हाथा ।
जूना जोगी जस पुनि ईसा, जज्जै माहिं सु जन जगदीसा ॥१०॥

झझ्झा झीणहुं झीणा सांई, झीणा ह्वै झीणा जस गाई ।
झिलिमिलि उपजै झिझ सू नाहीं, झाझी बसत सु झझ्झै माहीं ॥११॥

नन्ना नरहरि निसिदिन गावहु, रे नर निरालम्भ यूं पावहु ।
नूमल नूर सुनि राखौ नैना, आषिर नन्नै मैं निज ऐना ॥१२॥

टट्टा टलै नाहिं सो राजा, तासों टिकि रहि सरै सो काजा ।
मानहिं टेके टेक जो धारी, अक्षर टट्टै बस्तु पियारी ॥१३॥

ठठ्ठा ठाकुर हूं सों ठाकुर, मन बच क्रम तहिं ठाहर चाकर ।
ठाकुर नाम सु ठठ्ठै माहीं, ताते ठठ्ठा त्यागै नाहीं ॥१४॥

डड्डा डाल मूल तेहि नाहीं, अडिग अडोल बसै सब माहीं ।
डाव इहै तासों डिढ रहिये, यूं डड्डा अक्षर डरि गहिये ॥१५॥

ढढ्ढा ढाकण जगत जहाना, सो ढिग ढूंढि लेहु मति काना ।
ढेर अनन्त ढूंढे न ढिगारा, माप रहित ढढ्ढै मंझारा ॥१६॥

राणा रावण होय न रहिये, राणहु राणा सो निज गहिये ।
लोक अनन्त जास की आणा, अक्षर राणै माहिं समाना ॥१७॥

तत्ता त्रिभुवन है निज सारा, ताहि तजे जिव का निस्तारा ।
ताकूं नाम धरे रहु सीसै, तत्त माल तत्तै मैं दीसै ॥१८॥

थथ्था पाप उर थापण सोई, थाथें थाह न आवै कोई ।
थूल मूल थिति बाहरि नाहीं, थानि थानि थिति थथ्थै माहीं ॥१९॥

दद्दा दाइम काइम दाना, दीनदयाल नहीं सो छाना ।
दीनबन्धु दूजा कोइ नाहीं, दीरघ दौलत दद्दै माहीं ॥२०॥

धध्धा ध्यान धणी का कीजै, धरणीधर धुन अन्तर लीजै ।
धरम भार लेखै मैं नाहीं, धन्नि धन्नि धू धध्धै माहीं ॥२१॥

नन्ना निकुल निरबंसी काया, नित निरवाण नाथ ल्यो लाया ।
नांव अनन्त उधारण जीके, सहस नांव नन्नै मैं नीके ॥२२॥

पप्पा पारब्रह्म पद पूरा, परम तत्त जप जीवनिमूरा ।
पुरषोत्तम पावन जेहि नांवा, परा परी पप्पै मैं ठांवा ॥२३॥

फफ्फा फहेम जो फारिक ध्यावै, फल रस रूप सोई फल पावै ।
फहमि इहै जो फकीरी गहिये, फूटै नाहिं सु फफ्फै लहिये ॥२४॥

बब्बा बीसम्भर बनवारी, बिमल रूप व्यापक बुधि धारी ।
बेहद बिपुल सु बिघन बिनासा, बस्त बित्त बब्बै बिचि बासा ॥२५॥

भभ्भा भगवंत भाइ भणीजै, भूरि भाग भगवान गुणीजै ।
भूधर भूत भेद कहु नाहीं, भली बस्तु सु भभ्भै माहीं ॥२६॥

मम्मा मनमोहन मनि धारी, मुखि माधौ कहिये सु मुरारी ।
महाराज मधुसूदन बोले, अक्षर मम्मै बसत अमोले ॥२७॥

जज्जा जगमोहन जस गावो, जगत जोति जगबन्दन धावो ।
जम का जस जोरावर जाना, जगत रूप जज्जै सु समाना ॥२८॥

रर्रा रमिये राम रहीमा, इहै जाप जपि जीव फहीमा ।
रसिया ले रसिया ह्वै रहिये, रस रूपी सु रर्रै मैं लहिये ॥२९॥

लल्ला लाइक है निज लाला, लच्छी बर लोकहु प्रतिपाला ।
लघु सो लघु दीरघ सो अगाधा, आषिर लल्लै मैं सो लाधा ॥३०॥

वौव्वा वो है सिरजनहारा, वाहि गहै याका निस्तारा ।
उनमनि लागि सु यहु दिसि सोही, वह वह कहत होइ यहु वोही ॥३१॥

शश्शा समरथ सिरजनहारा, सुखनिधान श्रीपति सिर धारा ।
सरबंगी सबही सिरताजा, आषिर शश्शै माहीं बिराजा ॥३२॥
षष्षा एक षुदाइहि ध्यावै, चतुर षान सों जीवन आवै ।
षोटी त्यागि षरा ले येकै, यूं षष्षै आषिर षत छेकै ॥३३॥
संस्या स्यन्धो साहिब सांई, श्रीधर श्रीरंग कौ सिर नाई ।
ससा उसास सुमिरिये रामा, आषिर सस्सै करि सब कामा ॥३४॥
हहा निसिदिन हरि हरि कहिये, हरि हरि कहत सो हरि ह्वै रहिये ।
हूण हद्द सोई सब हुआ, हेरि हंस हहै नहिं जुवा ॥३५॥
एक लागि आषिर सब सीझै, सरबंगी सब ठाहर रीझै ।
पावन परस पाट सब पावन, रज्जब रोग उतार्‌या बावन ॥३६॥
ओषदि मैं आषिर सब लागे, ये पचास प्राणहु थे त्यागे ।
अब आतम आषिर आषिर प्यारे, अनआषिर आषिर सो उधारे ॥३७॥

ग्रंथ पंद्रह तिथि

सतगुर ज्ञान उदै सो सूझी, यूं पंद्रह तिथि तन मैं बूझी ।
अमावस उर अनन्त अंधेरा, तहां सहाय भया गुर मेरा ॥१॥
परिवा पीठि दई तम भूला, प्रथिमी माहिं उदै करि सूला ।
परम अंकूर प्राण मैं जागे, परमपुरिष की सेवा लागे ॥२॥
द्वैज सु दम दम सुमिरन कीजै, द्वै द्वै दोजक दह नित जीजै ।
तौ दिल उगै दोइज चंदा, दिन दिन दीखै अति आनन्दा ॥३॥
तृतिया तिरिसुध होइ तन तावै, तृगुण तोरि तहि तने समावै ।
त्यागै धरनि ताकै आकासा, तहां न कोई तस्कर त्रासा ॥४॥
चौथि सु चेतनि ह्वै चित माहीं, चंचल चोर सु आवै नाहीं ।
चूकै चकै न आये दामै, चरनकंवल देखन का चावै ॥५॥
पंचमी पंचू पलटै प्राना, पल पल पीवै प्रेम सु जाना ।
यहु पतिबरत प्रान को आसा, प्रीतम परसै परम प्रकासा ॥६॥
छठि सु छेन छिन छाटै सोई, ताहि न छलै छलावै कोई ।
छाक्या रहै छानि रस पीवै, छत्रपती की छाया जीवै ॥७॥
सातै सपत दीप के सागर, सोखे होइ अगस्त उजागर ।
सदा सुसीलरु सुमिरण सारा, सनमुख सांई संत पियारा ॥८॥

आठैं इस्ट सु अंतरि राखै, अस्टधात काया कुल नाखै ।
अष्टांग जोगि मैं आतम लोटै, अष्टसिधि दासी पांव पलोटै ॥९॥

नौमी निकुल निरंजन धावै, नीची नजरि न नौखंडि आवै ।
निरमल नांव लिया धुनि गाजै, नित नौबति निज ठाहर बाजै ॥१०॥

दसमी दौलति दसवैं द्वारा, तहं दृग देखै देखनहारा ।
दरगाह बैठा दरसण होई, दह दिसि दीसैं दीरघ सोई ॥११॥

एकहदसी एक दिसि जानै, येकमेक ह्वै रस रुचि मानै ।
एक अधार एक कौ गावै, यूं ह्वै एक एक को पावै ॥१२॥

द्वादसि द्वादस लहरि बिलोवै, द्वादस अंगुल बाई धोवै ।
द्वादस द्वारि न दे दृढ़ ताला, द्वादस मास मगन मतवाला ॥१३॥

तेरस ते तत सार बिचारै, तृष्णा तृगुण तजै तसकारै ।
तोलै तुल संतनि समि पूरा, तौ त्रिभुवनपति लेहिं हजूरा ॥१४॥

चौदसि च्यंता चाल चुकावै, फिर कबहूं चर्म दृष्टि न आवै ।
चरनकमल चित बित ले बाना, चौदह भुवन भया सोइ राना ॥१५॥

ऊन्यूं पूरा ह्वै मन चन्दा, परलै गये परम दुखदंदा ।
पाये पास पछारा नाहीं, परमपुरिष मैं प्राण समाहीं ॥१६॥

सोलह कला संपूरन सारा, सब दिसि देखै राम पियारा ।
गुर दादू दिनि रैन दिखाये, जन रज्जब घट भीतरि पाये ॥१७॥

ग्रंथ सप्त बार

बार बार गुर बंदन कीजै, रैन रहित दिन दिन रस पीजै ॥टेक॥

आदित बार आदि सो लेहू, काहै कूं दी मनिषा देहू ।
सो सोधी करि समझि बिचारी, आदूं रचना अंतरि धारी ॥१॥

सोमवार समिता घर आणी, नख सख समझि समाधि सु ठाणी ।
सरबस देइ सुधा रस लीजै, सहज सुखमना भरि भरि पीजै ॥२॥

मंगलवार मगन गुन गावै, महापुरिष मंदिर मैं पावै ।
मद्धि मुदित मन माहिं उछाहा, माथै भागि मिलै निज नाहा ॥३॥

बुद्धवार बुधि ब्रह्म बखानै, बिमल रूप ब्यापक बिच जानै ।
तन सरवरि जिव पहुप प्रकासा, बसती बेधै बसत सु बासा ॥४॥

ब्रहस्पतिवार बिकल बुधि वारै, बैसि बीच धन धाम बुहारै ।
बप बन माहिं बिसम्भर न्यारा, बित बस तीर न करि व्यौहारा ॥५॥

सुक्रवार सब सूंधा कीजै, सौंज सुफल सुमिरन सु भरीजै ।
सनमुख सांई आव अनन्ता, सदा सुखी सो साधू संता ॥६॥

थावर थकित सु थानिक आई, पाये थल बाहर नहिं जाई ।
थोथी तज्यूं चढ़ै थिति थाथा, थोरा बहुत होत हरि साथा ॥७॥

बारंबार करहु यहु कामा, अनुदिन सुमिरौ केवल रामा ।
सपत वार सुमिरन में राखे, गुर परसाद सु रज्जब भाखे ॥८॥

ग्रंथ गुरु उपदेश आतम उपज

गुर उपदेश सरैं सब कामा, आतम उपज मिलै पुनि रामा ।
गुरुमुखि दीवौ दीवा होवै, आतम उपज मथे पुनि जोवै ॥१॥

गुरमुखि अगिन आनि दौ लागै, आतम उपज बंस घस जागै ।
गुरमुखि माता सुत पै पान, आतम उपजि गऊ बछ जान ॥२॥

गुरमुखि नर चंदन कौ पावै, आतम उपज तहां अहि धावै ।
गुरमुखि सीप स्वाति रत होती, आतम उपजि भये गज मोती ॥३॥

गुरमुखि नट बरछी को झेलै, आतम उपजि कौड़िला खेलै ।
गुरमुखि की कीरति बहु पानी, आतम उपजि मीन कन जानी ॥४॥

गुरमुखि घटा सबद घन दरसै, आतम उपज घटा बिन बरसै ।
गुरमुखि कूप अंचै जल जीजै, आतम उपजि खोद पुनि पीजै ॥५॥

गुरमुखि सूर देखि दिठि पीला, पीत बाइ उपजैं सो लीला ।
गुरमुखि ज्ञान गुरज तरि मरिये, आतम उपज आप हित हरिये ॥६॥

गुरमुखि नेत्र कढ़ाये आंधा, मुतियाबिंद उपज दिठि बांधा ।
गुरमुखि कान मूंदि ह्वै बौरा, बहरी बाइ सुनै नहिं सौरा ॥७॥

गुरमुखि इंद्री काढ़ै खोजा, आतम उपज हींज पुनि रोजा ।
गुरमुखि बांझ आतमा नारी, बांझ बिथा पुनि होइ बिचारी ॥८॥

गुरमुखि पंखा सीतल बाई, सहज चले ठंटा करि जाई ।
गुरमुखि सेष सकल सुनि धाइल, आतम उपज भये जग राइल ॥९॥

गुरमुखि गोरख अलख समाना, आतम उपज महादेव जाना ।
गुरमुखि होहिं सकल सन्यासी, आतम उपज सु दत्त उदासी ॥१०॥

गुरमुखि जैन तिथंकर ध्यावै, आतम उपजि नेम ल्यो लावै ।
गुरमुखि भगत भगतिपति परसै, आतम उपजि गुरू गुरु दरसै ॥११॥

गुरमुखि बोध इष्ट कौं लावै, आतम उपजि बोध पति ध्यावै ।
गुरमुखि बहुत ज्ञान ले माते, आतम उपजि गुरू पुनि राते ॥१२॥

दोहा : इन दोन्यूं मति एक गति, लघु दीरघ कोइ नांहिं ।
रज्जब दीनदयाल के, दोनों अंगि समाहिं ॥१३॥

ग्रंथ अबिगति लीला

अविगति की गति उलटी भाई, सो काहू पै लखी न जाई ।
ब्रह्मै अंस जीव क्यों होई, नाहीं अंस मिलै क्यूं सोई ॥१॥

ज्यूं प्रगट हुतासन काष्ट बिनासा, सोई पावक काष्ट निवासा ।
अचरज एक अजब घन माहीं, पावक बीज बुझावै नाहीं ॥२॥

सावन भादौं समंद घटावै, रुति गये पुनि ताहि बंधावै ।
ज्यूं अधर अकास कुसन मैं ओले, पाणी सौं कैसे घडि छोले ॥३॥

सतगुर संगि सिष सठ की कीजै, बिन गुर जीव ब्रह्म मैं लीजै ।
बोवै जुआरि कागवा कीजै, यूं उलटी गति देखि पतीजै ॥४॥

ज्यूं बरषा रुति बिनहिं बंधावै, जोई जवासै को दौ लावै ।
हांड़ी मैं कनकौड़ा राखै, ता अबिगति की उलटी साखै ॥५॥

पाहण माहिं प्राण को पोषै, मुकता भरै भूष कै दोषै ।
जा बहनी सौं जगत जरावै, सो करि चूनि चकोर चुगावै ॥६॥

जैसे केस क्रिष्न होइ सेतै, ता अबिगति का उलटा हेतै ।
सारी मांड अधर धरि राखी, ससि हरि सूर अकासौ साखी ॥७॥

जीव रचै सो होई न कामा, उलटी और करै कछु रामा ।
ग्रब गंजन गोव्यन्द बिनानी, ढाय देय अपनी पुनि ठानी ॥८॥

सरबंगी सब ठाहरि न्यारा, मन बच करम न जाइ बिचारा ।
अबिगति की गति लखी न जाई, नेति नेति कहि बेद सुनाई ॥९॥

दोहा : अबिगति अलख अनन्त हूं, चित च्यंता नहिं जाइ ।
जन रज्जब सब यूं रहे, ठग के लाडू खाइ ॥१०॥

ग्रंथ अकल लीला

सेवग पूछै साहिब रामा, कौन प्रकार किया यहु कामा ।
कै मनसा करि मांड अधारी, कै गुण रहित भई यहु सारी ॥१॥

इष्ट बिना यहु सिष्ट न होई, झूठी बात कहै मति कोई ।
बिन चिन्ता चित्राम उपाया, ज्यूं तरवरि संगि दीसै छाया ॥२॥

ससि मैं सुरम सु दीसै नाहीं, कंवल केल सर हित खुलि जाहीं ।
त्यों पर आतम आतम सारी, समरथ इच्छा रहित संवारी ॥३॥

चन्दन चाहि सु चित्त न बंधी, भार अठारा भई सुगंधी ।
यों क्रम रहित करता क्रम फीना, ऐसी बिधि यहु प्रान पतीना ॥४॥

चंबक कब चंचल मति सांची, जाके संग सोई सब नांची ।
ऐसे अचल चलाये प्राना, समझै कैसेई संत सुजाना ॥५॥

बादल बिजुली बूंदरु बाइ, सुन्य सरीर सु उपजै आइ ।
त्यूं निरगुर थैं सरगुन रूपा, अकल निरंजन अमल अनूपा ॥६॥

समंद सुरति बिन जलचर जागे, राग दोष क्रीड़ा कृत लागे ।
पाप पुन्नि पानी कौ नाहीं, ऐसै ब्रह्म सकल घट माहीं ॥७॥

आंखि अनंत आदीत आधारा, देखैं बिबिधि भांति व्योहारा ।
भले बुरे मैं नाहीं भान, ऐसै राम राम की आन ॥८॥

दीपग जोति जुआरी सारे, एक जीतै एकौ धन हारे ।
हरष सोक मैं नहीं उजासा, त्यूं परमेसुर प्रानहु पासा ॥९॥

नींद निवास मनोरथ आये, अकरम करम सु खेलि समाये ।
संकट मुकति समाधिहि दूरी, इहि बिधि जीव ब्रह्म भरि पूरी ॥१०॥

बाइ बंध बप बिघन अनेकैं, मारुत माहि न जानै एकैं ।
त्यूं सकल गुणहु निरगुण आधारा, बीचि बस्त नहिं लिपै बिकारा ॥११॥

ज्यूं सुफल बिरछ खग सेन्या बासा, काम क्रोध करि तिनका नासा ।
रूख रहित हत्या अरु हेतै, ज्यूं जगपति जग माहैं सेतै ॥१२॥

कमल कृतघनी देखौ दीठी, जामैं उतपति ता जल पीठी ।
बारि बिमुख मनि सोग उछाहा, यूं सुख सागर मैं जिव दाहा ॥१३॥

सकल प्राण पिरथी परि मेला, नाना बिधि के खेलैं खेला ।
धरनि न धारै तिनके रंगा, त्यूं पर आतम आतम संगा ॥१४॥

दरपन मैं दीस सब देसा, ताकूं भार नहीं दुख लेसा ।
यूं गुण रहित सु अंतरजामी, ता माहां खेलै सब कामी ॥१५॥
अगनि अठारा भार समीपा, स्वादहुं संगि स्वाद नहिं छीपा ।
यूं अंजन माहिं निरंजन आपै, ताकौ परसौ पुन्नि न पापै ॥१६॥
मनि गन अनन्त सूत मधि येकै, अरस परस अरु भ्यन्न बमेकै ।
ऐसी बिधि दीसै जगनाथा, सब थैं न्यारा सबकै साथा ॥१७॥
मन मुजंग ज्यूं माहैं रहई, उभै परसपर गुण नहिं गहई ।
त्यूं तन मन माहै तत सारा, गुर प्रसाद सो किया बिचारा ॥१८॥
तुम समानि नाहीं उनमाना, बिसम संधि क्यूं करौ बखाना ।
अकह ठौर यहु तुमहु कहाई, गुर दादू परसाद सु पाई ॥१९॥
सकल करै क्रम माहिं न आवै, परम भेद पूरा जन पावै ।
सरबंगी समरथ गति न्यारी, जन रज्जब तापरि बलिहारी ॥२०॥

ग्रंथ प्राण पारिख

प्राण पुरिष की पारिख पाई, जा गुण मिलै ताहि समि भाई ।
ज्यूं जल पैठि ईख गुड़ होई, पोसत परस अफीमौ सोई ॥१॥
अठार भार माहिं जल पैठै, गुन समान स्वाद ह्वै बैठै ।
जैसी बिधि बहु रंगत नीरा, स्याम सेत ह्वै राता पीरा ॥२॥
ऐसी विधि आतमहु पिछानी, ता समि तूलि जाहिं गुन सानी ।
सीत लागि जल हेमौ होई, अगनि प्रसंग ऊष्न पुनि सोई ॥३॥

दोहा : ज्ञान दृष्टि करि देखिया, आतम उदिक सरूप ।
सरगुण मिला सगुण सही, निरगुण मिलि निज रूप ॥४॥

बावनी : आतम भाव एक सों ऐसा, जा गुण मिलै ताहि गुण तैसा ।
एकै भाव राग बहु परसै, राग समानि भाव बिच दरसै ॥५॥
सोई भाव पढ़ै बहु बानी, बेद कतेब भाव द्वै जानी ।
नाना बिधि हूनर ह्वै धावै, गुन समानि ह्वै बीच लखावै ॥६॥
एकै भाव पंच रस भोगी, सोई भाव उलट पुनि जोगी ।
नाना बिधि देही उन भावै, यहु पारिख पूरा जन पावै ।
जिनि अंगूं प्रानी पति भेला, ते सब अंग भाव के खेला ॥७॥

दोहा: आतम परखी लगनि समि, जस लागीं तस अंग।
जन रज्जब जिव फटक गति, धरचा अधर ह्वै रंग ॥८॥

ग्रंथ उतपति निरनै

उतपति निरनै कीजिये, गुर दादू के ज्ञान।
नाद व्यंद यहु एक है, कै कछु भ्यन्न बिनान ॥१॥

आदू आप अलेख कै, आतम ओउंकार।
सोचे तनि जड़ पंच करि, पैठा निकसनहार ॥२॥

काया पुतरी काठ की, हलै नहीं दस पांच।
आतम अंगुरी और की, आइ नचाया नांच ॥३॥

टूटा सुंदरि साड़ थलि, सुकल सु किरची सार।
आई चंबक चेतना, मुये जिलावणहार ॥४॥

रज बीरज तन काठ कठ, सूने सबद न कोई।
हाथा जोड़ी जीव सो, यों मिलि खेलैं दोइ ॥५॥

बप बसुधा माटी मदन, माता चक्र निवास।
सुत सरीर दीपक रच्या, आयो और उजास ॥६॥

काम काठ करि नीपज्या, उदर उदधि के माहिं।
बालिक बोहित क्यूं चलै, प्राण पवन जे नाहिं ॥७॥

गुड़िया गंदी बूंद थी, मिरतग माता पेटि।
बाव बोलते बाहरी, उड़ै न उड़सी नेटि ॥८॥

खलक खलावरि नीपजै, मात पिता कौ मारि।
मारुत रूपी माहिला, औरै फूंकि बिचारि ॥९॥

सार सरीरौ नीपजै, देही दर्पण पूत।
प्राण पड्या प्रतिबिम्ब ज्यों, वह औरै अवधूत ॥१०॥

दोति कंत मसि मंत्र मल, कागद कामिन ठौर।
लेखनि लिंग सरीर की, सबद समाना और ॥११॥

बाबा बादल मा मही, बीजहि बूंद प्रवेश।
किरणि समानी सूरतैं, वह कछु औरै देश ॥१२॥

जैसे सुमिरण सुरति में, त्यूं देही मैं हंस।
मिरतग जीवै देखतैं, गुर गोविन्द के अंस ॥१३॥

अनपढ़ आंखि अनंग गति, येक रूप उनहार ।
पाठ रूप पढ़ि प्राणियां, बिबिधि भांति व्योहार ॥१४॥

ऐसे तन अरु बाहि द्वै, ज्यूं स्वास सबद में राग ।
उभै अनामित देखिये, जैसे मस्तग भाग ॥१५॥

पापी रूपी पिंड है, शीत सक्ति जिव आन ।
द्वै मिलि तामैं कुंभ थलि, समझै संत सुजान ॥१६॥

समुद्र सुन्दरी नीपजहिं, सूने सीप सरीर ।
आतम बूंद अकास की, स्वाति सरूपी नीर ॥१७॥

बूरी पीता पहाड़ की, मात मादुरी मेल ।
पलटै पारस प्राण मिलि, वहु कछु औरै खेल ॥१८॥

बिरछ बीच माता पिता, अरभक उदर अंकूर ।
पलटै चंदन चेतना, और बास बलि नूर ॥१९॥

मात पिता तिल रूप है, सुत सरीर बिचि तेल ।
फहम फूल मिलि मगन ह्वै, पलटया औरै खेल ॥२०॥

धर गिर रूपी मातु पितु, चेतक चकली धातु ।
छाप छबीलै छाप दई, करने लागी बात ॥२१॥

नारी पुरुष सु काठ तन, लट्टू चकरी बाल ।
डोरी डिढ़ता भिन्न भलि, अचल चलाये चाल ॥२२॥

लोह तार तिंगी सुतन, तहां सूई सुत होय ।
तेज ताग कूं ताकतूं, वो है औरै कोय ॥२३॥

मणियां औरै जाति का, औरे कुल का ताग ।
पिंड प्राण ऐसैं मिले, नारी पुरुष सुहाग ॥२४॥

असत कड़ी तन पादड़ी, उपजी रीती ठाम ।
जीव समाना जुगति सो, गोरखधंधा नाम ॥२५॥

दोहा : गोप्य बात गोबिन्द की, लहै न मन मति लेस ।
रज्जब पाई रहम सो, सतगुर के उपदेस ॥२६॥

ग्रंथ गृह बैराग्य बोध

गृहस्थ उवाच : गृही ज्ञान करि पूछिया, सुनहु बिगति बैराग ।
कहा घटै सुन्दरि किये, कहा बढ़ै करि त्याग ॥१॥

बैराग्य उवाच : बैराग्य बुद्धि गहि बोलिया, सुनहु गृही कछु ज्ञान ।
तुम नारी कै बसि भये, हम अबंधजु स्थान ॥२॥

गृहस्थ उवाच : तुम अबंध कैसे भये, कहो बिगति बैराग ।
हम बिषिया बपु सो करी, तुमहि मनोरथ लाग ॥३॥

बैराग्य उवाच : जैसी चोरी मन करै, तैसी जे तन होइ ।
रज्जब तोड़ि तड़ाकि दे, सूली दीजै सोइ ॥४॥

गृहस्थ उवाच : जे मन से चोरी करी, तौ पीछे कौ साह ।
जन रज्जब झूठी दसा, किसका ह्वै निरबाह ॥५॥

बैराग्य उवाच : मन सरवर तन पाल गति, जल तरंग नहिं जाय ।
रज्जब रोपै पालि पग, उलटि उमंग समाय ॥६॥

गृहस्थ उवाच : जे मन तरंग ना चलै, कहौ काम क्यूं जाय ।
रज्जब झरता देखिये, उलटा क्यों न समाय ॥७॥

बैराग्य उवाच : काम गया तौ का भया, बिन नारी परसंग ।
रज्जब काया कुंभ भरि, ऊपर गया अनंग ॥८॥

गृहस्थ उवाच : कहा कुंभ जड़ की दसा, रज्जब रुचि नहिं माहिं ।
यहु तन मन चेतन दसा, सहज काम क्यूं जाहिं ॥९॥

बैराग्य उवाच : सहज काम ऐसे गया, ज्यूं लोही नकसीर ।
रज्जब जोरू जोंक गति, कसि काढ़ै कुल हीर ॥१०॥

गृहस्थ उवाच : गिरही मति स्तुति किये, धनि धनि तू बैराग ।
कामिनि तौ तुम पर हरी, कनक लता तुम लाग ॥११॥

बैराग्य उवाच : कामिनी ज्योति समान है, कनक रूप परकास ।
पचन पतंगा ज्योति मैं, रज्जब रहै उजास ॥१२॥

गृहस्थ उवाच : कनक कामिनी एक गति, दोनों दग्धनहार ।
रज्जब तोड़ै राम सौं, बिगता कहा बिचार ॥१३॥

बैराग्य उवाच : जो कामिनी कनकै तजै, सो कूं कसक न लेय ।
रज्जब यहु बैराग्य बुधि, दोन्यूं चित्त न देय ॥१४॥

गृहस्थ उवाच : बहुत भांति करि देखिये, गृही जु सेवक अंग ।
रज्जब स्वामी बिरह बुद्धि, यहु इनका परसंग ॥१५॥

बैराग्य उवाच : अबिगति गति गोबिन्द की, रज्जब लखी न जाय ।
सेवक को स्वामी करै, स्वामी सेव समाय ॥१६॥

ग्रंथ पराभेद

प्रथम प्राण परम गुरु पावै, परमपुरुष का भाव उपावै ।
परम भेद सो देइ बताई, तब परै अंग अंगनि सुधि पाई ॥१॥

जन्म परा गुरू धर सिष जामैं, घूंटी परा देव निज नामैं ।
मन मैं रोग सु उपजै नाहीं, बालक उपज्या निज मत माहीं ॥२॥

भाव परा भगवंतहि जानै, भेद परापर बरतहि छानै ।
भक्ति परा भगवानहिं भावै, भाग परा ऐसी निधि पावै ॥३॥

सेवा परै सु सेवा भाई, ब्रह्मंड पिंड तें अगम बताई ।
सेवक सेवा माहिं समावै, सो फिर योनी द्वार न आवै ॥४॥

नाम परै बहु नाम कहावै, जामें आपहि आप न पावै ।
तब तहां बस्तु रहै भरपूरी, ज्यों दिन आये रजनी दूरी ॥५॥

परम धर्म कीये सो भाई, जा भीतर कामना न काई ।
परम पवित्रहु पुनि पुनि सोई, जा माहैं बांछा नहीं कोई ॥६॥

परम ज्ञान जेहि गर्व न भावै, गहर गरीबी माहिं समावै ।
परम बिचार मुक्ति ह्वै माया, परमपुरुष प्राणी तहि पाया ॥७॥

ध्यान परा जु निधानहिं धारै, सो प्राणी कबहूं नहीं हारै ।
मारुत बिना मसकती होई, भेदी भेद लहै यहु कोई ॥८॥

तीरथ परापरी सतसंगा, जिनमें अगम ज्ञान की गंगा ।
संयम परा जु पंचो धोवै, मन का मैल युगिन का खोवै ॥९॥

परम सूर इंद्रिन सों झूझै, ज्ञान संग धारा कूं बूझै ।
सत यहु ब्रह्म अग्नि में जरिये, मरण परा जो जीवत मरिये ॥१०॥

बावन अक्षिर अक्षिर सों परै, स्याही सुत उपजै अरु मरै ।
चतुर दसो कै परै सु विद्या, परम बोध ता भीतर मिथ्या ॥११॥

देने परै ब्रह्म दिल दीजै, लेणे परै बंदगी लीजै ।
देण लेण या ऊपर नाहीं, समझे समझि लेयंगे माहीं ॥१२॥

जीवन परै जीवना सोई, आतमराम जु मिश्रत होई ।
मिलै बस्ते बल होय अनंता, समझै समझ्या साधू संता ॥१३॥

राज परै सो राजहि भावै, माया त्याग सु ब्रह्म समावै ।
लाज परै राखी तेहि लाजा, जीव सीव मिलि सारै काजा ॥१४॥

ठाहर परै सो ठाहर सांची, पिंड ब्रह्मंड परै लौ कांची ।
वही स्थल सो प्राण समांवै, सो फिर मिथ्या माहिं न आवै ॥१५॥
दर्सन परै सु दर्सन सांचा, सतगुरु मुंहडे सुखी सु बांचा ।
जो दीसै सो जाय बिलाई, ठांवी ठौर न सो ठहराई ॥१६॥
ठाकुर परै सु ठाकुर ईसा, जिन सिरजे चाकर चौबीसा ।
आदिनरायण बेदहु गाया, स्याणहु साधू सो ठहराया ॥१७॥
तत्वैं परै तत्व सो सारा, ज्यूं त्यूं परै सो ज्योति अपारा ।
निर्गुण परै सु निर्गुण रहिता, सूषिम को सूषिम नहीं गहिता ॥१८॥
बलहू परै सो बल बलवंता, वा समि जोर नहीं कोई जंता ।
पल मैं ब्रह्मांड भानि संवारे, ताके जोरहि वार न पारे ॥१९॥
अंगहुं परम सु अंग बताये, गुरु दादू परसाद सु पाये ।
जन रज्जब यहु किया न देखा, भूरि भाग्य जो पावै भेदा ॥२०॥

ग्रंथ दोष दरीबै

दोष अनंत चलै क्यूं जीव, सुनहु संत परसै क्यूं पीव ॥१॥
प्रथमहि देह पाप का मूल, दोष सकल डाली फल फूल ॥२॥
तैसै मैं निपजै क्यूं प्रान, सकल संत मिलि सुनहु बखान ॥३॥
बहुत भांति बहु ज्ञान अपार, तिनमें मिलै न सिरजनहार ॥४॥
ज्यों ज्यों करै तहीं ज्यूं भार, कैसी बिधि ह्वैगा सु उधार ॥५॥
जैरु गहै रहनी की रेखा, तौ मो सम तुल्य और नहीं पेखा ॥६॥
जैरु कछु करनी मैं आवै, तौ आपा करि तत्काल लुटावै ॥७॥
जैरु कदे तुरकी रहि जाये, तौ करै खून तिनके फरमाये ॥८॥
जैरु गहै जोगी की छाया, तौ चेतक नाटक बहुत बताया ॥९॥
जैरु गहै भगवां की ओटा, तौ आपा अधिक मान सिर पोटा ॥१०॥
जैरु गहै ब्राह्मण की किरिया, तौ ब्रह्म छांड़ि भरम मैं परिया ॥११॥
जैरु पंथ जैनहु कै जावहु, तौ धणी नाहिं चौबीसौ ध्यावहु ॥१२॥
जैरु गहै भक्तन के भेखा, तौ स्वांगहु पहरि सांच नहिं पेखा ॥१३॥
जैरु गहै षट दरसन संगा, तौ साहिब नाहिं स्वांग सों रंगा ॥१४॥
जैरु गहै खेचर गति ज्ञाना, तौ प्रगट सींग अर पसू समाना ॥१५॥
जे तीरथ करैं आदि दे जेते, तौ भ्रमि मुवा हरि सों नहिं हेते ॥१६॥
जैरु करैं साधन के करमा, सो संत छुड़ाय गये ये धरमा ॥१७॥

जैरु गहै धर बन सूं मेला, तौ अंतरगति हरि सों नहिं खेला ॥१८॥
जे कासी करवत गहै गरैहि मारै, तौ जग सों रुचि राज संभारै ॥१९॥
जो ध्यान धरै हरिजी की ओरा, तौ मांगि लेय कछु और ही ठौरा ॥२०॥
जे नामहि भजै भिस्त कै भाई, तौ साहिब बिन संसै मैं जाई ॥२१॥
जे नामहि भजै मुक्ति की चाहि, तौ ता समि सठ कछु कह काहि ॥२२॥
यूं लैलीन अमस ह्वै जांव, तौ साहिब बिना बसाया गांव ॥२३॥
जैरु करै कछु ऐसा सोच, तौ आगम निगम नाम बिन पोच ॥२४॥
जैरु समाधि लगावै जाप, तौ खोटा भाव ब्रह्मडू आप ॥२५॥
दोष अनन्त कहां लौं कहै, परि येते दोष सकल जग बहै ॥२६॥
येते दोष रहित भजि राम, जन रज्जब केवल निष्काम ॥२७॥

ग्रंथ जैन जंजाल

सुनहु संत यहु जैन जंजाल, कर्म कपट की बांधी चाल ।
नाम निरंजन सो मन नाहिं, भूलि रहै चौबीसौ माहिं ॥१॥

द्वादस दूने भूले आय, जु आतम लाइ आपने भाय ।
यहु मोटा कीना व्यभिचार, क्यूं छोड़ै भगवंत भरतार ॥२॥

तांबा लोहा पलटहिं अंग, सदा सु सुनिये पारस संग ।
पर सोने सोना कदे न होय, तौ चहुं छकि न सदगति कोय ॥३॥

जती कहावैं जड़े जंजाल, देस देहुरे कीन्ही साल ।
तिन आरंभो वार न पार, परहि प्राण सिर पाप पहार ॥४॥

सेत रजै सुधि हीने जाहिं, आगे पाथर बोलै नाहिं ।
मारहिं जीवहु आवत जात, तहां चढ़ावै फूलर पात ॥५॥

पाथर पूजहिं जती न जाय, गृहियों को सो देय दृढ़ाय ।
विष समान गुर हाथ न लेय, सिष्य सुत कूं हलाहल देय ॥६॥

बैस्य वर्ण समझै नहिं बात, जैन जत्यौ मैं मोटी धात ।
आप न पूजै तिनहिं पुजावै, फीटे फंफ फलोदी आवै ॥७॥

दया दृढ़ावै दुष्ट सरीर, मरतौं देय न भोजन नीर ।
करैं पंचौ सतगुर कन जाय, कहैं पुणय कणिये मिलि खाय ॥८॥

ज्यूं बिन परीछै रहट सरूप, पाणी परै सु भीतर कूप ।
ऐसा धर्म सु दीसै जैन, सुनहु सकल ये सांचे बैन ॥९॥

नाक न कपती जीव बिचार, रमैं देसान्तर कोस हजार ।
काचा पानी भेंटैं नाहिं, चलते पैठें नदियों माहिं ॥१०॥

श्रवण मास सहर की भीख, मारै जीवहु भीखै भीख ।
उनकै हेत उघाड़ै हांडी, मरहिं वाप जीव पूरी भाडी ॥११॥

पृथ्वी अप तेज नभ पवन, तिनके जीव सु टालै कवन ।
बाहर भीतर येही पांच, तिनमैं सारे नाचहिं नांच ॥१२॥

मैली मनसा मनसा भेस, लागहिं पाप उपारहिं केस ।
मनमथ कर्म करैं घट माहिं, चर्म दृष्टि देखैं सो नाहिं ॥१३॥

लेखै पाप सु उतरै नाहिं, चोरी चूक जड़ी जिव माहिं ।
एकहि अघ उतरै सू दूरि, चौबीसौं सुमिरे भग भूरि ॥१४॥

हाथ न कौड़ी हृदये कौड़ि, कैठे बनियों सौं मन जोड़ि ।
बिन बिस्वासी फेर न सार, भिक्षा मांगहि द्वै द्वै बार ॥१५॥

असन बसन सब आछे लेहिं, फांसू कहि कहि फींटे देहिं ।
फासू कहिये तेती बात, बिष्टा बक्तर बाहर जात ॥१६॥

रिष मूरिख फांसू करि लेहिं, घरके धणी पाप सब देहिं ।
यहु पाखंड कह्यो समझाय, सो अघ रासि कौन घर जाय ॥१७॥

अन्न पानी काचे सों भागै, सोई सांझ सवारे मागै ।
नीली भाजी दोष लगावै, पाकी पत्रर माहिं घलावै ॥१८॥

निषिध नारियल सिर सम होय, फोड्या पीछै दोस न कोय ।
ऐसे कपट घणे घट माहिं, संसारी सो समझै नाहिं ॥१९॥

नौ बिधि बाडि सु बामा बोड़े, करी करी रज्या सब तोड़े ।
बोलैं झूठ नाम बिन नीच, सिर ऊपर सूझी नहिं मीच ॥२०॥

आगि अनन्त मुख सेकैं नाहिं, मूये सौं दीजै ताहि माहिं ।
सकल बरत की फोड़ी पाल, जन रज्जब जग जैन जंजाल ॥२१॥

बावनी भाग समाप्त ।

कवित्त भाग

गुरदेव का अंग

वैरागर मय विभौ अष्ट कुल पारस धरियहि ।
कल्पबिरछ बनराइ फूल फल अमर सु भरियहि ।।
सपत समुंदहु सुधा सोइ सलिता सु तलावहु ।
पीवन को सु पियूष कहीं मारग दुर आवहु ।।
नगर पुरी बैकुन्ठ बिधि च्यन्तामणि घर दर चिणे ।
रज्जब गुर पूजा सु जब नांवै सरभरि ना गिणे ।।१।।

गुर को दीजै कहा परम निधि जिनतैं पाई ।
भाव भगति भल भीख गिरा गोरख जू गाई ।।
सांच सील संतोष दृष्टि दत दीरघ दीन्हा ।
जीव जड़्या जग माहिं काटि क्रम मुकता कीन्हा ।।
सकल अंग सांई सहित कौन मौज ऐसी करै ।
दादू दीनदयाल बिन रज्जब रीता कौ भरै ।।२।।

गुरु हंस मधुरिष पुनह चम्बक ज्यूं सारा ।
तन मन काढ़हिं सोंधि किरचि कंचन ज्यूं पारा ।।
करहिं सुदाई करम ताहिं न्यारे जिमि धोवहिं ।
रज लागी पट प्रान रजक जिमि कसमल खोवहिं ।।
गुरू बैद रोगहिं हरै मरजीवै ल्यावहिं सुधन ।
जन रज्जब बलि बलि सदा चंगी ज्यूं पलटहिं सुतन ।।३।।

परम पाद गुरदेव परम सो प्रान प्रमानं ।
परम पिता पर प्रान परम सौ मीत बखानं ।।
परम निधी दातार परम भंडार लुटावै ।
परम सुख दे सबनि परम सौं भेद बतावै ।।
परम सिद्धि खाननि खिता परम मुकत मुक्ती करै ।
परम सुरीती ठौर परि गुरू रहेम रज्जब भरै ।।४।।

मणि पनिंग पत्री बिहंग उड़हि गुटिका मुख धारं ।
अतिरहिं तुम्बी सु नांव पेखि पाषाण सु पारं ॥
सिध सु बिचार परि प्यंड धार अचरज हैरानं ।
मुहरै सु ताज नहिं अगनि लाग दिब देत न पानं ॥
गुरदेव साथ दीजै सु नाथ यहु मांगत का मुष्टिका ।
रज्जब बंधति गुर ज्ञान मति कर बावन जिमि लष्टिका ॥५॥

कूप छांह गज पंक मूस पारा पी पंगुल ।
साधन समीर नर नींद सधै सरकै नहिं अंगुल ॥
अनंग हणौ मिरचन कपूर चम्बक अस नालै ।
अहमन चक्काब्यूह जहां जन बाइस चालै ॥
गुरै बैद पारा सुमन गरुड़ भुअंगम् कर गह्या ।
निध सु पाज तोरे भवंर रज्जब परि पंषी रह्या ॥६॥

चंद कमोद अचाह अलिहि कद कंवल बुलावै ।
दीपक दिलि न पतंग आप अहि चंदन आवै ॥
सलितहुं समुंद निरास धूम आकास न आसा ।
धर उर ध्यान न धाम होहिं घर बड़ा तमासा ॥
मुकर मनोरथ कौन मुख पाठौं पाठ न भावई ।
रज्जब गुर बेसास बिधि सिरज्या सिर सो आवई ॥७॥

भोगी जोग बखान सील गनिका सु सुनावै ।
सूम दृढ़ावै पुन्न कौन कै हिरदै आवै ॥
अंध अंध कर गहै नारि रोगी जु टटोरै ।
अतिर तिरावै अतिर बूड़ि सोइ औरहि बोरै ॥
सकल अंग भंग सु सुरू किये काज कहु कौन सिधि ।
आप मरहि औरहि अमर रज्जब करै सु कौन बिधि ॥८॥

बस्ती पूजै आस सरणि जेहि धका न आवै ।
सो राजा प्रतिपाल सकल परजा सू पावै ॥
बैद सु खोवै रोग राग जेहि दीपक जागै ।
सोई तीरंदाज चोट निहसान सु लागै ॥
खोजी खोज न चूकई सो सराफ परखै खरा ।
आतमराम मिलावई रज्जब सो गुर सिर धरा ॥९॥

उपदेश का अंग

श्रवन परीक्षित रूप सबद सुखदेव सु गावै ।
पवन भजन प्रहलाद मनसा श्रीपदम सु धावै ।।
पूज अरट पृथु प्रेम अकर अंकूर सु बंदन ।
हेत दास हणवंत प्राण पारथ सु प्रीति पण ।।
बलि ज्यूं बलि बलिहारि करि रज्जब रामहि दीजिये ।
इहि प्रकार नौधा भगति आतम अंतरि कीजिये ।।१।।

आतम अगम अकास भवनि तेहि बसै बिसंभर ।
मन पवन ससि सूर प्रीति परिदक्षिण ऊपर ।।
तारे तत्त तहां चलिहिं संत ह्वै सेवग सारे ।
इंद्री आभे पंच गगन मैं गुपत सु गारे ।।
खिवै न मनसा बीज सलिल नहीं सरवै लेसैं ।
जन रज्जब जुथ संत देखि लै सूषिम देसैं ।।२।।

मति मुराल मधुरिष बारि बनराइ सु छानहिं ।
देखि कबूतर काम पंषि पत्री घरि आनहिं ।।
चंद न जाइ पनिंग स्वाति रुत सीप सु लोड़ै ।
अजा न बैठै वूप रूख रैणी कर जोड़ै ।।
आदम सनास परखै मनिष स्वान बरत दिन ठानिया ।
रज्जब मनिषा देह धृग आतमराम न जानिया ।।३।।

देइ अमर फल डारि तजै पारस च्यंतामन ।
कामधेन तरकलप काटि आवै सु कहा बन ।।
गुरू सजीवनि छांड़ि पाइ पोरस सिर काटहिं ।
ज्ञान रसायन त्यागि बीर बहुतैं बित छाटहिं ।।
चक्क चक्कवैं तैं गया छाप सलेमा खोइये ।
मनिसा देही हरि बिमुख रज्जब हानि सु रोइये ।।४।।

उड़ै कपूरहिं देखि सोनकर क्यूंही आवै ।
सितिया परै समुंद सोधि कैसी बिधि पावै ॥
कदली एकहि बार फूल फल होइ सु होई ।
कागद ऊपरि अंक दूसरै लिखै न कोई ॥
सती सिंगार सु एकहीं वोला गले न पाइये ।
त्यों रज्जब मनिषा जनम हरि भजि ठौर सु लाइये ॥५॥

सीत कोटि संसार झूठ सुपिना रिध रागी ।
मृग जल जगत सरूप माया मरकट की आगी ॥
सक्ति सलिल के झाग अज कुच कंठ निकाजै ।
कहा सु बिगत उजास बाल बालू गृह साजै ॥
अति अयान कपि कूड़ मन कृत्रिम काष्ठ सु पूतली ।
रज्जब रैन भुजंग रज अहि अथार आतम छली ॥६॥

अघ अंधूप औतार एक मुर इंद्री हारै ।
पुनि गोते बिन ज्ञान जीव जल जोनि सु डारे ॥
करमि किरमि कुल गात लात सबकी सिर लागहिं ।
बिपति बिहंग बिहार देखि मनिषा उड़ि भागहिं ॥
पसू खानि परबस सदा बिबिधि बिघन कासों कहै ।
रज्जब जोखिम जाहि जगि जे मनिष देह उनमन रहै ॥७॥

मिलाप महातम का अंग

आज दिवस धनि उदित आज दरबे जगदीसं ।
आज दलिद्र दुखि दूरि आज दीरघ दत दीसं ॥
आज भाव करि भगति आज पुनि पेम प्रकासं ।
आज अगम सब सुगम आज रस राम बिलासं ॥
आज काज सारे सरहिं आतम आंख्यूं पेखिया ।
जन रज्जब साफिल जनम दरस साधु सौं देखिया ॥१॥

आज अगम आनंद आज उर पूरी आसं ।
आज सकल संतोष आज बिचि ब्रह्म सुबासं ॥
आज सु परम पुनीत आज आतम मधि एकं ।
आज गुपत बित प्रगटि आज अंकूर अनेकं ॥
आज नीच ऊंचे निरखि लाभ जनम फल लेखिया ।
रे रज्जब साधू दरस दुखभंजन सुख देखिया ॥२॥

साध का अंग

पारस पलटै लोह बनी संगति ज्यूं बावनि ।
बारि बारुनी बिबिधि पैठि गंगा मधि पावनि ॥
चंबक हलचल लोह आंखि आदित संगि खेलहिं ।
रोगी होहिं निरोग ओषदी मुख मधि मेलहिं ॥
साधू संग जहाज जगि जथा स्वाति सीपहिं पड़ी ।
रज्जब छांह रमाइ सिर त्यूं सतसंगति की घड़ी ॥१॥

साध परीक्षा का अंग

अगिनिह चुगै चकोर पेखि बड़वानल पानी ।
समुंद जीव जग आगि बात नाहीं यहु छानी ॥
पारस तिरई नीर हेरि हीरा नहिं बूड़ै ।
बिन पंखिन हैरान पंख ज्यूं गुटिका ऊड़ै ॥
घटा सजीवनि ज्यूं उलटि उदिध उन्हालै छौलिया ।
जन रज्जब यहु साध गति उलटा चलै सु औलिया ॥१॥

माया मधि मुक्ति का अंग

कंवलि सीप जलि जुदे बसहिं मणि ज्यूं मुख माहीं ।
बड़वानल पुनि बीजि बारि मधि भीजहिं नाहीं ॥
दरपण मैं प्रतिबिम्ब सुन्नि सबही घटि न्यारी ।
लोई रंगै न सूत देखि अचरज है भारी ॥
अठार भार अगनी रहित सूर सलिल ले दे जुदा ।
यूं रज्जब साधू सुकति मिले अनिल पाया मुदा ॥१॥

निरपषि मधि का अंग

काफिर ईमा नाहिं जिमी जाहिर जग जानै ।
जलहू दीसै जुदा पेखि काकै पषि पानै ॥
अगनि उभै गुण रहित करहु कुछ ज्ञान बिचारा ।
मारुत मद्धि सरीर निरखि निरपषि निज न्यारा ॥
रज्जब रवाहि आकास रुख तौहीद इलम पढ़िये वरक ।
इन पंचौ सौं प्यंड यहु तौ क्यूं कहिये हींदू तुरक ॥१॥

फक्कर जात खुदाइ तुरक हींदू न कहावैं ।
पारस तांबा लोह नांव सोना मिलि पावैं ॥
निरपषि मोती होइ पेखि पंषि सीपहि न्यारा ।
पणि उपजै मुखि सर्प जहर जोड़ै सु मझारा ॥
कलम अंटु कुल दोइ नित अलिफ अतीत अलाहिदा ।
बीज दालि रज्जब सु रबि ह्वै अंकूर फल दिसि बिदा ॥२॥

बमेक समिता का अंग

अठार भार इक अगनि एक धूवां इक धरनी ।
एक सु मधुपै एक बनी तंबा बहु बरनी ॥
एक बहनी बहु दीप अनंत आभौ एक पानी ।
कुलि भूषन गरि कनक पात्र पहुमी नहिं छानी ॥
चतुर बरन षट दरसि मधि एक रूप एकहि मिले ।
रज्जब यह समिता सुरझि समझे साध सु मिलि चले ॥१॥

भजन प्रताप का अंग

सूर तेज तम तार मोर चंदन सु भुजंगा ।
सुनत तुपक की तरास बिरछ सब तजै बिहंगा ॥
सीत कोट जिमि भान जानि जागे ज्यूं सुपिना ।
गुरू द्वारे बिष दूरि ओषधी रोग सु अपना ॥
स्यंघ हेरि सुरही गई वोले आदित देखि करि ।
रज्जब अघ ऐसे रमहि हिरदै आवत नांव हरि ॥१॥

मुखि ब्रह्मा कुल कमल मींडकी मांडक जाया ।
बेद व्यास सु मछिद उभै मंछी ग्रभि आया ॥
सारंगी के पेटि साध सींगीरिषि होई ।
हनू अंजनी मधि कुल सो कारन नहिं कोई ॥
बालमीकि बमई जनमि गरुड़ जती पंषी कुलै ।
रज्जब जाणी जाति सब ब्रह्म भजन सारे भलै ॥२॥

रंका नाम कबीर सैन सधना कुल हीना ।
पदम परस रैदास धना नापा सुक मीना ॥
द्यांगू दीप सु कौन कीता सु कणेरी ।
बिदुर बादरा बैस जाति सबही जगि हेरी ॥
सुकल हंस से गोत गत नीच न कोइ न तै करै ।
रज्जब भजन प्रताप तैं सकल बंस सिर पर धरै ॥३॥

खार समुंद कुल सुधा सहत अजरी मधि जाया ।
अहि मुखि मणि उतपत्ति पाठ कहि ठाहर आया ॥
मंजारी कुल भेद पदमणी नीच घराणै ।
सूर बीर कोइ जाति अपछरा बर बूरे आणै ॥
सीसै सुत रूपा जण्या कागद निपजैं टाट के ।
रज्जब हरि भजि गोप जग पलटै अंक लिलाट के ॥४॥

पूजा पाज न आज समुंदि सो सिला तिराई ।
दारदेव नहिं स्रवै हरी सूली होइ आई ॥
खेत हेत नहिं कोइ धनै सब कोई मानै ।
राम नाम निज ठौर करै मूरति पै पानै ॥
रज्जब मिरतग धेनु जिये जग पग लगै न गाइ कै ।
छाप सु छीपै की परी हिरदै राना राइ कै ॥५॥

पीव पिछाण का अंग

आदिनरायण अमर बेद भागौत सु बोलहिं ।
बिबिधि भांति बप धारि डारि जगि नाहिन डोलहिं ॥
द्वै द्वै गुण सों रहित भले सिध साधिक भाखहिं ।
पूरे पुरष पिछाणि सु रत मत तासों राखहिं ॥
सांचे थापहिं सांच नित रज्जब रीत बिचारिये ।
परम पंथि प्राणी चलहु रहते की रह धारिये ॥१॥

सनेह का अंग

नेत्र कमल ससि सूर दूरि हाजिर हित माहीं ।
पाप पुन्नि जी करहि द्योस निस अंतर नाहीं ॥
कहीं सूर कहिं सती बरण बिच बिघन बिलाने ।
नमो नमो निज नेह जनम जहि औरू जाने ॥
साध सिद्ध सांई सहित हित चित मैं आगे खरे ।
मुवे जिलावैं मंत्रई सो रज्जब बांये करे ॥१॥

पतिब्रत का अंग

अस्थि अनल आकास अवनि ऊंदर मठ मांडहिं ।
त्यूं जोगी मृग सींग जनेऊ बिप्र न छाणहिं ॥
बाइस बास न तजहिं स्वान हित सदन गोसांई ।
गही सु त्यागहि नाहिं बीर बंधहिं जे बाई ॥
हारिल ज्यूं लकरी लगनि ससि चकोर आंख्यूं गहे ।
रज्जब गुर गोबिन्द सों सिष ऐसै पतिब्रत रहे ॥१॥

मणि भुजंग जल मीन तेम सारस पतिबरता ।
सारंग सीप सु स्वाति नेम निस दिन मनि धरता ॥
नर मादा नग नेह किरणि सूरज के संगा ।
सती कंत कै साथि भानि तन करै सु भंगा ॥
तरुवर छाया ससि कमल बरत सु ऐसा बाणिये ।
गुर गोबिन्द सों इहि जुगति रज्जब पतिब्रत ठाणिये ॥२॥

आदित संगि उजास सुधा ससिहर अनुरागै ।
बाई बादर बूंद बीजुली सून्य सु लागै ॥
सलितहुं समंद सनेह बनी बसुधा कै संगा ।
लग मात्रा की लगनि अजब आषिर कै अंगा ॥
सबद उदै संजोग मधि धनु अरु घटा सु देखिये ।
जन रज्जब यूं राम सौं सोई पतिब्रत लेखिये ॥३॥

सरबंगी पतिब्रत का अंग

सूर सैल दिसि एक दृष्टि सबही दिसि देखै ।
काइथ कथा अनेक लगनि चूकै नहिं लेखै ॥
चक्र चाल चौगिरद जाइ सूधा नीसानै ।
बिगति बघूलै फेर गौन गगनहि दिसि ठानै ॥
अंकुर बीज बूटी बिथा पत्र रोम रमि ठौर लिये ।
जन रज्जब यूं राम सौं सरबंगी पतिब्रत किये ॥१॥

आज्ञाकारी का अंग

नित्य नेम पतिबरत कृत्त उत्तिम तिनि कीनै ।
हित सनेह रस रंग इष्ट आज्ञा पग दीनै ॥
अदब मैंड मरजादि बंदगी सेव सुधारी ।
बुधि बमेक मति सांच बड़हुं की बात बिचारी ॥
लेखै चूक न चोट कोइ धरम धारतै सब भले ।
जन रज्जब तिनि सकल किय गुर आयस सिर धरि चले ॥१॥

आज्ञाभंगी का अंग

ईसर आज्ञा भंगि रासि रतनौ बिष पाया ।
त्यूं ही रावन सीत लीक लोपै सु मराया ॥
हजरति हुकम सु हंति करी काकै मैं कैसी ।
हठ मूसे का हेरि सहित कोहतूर सु तैसी ॥
पाषाण प्यंड गोदावरी अजाजील गहि रानिया ।
चक्र चक्कवै चोट तहि रज्जब सबद न मानिया ॥१॥

सारग्राही का अंग

हंस गहै निज षीर बनी मधुरिष मधु काढ़ै ।
अलि ज्यों परिमल लीन पुहुप पखुरी नहिं डाढ़ै ।।
चंबक चुनि ले सार पुन: पारा ज्यों कंचन ।
त्यों ततबेता तत लेहिं प्यंड पर हरि गुन पंचन ।।
छाज नाज कन काढ़ि ले गऊ दूध ज्यों बच्छ मुख ।
त्यों रज्जब गुन कौं गहत आपा पर उपजै सु सुख ।।१।।

असारग्राही का अंग

चलनी कोल्हू ईख कणहि तजि कूकस राखहिं ।
मीन मैल मुख गहैं पाइ परमल को नाखहिं ।।
धोवण धावण लेहिं जैन तजि निरमल नीरा ।
बिरचै बावन बास निरखि सो नरक सु कीरा ।।
कीचड़ त्यागि सु दूध धन मींडक माता की चही ।
रज्जब बिधि बूटी बिथा यूं औगुण लेनी चही ।।१।।

पारिख का अंग

गहण बेद बैदंग रोग नीरत सिर हारं ।
सूंघत धमगर धात खबरि अहि निसि खनि वारं ।।
स्वान बरत अज कूप पनिंग परमल गति जानै ।
निस बाइस बिन स्याल बोलि सोइ बिधन बखानै ।।
सहदेव न समझी ग्वाल गमि सुत संकट माता थणहु ।
रज्जब सीझै न सौण लग ए आगम जानै घणहु ।।१।।

रैन द्योस नहिं दुरहिं दुरहिं नहिं चंद प्रकासा ।
दामिनि दमकि न दुरहि गोपि नहिं उर की आसा ।।
छिपै न भ्वैं भ्वैंचाल गहन गति सब कोइ जानै ।
इंद्र गाज बड़ नालि बोलि छूटै नहिं छानै ।।
जग जानै जामण मरण उगै बीज सू बोइये ।
त्यूं रज्जब मन माहिली कहौ कौन बिधि गोइये ।।२।।

भोडल दीप न दुरै पुनः पानन के खाये ।
घासं घुसेरी आगि छिपै नहिं सौंधा लाये ॥
जल तर सीसी माहिं पानि पातर सु लखावै ।
अमल न छाना होइ निरखि जब नख सख आवै ॥
अन्त फटकरी उघड़ै जन रज्जब जल मह जथा ।
तैसी बिधि मन माहिली बाहरि दीसै है तथा ॥३॥

धर उर मैं रिधि रहत प्रगट मस्तग मधि दीपै ।
सांच न दुरई दिब आप अगनी नहिं छीपै ॥
होय ऊत घरि पूत जथा जीतै जु जुवारी ।
कहु क्यूं गोये जाहिं महा मंगल मन भारी ॥
सिध संकट आगे खड़ी सकति सिद्ध सो आठ की ।
रज्जब छिपै न माहिली जैसै रसना पाठ की ॥४॥

सबद का अंग

सबद होइ सब सिष्टि सबद सबही घट माहीं ।
सबद रूप गुरदेव सुरति सिष बाहरि नाहीं ॥
सबदै बेद कुरान सबद सब सबद पढ़ावै ।
स्यो सकती का भेद सबद सबदहुं सु बतावै ॥
प्रगट सबद संजोग लग पुनि बिजोगि गुपता रहै ।
रज्जब कहिये कौन सों सबद भेद बिरला लहै ॥१॥

सबदौं मैं निधि सकल गुरू गोव्यंद बतावहिं ।
सब संतौ सब कह्या सबद सोधे सब पावहिं ॥
उलझे सुलझे सबद सबद सब संसा भागै ।
सबदहिं माया तजहिं सबद सुणि ब्रह्म सु लागै ॥
आदि अंति मधि मांड मैं सब कारिज सबदौं सरे ।
रज्जब साधू सबद धनि धनि सुरता श्रवनौ धरे ॥२॥

पूनी बिना न सूत तार मकरी लग होई ।
बादुल बिना न बारि बूंद बरसै नहिं कोई ।।
सोवत सुपिना होई जगे बिनसै सोइ बाषर ।
खरी डरी घटि जाइ निरखि निकसै नहिं आषर ।।
तथा सबद संजोग लग उदै असत बाइक कही ।
रज्जब फेर न सार यहु सत्य सत्य मानहु कही ।।३।।

गात बात निज ज्ञान सीस तहिं समझि सुजाना ।
नैना निरति सरूप सुरति श्रवनै स्थाना ।।
नासिक पण मुख मत्त कंठ भाषा सु छतीसै ।
कर बमेक उर रुचि जीव जगदीसर दीसै ।।
रज्जब पग बावन तिसहिं रसन रसातल डोलई ।
सूता अचेत आसन सु चुप चल्या सु उठि जब्र बोलई ।।४।।

सबद मिलै संसार सबद सुणि पक्ष समावै ।
सबद भरै सब स्वांग सबद अठ सठि को धावै ।।
सबद करै षट करम सबद सब देव अराधै ।
सबद संगि कुलि कष्ट सबद साधन सो साधै ।।
सबद माहिं सारे भरम सबद संगि संकट परै ।
जन रज्जब निज सबद का साध सोध बिरला करै ।।५।।

भैभीत भयानक का अंग

करै बरत परि बाट निरख नटनी भय मेला ।
बाइस बैठि जहाज रह्या उड़िबै का खेला ।।
उभै स्यंघ बिचि अज्या अहार सु पोखि न पावहिं ।
नमो नमो डर रूप कीट भ्रङ्गी ह्वै आवहिं ।।
चोर जार भैराज नित सिर न उकासहिं सो कही ।
रज्जब सांई सोंच मधि गुण इंद्री ऐसै रही ।।१।।

लघुता का अंग

लघु अंगुरी निज छाप पेखि पंचनि मैं पावहिं ।
त्योंही ससिहर सेष देख सबही सिर नावहिं ।।
अरभख लीजै गोद मात पित सुखी सु राखहिं ।
कली सु केरी संगि फूल फल तरवर नाखहिं ।।
लघु मूरति नित कंट सिरि दीरघ सरूप दासहुं जुदा ।
बावन तरु मेवा मधुर जन रज्जब पाया मुदा ।।१।।

कसौटी का अंग

मैंहदी चंदन चाहि समझि सुरमा कसि केसरि ।
कंचन पनी कपास कसै काष्ट कंघी सिरि ।।
मसि कागद तिल ईख तीर पारै पच पेखं ।
असु कसि ऊजल केस कांच कसि चसमा देखं ।।
लोह तार अन्नकण कणिक सकल कसौटी करि भलै ।
यूं रज्जब रामहिं मिले जो गुरमुख कसणी चलै ।।१।।

कर कुम्भार कस खाइ पहम पातर ह्वै आई ।
लेखणि सीस कटाइ कान कर ठौर सु पाई ।।
जंतरि चढ़े सु तार निकसि जंतर मैं सारे ।
जिभ्या बाज कुरंग पाठ पीड़ा सहि प्यारे ।।
लाल कंठि बींधै बधहिं सतजुग अगनि सु सोलहां ।
रज्जब निपजहिं सिष्य गुर कठिन कसौटी ह्वै जहां ।।२।।

मिरतग का अंग

मारचा पारा सार रोग रोगी का टारै ।
बैठै मृतग जहाज अतिर आतम ह्वै पारै ।।
जीवत बूड़हि जलहिं मुवा तिरि ऊपरि आवै ।
मृतग महातम देखि कंध कपड़े पिंड पावै ।।
सुरग न देखैं मीच बिन आदि सबद ऐसैं कहैं ।
रज्जब रमिये रैन जिम सांई सूरज तौ लहैं ।।१।।

बेसास का अंग

अंडे कूंजी अनल पोष कैसी बिधि पावहिं ।
असम कीट अहि करंड असन केहि ठाहर आवहिं ॥
पहलै थनहु सु षीर पुनिह पीछे ह्वै बाला ।
अजगर ठौर अहार देहिं ऐसै प्रतिपाला ॥
धर अम्बर पहरावहीं भार अठार आभे अनत ।
मूरति मुरदे पट लहैं रज्जब गहि बेसास मत ॥१॥

तृष्णा का अंग

तृष्णा नग जम भूख अवधि मुद्रा नहिं नेरी ।
ज्वालामुखी सु आगि हटत नहिं असन सु हेरी ॥
सलितहुं समंदि समाव सलिल बंबई थलि जाहीं ।
बड़वानल रुचि नीर अरुचि कहुं दीसै नाहीं ॥
तिण षुध्या सुपिनै बढ़ी सो सूतौ नहिं भागई ।
रज्जब है संतोष सुख हरि सुमिरन जिव जागई ॥१॥

पेट काज तजि लाज हेरि हूनर सब साजे ।
षट दरसन पुनि पाठ निरति नर राम निवाजे ॥
नाज काज भूपति नरहु नर सीस नवावहिं ।
भूख भोज पतिसाह लेण धरणी कौ धावहिं ॥
सुत पुत्री सिर देहि सब अन्न काज अनि अनि करै ।
रज्जब ऊंडा उदर अति करणहार बिन को भरै ॥२॥

काम का अंग

काम राम हलचल्ल काम रावण घर खोये ।
अनंग सु ईसर ठगे बीज ब्रह्मा जु बिगोये ॥
काम कचरि कीचक किये इंद्र गौतम घरि आये ।
मैन मछिन्दरि मोड़ि साठि सुत नारद जाये ॥
भरथर भरम्या दूब भखि कहु सुन्नति कैसे चली ।
रज्जब मारे धोम रिष अति गति मदन महा बली ॥१॥

रहित का अंग

रहित गुरू गोरख अनंग जिमि अजर जु जारचा ।
लषमण लागं सुदृढ़ रहित बलि रावण मारचा ॥
सुक्रजती आकास असुर सारे सिर राखैं ।
पति रथ गरुड़ बसेखि बेद चारचू मुख भाखैं ॥
कत्र स्याम मारै मदन बैर बहोड़ै बाप का ।
रहति हेत हणवंत हद रज्जब मोल न माप का ॥१॥

ईख मिठाई रहित रहित पानहु मधि लाली ।
जत मत नैनहु जोत जैन इंद्री बहि चाली ॥
नग पाणी निर मोल बंझ कौ जाइ सुगंधी ।
बावन बेधक बास अवस जिनि इंद्री बन्धी ॥
रज्जब रीझि सु रहित पर मोर पंखि मस्तग चढ़े ।
निरखि मेन बिन धेन नाव कन्ह किनही कढ़े ॥२॥

स्वांग साध निरनै का अंग

मनिष भये पाषान सिद्धि गोरख सो पाई ।
भई भरथरी भाइ हरी सूली ह्वै आई ॥
लह्या जलंध्री जोग पुहुमि माहै प्रतिपालै ।
अजैपाल के चक्र कौन करनी जग चालै ॥
खेड़े उलटे धूंधली चौरंगी कारज रसहिं ।
जन रज्जब वह बस्त बल दरस दसा बहुतै करहिं ॥१॥

जल जोख्यूं नहिं सांच पहम प्रहलाद न पीरा ।
गिरवर गिरत न मीच बिबिध सकट नहिं नीरा ॥
गरुड़ द्वार मुनि नांव जहर बिष जोर न हूवा ।
कंचन बिध प्रहलाद अगनि घूंघचि तन भूवा ॥
षडग खंभ माहीं निकसि बैरी बाप सु मारिये ।
रज्जब केहि दरसन दसा बालिक लघु सु उबारिये ॥२॥

मूरति दूध पिवाइ गाइ जन नाम जिवाई ।
देवल फेरि सुधारि पुनह घरि छान छवाई ॥
अंतरिजामी लख्या स्वान मधि सांई जान्या ।
युगुल रूप ह्वै मिल्या सोइ छीपै पहिचान्या ॥
अतुल राखि रंकार निधि सलिता सेज मंगाइये ।
रज्जब कहि दरसन दसा ग्यारसि बिप्र जिवांइये ॥३॥

बालद द्वारि कबीर आवतैं जगि सब जानी ।
तारकंद रैदास जनेऊ जगति न छानी ॥
पीछै चंदवा बुझै भवन खांड़ै पति राखी ।
बिन बीजहि ह्वै खेत धना के साथ सु साखी ॥
नाई उबरचा नांव बलि सत्य न दिब देही जरहिं ।
रज्जब सीझै सांच मैं स्वांग झूठ तब अब करहिं ॥४॥

बिलंद खान की बेर दुनी दादू ह्वै देखे ।
साह पुरै कै समय उभै ठाहर पुनि पेखे ॥
चीरी पलटे अंक जहाज सु जलनिध काढ़े ।
सांभरि षाटू हस्ति रहे मैंमंत सु ठाढ़े ॥
कूंस ल्याइ काजी मुवा अरु उर माइल घर जरे ।
रज्जब सांचे साध के बिन बानै कारिज सरे ॥५॥

स्वांग साज का अंग

व्योम बाइ ससि सूर सलिल धरणी मत लीया ।
षट दरसन ये आदि इन्हौ कौ बरन न कीया ॥
सेष भेष कहि कौन कौन सुखदेव सु बाना ।
दत्त देत नहिं दरस गुरू चौबीस न छाना ॥
सकल सुरन गुर ब्रहस्पति सुक्र जती सादे सदा ।
रज्जब नर नग छाप बिन पेखि प्रान पाया मुदा ॥१॥

चंदनि सर्प सु जांहि पंषि पत्री घरि आनहिं ।
मधुरिष मधु ले सोधि हंस पय पानी छानहिं ॥
ज्यूं जोतिग जिव पैठि गहन गति ग्राह जियाई ।
जानि जौहरी अधिक रतनि की पारिख पाई ॥
नट आसण देखे अधर सिसु सुरही क्यूं थण लिया ।
रज्जब सांचे साध यूं कहु किनि किनि बाना किया ॥२॥

बिन सनाह भरि सूल पहरि बगतरि पुनि अंगा ।
तजि सिंगार जर सती करै नौसत तन भंगा ॥
मांडे मैगल मल्ल सोइ सादहुं बल होई ।
खरग सयाने वाहि नकस का फेर न कोई ॥
रहति सहति कंठ ले सु सुत पूत पियारे बाप कौ ।
रज्जब सोना साध सुध छोड़ै नहीं सु छाप कौ ॥३॥

सादी सहित स्यंगार नारि नर मिलि फल पावहिं ।
नालहि रंग न रंग जंत्र घटितान न आवहिं ॥
होइ ऊत घरि पूत दहूं दुख संधि सु धंधी ।
माला बंदर बालि बारि बंधी अणबंधी ॥
घटा सेत बहु बरन किय बरषित बादल सब भले ।
रज्जब सीझैं सांच मैं बिन दरसन दरसनि चले ॥४॥

गनिका सर्जहिं स्यंगार भेष बहु करिहि भवइये ।
चित्रे हस्ती बैल नांहि साधू पद पइये ॥
बानै रासबदेव पीर कहिये लील्हरिया ।
वह कुम्हार घरि वहै वाहि सु काष्ट ऋत करिया ॥
मुहर छाप पीतल धरी कली लोह पर कीजिये ।
रज्जब धारे रूप बहु तिन समान नहिं लीजिये ॥५॥

येक दिगंबर फिरहिं येक पहरैं सु बघंबर ।
येकहुं पट पटकूल येक दीसैं सेतंबर ॥
येक सु भगवा करहिं एक पहरैं पट नीला ।
येक कथियों यूं मांहि येक मेलौ यूं क्रीला ॥
येक कंथा मुंडित जटा येकौ खुसी खुसावहीं ।
रज्जब कीये बहु बरनि आतम राम न पावहीं ॥६॥

अज्ञान कसौटी का अंग

येक सु भूषौं मरहिं येक खाइकै ह्वै भारी ।
येक सु बजरी भखहिं येक ह्वै पवन अहारी ॥
येक सु नीली तजहिं येक कंदमूल सु खाहीं ।
येक सु पीवहिं दूध येक मन मेवहि माहीं ॥
येक रूखा येक तेल लेहिं सुमिरन सुरति न ठाहरे ।
मनोबिरति जग ठगन कौं रज्जब बहु पाखंड धरे ॥१॥

पंच अगिन तन सहै सीत बरिषा जल माहीं ।
ऊभा द्वादस बरष बसेख सु बैठै नाहीं ॥
ऊंधे घोटै धोम नगिन ह्वै देह जरावहिं ।
अठ सठ तीरथ करैं देइ दहणा रथ आवहिं ॥
अज्ञान कष्ट आतम परी गुफा सु बन कौं ध्याइये ।
जन रज्जब निज नांव बिन निरालम्ब नहिं पाइये ॥२॥

हेरि हिवांलै गलहिं होहि पुनि झम्पा पाती ।
संकर सेव सु करैं सीस काटैं निज काती ॥
कासी करवत लेहिं कठिन कूंडी सु करावैं ।
काष्ठ भखहिं भैभीत देखि देही सु जरावैं ॥
सकल कष्ट हद मीच लग आदम सो सब आदरै ।
रज्जब राम न पाइये बिन आषिर एकै ररै ॥३॥

अज्ञान दान का अंग

कनक तुला चढ़ि दानि दानि पुनि गुपता दीजै ।
है गै पट परवाहि बिबिध बेदो गति कीजै ॥
कोटि गऊ कुरुखेत देहिं दिनकर प्रब देखै ।
अठ सठि तीरथ न्हाइ दान जग करै अलेखै ॥
भोजन भोमि भंडार दे सुत नारी उदकै धरम ।
सुमिरण बिन सीझै न जिव जन रज्जब पाया मरम ॥१॥

देइ रसाइण दान दान पारस पुनि कीजै ।
पोरस करै प्रवाह दत्त गिर कंचन दीजै ।।
सपत धात की खान देइ बैरागर संगा ।
तोयम निधि सब त्याग जहां निपजै बहु नंगा ।।
अवनि उदिक औतार बिधि अब विन दीनी क्या रही ।
पै रज्जब हरि नांव बिन जीव न सीझै सो सही ।।२।।

करामाति दे दानि सिध घरि सिद्ध सु दीजै ।
नौ निधि का परवाह कहीं ठाहर यहु कीजै ।।
कामधेनु का पुन्नि दत्त दीरघ करि देखै ।
च्यन्तामणि मन म्यंत उदिक कीजहि सु अलेखै ।।
कलपबिरिछ संकल्प करि कंवला सहित सु दीजिये ।
रज्जब नांव अराध बिन दान असंखि न सीजिये ।।३।।

सांच चाणक का अंग

लेहि अमावस दान गहण थावर कौ मांगहिं ।
तजहिं न सति अर ऊत मृतग मुखि मिसरि न खांगहिं ।।
सूतग पातिग गहहिं पेखि प्रोजन सु करावै ।
जुध खेड़ै लिखि लगन देइ दिन जीव मरावै ।।
करम असोच उचिष्ट लेइ संक्या सोच न बामणहु ।
रज्जब आये पाप सिर तौल माप नाहिन मणहु ।।१।।

पलक सु काढ़हिं घड़ी घड़ी काढ़हिं पहरौं तहिं ।
पहर दूरि दिन करहिं द्वैस टारैं मासौं महिं ।।
बारा पून्यूं बरस करहि सो तेरह मासा ।
द्वादस सूरिज चंद कहैं यहु वड़ा तमासा ।।
पलक घड़ी अरु पहर दिन मास बरस सरकैं कबै ।
रज्जब बिप्र सु बाल बुधि फिरत फिरत देखैं सबै ।।२।।

परसराम भरमाइ महीसुर बार सु लीन्ही ।
पुनि दूजै अवतारि देखि उर लात सु दीन्ही ॥
बिप्र रूप बप धारि उठे बलि सौं नहिं थोरे ।
देखि डरे द्विज रूप करन के दंत सु तोरे ॥
प्रह्लाद प्यंड पाड़े सुपरि पूत बाप बिच क्या धरी ।
हरिचंद हेरि रज्जब रहसि ब्रह्म वंस संगति करी ॥३॥

कुसंगति का अंग

राहु केत ससि सूर नूर की ठौर उठाई ।
रावन संगि समन्द सीस परि पाज बंधाई ॥
बंस बनी पापिष्ट नांव पर करगस तीरं ।
गंगोदिक मद मिलत खार मद भंजन षीरं ॥
तीरथ गये समन्द मिलि दूध देखि कांजी परे ।
रज्जब अज्जबता गई एक कुसंगति के करे ॥१॥

जूठणि का अंग

मनसात मैल मंडाण गैल मल थूल सु मूलं ।
जल थल मल ह्वै किरषि मलहिं खित खात सु धूलं ॥
मल मिष्टान्न सु मेल मलहिं सांभरि सुत सीरं ।
मल मुखि लेहिं अफीम मलै मल भुगतै बीरं ॥
घृत हींग कहि कौन मद सूप सु चलनी सोधिये ।
रज्जब लीजै मेद मधु क्या अचार परमोधिये ॥१॥

अपलछिन अपराध का अंग

सारंग सुर सु बिनास मीन रसना रस आसा ।
पावक पेखि पतंग भंवर नासक विधि बासा ॥
पटछल वारुण बाघ मुगद मति मरकट सूवा ।
मूस चुरावत बाति पवंग पावक परि मूवा ॥
स्वान मोच दरपनि महल मकरी मूंदि सु द्वार कौ ।
रज्जब मरहिं सिधौर बग पाया नहीं बिचार कौ ॥१॥

साधि रोग का अंग

बांझि न होई बाल कहा ऊसर कै बाहै ।
अन कन चढ़ै न हाथ देखि कूकस कै गाहै ॥
चंदन भिदै न बंस अंध अंजन क्या होई ।
बहरे आगे बात बहुत करि देखौ कोई ॥
असाधि रोग ओषदि नहीं गांझा ज्ञानहिं क्या करै ।
स्याम ऊन संख न रंगहि रज्जब गुरू क्यूं पचि मरै ॥१॥

सांभरि सर गिर हेम बाग तरवर नहिं जामहिं ।
मीन मांग खग पंथ व्याल थलि पोल न तामहिं ॥
कच्छिब गैंडा बान छिदै नहिं चक्र सु पीड़ा ।
सेल हंस इक मारि बारि दरसै नहिं छीड़ा ॥
हणवंत हांक हारी त्रियहु गोली गुमटि सु गिरि परै ।
असाधि रोग ओषदि बिना रज्जब बैर सु क्या करै ॥२॥

क्रोध का अंग

तामसि ताखा होत अचल उर अहरि सु आगी ।
रावन रत मत रोस चिता पावक रह आगी ॥
समंद जीव तिस ठौर चकोर अहार अंगारै ।
सैल सुदामा होंहि प्राण पाहण अहंकारै ॥
बैर रूप बप बंस धरि आप जारि जारै सुतर ।
जन रज्जब जुगि जुगि दुखी प्राण सु पैठै क्रोध धर ॥१॥

राहु केत ससि सूर गहन गति दोष बिचारै ।
रामानुज पतिसीत बैर बिधि बान न मारै ॥
कंसासुर अट बीज परै कांसन तन परि टूटी ।
होरी हित प्रहलाद बरी बारन नहिं छूटी ॥
देखौ हजरति दंत दिसि पाहण बदला लीजिये ।
जन रज्जब सुनि साखि यहु बैर न काहू कीजिये ॥२॥

जरनै का अंग

सलिता समंदि समाव बारि बड़वानल जारै ।
चौरासी के चरन धमस धरनी सिर धारै ।।
लात गात सहि बिष्नु षिमा खलकहिं सु दिढ़ाई ।
गत उर में अहंकार जासु कै हिरदै आई ।।
साध श्रवन सति सुन्नि समि कुबचन छल बल ना चलै ।
क्रोध काष्ठ नासति जहां जन रज्जब कहु क्या जलै ।।१।।

परम जरणा दुष्ट दातार का अंग

सैल सीप पोरिस जु बैरि यों बित्त सु दीया ।
ईखर मेंहदी पान कष्ट रस रंग सु कीया ।।
बैरागर की खान त्रास तरवर फरदाता ।
रसना दंत न बैर षीर सरवै सुत माता ।।
बावन कुठार पारस घनहिं निधि दधि महणा रम्भ करि ।
रज्जब ओषदि अन्न ज्यूं करहिं आप उपगार मरि ।।१।।

मूल बिस्तार का अंग

कुलाल पात्र तरु पत्र चलहिं जलचर सब होई ।
बादल निपजहिं बूंद बात बिगरी नहीं गोई ।।
चित्र चितेरे माहिं खानि निपजहिं सब नाने ।
ज्यूं साध सबद हरि जीव होहिं सो नाहिन छाने ।।
उजास अमी नित सूर ससि किये न करतहु को करै ।
अब यापरि उलटी कहै जन रज्जब तासौं डरै ।।१।।

इति कबित्त भाग

रज्जब बानी सम्पूर्ण समाप्त ।

वाणी-कोश

अस्तुति का अंग

निरंजनम् : माया रहित, अलिप्त
पारंगत : पहुंचे हुए (विद्वान्)
सिजदा : दंडवत्, प्रणाम
नौत : प्रणाम करता हूं
विचि : मध्य, बीच का
सूति : प्रसन्न होकर

भेंट का अंग

लांबि : लाभ
दाति : दान
स्वांगू : ढोंगी (पाखंडी)
परिमल : सुगन्धि
सहज शून्य : ब्रह्म

गुरुदेव का अंग

देखतौं : देखते हुए
गम्य : गति
फेर न सार : कोई सन्देह नहीं
अस्थान : अवस्था, स्वरूप
ब्योरन : ब्रह्म व माया का सम्पूर्ण विवेचन
धरे अधर : पृथ्वी और आकाश तथा सगुण और निर्गुण
हांक : उपदेश
मुहड़ै : सामने
तलब : चाह
तसल्लह : शान्ति
तालिबां : आकांक्षी
दरगाह : आश्रम, पूजा स्थल
रजमां : विभूति, सिद्धि
दूतर : दुस्तर
माझी : भीतर
सिदक : रोजा, बलिहारी
रमिता : रमण करने वाला
मुरीद : आकांक्षी, शिष्य
खिलखाना : वित्त और भवन
सुरता : ज्ञान वृत्ति
तिहाँ : वहाँ
ऊँणति : उन्नति
अबिगति : मन वाणी से अलग, अनश्वर
टोटा : कमी
आभे : बादल
समिसान : मिला हुआ, सना हुआ
छानी : खोजना
छानी : प्रच्छन्न
कुंज : पक्षी

संसार रूपी हिमालय पर परमात्मा रूपी कुंज जीवात्मा रूप अण्डा रखता है और यह मायिक सुखों की आसक्ति रूप बरफ से ढक जाता है, फिर विरह रूपी बैसाख के आने पर सद्गुरु रूपी सूर्य का ज्ञान-तेज पड़ता है, तब वह अज्ञान रूपी हिम गल कर नेत्र रूपी नदियों में चला जाता है और अण्डा रूप आत्मा परमात्मा रूप कुंज को मिल जाता है।

कुंज एक पक्षी विशेष है। कुंज और कच्छप अपने बच्चे से दूर रह कर उसे ध्यान के द्वारा पालते हैं।

कूर्मी दृष्टि मात्रेण पक्ष मात्रेण कुक्कुटी ।
कुर्वी श्रुति मात्रेण हित मात्रेण साधवा: ।।

शक्ति : माया
खूटै : खुलने के लिए
जै : जब
गुर : तीन, तीन गुणों की गांठ जो शरीर में है, उसे समर्थ गुरु ही खोल सकता है।
भांडा : शरीर
अहिखोड़ि : इसी शरीर में
अहिसू : इसी
हुमाय : हुमा पक्षी

जिस व्यक्ति के ऊपर से हुमा उड़ कर निकल जाता है, वह राजा हो जाता है। हुमा पक्षी, बामन यानी चन्दन तथा पारस इन्हीं का गुण सद्गुरु में होता है।

दोय : द्वन्द्व
पूजना : समान होना
गराब : मूर्ति शिल्पी
षट दर्शन : षट दर्शनी साधु

दोहा—बोध सन्यासी सेवड़े,
जोगी जंगम सेख।
षटदर्शन दादू राम बिन,
सबै कपट के भेख॥
(दादू बानी भेख का अंग)

जोगी : नाथ सम्प्रदाय का साधु
बोध : बौद्ध
सेवड़े : जैन
जंगम : टोकरी बजा कर और मोर पंख सिर में पहन कर भिक्षा मांगने वाले साधु।
लोडी : गोल चिकने
राज : कारीगर
चरिया : समुद्र
बासा : निवास
परि : ऊपर
बादवान : जहाज का पाल
घाट : बर्तन
सार : अग्नि
सिख : ज्ञान
खाल : मशक, हवा की धौंकनी
मासूर : आत्म ज्ञान, मनसूर
घाट : देहाध्यास
काठ : अविद्या का मैल
कुस : लोहे की साबर
आपै : स्वभाव से
नंग : बर्तन इत्यादि
गुल : फूल
मनिष : मनुष्य
हाल : देख कर
कच्छी : कच्छपी
अनि : अन्य
नग : रत्न
बीख : कदम, पग
बय : यौवन, आयु

कहते हैं कि सिंघल द्वीप में हनुमान जी कभी-कभी हाँक लगाते थे, जिसको सुन कर राक्षस लोग हिजड़े हो जाते थे। हाँक का पता लोगों को पहले से चल जाता था, इसीलिए उसके प्रभाव से बचने के लिए लोग तहखाने में छिप जाते थे। तहखानों के द्वारों पर स्त्रियाँ नक्कारे बजाती थीं, ताकि हाँक की आवाज पुरुषों के कान में न पड़े।

फुनि : सर्प
डाबी : डिबिया
बादि : बाजीगर
हरताल : हरताल में मक्खी जीवित नहीं रह सकती।
मारुत भख : सर्प
पंचतिणे : पांचों इन्द्रियों के तिनके
पुहुमि : मिट्टी या पृथ्वी
बारि : द्वार, आश्रम
वैरागर : हीरा

मरजीवा : गोताखोर
अखै : अक्षय
ठूण : ठुनका देना
दरवै : द्रवै, स्रवै
पोरसा : एक देवता - विशेष, जो कामधेनु अथवा कल्पवृक्ष के समान माना जाता है।

पोरसा का मन्दिर प्रतिदिन आनेवाले अभि-जित नक्षत्र में मध्याह्न के समय बिना रुके हुए विधिपूर्वक बनवाने के बाद उसका आह्वान किया जाता है। यह पोरसा (स्वर्ण प्रतिमा) पुरुषाकृति में सिंहासनस्थ हो जाता है। पूजा करने वाला प्रतिदिन पूजा करने के बाद उसके हाथ-पैर काट लेता है, दूसरे दिन वे हाथ-पैर पुनः उग आते हैं, इस प्रकार यह देवता निरन्तर सोना देने वाला है। किन्तु यदि कहीं भूल से उसका सिर काट लिया गया तो वह सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

ससम बेद : सूक्ष्म ज्ञान
जातक : पुत्र
विष : विषय रूपी विष फल
बिरचे : विरत होना
गूंठी : कुंद
तेह : वे
बांझ : बन्ध्या
मुरीदमता : शिष्य के लक्षण
गोइ : जिह्वा
नेठि : निष्ठा
फैन : फेन, मिथ्या दम्भ
मन्दगामी : मन्द भाग्य वाला
अठारह भार : सभी बनस्पतियाँ
घड़िमाल : घटमाल
मंगल गोटा : नारियल
मुखि : मुख्य फल
कन : से, निकट
पोले : विचारशून्य
गठीले : अभिमानी
दख्या : दीक्षा
बाणै : सम्बन्ध कराये, बनाये
चुटाइह : तोड़ना
चीनी : मिट्टी का टुकड़ा
ठीकरी : गिट्टी

गुरु सिख निर्गुन का अंग

बंस : बाँस
चकमक : एक पत्थर
गार : घिसना
कुभनी : पृथ्वी
गोष्टि : गोष्ठी, संवाद
वइयर : स्त्री
खोजा : हिजड़ा
जोव : स्त्री
माहि : भीतर
चीणा : अन्न विशेष, जो गोल चिकना होता है या चीना धान।

गुरु सिख निदान निर्णय का अंग

रहिता : रहित (संसार से) परमात्मा में रहने वाला
सत्जत : सत्यजित
सत् : ब्रह्म
जत : जती
मृतक जहाज : सूखे हुए काठ के जहाज के समान।

दिव : तप्त लोहे का गोला जो न्यायपति किसी भी अपराधी के हाथ में रखता था, यदि उसका हाथ जल जाता था तो वह अपराधी समझा जाता था और यदि नहीं जलता था तो निरपराधी समझा जाता था।

मोहरै : मोर के पंख जला कर एक प्रकार का तांबा निकाला जाता था, वही मोहरा है।

कमणीगर	: धनुष बनानेवाला, वाण-शिल्पी।
कन्द	: मिश्री
निरताइ	: विचार कर
रूपा	: चाँदी
गुरुज	: गदा

सतयुग की अग्नि में विशेष प्रचण्डता थी, सतयुग की सभी वस्तुओं के गुण अधिक थे, अग्नि में केवल १६ बार तपाने में सोना शुद्ध हो जाता था, इसीलिए उसे सोलहा भी कहते थे।

बासदेव	: अग्नि
जाड़ि	: दाढ़
उपाड़ि	: उखाड़ना
जीव	: प्राण

अनल : एक पक्षी विशेष, जो वायुमण्डल में ही रहता है, इसका अण्डा उपर से गिरता है, पृथ्वी पर आते-आते बीच में फूट कर बच्चा निकलता है। पृथ्वी में जंगलों से पाँच हाथियों को पंजे में पकड़ कर पुनः लेकर उड़ जाता है।

सांगि	: सांग, सेल
रति	: भगवत् प्रेम
खित	: पृथ्वी
ठहर	: स्थान
आघ	: मूल्य
बाहले	: बहिर्मुखी
रोझ	: नील गाय
भलका	: बाण
त्रिलोक	: तीनों शरीर, स्थूल, सूक्ष्म, कारण।
अइया	: ऐसी
ऐन	: साक्षात्
रोस रस	: भय और प्रीति

आज्ञाकारी आज्ञाभंगी का अंग

सफरी	: मछली
रासिबा	: गधा
अजाजील	: एक शैतान का नाम है, जिसने आदम के साथ शरारत की।

आज्ञाकारी का अंग

अद्‌भू	: उद्‌भिज, वृक्ष
लार	: पीछे
इकतार	: एक समान
अणसरै	: अनुसरण
प्रमोदे	: उपदेश दिया
सोधे	: देखा
आड़ा	: टेढ़ा
ऊभा	: खड़ा हुआ या स्थित
यंत्रघटी	: सितार या वीणा
आफू	: अफीम का डोंडा

तेल, नमक, आफू और गुड़ इनके मिल जाने पर भी इनका भाव या गुण बना रहता है।

अम्मलवेत	: एक वृक्ष जिसकी फली लम्बी होती है, इसमें सुई डाल देने से सुई गल जाती है। इसे आम्ल-वेतस कहते हैं।
सतिया	: मिश्री
अठसठि	: अरसठ तीर्थ
बकर	: वक्त्र या मुंह
सूत	: पारा
घणा	: विपुल

एक पर्वत में एक देवी रहती थी जो नित्य नर भक्षण करती थी। एक दिन एक बुढ़िया के पुत्र की बारी आई। वह देवी के भोग के लिए पकवान बनाते हुए रोती भी जाती थी। संयोग से गुरु गोरखनाथ भिक्षा के लिए उसके पास पहुंचे। इसके बाद उन्होंने बुढ़िया की बात समझी और देवी के पास पहुंचे। देवी ने आतंकित होकर क्षमा मांगी, उन्होंने तभी क्षमा किया जब उससे वादा करा लिया कि सभी मृत नरों को वह जीवित करे और आगे नर भक्षण बन्द कर दे। तब तक उस देवी ने ९६ करोड़ मनुष्यों को खाया था।

मुगल	: मुख से
ऊंधी	: प्रतिकूल
सूंधे	: अनुकूल
मंत्री	: मंत्रवेत्ता
गजा	: शिला
हड़क	: बियोग
कमकाट	: कर्मों की काट
घटबधि	: घट बढ़ कर
सूर	: किञ्चित्
कनक	: नदी में सोना पाया जाता है, इसलिए कि वह कनक-गिरि से निकलती है।
रासि	: अस्त्र आदि
नाणा	: सिक्का या मोहर
अकज	: बिना काम के
सैल	: सैर
नालि	: वह नलिका जिसमें रख कर गोला दागते हैं।
पैगह	: पैर रखने वाला
कफ	: हथेली
असमि	: पत्थर, अश्म
तरनिउं	: सूर्य
साल	: भवन
धरि माहि	: मध्य में रखा है
चखहु	: खेत
घुवा	: किलौनी
केड़वणि	: किलौनी

चम्वति : चिपकता है

भैंझड़ : मूसलाधार वर्षा

चख चिहुर : जिसके नेत्रों से पानी निकलता रहता है।

रोज : रोना

जेवड़ड़ु : रस्सी

द्रुग : किला

भाकसी : कैद

कूंदे : बेड़ी

हेत : प्रेम

मोरा : मोर

पौहण : पशु, वाहन

रजमा : विषयासक्ति

समुद जीव : अग्नि कीट

स्याबत : प्रसन्न होना

दरून : भीतर

इसक अला : भगवान में प्रेम

बिनालद : रोता है

जाम : प्रहर, दिन

हरद : हल्दी

प्रीति इकंग का अंग

बेली : साथी, सहायक

मरकट : बन्दर

सुवा : तोता

अकल : ब्रह्म, जो कलना से परे हो।

मंडे : भरे

ब्रह्म अगिन का अंग

वहनि : अग्नि

तोयूं : जल

ऊन्हे : उष्ण

पच्चीस : पंच इंद्रियां और तन्मात्राएँ

अजरी : मक्खी

भयभीत भयानक का अंग

रायल : दराज

सातक : सात्विकता

भृत : सेवक

विरक्त का अंग

ताखे : तक्षक

लंगर : धृष्ट

रामति : (१) चौरासी योनि, संसार भ्रमण।
(२) सन्त समागम।
(३) सेवक के घर गुरु का ठहरना।

वरतणि : व्यवहार

तस्कार : तिरस्कार

ढीमा : मल का टुकड़ा

सिलक : लार या थूक

रहति : ब्रह्मचर्य

अधपति : अधिपति

सुनि करि सीर : शून्य में अधिकार करना, ब्रह्म साक्षात्कार।

धौ : धवा का वृक्ष

सालर : वृक्ष विशेष

धवा की डाली टूटने से हरी नहीं होती, किन्तु सालर की डाल टूट कर भी हरी हो जाती है। विरक्त जन सालर की भाँति ही रहते हैं, किन्तु धवा की भाँति टूट कर पुनः गृहस्थ नहीं बनते हैं।

मूगोड़ी वाईस : कौवा सूखी मुगौड़ी नहीं खाता है।

पर : पंख

भुरट भूंड़ : कुत्ते तथा कांटे

वीर : हे भाई

उनमनि : समाधि

अधर : निराकार

धरै : मायिक संसार

सूषिम त्याग का अंग

महलाइत : मन के महल

कुसमल : कलुष

जाचन्ध : जन्मान्ध

सम्पति विपत्ति मन हरन का अंग

जाय : जायफल की लता

लै का अंग

ल्यौ : ध्यान
लांबे लोक : बड़े लोक, सर्ग आदि
ल्यौलार : लय में लगे हैं
जिकरि : चर्चा, जप

सुमिरन का अंग

धावै : ध्यावे
मंडाण : साजबाज
रैणाइर : समुद्र
बोलता : प्राणी
बिनानि : विज्ञान
नरनाथ : भगवान
धापण : तृप्त होना
जाणिर : जान कर
आब : पानी
तृख : तृषा
डाव : दाँव
बरियां : बिरियां, समय
साफिल : सफलता
प्रिष्ट : पीठ पर

एक की पीठ पर शून्य लगा देने से दस हो जाता है।

चावली : चपलता
मम्मै : निज का अहं भाव
पास पसारा : संसार के पास रहने पर भी।

भजन भेद का अंग

पैला : उस पार
संबूह : समूह
गाल : नष्ट करके
सालहिसाल : छेद में छेद बैठ जाना
ढेंकू : ढेकुली
चड़स : पुर चमड़े का
अरहट : रहट
ठावी : ठीक
अहुठ : साढ़े तीन

रोमावली साढ़े तीन करोड़ मानी जाती हैं।

सरियत : कर्मकाण्ड, शरीयत
तरीकत : पूजा, भक्ति
मार्फत : संसार त्याग
हकीकत : साक्षात्कार (ब्रह्म का)
मणि : दाने
मेरु : सुमेरु, विश्राम
सेती : से
मायली : माहिली, आन्तरिक
मारुत मौज : मस्त हवा, स्वाभाविक श्वास।
जूना : जीर्ण
पाड़ा : भेद
वर : पति
ररैं मम्मै : रकार मकार (राम)

अजपा जाप का अंग

अन आखिर : अनक्षर, अक्षर रहित

दुरसा नाम का चारण जहाँगीर द्वारा सम्मानित किया गया था। दुरसा एक पालकी में चलता था तथा हाथ में सोने का अंकुश रखता था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि जो मुझसे हारेगा, उसे अपनी पालकी में जोत कर अंकुश से चलाऊँगा और यदि कोई मुझे जीत लेगा तो उसे पालकी व अंकुश भेंट कर अपना गुरु बना लूंगा। दुरसा ने रज्जब जी के सामने यह समस्यात्मक दोहा पढ़ा :—

दोहा—मुख अक्षर मुख सप्त स्वर,
मुख भाषा छत्तीस।
एते ऊपर जो कथै,
तौ जानौ सु कवीस॥

रज्जब जी ने इस पर यह दोहा पढ़ा :—

दोहा—मुख अक्षर मुख सप्त स्वर,
मुख भाषा छत्तीस ।
एते ऊपर उर भजन,
अन अक्षर जगदीस ॥

रज्जब जी की प्रतिभा से मात खा कर दुरसा उनका शिष्य हो गया।

निनावे : बिना नाम का
अंक : अक्षर
परामई : पारा रूप, अपने आप उड़ जाना।
नाव पर नास : नाम के पंख भी नष्ट हो चुके हैं।
नर तथा नग : हीरा हीरी जो उड़ जाते हैं।
नर गुटका द्वारा ऊपर उड़ता है।
ऊबट वाट : विकट मार्ग
काढ़ना : सोना
मक्ष वक्ष : मछली मुंह से नहीं बोलती, यानी मछली का मुंह।
यूंस : योंही
अबोला जाप : अजपा जाप
करसी : करेगा
अलाहिदे : इलाहिदे, अलग
नापिगा : नदी

ध्यान का अंग

होहं : अहम् यानी मैं
सोहं : वह मैं ही हूं
रुध्र : रुधिर
सप्त अष्ट : सप्त धातुओं का शरीर तथा आठवीं आत्मा

नाम महिमा का अंग

कृत मन : कृतकृत्य हो गया
नाईं : नाम से ही
खुदरत : कुदरत
बड़हु बड़ी : बड़ी से बड़ी
ईसान : ऐसा नहीं
पशु : यहाँ गज के उद्धार का संकेत है।
सारंग : मृग
जरख : एक जंगली जानवर यानी तेंदुवा।
सांस : श्वास
सलक : अलग

भजन प्रताप का अंग

मान : महिमा
बधे : बढ़ेगी
तमहर : अग्नि
खंगि : तलवार
महियल : महीतल
बरुल पर पाज : समुद्र पर सेतु

लोहा, तेल और दिव (गरम गोला) तीनों सत्यवादी को नहीं जला सकते।

पलय : पलड़ा
फडका : चादर
पनिग : पन्नग

पन्नग ही सबों को प्रज्वलित कर देता है, बाद में उन्हींकी आग में स्वयं भी जल जाता है।

साधु महिमा का अंग

कीये : सृष्टि
तेम : उसी प्रकार
अंजन : माया
फर : फल
सुरम : श्रम

हाली : बोने वाला
खलक : आचरण अथवा संसार
मुलक : देश अथवा क्षेत्र
खालिक : भगवान्
साथि : एकदम
गरुड़ द्वार : मोर के मुंह से निकला हुआ तांबा
रजनी पड़्या : रात के आने पर
चिराक : चिराग़
पातर : पात्र, बर्तन
कुठौर कस : दुर्गुण या कल्मष

टाट और स्याही इसलिए आदरणीय हैं कि टाट से बने हुए कागज पर भगवान् का गुणानुवाद स्याही से लिखा जाता है।

अरोग्या : खाया
दोजकी : नारकीय
दादा : हरिणकश्यप, प्रह्लाद का पिता।
विरोचन, प्रह्लाद का पुत्र था।
आंवली : भादों की वह रात्रि, जिसमें सहसा आंवले के वृक्ष में फल आ जाता है।

नामदेव ने तुलसी पत्र पर रंकार लिख दिया था। एक साहूकार ने उस पत्र की तौल में धन देना चाहा, किन्तु सब कुछ चढ़ा देने पर भी तुलसी पत्र के बराबर धन नहीं तुल सका।

विमास : विचार
लय अकस : लय का लक्ष्य
प्राम : प्रमाण
ल्योई : भजन
वार : देर
निदान : निर्णय या लक्षण ज्ञान
रीठ : अंगीठी

पाड़ा : हाथ आना

दोहा—ढोल दमामा पाल सिरि,
डंका एकै होय।
त्यूं बाइक बहु गुण भरचा,
बूझै बिरला कोय॥

लद्ध : प्राप्त हुई
भेले : साथ
विगता : ज्ञानी
फटक : फिटकरी
आघ : सत्कार
चुनौती : सींक या लौंग जो पान में लगाते हैं।
ध्रू : ध्रुव

तीरथ सतसंग का अंग

सांपड़ो : स्नान
देवल : मन्दिर
जवाब : जवाब या ज्वाब, उपदेश

साधु संगति परम लाभ का अंग

रुद्र : सोना
सूंघे : सस्ता
निमधे : निमद्धि, उस पार, पल्ली तरफ।
वीर : साधू
सुध : शुद्ध
दरिहाल : तत्काल, इसी समय
व्यवसावहि : सफल होते हैं, विचार करते हैं।
कोर : भोजन या कौर
ऐनवित : प्रत्यक्ष दर्शन की पूंजी

साधु का अंग

नेपै : खेती
सुगरा : गुरु को मानने वाला

सांकड़े : नज़दीक
तिपटे : वह तसला जिसमें अग्नि रहती है।
नारेल : नारियल
ख्यारि : नष्ट करना
चूंषि : चुनना
बावा : भगवान्
तिरखा : तृषा
परसन : प्रसंग
सूकूं : सूखने पर

प्रसिद्ध साधु का अंग

साव : किञ्चिन्मात्र
पणि : प्रण
लखिण : लक्षण
अह : प्रसिद्ध, है
निरिहाई : निष्कामता
चित्राम : माया तथा चित्र आदि
अहल : न हिलने वाले
पिसण : पैषुन्य षड्विकारादि
तोर : शक्ति
वैले : अश्लील भाषण
उपाये : उत्पन्न किये
सोवन : स्वर्ण
अनि : अन्य

माया मधि मुकति का अंग

सिरटा : मकाई का भुट्टा
दुपड़ : दो पात वाले, पराठे आदि
ऊंधी सूधी : परोक्ष, प्रत्यक्ष
फरास : एक वृक्ष विशेष जो उखाड़ कर लगाया जाता है।
रुपम : लग जाना
चम : चमड़ी
कुटन्तर : करोड़ों
सिंधुर : हाथी
उरै : वहाँ
सिल : चिता
मरि मधि : मध्य ही में मर जाता है
तारू : तैरने वाला
वरण : वरुण या समुद्र
माग : मार्ग
परवनि : पुरइन
जंतर : सितार के तार
ब्रिद : विरुद
ग्रस्त : गृह वास
बूझणे : ज्ञान
जल मंडली : काई
मुदा : खुशी
दुहाग : परित्यक्ता स्त्री
अवाह : कुम्हार का आवा
रर्रा : माया रहित
मम्मा : माया रहित
आड़ि : जल पक्षी
बिझुका : खेत में मनुजाकृति धोख
अड़वा : धोख
खपता : नष्ट होता
जुरा : बुढ़ापा

विचार का अंग

रली : मिली
अष्टम : सप्त धातुओं से आगे जीवात्मा।
सेरी : मार्ग
छाजा : छज्जे
गंज्या : विनाश
बगहरी : विग्रही
मसंदी : मसनद गद्दी
केलवणिहार : विचारशील
पारी : हांडी
जाणपणे : ज्ञान

पृथ्वी पुस्तक का अंग

सिपाहे : कुरान शरीफ का प्रत्येक बीसवां भाग ।
रुग : ऋग्वेद
स्याम : साम वेद
गरग : गर्गाचार्य

सद्गति सेझे का अंग

सेझे : कुवें का सोत
सेके : भिस्ती या सक्का

चरनोदक प्रसाद का अंग

अन्तर : अज्ञान
पसखुरदा : उच्छिष्ट खाने वाला (प्रसाद)
काट : लोहे का मैल
नारा : मिट्टी से धातु के कण निकालने वाला ।
धुर्यं : धोने
सरवी : निकली

लघुता का अंग

छाप : अंगूठी
मोटा : बड़ा
पैज : पाटा, जिससे जोती हुई भूमि बराबर की जाती है
डल : ढेला
बड़ : बट वृक्ष
सुखन : सखुन, अच्छी बात
निवानि : जलाशय
छंटि : विन्दु
खारदै : खारी भूमि
सांठ : सरपत
तरी : नीची, गुड़ की गटिया ने मिश्री होकर तृण को भी साथ ले लिया ।

गर्व गंजन का अंग

पूंदि : नितम्ब
जैंगन : जुगुनू
गांड़र जड़ : खस
काल दवनि : काल दमनी बूटी जो विष उतारती है।
क्रिकाट : गिरगिट
दीध : दी है
वूढणी : बीर बहूटी
अजरी : मक्खी
जोतिग : ज्योतिष
खांड खानि ले रेत : रेत से खांड के कण ज्योतिषी नहीं निकाल सकता ।
मकौड़े : कीरी या चींटी
पंचमुख : सिंह
उडिग : अगस्त
अरोगि : पीकर

करुणा का अंग

अजुग : अयुक्त, अनुपयुक्त
सुलप : स्वल्प
चवै : द्रवित होकर
सांखुले : शंख
नाल खाल : नदी नाले
घण : समुदाय
सगौं : सगे
बाई : तलवार
गाध : गधा
पहुण : वाहन
कातिक स्वामि : स्वामि कार्तिकेय
परले : प्रलय
बाहुड़ो : मेरी ओर आओ
वाथ : अंक में लगा कर
मुर थौकूं रद : तीन थोक से रद
बाहरू : सहायक

बिनती का अंग*

ब्रम्भू : प्रसन्न होकर
दीप : द्वीप
निवड़ै : मुक्त
टोटी : रोटी को बच्चा टोटी बोलता है।
व्रिद भोर : विरुद भीरु
मूरा : अविद्या, मूला और तूला दो प्रकार की विद्याएँ।
गैरी पाड़ें : दूसरी जगह के
मुदा : पहिचान
मीरौ : मेरे मालिक
रिजक़ : रोजी
अलेख : परमात्मा
तुम जोगी : तुम्हारे योग्य
अधोड़ी : चमड़ी
झाड़ : बेरी या जारी
कुचला : गन्दा
राय : अन्तर
सकज : कर्म करने वाला
श्रीमौर : लक्ष्मीपति
सत्र : शत्रु

संत सहाय रक्षा का अंग

दैत : दैत्य
मंगितों : याचकों

एक वन में मृग-मृगी साथ सो रहे थे। दोनोंको पैसे के लालच से मारने के लिए बहेलिये ने एक ओर जाल लगाया, दूसरी ओर आग लगाई, तीसरी ओर कुत्ते और चौथी ओर स्वयं खड़ा हो गया, किन्तु मृग जान गये और भगवान् को पुकारा, तब भगवान् ने पवन को छोड़ कर आग जाल में लगा दी, जाल जल गया। इसी बीच एकदम वर्षा हुई। छेद से निकल कर एक सांप ने बहेलिये को काट लिया, इससे वह हिल गया और उसके हाथ से वाण छूट कर कुत्ते के जा लगा। इस प्रकार मृग और मृगी बच गये।

बिषम वार : कष्ट के समय
मारणहार : काम, क्रोधादि
दोय : गुरु और ब्रह्म

पीव पिछाण का अंग

हथलेवा : पाणिग्रहण
अर : उर
अपरबल : प्रबल
अभ्यासत : मिलना अथवा लगाना
उन्हि : बुखार या उष्णता
आंटे : कष्ट से
सफाती : साधु
जाती : संसार
दस दूणे चतुर : चौबीस अवतार
जुगल : द्वैत, भ्रम
षट् अंग : चन्द्र, सूर्य, पानी, पवन, धरा, अम्बर।
द्योति : दाँव
वसीले : बहाना
आड़ा : बीच में डाल कर
गराब : माया, संसार

नामदेव के लिए मूर्ति फिरी, गाय जी उठी, जल में डाला हुआ सिंहासन पुनः बाहर आया।

पारसनाथ नेमनाथ को गोरखनाथ ने जिलाया था। (माया मछन्दर की कथा)

रजू : अनुकूल होना
मुक्ती : आधिक्य
त्योरी : दृष्टि
सिन्या : मिला हुआ
गैबी मार्ग : दैवी मार्ग

साखी भूत का अंग

व्यटंतर : तना (पेड़ का)
नहंग : साधू
सोवन मृग : स्वर्ण मृग

बल बमेक का अंग

बलि : बल
नेत : नेत्र
गुटका : एक पारा की गुटिका जो दूध को पाचक बनाने के लिए डाली जाती थी।
लगार : किञ्चित्

समरथाई का अंग

लांति : लगन
क्रिन : किरण
सौंपीवनथे : यह नहीं सौंपी
अगह : पकड़ में न आने वाली।
विसियर : सर्प
खीरि : दूध
घोरन्धार : घोर अँधेरा
विरध बाल : वृद्ध के केश

चौरासी निदान निरनै का अंग

तूतड़ा : फूस, जिसके बीच में दाने रहते हैं।
मूत : वीर्य अथवा मदन
भिस्तू : वहिश्त
इला : पृथ्वी
परगना : प्रदेश
सोनाखि : नष्ट करके

मधि मार्ग निज स्थान निरनै का अंग

चलाक : चलने वाले
उर वार : इसी पार
उनचास : पृथ्वी, जिसमें उनचास पवन घूमते हैं।

पैंडा : मार्ग
वातून : वातिन यानी दिल
मघ : मार्ग
नापैद : छिपा हुआ
सम्बल : यात्रा - व्यय अथवा सामग्री।

गैबी का अंग

गाभर : गह्वर

आतम निरनै का अंग

निसि धनहर : रात्रि का इन्द्र धनुष
लीनहु ओरता : उसकी ओर तल्लीन होने से।
सिकलीगर : लोहे को साफ करने तथा सान लगाने वाला।
पोति : ढंग, स्वरूप
कटूब : कुटुम्ब
कलित : कलत्र, स्त्री
जयति : जीत
चतुर भांति : चारों वर्ण के
कैलि : केला

ज्ञान परचै का अंग

संधि साल : सम्बन्ध के संकट
याणे : अयाणे
धूना : चिता
वही : बनी या हुई

हैरान का अंग

गहले : प्रमत्त
नीव सींव : नीव और दीवार
मुक्ता : ब्रह्म
सहिनाण : पहिचान
विलोर : विल्लौर, पत्थर, स्फटिक

आसै आसण का अंग

पेसखाना : चूल्हे का अगला भाग या लपट ।
निरसंध : संधि रहित यानी ब्रह्म
कलि : स्त्री
गलि : मर कर
हरि सिद्धी : माथा
मुराल : मराल
समदी : शाखा
कन्ह : छोटी गाय
हुदहुद : ताज वाला मुर्गा, राज-कुक्कुट ।
बोक : बकरा
रोम बल : केशों का बल
दरस देसन्तर : अनेक प्रकार के देश

अंतकालि अंतरा व्योरा का अंग

गोपिकाओं ने दुर्वासा के दर्शनों की इच्छा प्रकट की और यमुना के घट जाने के लिए कृष्ण से कहा । कृष्ण ने यमुना के पास जाकर अपना सन्देश कहने को कहा । यमुना ने रास्ता दे दिया । लौटते समय दुर्वासा ने कहा कि तुम लोग कह देना कि दुर्वासा अल्पाहारी है, तो रास्ता दे दीजिये । यमुना ने रास्ता दे दिया ।

माल : सम्पति
दार : लकड़ी
पाहुणी : तृण की अग्नि
उदंगल : प्रज्वलित
तने : तनय, बालक

पतिव्रता का अंग

दासा तन : दासत्व में लगे
मुदाज सिल : एक विशेष पत्थर, जिसमें हर वस्तु मयूर के रूप में दर्शित होती है ।
कदरज : कदर्थ
डाभ : कुश
खड़ि : एक खर, तिनका
रइयत : संसार
मकसूदी रसरीति : प्रीति की रसमयी रीति
गोर : कब्र
फर्द : इन्सान
लगमी : मात्रा भी
तोरही : तरोई
दीप दोस्त : शलभ
अबिहड़ : अविकल

सरबंगी पतिव्रता का अंग

विगति : विचार
सैल : सैर
हरि विछोह : विछोह का हरण करके
पोसत पुहुप : अफीम का फूल
अरगजा : चन्दन, केशर, कपूर आदि का मिश्रण ।
अमल : नशा
संपजै : सम्पन्न होना
भृसम : अधिक

बिभिचार का अंग

तार : तागा
सरोतर : सिर पर

प्रेम का अंग

सीति : मुफ्त
साटै : बदले में
अराय : जड़ से
गाजी : वीर, कातिल
खिलखाना : अपना धन दौलत सब
बेजार : खो बैठना
सरोतर : कान
उरै : पहिले ही
मावै : समाना

आण : आन
मेलूं : छोड़ूं
वले : भला
विरचूं : बिगड़ने पर
पाइक : सेवक
निमडि : निपट जाना
भारत : युद्ध
अपूठे : पीछे

शब्द परीक्षा का अंग

ग्वाड़ि : घर का आंगन
कुलरना : कलरव
आघ : सम्मान
खोज : चिह्न
धुपि : धो जाना
पान : पाणि, हाथ
हंस : आत्मा
सार सुत : लोहे की कणिकाएँ
गराब : विलक्षण
निसाल : खेद रहित

प्राण परीक्षा का अंग

विणों : वृक्ष समूह
पट : समान
जहमत : व्याधि
लकस : लक्ष्य
सुलाक : दोष, छिद्र

परा, पश्यंती मध्यमा, वैखरी वाणियां।

अपारिख का अंग

खुसै : घटता है

तोते के बोलने से क्या लाभ ? क्योंकि वह उसे समझता नहीं है।

एक ठग ने एक तोता साहूकार को बेचना चाहा। उसने उसकी बड़ी प्रसंशा की, और मूल्य के रूप में एक लाख रुपये मांगे। साहूकार ने तोते से प्रश्न किया कि क्या तू लाख रुपये का है ?. उसने लाख कह दिया। साहूकार ने तत्काल एक लाख रुपये दे दिया। बाद में साहूकार को पता चला कि तोता केवल रटी हुई बात कहता है। इस प्रकार साहूकार के एक लाख रुपये बिना परीक्षा के व्यर्थ चले गये।

मिसर : सोना
सूनो : बालक

अज्ञान कसौटी का अंग

कूकस : चोकर
चेजे : ग्रास
विगहुं : विज्ञ जन

मूसा साहब मौत के डर से भागे तो जहाँ जाते थे, वहीं कब्र खोदते लोग मिलते थे। एक स्थान पर कब्र की छोटाई पर मूसा साहब बहस करने लगे और नापने के लिए ज्योंही उसमें लेटे, तो लोगों ने दाब दिया।

पचहिन : नष्ट नहीं
जवारे की अनी : बीजांकुर का नोक
आव : आयो
बींवा : छाया चित्र

सेवा निष्फल का अंग

थिति : थाली
प्रब : पर्व
पातरूं : पात्र
गराय : ग्रहण करता है
धोक : प्रणाम

गर्भ सिद्धान्त का अंग

पोड़ि : एक जाति, जो मिट्टी खोदने का काम करती है।

उपदेश चेतावणी का अंग

बीती : हृदि
मयण : मोम
माजरै : समस्या
पाशिक : पापी, व्यभिचारी
इश्क इलम : प्रेम कला
सनमाना : समान नहीं है।
बाई देना : परित्याग
उग्रहै : उद्धार करे
मुजरा : नमस्कार
कामण : कामिनी
असत : अस्त करके
संवाहि : पूरी तरह पकड़ कर
गस्साल : मुर्दों का स्नान
ओधि : अवधि, सीमा
अहरनि : निहाई
झालर : घंटी, घंटा (ठाकुरजी के आगे बजाई जाने वाली)
सिवाण : सीमान्त
पैड़ी : सीढ़ी
सुमेरु : मेरुदंड
रंध्र : ब्रह्म रंध्र
भजाय : भगाय
संतति : प्रेम
सागड़ी : रथी
अवसाण : दांव
याद : सुमिरण
पछि : पश्य
तोबा : आगे पाप न करने को प्रण।
परताति : प्रतिईर्ष्या
रैण : रेणु
निराठ : बड़ी
चिहर : चहलपहल
चित्राम : माया, बाजीगर का खेल
बाहिला : बहिर्मखी
नग्ग : नहीं मिला
शक्ति सेन : माया निद्रा
रज घर : बालू का घर
गुदड़ी : बाजार जो लगा और समाप्त हो गया।
हटवारे : बाजारी
कौल : प्रतिज्ञा
केवांच : केवांच के जंगल में बन्दर केवांच को छू कर खुजला पैदा कर लेता है और खुजलाते–खुजलाते मर जाता है।
घोलि : कस कर

पलाश का वृक्ष नदी की पोली भूमि में तीन पत्तों वाला होता है।

एक चूहा दीपक की बाती चुरा कर छप्पर में ले गया। छप्पर में आग लग गई और वह स्वयं भी जल गया।

करंड : सर्प रखने की पेटी
विरंद : वृन्द
चिरम : घुंघची

जाड़े के दिनों में बन्दर घुंघचियों के ढेर के आसपास उसे आग समझ कर तापते हैं और एक-दूसरे के बीच घुसते हैं, आपस में लड़ते और मारते हैं।

चिहुर : चीर, वस्त्र
खुलावे : कष्ट देना

सरण का अंग

लाखों रुपये की तलवार म्यान में ही रहेगी।

दिव (तप्त गोला) हाथ में रखने के पहिले सूत और पान रखा जाता है।

असनि : भोजन
पठंगा : आश्रय

वोले	: ओर
लील्हरिया	: वृक्ष में बाँधे जानेवाले चीर ।

काल का अंग

मजार	: बिल्ली
चबाव	: विवाद, परोक्ष की बुराई ।
आवख्या	: आयु
अर अइ	: अरे ये
धवणि	: धौंकनी
दहेम	: दहना
केसरि	: सिंह
छाल	: उछाल
सुस	: शशक, खरगोश
जाहिगह वही	: वही स्थान

संजीवनी का अंग

पखि दोय	: पिण्ड और प्राण का पक्ष ।
सूर	: सूर्य
वइये	: वया पक्षी
तमा	: लालच
सौकणि	: सौतिन
काठचा रइ	: काठ की मथानी

विवेक समता का अंग

एखलास	: मैत्री
सुफौरी	: फलता है
आवलणि	: आंवला
बैंसी	: बंसी
सिन्या	: मिल्या

मेलग का अंग

नाजुगन	: अद्वैत, दो नहीं
वजरी	: मल मूत्र

दया निरवैरता का अंग

सुहिरदी	: सुहृद्
गत वाणि	: बदले की आदत
बाकरि	: बकरी
गोसफन्द	: भेड़, बकरी
मेस	: भेड़
हमशीरे	: सगा भाई
सगौती	: मांस, गोश्त
खोड़ि	: दोष
खोभ	: क्षोभ
सहनक	: सामने

श्री रामचन्द्र ने बालि के वाण मारा तो दूसरे जन्म में बालि ने जरा नामक व्याध बन कर कृष्ण के तलुवे में वाण मारा और कृष्ण का प्राणान्त हो गया।

रामानन्द	: कबीर के गुरु

कहते हैं कि यह लक्ष्मण के अवतार थे। मेघनाद ने एक मुसलमान के यहाँ जन्म लेकर उनको मुसलमान बुद्धि से मारा।

पंजिगा	: विन्दु
कहर	: क्रोध
खैर	: उदारता
राह	: राहु
नीव	: नीम

कंवला काढ़ का अंग

अष्ट कुल	: पर्वत तथा आठ कुल के नाग ।
सारा	: शक्ति

सुकृति का अंग

कारवी	: कार्य करने के लिये
तम तुंगिनि	: रात्रि
पुलंहि	: पलायन

सुकाती : अच्छी कुल्हाड़ी
सिपर : ढाल
तिन रोमहु राजा मिलहिं : उस पिण्ड के रोमों के बराबर राज्य मिलते हैं।

खैर (खैरात) से सत्रह गुण मिलते हैं, यह मुसलमानों का विश्वास है।

तिमंगल : तिमंगल नाम का एक बालक था। एक महात्मा को मार्ग में जाते हुए देख उस बालक ने सोचा कि महात्मा गाँव छोड़ आये हैं और आगे गाँव दूर है, महात्मा भूखे रह जायेंगे। उसने आगे बढ़ कर महात्मा से कहा कि मेरी माँ रोटी लेकर आयेगी, आप भी खाइयेगा। महात्मा ने कहा कि वह तो तेरे लिए लायेगी। इस पर उसने कहा कि कभी-कभी देर हो जाने से अपनी भी रोटी यहीं खाती है। यदि अपनी रोटी न लायी तो मेरी रोटी जब आप खा लेंगे तो वह स्नेह वश मेरे लिए पुनः ले आयेगी। सन्त ने बालक की बात मान ली। महात्मा ने रोटी खायी। इसके बाद उठ कर लड़के के डण्डा मारने लगे। माता ने वर्जित किया, पर वे न माने, और सात डण्डे तक लगा दिये। बाद में वह बालक सात बार राजा हुआ।

रब : भगवान्
खड़ना : जोतना
सूति : बहुत अच्छी
खाख : फसल
मठ : भस्म
पड़ना : क्षीण होना

द्रौपदी ने दुर्बासा को स्नान करते समय कोपीन दिया था।

दोवटी : दो चीरियां, लँगोटी, धोती
पोट : सामग्री
दश वन्ध : दसवां हिस्सा

कर मुकतों : उन्मुक्त करों से
गलथन : बकरी के गले के स्तन, अजा कुच।
उदिक : यान, सवारी
खाणें : खाना
मोरी : मार्ग
सीर : रक्त की नाड़ी चीर कर रक्त निकालना।
मंगल गोटा : नारियल
पारीछ : जहाँ कुवें का पानी आकर पड़ता है। कुवें के पास का गड्ढा।
सहुं : सब
वाण : आदत
टोलण : चलाना
अजच : महान

ग्यारसि, बारसि को खाना नहीं खाते, किन्तु देने में यह विचार नहीं मानना चाहिये।

दान निदान पुण्य प्रवीण का अंग

सारे : साबित
बिंद : बींद यानी दूल्हा
भवै : जमीन

निरवैरी नर मिलाप का अंग

पौणि : नीची बात
दरोग : झूठ

पात्र कुपात्र का अंग

जात्र : यात्रा
खबर : ज्ञान
खारडा : ऊसर, खारछा
बाल्ही : व्यर्थ
कोला : कोयला
सोला : चिनगारी
अरु न : और न

दई : परमातमा
नौवात : नवधा भक्ति
आसंधि : आश्रय पाना
टांगरे : छोटा घोड़ा
कुरड़ी : कचड़ा, घूर
नाई : हल के ऊपर की बोने वाली चिलम।

सेवा सुमिरण का अंग

आरंभ : कार्य
बधोतर : बढ़ती
गुलीबंध : गुठली
पै : पय
श्री मंडल : सुर मंडल यानी सितार

रत विकृत का अंग

घूघू : उल्लू
ऊंदरे : चूहे
सुवार : पानी में
बंधन : संयम, निग्रह

सुमति कुमति का अंग

बंटा : भेद (बट्टा)
कुट : पंख कटा हुआ पक्षी

शक्ति उभै गुणी का अंग

बेड़ा : पैर की बेड़ी तथा नाव
वलियहि : नष्ट करने वाली

वहनी और विभूति में दो-दो गुण रहते हैं—पोषक और नाशक।

सशतर : शस्त्र
सनाह : कवच

माया जड़ चेतन का अंग

फुला : नेत्र रोग—फूली।
बिनु वाछी : अनिच्छित
चार : व्यवहार, आचरण

शक्ति शिव सोध का अंग

छत्तीसधर : छत्तीस भाषाओं का जानने वाला अथवा छत्तीस व्यंजनों का ज्ञाता।
छलावा : भूत
आरण : समुद्र
सुवाद : व्यर्थ
बाणनहार : बनाने वाला
कंवला : कमला (माया)
निरवाणि : असंपृक्त

स्वार्थ का अंग

जूं : जुवां
कालर : ऊसर
खलक : भोग (सांसारिक)

अविश्वास तृष्णा का अंग

धापणहार : तृप्त होना
पाहिका : आशा का
बंबई : बांबी
चिन्त : चिन्ता
जक : शान्ति
मासा : एक माशा
बंदि : कैद में (गर्भ में)
मच्छ : मगर

विश्वास संतोष का अंग

जुड़चा : जरा, बुढ़ापा
मूके : छोड़ना
बरा : वरदान
अचिग : अडिग
चीरी : काग़ज़ अथवा कर्म पत्र
मनि अबंध : मन में बँधा न हो
तवक्कुल : संतोष अथवा ईश्वर पर भरोसा।
दुरस : दुरुस्त
रोझ : मूर्ख (पशु)

निरिहाई निर्वाण का अंग

ताखड़ी : तुला

बमेक बेसास मधुकरी का अंग

सिलक : शुल्क

वांगै : तेल देना

संयम कसौटी का अंग

नीलों : हरे, नीले

सोख्यत : कसौटी

जंतर : जंत्री, वह जंत्री जिसमें तार सीधे किये जाते हैं।

कंगहि : कंघा

साहों : बड़े लोग

नाज : अहंकार

खुध्या : भूख

मैमंत : हाथी

कुंटिक : केतकी

शेख फरीद की माँ ने उसे भजन का उपदेश दिया था। वह पत्ते खा कर रहा।

चूना : घरों में

आल : हड़ताल

सिलावट : राज, कारीगर

बंदि : कसौटी

तापड़ : कूड़ा, कचरा

शाल : धान

पिष्टी : पीठ

पवंग : घोड़ा

घोड़े के ऊपर की काठी रखने से काले बाल भी सफेद हो जाते हैं।

सांच निरभय का अंग

कोल : कौल, वादा

अग्निमै : अग्निमय

जाड़े का कोट : शीत कोट, बरफ का महल

तोरा : शक्ति

सुतधार : सूत्रधार, कातने वाला

काणिकट : कचड़ा

खांडे घटा : तलवार के समान, वक्ता श्रोता दोनों को मारता है

पांसों में : दांव से

पाड़ै : दोष या खोट

कांड : पसंघा

बहावै : चढ़वावै

आमदनी : सवाई, आगमन

परम सांच का अंग

ठेल : त्याग दिया, हरा दिया

कृपण का अंग

मोनणि : पिटारी

खितभुज : राजा

जरणा : क्षमा

झारी : जल पात्र

माथै मारि : दूर करो

सूल : वसूल

बिणठी : नष्ट हुई, बिगाड़ देना

सूम का धन व्यभिचारी के पुत्र के समान होता है।

संचक : सूम

रवि सुत : यमराज

दुमई : एक प्रकार की भेड़

सिड़ै : सड़ै

सांच चाणक का अंग

तौवची : तोपची, तोप चलाने वाला

अष्ट : अष्ट मैथुन

विस्त : जुगनू

जल मुकर : शीशे का पानी (आब)

कड़बी : करबी, ज्वार का पेड़

गत बाणि : खोटी आदत

सेह : स्याही नामक जन्तु

सींग माडै : विवाद करे

भोगल : भूगोल

कड़छ : कर्छुली
भुसि : भूकना
सुनहै : कुत्ते
विश्वामती : वेश्या मत
कारण : विवाह
खुदरौ लूण : खुरेचा हुआ खादर का नमक।
पंचम : पांचवीं खानि यानी गुरुदेव
दसराहे : दशहरे के दिन
बावड़ी : पागल
गढ़वी : गढ़पति
भिखित : भयभीत होकर
नागे पगि : नंगे पैर
गिरही : गृहस्थ
कलणि : पोली जमीन
कोस : कोश
दहि : खड्डी या खाड़ी
जल मंडली : कुमुदिनी
चूकण : चुकौती चुकाना
खुड़कै : जरा सी खड़क से
सार : सारिका, मैना
सूने शोर : तत्वहीन स्वर
डूम : गाने - बजाने का काम करने वाली एक जाति।
धुकता : उठता हुआ धुवां
आर : अरई
धोरी : हांकने वाला
पुड़ : पिछला हिस्सा
पछमनी : पीछे करके
सगपण : सम्बन्ध

बखत ब्योरे का अंग

लांप तिण : एक प्रकार की घास, जो लापड़ा कहलाती है।
फिराश : एक वृक्ष, जिसमें फूल नहीं लगता।
जाप : एक बेल, जिसमें फल नहीं लगता।
लाप : अग्नि
असणि : बिजली, वज्र
वौसरै : गिरती है
अहर : गड्ढा, सरोवर
वोढ़ै : ओढ़ना
कसकत : कष्ट से

निन्दा का अंग

अगतो : छुट्टी नहीं लेता
नास : नासिका।

कृतघ्नी निर्गुण का अंग

एक नट ने गाँव में खेल किया। भाला आकाश में फेंका और दांत पर ले लिया। एक ग्वाल के लड़के ने इस कार्य को बहुत आसान बताया और नट के हुज्जत करने पर उसने उसी प्रकार ले लिया। नट ने उसके गुरु को पूछा। उसने कहा—कोई गुरु नहीं है। नट ने दुबारा करने को कहा, किन्तु गुरु-आस्था न होने से दूसरी बार भाला लड़के के सिर में प्रविष्ट होकर हृदय में घुस गया।

लड़के का गुरु एक बगुला था, जो तालाब की मछलियों को ऊपर से अपने मुंह में ले लेता था। उसी से यह कला उसने सीखी थी।

मसन्द : महान
मुकर : शीशा

एक सेवड़ा (यति) जैनी था। उसके पास एक चूहा था, जो दौड़ता रहता था। एक बार बिल्ली झपटी। साधू को दया आयी। उसने चूहे को मार्जार बना दिया। फिर कुत्ता बनाया, सिंह बनाया। जब वह सिंह सेवड़े पर ही झपटने लगा सो उसने

उसको पुन: मूषक बना दिया। (पुनर्मूषको भव की ऐसी ही कथा है)

जंगम : घोड़ा

चांदी : घोड़े की पीठ का घाव, जिसे बन्दर कभी-कभी कुरेदते हैं और जो चन्द्रमा की किरणों से भर जाता है

राणी : रांड़

वर्षावर्ष : प्रति वर्ष

खेचड़ा : शमी वृक्ष पीपल पर उग कर यह वृक्ष उसीसे रस लेता है, पर अपनेको शमी मानता है। इसलिए इसमें डाल, पत्र कम होते हैं।

कातरे : एक कीड़ा, जो खेती खा जाता है।

गंडार : तोता

कलियुगी का अंग

आवरै : ढके

रज्जब जी के कबित्त

गुरुदेव का अंग

वैरागर : हीरा

विभो : पृथ्वी

अष्टकुल : अष्टकुल पर्वत

अंग : लक्षण

न्यारे : रेत छानने वाले न्यारिये

कश्मल : पाप

मरजीवे : गोताखोर, डुबकी लगाने वाले।

विहंग : पक्षी, पत्रवाहक कबूतर

परपिंड धारि : दूसरे के शरीर में प्रवेश करना।

असु : अश्व

काष्टमुका : पूर्णत: मूक भाव से

नार : नाड़ी

मिलाप माहात्म्य का अंग

पारस : एक पत्थर है, जो तीन प्रकार का होता है। उत्तम पारस को छूते ही लोहा सोना बन जाता है और फिर वह लोहा कभी नही बनता। मध्यम पारस के छूनेसे लोहा दस सहस्र वर्ष पर्यन्त सोना रहता है, बाद में पुन: लोहा हो जाता है। कनिष्ठ पारस के छूने से लोहा एक सहस्र वर्ष पर्यन्त सोना रहता है, बाद में पुन: लोहा हो जाता है।

माया मध्य मुक्ति का अंग

लोई रंगै न सूत : ऊनी वस्त्र को रंगते समय सूत के तागों पर रंग का प्रभाव नहीं होता।

विवेक समिता का अंग

तंबी : गाय

भजन प्रताप का अंग

गरुड़ द्वार : गरुड़ द्वार नामक मोर के पंखों से निकला हुआ तांबा जिससे सर्प का विष दूर हो जाता है। इसे मोहरा भी कहते हैं।

मांडप : मांडप ऋषि मेढकी से उत्पन्न हुए थे।

सीसै सुत : चांदी, क्योंकि इसकी उत्पत्ति एक सीसे से होती है।

शूली : एक बार भर्तृजी को चोर समझ कर लोगों ने शूली पर चढ़ाया तो शूली मोम बन गयी और काष्ठ वाला भाग हरा हो गया।

दोहा—हरिजन हिजरा हुरकनी,
सती सूरमा होय।
इनके जाति न ऊपजै,
सब जातिन मैं होय॥

पारख का अंग

गाहणत वैद्य : ग्रहण जानने वाला ज्योतिषी।

सहदेव न समझी ग्वाल सम : सहदेव ज्योतिषी होकर वर्षा नहीं जान सके, जबकि एक ग्वालिन ने मूंज की रस्सी में नमी देखकर जान लिया कि आज पानी बरसेगा।

माता थणहुं : माता अपने स्तनों के दर्द से पुत्र के संकट का अनुमान कर लेती है।

नाल : तोप

सूंधा : एक सुगन्धित वस्तु जो एक प्रकार की बिल्ली के फोड़े का मवाद है।

भयभीत भयानक का अंग

वरत : रस्सा

लघुता का अंग

कैरी : केली, माया केला

जीवत मृतक का अंग

मृतक जहाज : सूखे काष्ठ का जहाज

तृष्णा का अंग

तृष्णा नग : एक विशेष जाति का हीरा।

ऊंडा : गम्भीर

काम का अंग

सुन्नत : कहते हैं, हज़रत मुहम्मद के दो बीबियाँ थीं। एक बीबी ने मुहम्मद साहब से इकरार करा लिया था कि यदि वे दूसरी बीबी के पास गये तो वह उनको दण्ड देगी। मुहम्मद साहब एक बार यह सुनकर कि उनकी दूसरी बीबी ने एक महान् प्रतापी बालक को जन्म दिया है, तो उसके पास गये और उसके साथ समागम किया, लौटने पर पहली बीबी ने उनको दण्ड दिया। मुंह से मुंह मिलाने के लिए बीच की मूंछों को कटवाने का तथा गुप्ताङ्गों के मिलाने के लिए जननेन्द्रिय के कटवाने का दण्ड दिया। मुसलमानों में तभी से सुन्नत चली।

षट् दर्शन : ६ प्रकार के साधू

दोहा—व्योम सन्यासी वायु शेख,
शशि सेवड़े जान।
सूरज जंगम बोध जल,
जोगी भू पहचान॥

इनसे छानवे पाखण्ड उत्पन्न हुए :—

दोहा—अठारा बोध अठारा जंगम,
चौबिस जैन बखान।
दस सन्यासी बारह जोगी,
चौदह शेख प्रमान॥

स्वांग साधु निर्णय का अंग

भवन : भवनसिंह नाम का कोई व्यक्ति, जिसकी कथा भक्तमाल में दी है। काठ का खांडा लोहे का बन गया था।

नामजन : नामदेव भक्त, जिन्होंने मरी गाय को जिला दिया था।

मवैये : सांग बनाने वाला

अज्ञान कसौटी का अंग

कूंडी कराना : गड्ढे में बैठ कर जलना
काष्ट भखहिं : पीपल के खोह में बैठ कर जलना ।
ऊत : बांझ
हजरत दंत : मुहम्मद साहब ने पत्थर को गरम करके फोड़ा सेंका था । इस पर पत्थर ने बदला लिया । मुहम्मद साहब के दांत उसी पत्थर से टूटे ।

कुसंगति का अंग

खै : विनाश
केली व्रण : घड़ियाल घास खाने आता है तो मारा जाता है ।
करगस : तरकस

सब वाणों में काग पंख लगे हों, ऐसे तरकस में रखे हुए वाणों के बीच यदि एक वाण घूघू के पंखों वाला रख दिया जाय तो सब वाण बेकार हो जाते हैं, क्योंकि उसके पंखों से दूसरे वाणों के काग पंख छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

काचे : अज्ञानी
पावंर : पादुका
बाइल : दूषित वायु.
कम कल : अल्प बुद्धि

कुसंग सुसंग का अंग

रजस्वला नारी की साया पड़ने से सभी अन्धे हो जाते हैं ।

उपकंठ : समुद्र के पास का वह भाग जहां नदी गिरती है ।
विशालवा : गंधी की वह नलिका, जिससे नाप कर वह इत्र व तेल देता है ।

अपलच्छिन अपराध का अंग

पटसल : त्रणों से ढका हुआ गड्ढा जिसके पास एक बकरा बांध दिया जाता है । सिंह बकरे के खाने के लालच में आकर उसी गड्ढे में गिर जाता है ।
नलनी : तोता पकड़नेवाली नलिका
चुट : गहरी

घोड़े के पास अग्नि लग जाने पर वह उसी ओर दौड़ता है ।

अथारै : सोते समय छाती में हाथ आ जाना ।

मानी का अंग

सानि : विष का मिश्रण

मूढ़कर्मी असाध्य रोग का अंग

खेचरी : तमाशे
करड : दाल का न पकने वाला दाना ।
सीदरी : रस्सी
डील : शरीर
विगूचे : खाये या भोगे
बागुलि : बड़ा चिमगादड़
न्हारुवा : एक लम्बा स्नायु छेद द्वारा शरीर से निकलता है ।
कीट पटवणी : कीड़े से रेशम

स्वांग का अंग

टीकायत : राजा से टीका प्राप्त रईस
तुंगिनी : रात्रि
विढम्बै : विडम्बना करना

नगों में छाप नहीं है, फिर भी आब (पानी) है और उनका सम्मान कम नहीं है ।

दुहाग : परित्यक्ता

गोठि : समूह
तागा : जनेऊ
चंप्या : लगाना
मलमंडे : चित्र छापा लगाये हुए पहलवान।
बिरख : बैल
पडर : पीला
खूभी : सफेद बरसाती शाक
बहसिये : बहकना
धोलों : सफेद
कली : वेश
सुध : सीधी
डीगरी : नटखट गउओं के गले का लंगर।
गोधे : जवान बैल
गुंझी : गुप्त
भाकसी : कैद
पांड़ो : बाना
जैन : एक यती। कहते हैं कि उसने राजा से पूर्ण अमावस्या की रात्रि को पूर्णमासी बता दी। उसे यक्षिणी सिद्ध थी, किन्तु पता यह चला कि बारह कोश के भीतर ही कृत्रिम चन्द्रमा का प्रकाश है। उस यती ने भांग के नशे में ऐसा कह दिया था।

झाड़ बिलाई : बबूल के कांटों के घेरे
पण पड़ि जाय : शक्ति क्षीण हो जाय

ऊँट रेत, गधा राखी और हाथी धूल अपने ऊपर उड़ेलता है। परन्तु इसमें कुछ खाने को नहीं है।

गृहस्थियों के गुदड़ी ओढ़ने से पसीना निकल कर ताप उतर जाता है, परन्तु यती लोग गुदड़ी ओढ़ कर अभिमानी हो जाते हैं।

पछणे : अस्तुरा
भांडली : मृग जल
लंच : आदत
पठंगे : शिकंजे

खेचर : दुष्ट

सितार की नलिका का रंग अच्छा हो या न अच्छा हो, स्वर निकलता है।

गऊ के दांत एक ही तरफ होते हैं।

स्वांग सांच निरनै का अंग

बालदि : बैलों की सम्पति

सांभर में काजियों ने दादू जी पर पगला हाथी छोड़ा। हाथी आया, उन्होंने उसके मस्तक पर हाथ रख दिया। वह पीछे चला गया।

शाहपुरा का त्रिलोकचन्द्र नाम का वैश्य दादू जी को लाया। दादू जी अपना साफा वहां छोड़ गये। त्रिलोकचन्द्र जब लौट कर साफा लेने गया तो दादू जी वहां भी बैठे थे। इसके बाद दादू जी ने उससे कहा कि मेरे कमर में साफा बांध दो, किन्तु वह कमर में साफा नहीं बांध सका।

गुजरात के एक घाट में एक साहूकार का जहाज डूबने लगा। उसमें हिंगोल और कपिलगिरि दो सन्यासी थे। इनके कहने पर दादू जी का नाम स्मरण किया गया। दादू जी ने अपने स्थान पर बैठे-बैठे योंही एक हाथ से धक्का दिया। बाद में उनके हाथ से पानी गिरा। यह देख कर शिष्य चकित रह गया।

चीरी फिरी : सांभर के लोंगों ने एक पत्र लिखा और यह तय किया कि जो दादू के पास जायगा, उसे पांच सौ रुपया दण्ड देना पड़ेगा या सौ रुपये की आमदनी वाला पांच रुपया देगा। डुगी पिटवा दी गयी, किन्तु फिर भी एक शिष्य दादू जी के पास चला ही गया। दादू जी ने कहा—तुम क्यों आ गये? वहां पर जब वह पत्र पढ़ा गया, तब पत्र के अंक पलट गये।

पागल हाथी को खाटू के गुरटेराव ने छोड़ा था।

बीये : दो
बहेणा : बहिन

तीरथ तस्कार का अंग

ऊँडै : गहरे, नीचे
उधली : एक पति को छोड़ कर दूसरे के पास जाने वाली।

आचार उथेल का अंग

पांछि : चीर कर
आछि : अच्छापन

वेद विकार का अंग

नव : व्याकरणकर्त्ता
उगूण : पूर्व दिशा
आथूण : पश्चिम दिशा
भारत : युद्ध
जुगल : विष और अमृत

नीतिग का अंग

थापणियां : कंडे
उनज : अनुज

मंसूर को पत्थरों से मारा गया। इनकी बहिन ने गुलाब के फूल की चोट से आह की।

धोक : प्रणाम
गुलगद : जला कर रोग को ठीक करना।
जूआ : जुदे, भिन्न

गुरु गति मति सति का अंग

इल बाल : पृथ्वी की सन्तानें
किराड : महाजन
दरविहीन : हवा होना

सारग्राही का अंग

दुपि : द्विप, हाथी
तुरि : जुलाहे की लकड़ी, जिस पर वह वस्त्र बुनता है।
खलाबरि : लुहार की मशक
लड : मूर्ख
चीचड़ : जोंक
गंज : खजाना

शब्द उदै असत्य का अंग

खड़ी : खड़िया
बाज : बिना, छोड़ कर

शब्द का अंग

मुनारे : लाट, मीनार
गैणाग : गणक या ज्योतिषी
पारपदि : परम पद

सर्व ठौर सावधान का अंग

पर पसंत : परा और पश्यन्ती वाणी

मन का अंग

विरति : वृति
मूकै : त्यागना
मोत्या : कुत्ता
खोलि : खोरि या चन्दन
जोय : स्त्री
अकोड़ जोड़ : असंख्य गांठें
मूलि : किञ्चिन्मात्र
किरकांट : गिरगिट
पलगत : क्षण भर में नष्ट
बंटा : पशुओं के लिए बनाई गई चूनी या चापड़।
यूसुफ : अरब का एक सुन्दर व्यक्ति
पाछे : कटा हुआ
तारू : तैराक

विषय का अंग

राधि : पीब या मवाद
आरोगहिं : खाते हैं
कामरूप : आसाम

मांड मयाला : ब्रह्माण्ड रूपी काठा एक सर्प ऐसा होता है, जो छूता या काटता नहीं है, केवल सोते हुए व्यक्ति के श्वास को पान करता है। श्वास के साथ विष आदमी के शरीर में चला जाता है। यह सर्प मारवाड़ के रेगिस्तान में होता है।

सुकल : काम
नर मादा नग : हीरा हीरी
माचै : प्रमत्त
गिरडी : फांसी

झंप : झंपापात

नाहर चिड़ा : एक पक्षी, जो सिंह के मांस खाने के बाद उसके मुख से मांस के टुकड़े निकाल कर खाता है। मांस हँस कर उससे कहता है कि रे मूर्ख ! क्यों मुख के अन्दर आता है, जो मेरा हाल हुआ है, वही तेरा होगा।

काम का अंग

निवाम : प्रणाम

चोपड़ : घी

स्त्री को देख कर पारा कुवें से उमड़ता है।

विगन्धि : दुर्गन्धि

अवनि अंश : रज कण

करडा : कड़ा

अड़ : युद्ध, मोर्चा

भ्यासी : प्रगट होना

वरियाम : श्रेष्ठ

कीर : धीवर, मछुवाहा

दह : जल की गहराई

भलपण : भलाई

इन्द्रियों का अंग

द्ववंर : द्वन्द्व

विगसे : अलग अलग

तूतंतरू : शहतूत

इस वृक्ष के ऊपर पांच वृक्षों की कलम लगा देने से पांचों हरे होते हैं और अपना-अपना फल देते हैं।

मखज : अखाद्य

अनकी : डंका

कुरूख : बुरे वृक्ष

मुध : पीठ पीछे करना

रहति का अंग

कलियुग में यह कानि मानते हैं कि शुक्र के उदय होने पर स्त्रियां उसके पास नहीं जाती हैं।

कन्ह : ब्रह्मचारिणी गाय

नहंग मणि : ब्रह्मचारिणी मणि

परेव : कबूतर

अरि मोरि : शत्रुओं को मोड़ने वाला

जतन का अंग

चौड़े : मैदान

यह प्रसिद्ध है कि सिंहिनी का दूध बिना स्वर्ण पात्र के नहीं रहता, वह झर कर बाहर निकल जाता है।

सहकाम निहकाम का अंग

रामति रली : संसार में पड़ना

लौंडा : चेरा

कनीज : दासी

तमा : लालच

छुछन्द : स्वच्छन्द

प्रवृति निवृति का अंग

धोरा : कच्ची नाली

गजगीर : पक्की नाली

विड़ : वृक्ष

वटक : बरगद

झूठ सांच निरणै का अंग

लागिर : साथ लग कर

महमद : मुहम्मद गोरी या महमूद गजनवी।

करणी बिना ज्ञान का अंग

उनवना : उमड़ना

रामा : माया

रोली : जौ और गेहूं में लगनेवाला एक रोग।

उपजणि का अंग

वरमाइये : भरमाइये

वीख : डग, पैर

आड़ि : जल पक्षी

उग्रहै : मुक्त हो

गुप्त पाप का अंग

गात के गुनाह का दण्ड मारपीट है।

लोक लज्जा का अंग

नाकी : नाक के लिए (टेक)

चौड़ : चौपट कर दिया

मनमुखी का अंग

झालि : लेना

मैवासी का अंग

मैंवासा : वीर डाकू

वयक्रट वन : विग्रह का वन

क्रोध का अंग

महणारम्भ : मन्थन

चमक : क्रोध

सुरभखि : सुभिक्ष

इन्द्र धनुष को न पूजने से अति वृष्टि या अनावृष्टि होती है।

गुरुपूनो के दिन वायु की परीक्षा के आधार पर सुकाल और दुकाल का अनुमान करते हैं।

कुडाला : चन्द्रमा के चारों ओर का मण्डल।

गलागल : एक-दूसरे को खाना

सात्विक तामस निदान का अंग

समुद्र में जरा-सा हलचल हो जाने से खारे पानी के कारण सीप का मोती नष्ट होजाता है।

दुणिन्द : सूर्य

विषधक : विष ज्वाल

जरणा का अंग

जरणा जोध : क्षमा रूपी योद्धा

नरनारायण के ऊपर कामसेना आयी थी। जब वह हार गयी, तो दुखी हुई। फिर उर्वशी नाम की अप्सरा कामसेना को दी। उस कामसेना ने वामाओं को क्षमा कर दिया।

विप्र : यानी भृगु

व्याध : जरा नामक व्याध जिसने बाण मारा था, किंतु उसको क्षमा कर दिया गया।

परम जरणा दुष्ट दातार का अंग

रई : मथानी

करहर : तोड़ कर लाना; यद्यपि मेंहदी के लिए काल है, क्योंकि वह पीसी जाती है।

वोड़ : एक जाति, जो तालाब खोदने का काम करती है

सर्व गुण अरथी का अंग

आंभे सांभे : आमने-सामने

गीद : गेंद

बादी : बाजीगर

प्रस्ताविक का अंग

सियाले : शीतलता

नुकते : समय

चतुर जवाबी का अंग

चार दाग : चार अंत्येष्टि की विधियां

सप्त सती : सीता, कुन्ती, द्रौपदी, अहल्या, तारा, सुलोचना, मन्दोदरी।

भोले भाव का अंग

टोटी : 'रोटी' शब्द का तुतला कर उच्चारण।

शत्रु और मित्र की बीच की अवस्था यानी तटस्थता भोला भाव है।

राखा : उपालम्भ, उलाहना

डाहे : समझदार

डगलों : मिट्टी के ढेले

लांबी का अंग

अहूंक : इच्छा

मारू : मरुस्थल

खालसे का अंग

रामानन्दी लोग बाहर से गरजते हैं, पास आ जाने पर किञ्चित् नही बोलते।

मथुरा में एक बार मुसलमानों ने माला-तिलक को गैरकानूनी करार दिया था। उस समय माला-तिलक उतारने से ही हिन्दुओं का छुटकारा हुआ। यही दादू जी का पंथ है।